तुलसी-प्रकाशन-माला—पुष्प ४

तुलसी साहित्य सुधा

सरल अर्थ सहित गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों
के उत्तमांश का संकलन

सम्पादक एवं टीकाकार

डा० भगीरथ मिश्र

पूर्व कुलपति तथा आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
सागर विश्वविद्यालय सागर एव
उपाध्यक्ष म० प्र० तुलसी अकादेमी

प्रकाशक

मध्य प्रदेश तुलसी अकादेमी, भोपाल की ओर से

साहित्य भवन प्रा० लि०

जीरोरोड, इलाहाबाद 211003

तुलसी साहित्य सुधा
मध्य प्रदेश तुलसी अकादेमी, भोपाल की ओर से
साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९९४

मूल्य : १२०-००

साहित्य भवन प्रा० लि०, ९३, जीरो रोड, इलाहाबाद, २११००३ द्वारा प्रकाशित
तथा स्टार प्रिण्टर्स, २८७, दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित।

अमृत कलश

संत कवि तुलसीदास का एक ही धर्म था—परहित। एक ही इष्ट था—परहित। एक ही अभीष्ट था—परहित। परहित के लिए उन्होंने रामचरित्र का प्रणयन किया। उनके राम परहित में जीवन भर संघर्षों से जूझते रहे—मर्यादाओं की स्थापना करते रहे, जीवन-मूल्यों को अपने आचरण से प्रतिष्ठित करते रहे। तुलसी के राम मानवीय जीवन-मूल्यों के प्रणेता हैं। तुलसी साहित्य में निहित इन्हीं जीवन-मूल्यों—संस्कारों और आचरणों के प्रति राष्ट्र, समाज, परिवार और व्यक्ति के जीवन में चेतना और आस्था का वातावरण निर्मित करने के लिए मध्य प्रदेश शासन ने वर्ष १९८७ में तुलसी अकादेमी की स्थापना की और देश के मूर्धन्य तुलसी-मर्मज्ञों की समिति को इस अकादमी का संचालन सौंपा। तुलसी अकादेमी ने विद्वानों के मार्गदर्शन में पिछले छह वर्षों में न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान कायम की बल्कि उपलब्धियों के शिखर को भी स्पर्श किया। तुलसी अकादेमी की गतिविधियाँ तीन धाराओं में बह रही हैं—अकादेमिक गतिविधियाँ, लोकप्रिय आयोजन और शीर्ष ग्रन्थों का प्रकाशन।

श्रद्धेय डा० भगीरथ मिश्र ने अकादेमी के लिए तुलसी साहित्य का मथन कर इस पुस्तक के रूप में अमृत कलश प्रस्तुत किया है। अकादेमी उनके मार्गदर्शन और सहयोग के प्रति कृतज्ञ है।

यह तुलसी अकादेमी का चौथा ग्रन्थ है। हमें विश्वास है कि 'तुलसी साहित्य सुधा' का यह कलश जन-जन के लिए उपयोगी होगा और समग्र जीवन का क्रांतिदर्शी दर्पण बन सकेगा। इति शुभम्

भोपाल
तुलसी जयन्ती, १९९३ ई०

डा० सिद्धनाथ शर्मा
सचिव
म० प्र० तुलसी अकादेमी, भोपाल,
एवं संचालक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश।

वक्तव्य

मानस चतुश्शती के अवसर पर अखिल भारतीय चतुश्शती की ओर से गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का एक ऐसा संग्रह तैयार करने का कार्य मुझे सौंपा गया जिसमें गोस्वामी जी के काव्य के सभी पक्ष आ जायें, उनके साहित्य का कोई ललितांश छूटने न पाये तथा उनके प्रबन्ध काव्यों की कथा भी खंडित न हो। मैंने यह कार्य-भार स्वीकार तो कर लिया, परन्तु जब मैं संग्रह करने बैठा, तो मेरे सामने प्रश्न उपस्थित हुआ कि कौन-सा ललित अंश छोड़ा जाये। मुक्तक रचनाओं मे तो किसी प्रकार बात बन गयी, पर प्रबन्ध काव्यों मे कथा सूत्र को बनाये रखते हुए किसी प्रसंग को निकालना बड़ा कठिन जान पड़ा, क्योंकि तुलसीदास जी ने प्रबन्धों में ऐसी सूत्र-सम्बद्धता की है कि उसे उधेड़े बिना कोई अंश छोड़ देना प्रायः असम्भव हो जाता है। यही कारण है कि प्रबन्ध काव्यों के संगृहीत अंश अधिक विस्तृत हैं, मुक्तकों के कम। यह उलझन सबसे अधिक रामचरितमानस के संग्रह में उपस्थित हुई। एक तो प्राय. सभी अंश या तो काव्य-लालित्य से युक्त हैं, अथवा फिर वे कथा सूत्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी दशा में मैंने यह निश्चय किया कि कथा-सूत्र को खंडित न करते हुए और किसी भी उच्च कोटि के ललितांश को बिना छोड़े संग्रह तैयार करना ही उत्तम होगा—चाहे संग्रह का कलेवर थोड़ा-बहुत बढ़ ही क्यों न जाये।

गोस्वामी जी की रचनायें या तो अवधी मे हैं या ब्रजभाषा मे। आज का पढ़ा लिखा व्यक्ति सामान्यतया इन दोनों भाषाओं के माधुर्य और लालित्य को हृदयंगम नहीं कर पाता। फिर प्रस्तुत संग्रह समग्र राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित होना है। उस स्तर पर अवधी और ब्रजभाषा को समझना और भी कठिन है। इसलिए यह निश्चय किया गया कि संग्रह के अंशों का परिनिष्ठित खड़ी बोली मे सरल अर्थ भी दिया जाये। इससे किसी भी देश का हिन्दी जानने वाला व्यक्ति रचना को भली-भाँति समझ सकेगा।

इसके अतिरिक्त इस संग्रह का भारत की तथा विश्व की प्रमुख भाषाओं मे अनुवाद भी होना है। इन विभिन्न भाषाओं के अनुवादकर्त्ताओं को मूल अवधी या ब्रजभाषा से अपनी भाषा मे अनुवाद करना कठिन होगा। इसलिए इस संग्रह मे संगृहीत अंश का सरल खड़ी बोली मे अनुवाद भी करना अभीष्ट है। गोस्वामी जी की कई छोटी कृतियों का अनुवाद उपलब्ध नहीं है, अतः उनका अनुवाद तो आवश्यक है ही, इसके साथ ही साथ विनयपत्रिका और रामचरितमानस जैसी सुप्रसिद्ध कृतियों का भी सरल भाषा मे अर्थ अपेक्षित है। इन कृतियों की विस्तृत एवं विद्वतापूर्ण टीकायें हुई हैं, पर उनसे हमारा यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। ऐसी दशा मे इन गौरवशाली

ग्रन्थों का भी सरलार्थ देना तो अति आवश्यक है। इस सरलार्थ लेखन में गीता प्रेस से प्रकाशित ग्रंथों की टीका तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित मानस की टीका से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। मैं उनका आभारी हूँ, क्योंकि उनकी टीका प्रायः हमारे इस कार्य के लिए उपयुक्त बैठी है। परन्तु नहछू, वैराग्य-संदीपिनी, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, दोहावली, कवितावली में मुझे पूर्णतया अपने ही विवेक पर निर्भर रहना पड़ा।

यह संकलन और अनुवाद का कार्य धीरे-धीरे चलता रहा; परन्तु जब मध्य प्रदेश तुलसी अकादेमी की कार्यकारिणी द्वारा इसके प्रकाशन की बात उठी, तब मैंने सब कुछ छोड़ कर तथा इसकी आवश्यकता का तीव्रता से अनुभव करते हुए, इसे तुरन्त पूरा किया।

तुलसी साहित्य के प्रकाशन में 'साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद' सदैव गहरी रुचि लेता रहा है। इसे भी उन्होंने तत्परता से प्रकाशित किया, इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

गोस्वामी जी को मैं 'त्वदीयंवस्तु' के रूप में उनकी कृति उन्हीं को समर्पित करता हूँ, साथ ही साथ मैं मध्य प्रदेश तुलसी अकादेमी के सचिव डा० सिद्धनाथ शर्मा का आभारी हूँ जिन्होंने इसकी आवश्यकता पर निरन्तर बल दिया। इसके साथ ही अकादेमी के अधिकारियों तथा अन्य सहयोगी सदस्यों का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस पुण्य कार्य में प्रेरणा देकर मुझे यह अवसर प्रदान किया। यदि इस संग्रह का मूल और अनुवादित स्वरूप हिन्दी तथा अन्य गौरवपूर्ण भाषाओं के माध्यम से व्यापक प्रचार और प्रसार प्राप्त कर सका, तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

तुलसी जयन्ती, १९८३ ई०

—भगीरथ मिश्र

विषयानुक्रम

□□

१. रामलला नहछू

आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो ॥१॥

सरल अर्थ—सबसे पहले सरस्वती, गणेश और गौरी की स्तुति करता हूँ फिर रामलला (प्रिय बालक राम) का नहछू (मांगलिक अवसरों पर विवाह के समय गाये जाने वाला गीत) गाकर सुनाता हूँ ॥

आलेहि बाँस के माँडव मनिगन पूरन हो।
मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो ॥२॥

सरल अर्थ—हरे बाँस का मंडप मणि-समूह से परिपूर्ण है जिसके चारो ओर मोतियो की झालर लगी हुई झूल रही है ॥

कनकखंभ चहुँ ओर मध्य सिंहासन हो।
मानिक दीप बराय बैठि तेहि आसन हो ॥३॥

सरल अर्थ—चारो ओर सोने के खम्भे बने है जिनके बीच सिंहासन शोभायमान है। उसी सिंहासन मे राजा दशरथ मणियों के प्रकाशित दीपो के बीच बैठे हैं ॥

अहिरिनि हाथ दहेड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो ॥४॥

सरल अर्थ—ग्वालिनि दही की हँडिया सगुन के लिए हाथ मे लेकर आ रही है। उमरते हुए यौवन को देखकर राजा के मन को वह प्रिय लगती है ॥

रूपसलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो ॥५॥

सरल अर्थ—सुन्दर लावण्यमय रूपवाली तँबोलिनि हाथ मे पान का बीडा लिये है। वह जिसकी ओर देखती है उसके मन को अपने साथ मे ले लेती है ॥

बतिया कै सुघरि मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतनमनि मौर लिहे मुसकातहि हो ॥६॥

सरल अर्थ—सुघर बाते करने मे चतुर मालिन सुन्दर शरीर वाली भी है, वह स्वर्णमय रत्नजटित मुकुट को हाथ मे लिये मुसकुरा रही है ॥

नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो ॥७॥

सरल अर्थ—विशाल नेत्रों वाली नाइन अपनी भौंहो को मटकाकर रनिवास में गारी और गीत गा रही है ॥

कनक चुनिन सों लसित नहरनी लिये कर हो।
आनंद हिय न समाइ देखि रामहि बर हो ॥८॥

सरल अर्थ—वह सोने की चूड़ी पहने हुए हाथ में नहरनी (नाखून काटने का यंत्र) लिये हुए है और दूलह के रूप में राम को देखकर आनंद से फूली नहीं समाती ॥

काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो।
गजमुक्ता लर हार कंठ मनि मोहइ हो ॥९॥

सरल अर्थ—उसके कान में सोने के तरौना (आभूषण) और नाक में नथुनी शोभायमान है। और गले में गजमोतियों और मणियों का हार मन को मोह रहा है ॥

काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो।
कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ॥१०॥

सरल अर्थ—(स्त्रियाँ हास्य विनोद करती हुई कहती हैं कि) रामजी साँवले क्यों हैं और लक्ष्मण गोरे क्यों हैं? क्या रानी कौसल्या को कुछ भ्रम हो गया था अथवा उन्हें प्रतीक्षा करते हुए भोर हो गया था?

राम अहहिं दशरथ के लछिमन आनक हो।
भरत सत्रुहन भाइ तो श्रीरघुनाथ क हो ॥११॥

सरल अर्थ—अथवा राम तो दशरथ के पुत्र है, पर लक्ष्मण उनके पुत्र न होकर किसी और के है। परन्तु, भरत शत्रुघ्न तो निश्चित ही राम के भाई हैं ॥

अतिसय पुहुप क माल राम उर सोहइ हो।
तिरछी चितवनि आनंद मुनि मुख जोहइ हो ॥१२॥

सरल अर्थ—राम के वक्षस्थल पर अनेक फूलों की मालायें सुशोभित हैं। मुनिजन तिरछी दृष्टि से आनंदपूर्वक उनका मुख देख रहे हैं ॥

जावक रचि क अँगुरियन्ह मृदुल सुढारी हो।
प्रभु कर चरन पछालि तौ अति सुकमारी हो ॥१३॥

सरल अर्थ—राम की कोमल अंगुलियों में आलता (लाल रंग) रचकर सुन्दर रीति से लगाया गया और उनके कोमल हाथ और पैरों को प्रक्षालित किया गया है ॥

राजन दीन्हे हाथी, रानिन्ह हार हो।
भरि गै रतन पदारथ, सूप हजार हो ॥१४॥

सरल अर्थ—राजाओं ने इस अवसर पर हाथी और रानियों ने हार दिये औ इतनी अधिक संख्या में मूल्यवान् पदार्थ और रत्न निछावर किये गये कि हजारों सू उनसे भर गये ॥

दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो ।
कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो ।।१५।।

सरल अर्थ—दूलह श्री राम की माता यह सब देखकर मन मे प्रसन्न हो रही हैं और उन्होने करोडों द्रव्यो का दान इस प्रकार दिया कि मानो बादल उनकी वर्षा कर रहे हैं ।।

रामलला कर नहछू अति सुख गाइय हो ।
जेहि गाये सिधि होइ परमनिधि पाइय हो ।।१६।।

सरल अर्थ—यह रामलला के नहछू संस्कार गीत आनंद से गाकर सुनाया जाना चाहिए जिसके गाने से सिद्धि प्राप्त होगी और अनेक प्रकार की समृद्धि भी प्राप्त होगी ।।

२. वैराग्य-संदीपिनी

राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान मय, सुरतरु तुलसी तोर ॥१॥

सरल अर्थ—राम के बायीं ओर सीता तथा दायीं ओर लक्ष्मण विराजमान् हैं। इस रूप का ध्यान कल्याण करने वाला है। तुलसीदास जी कहते हैं कि तेरे लिए तो यह कल्पवृक्ष है॥

तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुनग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रवि कुल रवि राम ॥२॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अनेक प्रकार के करोड़ों गुणयुक्त कार्य करने से भी मोह रूपी अँधेरा नहीं मिटता। सूर्यवंश में सूर्य के समान राम के बिना हृदय रूपी कमल फूलता नहीं॥

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत ॥३॥

सरल अर्थ—(राम का वास्तविक स्वरूप यह है कि) वे बिना कान के सुनते और बिना आँख के देखते हैं। वे बिना जीभ के स्वाद ग्रहण करते हैं, बिना नाक के सूँघते हैं और बिना स्थान के स्पर्श करते हैं॥

तुलसी यह तनु खेत है, मन बच कर्म किसान।
पाप पुन्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान ॥४॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह शरीर खेत है, मन, वचन और कर्म किसान हैं, पाप और पुण्य—ये दो प्रकार के बीज हैं। अतएव जो जिसको बोवेगा, वही अन्त में उसको काटेगा॥

तुलसी यह तनु तवा है, तपत सदा त्रय ताप।
सांति होहि जब सांतिपद, पावै राम प्रताप ॥५॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह शरीर तवा है जो सदैव दैहिक, दैविक और भौतिक—इन तीन तापों से तपता रहता है। जब राम के प्रताप से उसे शांतिपद प्राप्त होता है, तभी उसे तपन से शांति मिलती है॥

तुलसी वेद पुरान मत, पूरन सास्त्र बिचार।
यह बिराग संदीपिनी, अखिल ज्ञान को सार ॥६॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वेद और पुराणों के मत और शास्त्रों के विचारों से युक्त होने के कारण, यह वैराग्य संदीपिनी समस्त ज्ञान का सार रूप है।

संत स्वभाव वर्णन

सरल वरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै संत जन, ताहि परी पहिचानि ॥७॥

सरल अर्थ—सन्तो के स्वभाव का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि सन्त हर दृष्टि से सरल हैं, यही उनकी पहिचान है। उनकी वेशभूषा सरल है, भाषा सरल है और वह सरल अर्थ से भरपूर है ॥

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि वहुसंत।
परकाजे परमारथी, प्रीति लिये निवहंत ॥८॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा कहीं-कहीं होता है और वह धरती धन्य है जहाँ बहुत से सन्त निवास करते हैं जो दूसरो के हित के प्रति प्रेम रखते हुए परमार्थ का निर्वाह करते है ॥

सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि।
तुलसी यह मत सत को, बोलै समता माहि ॥९॥

सरल अर्थ—सन्त जन न किसी को शत्रु मानते हैं और न किसी को मित्र। तुलसीदास कहते हैं कि सन्त की विशेषता यह है कि वह सदैव समत्व की वाणी बोलता है ॥

एक भरोसो एकबल, एक आस बिस्वास।
रामरूप स्वाती जलद, चातक तुलसीदास ॥१०॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सन्तो के लिए चातक के समान राम रूप स्वाति नक्षत्र के बादलों का ही एक मात्र भरोसा, बल तथा उसके प्रति ही आशा और विश्वास हैं ॥

सो जन जगत जहाज है, जाके राग न द्वेष।
तुलसी तृष्ना त्याग के, गहेउ सील सतोष ॥११॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वह व्यक्ति संसार सागर से पार करने के लिए जहाज है जो राग-द्वेष से रहित है और जिसने तृष्णा को छोड़कर शील और सन्तोष को ग्रहण किया है ॥

कोमल बानी सन्त की, सवें अमृतमय भाइ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ ॥१२॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि सन्तो की वाणी कोमल होती है और उससे अमृत तत्त्व से भरे हुए भाव टपकते हैं जिनको सुनकर कठोर मन भी मोम के समान कोमल हो जाता है ॥

कंचन कांचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान।
तुलसी ऐसे सतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान ॥१३॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि जो सोने और कांच को समान

तुलसी बंक बिलोकनि, मृदु मुसकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि ॥७॥

सरल अर्थ—मैं प्रभु राम के नेत्रों को कमल के समान कैसे कह सकता हूँ, क्योंकि उनमें तिरछी चितवन भी है और कोमल मुस्कान भी ॥

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥८॥

सरल अर्थ—राम सीता से कहते हैं कि हे नवल नारी तुम अपना मुख घूँघट से व्यर्थ में क्यों ढकती हो। ठीक तुम्हारे मुख के समान ही आकाश में चन्द्रमा सुशोभित है ॥

गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय के छाँह ॥९॥

सरल अर्थ—सखी राम से कहती हैं कि हे रघुनंदन, अपने मन में अपनी सुन्दरता का गर्व मत करो। तुम्हारी साँवली मूर्ति तो सीता की छाया के समान है जिसे तुम प्रत्यक्ष देख सकते हो ॥

कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ ॥१०॥

सरल अर्थ—हे सखी, कमल सीता के पाँवों की समता नहीं कर सकता, क्योंकि कमल काँटों से युक्त है और पैर कोमल हैं, कमल रात में संकुचित हो जाता है जब कि पैरों की शोभा रात-दिन खिली रहती है ॥

द्वै भुज कर हरि रघुवर सुन्दर बेष।
एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष ॥११॥

सरल अर्थ—सुन्दर वेश धारण किये हुए राम दो भुजाओं के विष्णु प्रतीत होते हैं और लक्ष्मण एक जीभ के होते हुए दूसरे शेषनाग हैं ॥

जटा मुकुट कर सर धनु, संग मरीच।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच ॥१२॥

सरल अर्थ—जटाओं का मुकुट बनाये, हाथ में धनुष बाण लिये हुए मारीच के पीछे दौड़ते हुए राम की कनखियों से चितवन, हमारी आँखों में बस रही है ॥

सीय बरन सम केतकि अति हिय हारि।
किहेसि भँवर कर हरवा हृदय बिदारि ॥१३॥

सरल अर्थ—सीता के वर्ण की समता करने में हृदय से हार मानकर केतकी ने अपना हृदय विदीर्ण कर भौंरों का हार उसे छुपाने के लिए धारण किया ॥

सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ।
अगिनि ताप ह्वै हम कह सँचरत आइ ॥१४॥

सरल अर्थ—अशोक वन मे सीता कहती हैं चन्द्रमा की शीतलता सारे संसार में छायी हुई है, परन्तु हमारे लिए अग्नि की गर्मी के समान संचरित हो रही है ॥

विरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ ॥१५॥

सरल अर्थ—विरह की आग जब हृदय के ऊपर अधिक प्रज्वलित होती है, तब ये वैरिन आँखें उसे बुझा देती हैं और हमे जलने नही देतीं ॥

डहकु न है उजयरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम ॥१६॥

सरल अर्थ—भ्रम मे न पड़ो, यह उजेली रात है, इस समय धूप कहाँ ? मुझे राम के बिना सारा संसार जलता हुआ सा लग रहा है ॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ ॥१७॥

सरल अर्थ—हे हनुमान्, अब मेरे जीवन की कोई आशा नही है, क्योंकि छिगुनी (कनिष्ठिका) मे पहनी जाने वाली मुंदरी कंकण जैसी हो गयी है और हाथ में चढ़ जाती है ॥

सरद चाँदनी संचरत चहुँ दिसि आनि।
बिधुहिं जोरि कर बिनवति कुलगुर जानि ॥१८॥

सरल अर्थ—शरद की चाँदनी चारों दिशाओं मे फैलती आ रही है। सीता को वह उष्ण लगती है, अतः वह चन्द्रमा को सूर्य समझ कर कुलगुरु के रूप मे उनकी वन्दना कर रही हैं ॥

उत्तर काण्ड

केहि गिनती महँ ? गिनती जस बन घास।
राम जपत भए तुलसी, तुलसीदास ॥१९॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मेरी क्या गिनती थी, मैं उसी प्रकार था जैसे जंगल मे घास उगती है, परन्तु राम के जप करने से तुलसीदास, तुलसी पौदे के समान महत्त्वपूर्ण हो गया ॥

तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
बड़े भाग अनुराग राम सन होय ॥२०॥

सरल अर्थ—तुलसीदास के विचार से स्थिति यह है कि कहने सुनने वाले तो बहुत हैं, पर समझने वाले बिरले ही हैं। बडे भाग्य से ही राम के प्रति सच्चा प्रेम जाग्रत होता है ॥

४. पार्वती-मंगल

बिनइ गुरुहि गुनिगनहि, गिरिहि गननाथहि ।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि ।
कवित रीति नहिं जानउँ, कबि न कहावउँ ।
शंकर चरित सुसरित मनहिं अन्हवावउँ ।।१।।

सरल अर्थ—गुरु, गुणीजनों, हिमगिरि, तथा गणेश जी की वन्दना कर और धनुष बाण धारण किये राम तथा सीता को हृदय में रखकर, मैं कवि न होते हुए और कवित्व रीति न जानते हुए भी शंकर के चरित्र रूपी सुन्दर नदी में अपने मन को नहला रहा हूँ ।।

पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहि ।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस भवानिहि ।
जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु ।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु ।।२।।

सरल अर्थ—मेरी वाणी दूसरों की निन्दा और वाद-विवाद करके दूषित हो गयी है, उसे मैं शंकर-पार्वती का यश गाकर पवित्र कर रहा हूँ। जय संवत् १६४३ की फाल्गुण सुदी पंचमी गुरुवार को अश्विनी नक्षत्र में इस पार्वती मंगल को मैंने रचना की जिसको सुन-सुन कर प्रतिक्षण सुख उत्पन्न होगा ।।

गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि ।
मैनातासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ।
कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर ।
लीन्ह जाइ जगजननि जन्म जिन्ह के घर ।।३।।

सरल अर्थ—हिमाचल पृथ्वी पर गुणों के भण्डार तथा धुरन्धरों में श्रेष्ठ थे। उनकी स्त्री मैना उनके घर में तीनों लोकों की स्त्रियों में श्रेष्ठ थीं। उनके पुण्य की सराहना कहाँ किस प्रकार की जाये जिनके घर में जगज्जननी पार्वती ने स्वयं जन्म लिया ।।

मंगलखानि भवानि प्रगट जब तें भइ ।
तब तें ऋधि सिधि संपति गिरिगृह नित नइ ।
कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं ।
गिरिजा जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं ।।४।।

सरल अर्थ—मंगल की खानि पार्वती ने जबसे जन्म लिया, तब से हिम-पर्वत के यहाँ नित्य नवीन ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति आने लगीं। कुँवरि को

सयानी देखकर माता-पिता सोचने लगे और गिरिजा के उपयुक्त वर को प्रतिदिन देखने लगे ॥

एक समय हिमवान भवन नारद गए।
गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए।
उमहि बोलि ऋषि पगन मातु मेलति भइ।
मुनि मन कीन्ह प्रनाम, बचन आसिष दइ ॥५॥

सरल अर्थ—एक समय हिमाचल के घर मे नारद गये। गिरिवर ने मैना सहित प्रसन्न मन से उनकी पूजा की। माता ने उमा को बुलाकर ऋषि के चरणों मे प्रणाम कराया और मुनि ने आशीर्वाद दिया ॥

कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि यह सोहइ।
रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ।
अति सनेह सतिभाव, पाँय परि पुनि-पुनि।
कह मैना मृदुबचन सुनिय बिनती मुनि ॥६॥

सरल अर्थ—कुँवरि पिता के कन्धे से लगी खड़ी हुई शोभायमान थी। उसका रूप वर्णन नही किया जा सकता, जो देखता वही जान सकता था। अत्यन्त प्रेम और सच्चे भाव से बार-बार पैर पड़कर मैना ने मृदु वचनो से नारद से कहा—'हे मुनि मेरी विनती सुनिये ॥

तुम तिभुवन तिहुँ काल बिचार बिसारद।
पारबती अनुरूप कहिय बर नारद'।
मुनि कह चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ।
गिरिबर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥७॥

सरल अर्थ—तुम तीनों लोको और तीनों कालों में सर्वश्रेष्ठ विचारशील हो। पार्वती के अनुरूप वर का वर्णन कीजिये।' मुनि बोले—'चारों ओर लोकों मे और संसार में जहाँ-जहाँ मैं घूमता फिरता हूँ, वहाँ सर्वत्र तुम्हारी सराहना सुनता हूँ ॥

भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिन।
कछु न अगम, सब सुगम भयोबिधि दाहिन।
मोरेहुँ मन असआव मिलिहि बर बाउर'।
लखि नारद नारदी उमहि सुख भा उर ॥८॥

सरल अर्थ—मै कहता हूँ कि तुम्हारे समान भाग्यशाली कोई नहीं। जब विधाता तुम्हारे अनुकूल है तो कोई बात अगम्य नहीं, सब कुछ सुगम है। मेरे मन में ऐसा आता है कि इसे बावला वर मिलेगा।' नारद की वाणी सुनकर उमा को हृदय से सुख प्राप्त हुआ ॥

सुनि सहमे परि पाइँ, कहत भए दंपति ।
'गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति ।
नाथ कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषनु ।'
'दोषदलनु' मुनि कहेउ 'बाल बिधुभूषनु' ।।९।।

सरल अर्थ—यह बात सुनकर दम्पत्ति सहम गये और पैरों पड़कर बोले—'गिरिजा पर हमारा सुख, सम्पत्ति और जीवन निर्भर है। हे स्वामी, ऐसा यत्न कहो जिससे यह दोष मिट जाये।' मुनि बोले कि दोष का निवारण करने वाले मस्तक पर बालचन्द्रमा का आभूषण पहनने वाले शंकर हैं ।।

अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन ।
कोटि कलपतरु सरिस संभु अवराधन ।
जननि जनक उपदेस महेसहि सेवहि ।
अति आदर अनुराग भगति मन भेवहि ।।१०।।

सरल अर्थ—साहस और साधन से फल मिलता है अतः अवश्य सिद्धि होगी। शंकर की आराधना करोड़ों कल्प वृक्षों के समान होती है। अतएव माता-पिता की आज्ञा से कन्या अत्यन्त आदर, प्रेम और भक्ति में मग्न मन से महेश की सेवा करे ।।

देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ ।
कहेउ करिय सुरकाजु, साजु सजि धायउ ।
उमा नेह बस बिकल देह सुधि बुधिगइ ।
कलप बेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु दइ ।।११।।

सरल अर्थ—देवताओं ने भला समय देखकर कामदेव को बुलाया और कहा कि देवताओं के कार्य के लिए साज-सज्जा के साथ आओ। इधर उमा की देह विह्वल हो गयी तथा प्रेम के कारण सुधि-बुधि जाती रही जैसे कि वन में बढ़ती हुई कल्पलता भयंकर पाले से मुरझा गयी हो ।।

समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे ।
सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे ।
जाइ देखि अति प्रेम उमहिं उरलावहिं ।
बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं ।।१२।।

सरल अर्थ—सखियों ने सभी समाचार जाकर घर-घर कह दिये जिन्हें सुनकर माता-पिता और कुटुम्बी भयंकर दुःख से पीड़ित हुए। वे जाकर देखते हैं और प्रेम से उमा को हृदय से लगाते हैं। विलाप करते हैं और कुटिल विधाता को दोष लगाते हैं ।।

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजापन ।
जेहि अनुरागु लागु चितु सोइ हितु आपन ।

तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु।
मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायउ मनु ॥१३॥

सरल अर्थ—माता-पिता और कुटुम्बी गिरिजा के प्रण को देखकर वापिस लौट आये। जिसके प्रेम में अपना चित लगा हो, वही अपना हितू है। पार्वती ने भोग को रोग के समान और संसार के लोगों को साँपों के समान समझ कर त्याग दिया। मुनियों की कल्पना के लिए भी जो अगम्य तप है उसमें अपना मन लगाया ॥

सँकुचिहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर हेतु अरभेउ बड़ तपु।
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं ॥१४॥

सरल अर्थ—जिस शरीर को स्पर्श करते हुए कोमल वस्त्र और सुन्दर आभूषण संकुचित होते थे उस सुन्दर शरीर से शंकर को प्राप्त करने के लिए बड़ी तपस्या प्रारम्भ की। कभी कंद मूल फल का भोजन किया और कभी केवल जल और वायु पर ही रही। कुछ दिनों बेल के सूखे पत्ते खाकर व्यतीत किये ॥

नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे।
देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवर मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ ॥१५॥

सरल अर्थ—पार्वती जी ने जब सूखे पत्तो को भी ग्रहण करना त्याग दिया तब उनका नाम 'अपर्णा' हो गया। उनकी शुभ्र, विमल एवं मनोहारी कीर्ति चौदहों भुवनो मे फैल गई। पार्वती जी की तपस्या को देखकर मुनिवर एव मुनि सराहना करते है कि ऐसी तपस्या कभी-कहीं किसी ने न देखा और न सुना ही था ॥

काहू न देख्यो कहहिं यह तप जोगु फल फल चारि का।
नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर कुमारिका।
बटु बेष बेषन प्रेम पन ब्रत नेम ससिसेखर गए।
मनसहिं समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भए ॥१६॥

सरल अर्थ—किसी ने ऐसा तप नहीं देखा, इस तप के लिए चारो फल तुच्छ है। यह न जाना जाता है और न कहती ही है कि पार्वती क्या चाहती है। स्वयं शंकर बटु वेश धारण कर उसे देखने गये और मन से अपने को गिरिजा को समर्पित करते हुए बोले ॥

देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय, हृदय अस आयउ।

'देवि ! करौं कछु विनय सो विलगु न मानव।
कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब ।।१७।।

सरल अर्थ – पार्वती की यह दशा देखकर करुणा के भंडार शंकर ने बड़ा दुख पाया और सोचा कि मेरा स्वभाव बड़ा कठोर है। उस समय उनका हृदय द्रवित हो गया और बोले—हे देवि, मैं कुछ विनय करूँ तो बुरा न मानना। मैं स्नेह युक्त स्वभाव से कहता हूँ अपने मन में सच समझना ।।

जनमि जगत जस प्रगटिउ मातु पिता कर।
तीय रतन तुम उपजिहु भव रतनागर।
जौं बर लागि करहु, तपु तौ लरिकाइय।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरुकि जाइय ।।१८।।

सरल अर्थ—तुमने अपने माता-पिता के घर जन्म लेकर संसार में जो प्रकट हुई हो, तो मानों संसार रूपी रत्नाकर में तुम स्त्री रत्न के रूप में उत्पन्न हुई हो। यदि तुम वर के लिए तपस्या करती हो, तो यह तुम्हारा लड़कपन है। पारस यदि घर में हो, तो सुमेरु पर जाने की क्या आवश्यकता है ।।

गौरी निहारेउ सखीमुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
'तप करहि हर हितु' सुनि बिहँसि बटु कहत 'मुरुखाई महा।
कहहु काह सुनि रीझिहु बरु अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिं ।।१९।।

सरल अर्थ—पार्वती ने सखी की ओर देखा। संकेत पाकर उसने कहा कि शंकर के लिए तप कर रही है। उसे सुन कर बटु ने कहा कि यह बड़ी मूर्खता है। कुलहीन वर में क्या देख कर तुम रीझ गयी हो। वे तो गुन, मान माता, पिता सबसे हीन हैं ।।

भीख माँगि भवखाँहि चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं।
भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिं भावहिं ।।२०।।

सरल अर्थ – शंकर तो भीख माँग कर खाते हैं, चिता पर सोते हैं। नंगे नाचते हैं और पिशाच पिशाचिनी इस रूप में उन्हें देखते हैं। उनका भोजन भाँग-धतूरा है। वे राख लपेटते हैं। वे जोगी, जटाधारी क्रोधी हैं। उन्हें भोग अच्छा नहीं लगता है ।।

एकउ हरहिं न बर गुन कोटिक दूषन।
नर कपाल गजखाल, व्याल बिष भूषन।
कहँ राउर गुन सील, सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन ।।२१।।

सरल अर्थ—हर मे वर के एक भी गुण नहीं हैं और करोड़ो दोष है। उनके आभूषण मुण्डमाल, गजखाल, सर्प और विष है। कहां आपका सुहावना रूप, गुण, शील है और कहां अमंगल युक्त भयंकर शंकर का स्वरूप ॥

तुम्हहिं सहित असवार बसह जब होइहहिं।
निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं।
बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ।
अचल सुता मन अचल बयारि कि डोलइ ॥२२॥

सरल अर्थ—तुम्हारे साथ वे जब बैल पर सवार होंगे, तब नगर के स्त्री पुरुष हँसकर मुंह छिपा लेंगे। बटु स्वच्छंदतापूर्वक अनेक कुतर्क करता हुआ बोल रहा था, परन्तु अचल सुता पार्वती का मन पर्वत के समान था, जो भला कहीं वायु से विचलित हो सकता था ॥

सांच सनेह सांचि रुचि जो हठि फेरइ।
सावन सरित सिंधु रुख सूप सों घेरइ।
मनिबिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ।
सोकि दोषगुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥२३॥

सरल अर्थ—सच्चे स्नेह, सच्ची रुचि को जो हठ करके फेरना चाहता है उसका कार्य ऐसा ही है जैसे कि कोई सावन की बढ़ी हुई तथा समुद्र की ओर जाती हुई नदी को सूप से रोकने का यत्न करे। मणि के बिना सांप, जल के बिना मछली शरीर छोड़ देती है, इसी प्रकार जो जिससे प्रेम करता है वह उसके गुण-दोष नहीं देखता ॥

कारन कटुक बटु बचन बिसिष सन हिय हए।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि, अधर फरकत भए।
बोली फिरि लखि सखिहि कांपु तनु थर थर।
'आलि! बिदा करु बटुहि बेगि बड़ बर बर ॥२४॥

सरल अर्थ—कानों को कड़ुए लगने वाले वटु के वचन बाणों के समान हृदय को छेद चुके थे अतः उमा के नेत्र लाल हो गये, भौंहे चढ़ गयीं और ओंठ फड़कने लगे। उनका शरीर थर-थर कांपने लगा और वे सखी से बोलीं—'हे सखी, वटु को शीघ्र बिदा कर, यह बड़ा बर्बर है ॥

कहँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि।
दोस निधान, इसानु सत्य सबु भाखेउ।
मेटि को सकइ सो आंकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥२५॥

सरल अर्थ—कहीं सयानी स्त्री होंगी तो वह तुम्हारी सीख सुनेगी। मैं तो बावले के प्रेम मे स्वयं बावली हो गयी हूँ। शिव दोष के घर हैं, तुमने

बड़ विनोद मग मोद न कछु कहि आवत।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत।
पुर खरभर, उर हरषेउ अचलु अखंडलु।
परब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधु मंडलु ॥३४॥

सरल अर्थ—मार्ग में बड़ा विनोद और आनन्द हो रहा है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। बाजे बजते हुए बरात नगर के निकट पहुँच गयी। नगर में कोलाहल हुआ और समग्र पर्वत प्रदेश हृदय में प्रसन्न हो उठा। ऐसा जान पड़ता है मानों पूर्णिमा के पर्व में चन्द्रमण्डल को देखकर समुद्र उमड़ रहा हो ॥

प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहिं।
भभरे बनइ न रहत, न बनइ परातहिं।
चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत ॥३५॥

सरल अर्थ—प्रसन्न मन से सब अगवानी करते गए। पर बरात को देखकर सब घबड़ा गये। उनसे न वहाँ रहते बनता है और न भागते ही बनता है। हाथी घोड़े सब भग चले और फेरे नहीं फिरते। बालक घबराकर ऐसे भगे कि उन्हें घर ढूंढ़े नहीं मिलता ॥

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर।
नील निचोल छाल भइ, फनि मनि भूषन।
रोम रोम पर उदित रूप मय पूषन ॥३६॥

सरल अर्थ—लोक की यह रीति देख कर तथा उस समय को मांगलिक अवसर समझ कर शंकर ने अत्यन्त सुन्दर रूप धारण किया जो सैकड़ों करोड़ कामदेवों के समान मनोहारी है। उनके द्वारा पहनी हुई सिंह की खाल सुन्दर नील रेशमी वस्त्र हो गया, गले के सांप मणियों की माला बन गये। उनके रोम-रोम पर रूप के सूर्य उदित हो गये ॥

कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहिं।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहिं।
लोक बेद बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुसकर।
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनीधर ॥३७॥

सरल अर्थ—गुण और रूप की पराकाष्ठा वाली गौरी की तुलना कहो किससे की जाये? समुद्र को नदी, तालाब और कुँये के समान किस प्रकार कहा जाये? हिमालय ने लोक और शास्त्र विधि के अनुसार हाथ में जल और कुशा लेकर कन्यादान का संकल्प पूरा किया ॥

भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।
हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं।
उमा मातु मुख निरखि नयन जल मोचहिं।
'नारि जनमु जग जाय' सखी कहिं सोचहिं ॥३८॥

सरल अर्थ—बरात बिदा करते समय बार-बार भेंटते है और बार-बार पहुँचाते है और फिर भेंटते है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो सद्यःप्रसूता (तुरन्त ब्याई हुई) गाये हुँकरती हुई बार-बार अपने बछड़ो के पास पहुँचती है। उमा माता के मुख को देखकर आंखो से आंसू गिराती है। सखियां सोचती है कि संसार में नारी का जन्म व्यर्थ है ॥

संकर गौरि समेत गए कैलासहिं।
नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहिं।
उमा महेस बियाह उछाह भुवन भरे।
सबके सकल मनोरथ बिधि पूरन करे ॥३९॥

सरल अर्थ—शंकर गौरी के साथ कैलाश को गये। देवता भी प्रणाम करके अपने-अपने निवास स्थान को चले गये। उमा और महेश के विवाह का हर्ष सभी लोगो मे छा गया। विधाता ने सबकी सकल मनोकामनाओ को पूरा किया ॥

प्रेमपाट पट डोरि गौरि हर गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कबि मति मृगलोचनि ॥४०॥

सरल अर्थ—प्रेम के रेशमी तागे मे गौरी और शंकर के गुणो की मणियो को पिरोकर कवि की प्रतिभा रूपी सुन्दरी ने इस पार्वती मंगल के हार की रचना की है ॥

५. जानकी-मंगल

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति ।
सारद सेस सुकबि स्रुति संत सरल मति ।
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं ।
सिय रघुबीर बिबाहु यथामति गावौं ॥१॥

सरल अर्थ—गुरु, गणेश, शंकर, पार्वती, बृहस्पति, सरस्वती, शेषनाग, सुकवि (बाल्मीकि), वेद, संत—सबकी सरल बुद्धि से मैं हाथ जोड़कर शिर झुकाकर विनय करता हूँ और तदनन्तर अपनी बुद्धि के अनुसार सीता और राम के विवाह का गाकर वर्णन करता हूँ ॥

सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक ।
सुनत स्रवन हिय बसहिं सीय रघुनायक ।
देस सुहावन पावन बेद बखानिय ।
भूमि तिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय ॥२॥

सरल अर्थ—मैंने शुभ दिवस पर सीता का मंगलकारी स्वयंवर गीत रचा जिसे सुनकर हृदय में सीता और राम निवास करें। वेदों में वर्णित सुन्दर और पवित्र, पृथ्वी पर तिलक के समान तिरहुत देश है जिसे तीनों लोक जानते हैं ॥

तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर ।
सीय लच्छि जँह प्रगटी सब सुखसागर ।
जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक ।
सब गुन अवधि, न दूसर पटतर लायक ॥३॥

सरल अर्थ—उस तिरहुत देश में अत्यन्त उज्ज्वल जनकपुर नगर बसा हुआ है, जहाँ सब सुखों की समुद्र, लक्ष्मी की रूप सीता प्रकट हुईं। उस नगर में जनक नाम के राजा बसते थे जो सभी गुणों की पराकाष्ठा रूप थे और जिनकी समता का दूसरा कोई नहीं था ॥

नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु परिजन ।
करि मत रचेउ स्वयंबर सिवधनु धरि पन ।
रूप सील वय बंस बिरुद बल दल भले ।
मनहुँ पुरंदर-निकर उतरि अवनी चले ॥४॥

सरल अर्थ—राजा ने कुमारी सीता को सयानी देखकर गुरु तथा कुटुम्बियों को बुलाकर उनसे परामर्श करके शिव-धनुष तोड़ने का प्रण करते

हुए सीता का स्वयंवर रचा जिसे सुनकर सुन्दर रूप, शील, वय और वशवाले राजा दलबल सहित चले मानो इन्द्रों के समूह पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ॥

गाधि सुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ।
नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ।
जबहिं मुनीस महीसहि काज सुनायउ।
भयउ सनेह सत्य बस उतरु न आयउ ॥५॥

सरल अर्थ—उसी अवसर पर गाधि मुनि के पुत्र विश्वामित्र अयोध्या मे पधारे। राजा ने उनका सम्मान किया और उन्हे राजभवन ले आये। जब ऋषि ने राजा को अपना कार्य बताया और राम-लक्ष्मण को ले जाने की बात कही, तब राजा सत्य और स्नेह के इतने वशीभूत हो गये कि उन्हे उत्तर देते न बना ॥

दीन वचन बहु भाँति भूप मुनि सन कहे।
सौंपि राम अरु लखन पाँय पंकज गहे।
पाइ मातु पितु आयसु गुरु पाँयन परे।
कटि निषग पट पीत, करनि सर धनु धरे ॥६॥

सरल अर्थ—राजा ने अनेक प्रकार के दीन वचन मुनि से कहे और फिर राम-लक्ष्मण को उन्हे सौंपकर उनके चरण कमलों को पकड़ लिया। राम-लक्ष्मण ने माता-पिता की आज्ञा पाकर अपने को गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया और कमर मे तरकस, पीताम्बर तथा हाथो मे धनुष-बाण धारण किये ॥

मग लोगन्ह के करत सफलमन लोचन।
गए कौसिक आस्रमहिं बिप्र भयमोचन।
मारि निसाचर निकर यज्ञ करवायउ।
अभय किए मुनिवृन्द जगत जसु गायउ ॥७॥

सरल अर्थ—मार्ग के लोगों के मन और नेत्रों को सफल करते हुए ब्राह्मणों के भय को दूर करने के लिए विश्वामित्र के आश्रम में गये। राक्षसों को मारकर यज्ञ को पूरा कराया तथा मुनियो को निर्भय बनाया जिससे उनके यश का ससार ने गान किया ॥

गौतम नारि उधारि पठै पतिधामहिं।
जनक नगर लै गयउ महामुनि रामहिं।
देखि मनोहर मूरतिमन अनुरागेउ।
बंधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ ॥८॥

सरल अर्थ—गौतम की पत्नी अहिल्या का उद्धार कर तथा उसे पति के घर भेजकर महामुनि विश्वामित्र राम को जनकपुर ले गये। राम के सुन्दर

रूप को देखकर विदेहराज जनक अनुरक्त हो गये। उनका वैराग्य भाव लुप्त हो गया और वे स्नेह-बन्धन में बँध गये ॥

राजत राज समाज जुगल रघुकुल मनि।
मनहुँ सरद विधु उभय, नखत धरनीधनि।
काकपच्छ सिर सुभग सरोरुह लोचन।
गौर स्याम सत कोटि काम मदमोचन ॥९॥

सरल अर्थ—जनकपुर के राजसमाज में रघुकुल में श्रेष्ठ दोनों—राम और लक्ष्मण—विराजमान हैं। ऐसा जान पड़ता है कि स्वयंवर में एकत्र राज समाज नक्षत्रों के समान है और उसके बीच राम और लक्ष्मण—दोनों शरद-कालीन दो चन्द्रों के समान सुशोभित हैं। सुन्दर अलकों और कमल के समान नेत्रों वाले गौर और श्याम वर्ण के दोनों राजकुमार सैकड़ों करोड़ों कामदेवों के सौंदर्य-मद को चूर्ण करने वाले हैं ॥

भे निरास सब भूप विलोकत रामहि।
'पन परिहरि सिय देब जनकबर स्यामहिं।'
नृपरानी पुरलोग रामतन चितवहिं।
मंजु मनोरथ कलस भरहिं अरु रितवहिं ॥१०॥

सरल अर्थ—राम को देखकर सब राजा निराश हो गये और सोचने लगे कि राजा को अपना प्रण छोड़कर सीता का विवाह श्यामवर्ण वाले श्रीराम के साथ कर देना चाहिये। राजा, रानी तथा नगर के लोग राम की ओर देख रहे हैं तथा अपनी इच्छाओं के कलश बार-बार भरते और खाली करते हैं ॥

रितवहिं भरहिं धनु निरखि छिनु छिनु निरखि रामहिं सोचहीं।
नर नारि हरष विषाद बस हिय सकल सिवहि सकोचहीं।
तब जनक आयसु पाइ कुलगुरु जानकिहि ले आयऊ।
सिय रूप रासि निहारि लोचन लाहु लोगन्हि पायऊ ॥११॥

सरल अर्थ—धनुष को देखकर तथा क्षण-क्षण राम की ओर दृष्टिपात करके बार-बार अपनी मनोकामनाओं के घड़े भरते और खाली करते हैं और सोचते हैं। स्त्री और पुरुष इस प्रकार हर्ष और विषाद से युक्त हो रहे हैं और शंकर को संकोच में डालते हैं—यह सोच कर कि वह अपने धनुष को हल्का कर दें। उसी समय जनक की आज्ञा पाकर कुलगुरु सतानन्द जानकी को ले आये। रूप की भण्डार सीता को देखकर लोगों को नेत्रों का सुख प्राप्त हुआ ॥

रूप रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील कमल सर श्रेनि मयन जनु डारइ।

छिनु सीतहि छिनु रामहि पुर जन देखहिं।
रूप सील बय बंश बिसेष बिसेषहिं ॥१२॥

सरल अर्थ—रूप की राशि सीता जी जिधर सहज भाव से देखती हैं उधर ही मानों नीले कमलों के बाणों की वर्षा कामदेव करता चलता है (काम के पाँच बाणों में एक नीले कमल का बाण भी माना गया है)। नगर के लोग क्षण भर सीता की ओर और क्षण भर राम को देखते हैं और दोनों के रूप, शील, वय और वंश पर विशेष रूप से विचार करते हुए दोनों को एक दूसरे के उपयुक्त पाते हैं ॥

सो छबि जाइ न बरनि देखि मन मानै।
सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै।
तब बिदेह पन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ।
उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ ॥१३॥

सरल अर्थ—उस रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। अमृत का पान करके गूंगा कहीं उसका वर्णन कर सकता है? उसी समय वंदीजनों ने विदेह जनक का प्रण सभी पर प्रकट किया जिसे सुनकर राजा आवेश में उठ खड़े हुए, पर उन्हें शुभ सूचक शकुन प्राप्त नहीं हुए ॥

नहिं सगुन पायेउ रहे मिसु करि एक धनु देखन गए।
टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए।
इक करहिं दाप, न चाप सज्जन बचन जिमि टारे टरै।
नृप नहुष ज्यों सबके बिलोकत बुद्धि बल बरबस हरै ॥१४॥

सरल अर्थ—शकुन नहीं मिला तो कुछ धनुष देखने के बहाने गये और लौटकर शिर झुकाकर उसी प्रकार बैठ गये जैसे बन्दर नारियल को टटोलकर देखते हैं और कठोर समझ कर निराश हो जाते हैं। कुछ राजा दर्प पूर्वक उसे उठाने का यत्न करते है, पर धनुष सज्जन के वचन के समान टाले नहीं टलता। राजा नहुष के समान सभी राजाओं का बल धनुष ने देखते-देखते हर लिया ॥

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप समाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ।
कौसिक जनकहिं कहेउ 'देहु अनुसासन'।
देखि भानुकुल भानु इसानु सरासन ॥१५॥

सरल अर्थ—अपने पुर और परिवार समेत यह दशा देखकर जनक ने अपने हृदय के भीतर पराजय का अनुभव किया और राज समाज की दशा ऐसी हो गयी जैसी हिमपात होने पर कमलों के समूह की हो जाती है। तब सूर्यवंश में सूर्य के समान राम को तथा धनुष को देखकर विश्वामित्र ने जनक से राम को धनुष चढ़ाने की आज्ञा देने को कहा ॥

सबमल बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू।
धनु सिंधु नृप बल जल बढ़्यो रघुबरहि कुंभज लेखहू।
सुनि सकुच सोचहिं जनक गुरुपद बंदि रघुनंदन चले।
नहिं हरष हृदय विषाद कछु भए सगुन सुभमंगल भले ॥१६॥

सरल अर्थ—उन्होंने कहा कि हे जनक, राम की मूर्ति को सभी पापों को नाश करने वाली जानकर कौतुक देखो। राजाओं के बल रूपी जल से बढ़े हुए धनुष रूपी समुद्र को सोख लेने के लिए राम को कुंभज ऋषि के समान समझना चाहिये। यह सुनकर जनक संकोच में पड़े हुए सोचरहे हे, तभी गुरु के चरणों की वंदना करके राम धनुष की ओर चले। उनके हृदय में न प्रसन्नता का भाव था न दुःख का। पर उनके चलने पर शुभ मंगल सूचक शकुन होने लगे ॥

गए सुभाय राम जब चाप समीपहिं।
सोच सहित परिवार बिदेह महीपहिं।
अंतरजामी राम मरम सब जानेउ।
धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेउ ॥१७॥

सरल अर्थ—तब राम सहज भाव से धनुष के समीप गये। परिवार सहित राजा जनक सोच मे पड़े हुए है, क्योंकि उनके मन में शंका है कि राम धनुष कैसे तोड़ सकेंगे? अन्तर्यामी राम ने हृदय की सब बातें जान लीं और खेल-खेल में ही धनुष को चढ़ाकर उसे कान तक खींच लिया ॥

प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।
जनु मृग राज किशोर महा गज गंजेउ।
कर कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कविको हइ ॥१८॥

सरल अर्थ—प्रेम की भली-भाँति परीक्षा करके राम ने धनुष को तोड़ दिया, ऐसा जान पड़ा जैसे किसी सिंह के किशोर वय के बच्चे ने बड़े भारी हाथी को पछाड़ दिया हो। उस समय जानकी के कमल के समान हाथों में सुन्दर जयमाला शोभायमान है। ऐसा कौन कवि है जो उस अतुलनीय छवि का वर्णन कर सके ॥

सीय सनेह सकुच बस पियतन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ।
लसत ललित करकमल माल पहिरावत।
कामफंद जनु चंदहि बनज फँदावत ॥१९॥

सरल अर्थ—सीता स्नेह और संकोच के साथ प्रिय राम की ओर देख रही है मानों कल्पलता को वायु कल्पवृक्ष की ओर प्रेरित कर रहा है। कमल की माला पहिनाते हुए सीता के हाथ ऐसे शोभित हो रहे हैं जैसे कमल चंद्रमा के गले में काम का फंदा बाँध रहा है ॥

प्रभुहि माल पहिराइ जानकिहि लै चली।
सखी मनहुँ बिधु उदय मुदित कैरव कली।
बरषहि बिबुध प्रसून हरषि कहि जय जय।
सुख सनेह भरे भुवन राम गुरु पहि गय ॥२०॥

सरल अर्थ—प्रभु राम को माला पहिनाने के अनन्तर सखियाँ जानकी को लेकर इस प्रकार प्रसन्नता से जा रही है जैसे चद्रमा के उदय होने पर कुमुद की कलियाँ प्रफुल्ल हो जाती हैं। देवता पुष्पों की वर्षा करते हुए प्रसन्नता से जय-जयकार कर रहे हैं। विश्व भर सुख और प्रेम से भर गया और राम गुरु के पास चले गये ॥

सजहिं सुमंगल, साज रहस रनिवासिहिं।
गान करहिं पिकवैनि सहित परिहासहिं।
मगल आरति साजि बरहिं परिछन चलीं।
जनु बिगसी रवि-उदय कनक पंकज कली ॥२१॥

सरल अर्थ—रनिवास मे आनन्द छा गया और सब मंगल (विवाह) हेतु सजने सजाने लगे। कोकिल कण्ठी स्त्रियाँ हँसी-विनोद करती हुई गान करने लगी। मंगल आरती सजाकर महिलाये वर का परिछन करने चली ऐसा जान पडता है मानो सूर्य के उदय होने पर सोने के कमल की कलियाँ विकसित हो गयी हों ॥

बर विराज मडप मँह जगत् विमोहइ।
ऋतु बसत बनमध्य मदन जनु सोहइ।
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ।
कन्यादान विधान सकलप कीन्हेउ ॥२२॥

सरल अर्थ – राम विवाह-मण्डप मे सुशोभित होकर संसार को मोह रहे हैं मानो बसन्त ऋतु मे उपवन के बीच कामदेव शोभायमान् हो। मिथिला के राजा जनक ने अग्नि की स्थापना कर, अर्थात् उसकी साक्षी के साथ हाथ मे जल और कुश ग्रहण कर विधि पूर्वक कन्यादान का सकल्प पूरा किया ॥

एहि विधि व्याहि सकल सुत जग जस छायउ।
मगलोगनि सुख देत अवधपति आयउ।
बदनवार बितान पताका घर घर।
रोपे सफल सपल्लव मंगल तरुवर ॥२३॥

सरल अर्थ—इस प्रकार सभी पुत्रो का विवाह करके सारे विश्व मे अपने यश का विस्तार किया। मार्ग के लोगो को सुख देते हुए राजा अयोध्या आये। वहाँ प्रत्येक घर मे वन्दनवार, चदोवे और पताके बँधे हुए थे तथा स्थान-स्थान पर फलो और फूलो समेत मगलवृक्ष रोपे गये थे ॥

देत पावड़े अरघ चली लै सादर।
उमगि चलेउ आनद भुवन भुईं बादर।

नारि उहार उघारि दुलहिन्हिन देखहिं।
नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं ।।२४।।

सरल अर्थ—अर्घ्य जल डालती हुई तथा पांवड़े देती हुई स्त्रियाँ वर-दुलहिन को आदरपूर्वक लेकर भीतर चलीं। उस समय पृथ्वी, आकाश और विश्व भर में आनन्द उमड़ रहा है। स्त्रियाँ परदे को उठाकर दुलहिनों को देखती हैं और अपने नेत्रों का लाभ (सुख) प्राप्त करती हुई अपने जीवन को सफल समझती हैं ।।

बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु भइ अवध सुख सोभामई।
एहि जुगति राजबिवाह गावहिं सकल कवि कीरति नई।
उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राममंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिनु पावहीं।।२५।।

सरल अर्थ—जैसे चंद्रमा को देखकर कुमुद विकसित हो जाते हैं उसी प्रकार रामचंद्र को देखकर अयोध्या सुख और शोभा से परिपूर्ण हो गयी। इस युक्ति से सभी कवि राजविवाह और नयी कीर्ति का वर्णन करते हैं। यज्ञोपवीत और विवाह के उत्सव के समय जो राम-सीता के विवाह का मंगल गान गाते हैं, तुलसीदास कहते हैं कि वे स्त्री-पुरुष प्रतिदिन सभी प्रकार के मंगलों को प्राप्त करते हैं ।।

□□

६. दोहावली

राम वाम दिसि जानकी लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर ॥१॥

सरल अर्थ—राम के बायीं ओर जानकी तथा दाहिनी ओर लक्ष्मण विराजमान् हैं, इस रूप का ध्यान सभी प्रकार से कल्याण करने वाला है तथा तुलसी के लिए तो यह कल्पतरु है ॥

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजियार ॥२॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते है कि शरीर मन्दिर के जीभ रूपी देहरी द्वार (प्रवेश-द्वार) पर राम नाम रूपी मणि के दीपक को रखो—यदि भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश चाहते हो ॥

हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट सपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥३॥

सरल अर्थ—हृदय मे निर्गुण ब्रह्म और नेत्रों में सगुण ब्रह्म का ध्यान तथा जिह्वा मे राम का सुन्दर नाम ऐसा ही है जैसे कि सोने के सम्पुट मे सुन्दर रत्न रखा हो ॥

एक छत्र, इक मुकुट मनि सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥४॥

सरल अर्थ—राम नाम का र अक्षर स्वर रहित होकर सभी वर्णों के ऊपर छत्र के समान तथा दूसरा म अक्षर स्वर रहित रूप मे अनुस्वार की स्थिति में मुकुट मणि के समान सुशोभित होता है। इस प्रकार राम नाम के दोनों वर्णों का विशिष्ट महत्त्व देखा जा सकता है—यह तुलसी कहते है ॥

राम नाम को अंक है सब साधन है सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दसगून ॥५॥

सरल अर्थ—जीवन को सफल बनाने की साधना मे 'राम' नाम गिनती के अंक के समान है, और सब साधन शून्य के समान हैं। जिस प्रकार अंक के साथ शून्य रखने से दशगुना मान हो जाता है और बिना अंक के शून्य का कोई मूल्य नहीं, उसी प्रकार राम नाम के साथ साधनो का दशगुना प्रभाव होता है, परन्तु बिना उसके साधन प्रभावहीन रहते है ॥

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भांग तें तुलसी-तुलसीदास ॥६॥

सरल अर्थ—राम का नाम कलियुग में कल्याण करने के लिए कल्पवृक्ष के समान है जिसका स्मरण करने से तुलसीदास जो भांग के पौधे के समान था तुलसी के समान पूज्य पौधा हो गया ॥

मीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु खेम ।
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम ॥७॥

सरल अर्थ—राम नाम के प्रेम से स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही सिद्ध होते हैं। इससे मीठा कठौती भर (अधिक मात्रा में) मिलता है तथा राज्याधिकार के साथ-साथ भी कुशल क्षेम निश्चित रहती है ॥

राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस ।
बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥८॥

सरल अर्थ—राम नाम के सहारे के बिना परमार्थ की आशा ऐसी ही है जैसे बरसते हुए बादलों की बूंदों की डोरी को पकड़कर कोई आकाश पर चढ़ना चाहे ॥

बरपाऋतु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास ।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ॥९॥

सरल अर्थ—राम की भक्ति वर्षा ऋतु है और तुलसी कहते हैं कि भक्त जन धान के पौधों के समान हैं। उनके लिए राम नाम के दोनों वर्ण सावन और भादों के महीनों के समान हैं जो राम भक्ति के वर्षा जल को सर्वाधिक सुलभ करते हैं ॥

जथा भूमि सब बीज मय नखत निवास अकास।
रामनाम सब धरम मय बरनत तुलसीदास ॥१०॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार पृथ्वी में सभी बीज रहते हैं और आकाश में सभी नक्षत्र निवास करते हैं उसी प्रकार राम नाम में सभी धर्म समाहित हैं ॥

हरो चरहिं, तापहिं बरत फरे पसारहिं हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ ॥११॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि संसार में सभी अपने स्वार्थ के मित्र हैं, पर परमार्थ अर्थात् दूसरों का भला करने वाले मित्र केवल राम हैं। ऐसे ही वृक्ष को देखो उसकी हरी पत्तियों को पशु चरते है, उसकी डालों को काटकर मनुष्य जलाते हैं और तापते हैं और जब वह फलता है तो हाथ फैलाकर उसके फलों को तोड़ते हैं ॥

राम दूरि माया बढ़ति घटति जानि मन माँह ।
भूरि होति रवि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह ॥१२॥

सरल अर्थ—राम के दूर रहने पर माया का प्रभाव बढ़ता है और उनके

मन मे रहने पर वह घटता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सूर्य के दूर होने पर छाया लम्बी होती है और जब वह शिर पर होता है तब वह छाया पैर के नीचे आ जाती है ॥

जो जगदीस तौ अति भलो, जो महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग ॥१३॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम जो जगदीश है तो बड़ा अच्छा है और यदि राजा है तो भाग्य की बात है। वे कुछ भी हो तुलसी जीवन भर उनके प्रति अनुराग चाहता है ॥

करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान बिहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो रामदुआरे दीन ॥१४॥

सरल अर्थ—कर्मकाण्डी लोग मुझको कठमलिया (काठ की माला वाला) कहते है और ज्ञानी लोग ज्ञान विहीन कहते हैं। तुलसी ज्ञान, कर्म और योग तीनों के मार्गों को छोडकर दीन भाव से राम के द्वार पर गया अर्थात् दैन्य भाव से राम की भक्ति अपनायी ॥

तनु विचित्र, कायर बचन अहि अहार मनघोर।
तुलसी हरि भए पच्छ धर, ताते कह सब मोर ॥१५॥

सरल अर्थ—विचित्र शरीर वाला, कायरो के से वचन बोलने वाला, सांपो को खाने वाला, भयकर मन वाला होने पर भी मोर के पक्ष (पखों और अपनाव) को भगवान् द्वारा स्वीकार करने से सभी मोर (अपना) कहते है अर्थात् ईश्वर के अपनाने से कोई भी वस्तु सबकी प्रिय हो जाती है ॥

घर घर मांगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय ॥१६॥

सरल अर्थ—तुलसी जब राम से विमुख थे तब घर-घर रोटी के टुकडे मांगते थे और जब राम ने सहायता की तो उन्ही को राजा पूजने लगे। अतः स्पष्ट है कि राम की शरण जाना कितना महत्त्वपूर्ण है ॥

चारि चहत मानस अगम चनक चारि को लाहु।
चारि परिहरै चारि को दानि चारि चख चाहु ॥१७॥

सरल अर्थ—तुलसी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों की सिद्धि चाहते है जो मन के लिए भी अगम्य हैं, क्योकि चार चने ही कठिनाई से मिलते है। अतः वे कहते है कि इन चारो की इच्छा छोडकर जो इनको देने वाला ईश्वर है उसे चारों आखो (ज्ञान और धर्म चक्षुओं) से देखने की इच्छा करो।

रघुपति कीरति कामिनी क्यों कहै तुलसीदास ?
सरद अकास प्रकास ससि चारु चिबुक तिल जासु ॥१८॥

सरल अर्थ—राम की कीर्ति-रूपी स्त्री की शुभ्रता का वर्णन तुलसीदास कैसे कर सकता है क्योंकि शरदकालीन प्रकाशमान् पूर्णमासी का चन्द्रमा उस कीर्ति की ठुड्डी पर तिल जैसा काला दिखता है। इसी से उसकी श्वेतता का अनुमान किया जा सकता है ॥

हरिहर जस सुर नर गिरहु बरनहिं सुकबि समाज।
हाँड़ी हाटक घटित चरन राँधे स्वाद सुनाज ॥१९॥

सरल अर्थ—अच्छे कवियों का समाज शिव और विष्णु का यश देववाणी संस्कृत में भी वर्णित करता है और नर भाषा में भी। वास्तव में महत्त्व की बात वर्ण्य विषय है भाषा नहीं—जैसे कि यदि अनाज अच्छा है तो वह अच्छा स्वाद देगा, चाहे सोने के बर्तन में पकाओ और चाहे मिट्टी की हांडी में ॥

राम बिरह दशरथ मरन, मुनिमन अगम सु मीचु।
तुलसी मंगल मरन तरु, सुचि सनेह जल सींचु ॥२०॥

सरल अर्थ—राम के विरह में दशरथ का मरण हुआ, पर यह मृत्यु मुनियों की कल्पना के लिए भी अगम्य थी। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार के मंगलकारी मरण-तरु को पवित्र स्नेह के जल से सींचना चाहिये ॥

भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रवेस।
बिहगराज वाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस ॥२१॥

सरल अर्थ—भुजा रूपी वृक्ष के कोटर (खोह) में रोग रूपी सर्प ने जबरदस्ती प्रवेश किया है अतः हे गरुड़ को वाहन बनाने वाले विष्णु, उसे तुरन्त निकाल बाहर कीजिये जिससे कष्ट मिटे। यह तुलसी के अन्तिम समय की बाहु-पीड़ा का वर्णन है।

तुलसी चातक माँगनो एक, एक घनदानि।
देत जो भू भाजन भरत, लेत जो घूंटक पानि ॥२२॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अद्वितीय माँगने वाला पपीहा है और उसी प्रकार अद्वितीय दानी बादल है जो जब देने लगता है तो पृथ्वी को भरपूर कर देता है, पर चातक उसमें से केवल घूंट भर पानी ही लेता है ॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि ॥२३॥

सरल अर्थ—पपीहा और बादल के प्रेम की विलक्षण नयी बात है। संसार में माँगने वाला देने वाले के कनौड़े (मुखापेक्षी) होता है, पर चातक ने देने वाले (दानी) को अपने कनौड़े (मुखापेक्षी) बना लिया, क्योंकि बादल पानी देना चाहता है और वह लेता नहीं ॥

चरन चोंच लोचन रंगों, चलो मराली चाल।
छीर नीर बिबरन समय बक उघरत तेहि काल ॥२४॥

सरल अर्थ—बगुला चाहे अपने पैर और चोंच रंगकर हंस का रूप बना ले और मराल की सी चाल भी चलना सीख ले, पर जब क्षीर-नीर (दूध और पानी) के अलग करने का प्रसंग आयेगा, तो उसकी पोल खुल जायेगी ॥

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ॥२५॥

सरल अर्थ—पत्थर, बालू और पानी पर खींची गई लकीरों के समान उत्तम, मध्यम और नीच कोटि की प्रीति होती है। पत्थर की लकीर उत्तम, बालू की लकीर मध्यम और पानी की लकीर के समान अधम प्रीति होती है। पर बैर का हिसाब इससे उलटा है ॥

नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद बिसाल।
कदली बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥२६॥

सरल अर्थ—नीच व्यक्ति निरादर अर्थात् डाँटने से ही सुख देता है और उच्च कोटि का व्यक्ति आदर करने से सुख देता है। नीच के उदाहरण-स्वरूप केला, बेर के वृक्षों को देखा जा सकता है जो काटने पर फल देते हैं और उत्तम के उदाहरण स्वरूप कटहल और आम के वृक्षों को देखना चाहिये जो भली भाँति पोषित होने पर सुख देते हैं, काटने पर नहीं ॥

सहबासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक प्रबीन।
काल छेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग मृग मीन ॥२७॥

सरल अर्थ—संसार में सीधे सच्चे प्राणियों की गुजर नहीं। पक्षी, मृग और मछली—जो आकाश, पृथ्वी और जल में रहते हैं उनको साथ रहने वाले बड़े प्राणी तो कच्चा ही निगल जाते हैं और जो दूर रहने वाले नगर के लोग हैं, वे इनका शिकार करते हैं और पकाकर खाते हैं। ऐसी दशा में भला ये अपना समय किस प्रकार व्यतीत करें ॥

सारदूल को स्वाँग कर, कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिए, कीरति बिजय बिभूति ॥२८॥

सरल अर्थ—सिंह का तो रूप बनाते हैं, पर करतूत कुत्ते की सी है। तब भला उन्हें, यश, विजय और ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो सकता है ॥

लोकरीति फूटी सहैं आँजी सहै न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहै, सो आँधरो न होइ ॥२९॥

सरल अर्थ—संसार की ऐसी प्रथा है कि आंख फूट जायेगी, तो उसका कष्ट सह लेंगे, पर आंख में अंजन लगाने का कष्ट उठा कर उसे ठीक नहीं करते। तुलसीदास कहते हैं कि अगर अंजन लगाने का कष्ट उठा लिया जाये, तो कोई अन्धा क्यों हो ?

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ॥३०॥

सरल अर्थ—किसी को दुर्वचन कहकर पराजित नहीं करना चाहिये वरन्

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सों कुचालि भव भूरि ॥४२॥

सरल अर्थ—खजूर के पेड़ की हजारों शाखाएँ काँटे के रूप में गिर-गिरकर समाप्त हो जाती हैं, ऐसे ही कुनीति और अनादर करते हुए दुष्ट शासक संसार में नष्ट होते रहते हैं ॥

काल तोपची तुपक महि दारू-अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमीपाल ॥४३॥

सरल अर्थ—काल तोप चलाने वाला, पृथ्वी तोप और अनीति भयंकर बारूद के समान होती है, पाप का पलीता लगने पर अत्याचारी राजा के रूप में भयंकर तोप का गोला प्रजा पर गिरता है ॥

शत्रु सयानो सलिल ज्यों, राख सीस रिपु नाव।
बूड़त लखि, पग डगमगत, चपरि चहूँ दिसि धाव ॥४४॥

सरल अर्थ—चतुर शत्रु जल के समान होता है, वह अपने शत्रु रूपी नाव को सदैव अपने सिर पर रखता है। परन्तु जब वह जर्जर या क्षीण होकर डगमगाने और डूबने लगता है तो एकदम से चारों ओर से धावा बोलकर उसे समाप्त कर देता है ॥

मुखिया मुख सों चाहिए, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥४५॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जन नेता का व्यवहार मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने सम्बन्धी भौतिक साधनों को स्वयं एकत्र करता हुआ विवेक के साथ शरीर के अंगों के समान समाज के सभी वर्गों को पालता-पोषता है ॥

मंत्री गुरु अरु वैद जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धरम तन तीनि कर, होइ वेग ही नास ॥४६॥

सरल अर्थ—मंत्री, गुरु और वैद्य जब भय या आतंक के कारण सही बात न कहकर प्रिय लगने वाली बात बोलते हैं, तो राज्य, धर्म और शरीर का शीघ्र ही विनाश होता है ॥

उरवी परि कल हीन गति, ऊपर कला प्रधान।
तुलसी देखु कलाप गति, साधन-धन पहिचान ॥४७॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मोर के पंखों (कलाप) की दशा देखो, उससे स्पष्ट होता है कि कला का पोषण साधन से ही हो सकता है। क्योंकि जब बादल उमड़ते हैं, तब मोर के पंख कलात्मक ढंग से ऊपर उठ जाते हैं और वह नाचने लगता है। परन्तु साधन रूपी बादलों के अभाव में उसके कला रूपी पंख पृथ्वी की ओर गिरे रहते हैं और इनमें कोई सौंदर्य नहीं रहता ॥

तुलसी तृन जल-कूल को, निरवल निपट निकाज।
कै राखै कै संग चलै, बाँह गहे की लाज ॥४८॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि नदी के किनारे का घास का पौधा पूर्णतया सामर्थ्यहीन और बेकार होता है लेकिन वह भी अपने शरणागत की रक्षा करता है। यदि कोई डूबता हुआ प्राणी उसे पकड़ लेता है तो वह या तो उसे रोक लेगा अन्यथा वह उखड़ कर उसी के साथ बह जाएगा॥

पात-पात को सींचिबो, बरी बरी को लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न ॥४९॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि आज-कल कलियुग में क्षुद्रता से भरी हुई दोषपूर्ण चतुराइयाँ सभी को भ्रम में डाल रही हैं, उनके कार्य व्यापक हित के नहीं होते। क्षुद्र स्वार्थों से प्रेरित उनकी चतुराई ऐसी ही है जैसे कोई जड़ को न सींचकर पत्ते-पत्ते को सींचने का और पूरे बेसन के घोल में नमक न डाल कर बरी-बरी में नमक डालने का प्रयत्न करे॥

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहै कौन ॥५०॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अंधकार और अनीति से भरी वर्षा-ऋतु को आते देखकर कोयल रूपी सज्जनों और विद्वान् लोगों ने मौन धारण कर लिया है। यह समझकर कि अब तो मेंढकों के समान चापलूस लोग ही बोलेंगे और विद्वानों, पण्डितों और कलाकारों को कोई नहीं पूछेगा।

मनिमय दोहा दीप जहँ, उर-घर प्रकट प्रकास।
तँह न मोह भय-तम-तमी, कलि कज्जली विलास ॥५१॥

सरल अर्थ—जिस हृदय रूपी घर में मणियों के दीप के समान इन ज्ञान भरे दोहों का प्रकाश प्रकट है, वहाँ मोह और भय का अँधेरा नहीं और कलियुग के प्रभाव रूपी काली रात का भी विलास वहाँ नहीं होगा॥

□□

७. कवितावली

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिकसे।
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥१॥

सरल अर्थ – इस छंद में प्रातःकाल राम के दर्शन और उसके प्रभाव का वर्णन है। दर्शन करने वाली कोई स्त्री है, जिसका राम के प्रति वात्सल्य भाव है। अथवा कहा जा सकता है कि तुलसी ने स्वयं ही इस वर्णन में अपना वात्सल्य-भाव प्रकट किया है। वे कहते हैं कि अवध के राजा दशरथ के द्वार पर जब मैं प्रातःकाल गई तो उसी समय वे अपने पुत्र राम को गोद में लेकर बाहर निकले। समस्त शोकों को दूर करने वाले राम को देखकर मैं ठगी-सी रह गई। उन्हें देखकर जो विमुग्ध न हो वह धिक्कार के योग्य है। तुलसीदास कहते हैं कि अंजन से रंजित उनके नेत्र खंजन पक्षी के शिशु के समान हैं और वे मन को अपने प्रभाव से रंग देते हैं। हे सखी! मुख के बीच में उनकी शोभा ऐसी है जैसे चन्द्रमा के बीच में समान शील स्वभाव वाले दो नए नीले कमल विकसित हुए हों॥

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं।
दमकैं दतियां दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं ॥२॥

सरल अर्थ—दशरथ के चारों पुत्रों की शोभा का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं कि उनके शरीर की कांति नीले कमल की शोभा को और नेत्र लाल कमल की शोभा को हर लेने वाले हैं। धूल से सने हुए भी वे अत्यन्त सुन्दर हैं और कामदेव की बहुत बड़ी सुन्दरता को भी मन्द करने वाले हैं। जब वे बाल-क्रीड़ा करते किलकते हुए निकलते हैं, तो उनके छोटे-छोटे दांत बिजली के समान दमकने लगते हैं, इस प्रकार बाल-क्रीड़ा करते हुए दशरथ के चारों बालक तुलसी के मनरूपी-मंदिर में विहार करें॥

कबहूँ ससि मांगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं ॥३॥

सरल अर्थ—आगे तुलसीदास कहते हैं कि ये बच्चे कभी चन्द्रमा को मांगने हुए हठ करते हैं, कभी अपनी परछाई को देखकर डर जाते हैं। कभी ताली बजाकर नाचते है और इस प्रकार माताओं के मन को आनंद से भर देते.हैं। कभी हठपूर्वक रोष के साथ कुछ कहते है और वही वस्तु लेकर मानते हैं जिसके लिए अड जाते है। इस प्रकार बाल-विनोद करते हुए दशरथ के चारो पुत्र तुलमी के मन-मंदिर मे विहार करें॥

वर दत की पगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की।
घुंघरारी लटें लटकें मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाऊं लला इन बोलन की॥४॥

सरल अर्थ—बालकों की शोभा का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि ओंठो रूपी पल्लवो के खोलने से उनकी दाँतो की पंक्ति कुन्दकलियों के समान प्रकट हो जाती हैं। इसी प्रकार मोतियों की मालाएँ उनके शरीर पर ऐसी लगती हैं मानो बादलों के बीच बिजली चमक रही हो। उनके मुख के ऊपर घुघराली अलकें लटक रही है और कपोलो पर हिलते हुए कुण्डल शोभायमान हैं। इस समग्र शोभा पर तुलसी प्राण निछावर करता है। साथ ही इस शोभा को देखकर माताएँ जो बलि जाने का शब्द कहती हैं उस पर भी तुलसी मुग्ध हैं॥

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माही।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाही।
राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परछाही।
यातें सबै सुधि भूल गई, कर टेकि रही पल टारत नाही॥५॥

सरल अर्थ—यह छंद विवाह के समय का है, जब मण्डप के नीचे राम और सीता बैठे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सुन्दर मदिर मे राम दूलह के रूप मे और सीता दुलहिन के रूप मे शोभायमान हैं। सभी स्त्रियां गीत गा रही हैं और युवा ब्राह्मण इकट्ठे होकर के वेद मंत्रो का उच्चारण कर रहे हैं। उस समय सीता अपने कंकण मे लगे नग में प्रतिबिंबित राम के रूप को एकटक देख रही हैं। वे उसे देखने मे इतनी मुग्ध हैं कि उन्हे किसी बात की सुधि नही है और वे क्षण भर के लिए भी हाथ को न हिलाकर उसे एक ही स्थिति मे रोके हुए है, जिससे उन्हे राम के प्रतिबिम्ब का दर्शन बराबर होता रहे॥

कीर के कागर ज्यों नृपचीर, विभूषन उप्पम अगनि पाई।
औध तजी मगवास के रुख ज्यों, पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।
सग सुबंधु पुनीत प्रिया, मनो धर्म क्रिया धरिदेह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥६॥

सरल अर्थ—यह छंद वनवास के अवसर का है। उस समय राम ने राजकीय वस्त्र और आभूषण उसी प्रकार छोड़ दिए जिस प्रकार तोता अपने पुराने पंखों को छोड़ देता है। और जिस तरह से पुराने पंखों को छोड़कर तोते की शोभा नए पंखों में और बढ़ जाती है उसी प्रकार वस्त्राभूषण रहित राम के अंगों की शोभा बढ़ गई है। उन्होंने अयोध्या को ऐसे छोड़ दिया जैसे राहगीर मार्ग के वृक्षों को छोड़ देता है। और अयोध्या के स्त्री-पुरुषों को भी उन्होंने मार्ग के राहगीरों के समान ही निर्लिप्त भाव से त्याग दिया। साथ में सुन्दर भाई और पवित्र पत्नी ऐसे शोभायमान हैं जैसे धर्म और क्रिया दोनों साकार रूप में उनके साथ चल रहे हों। इस प्रकार कमल के समान नेत्र वाले राम अपने पिता का राज्य छोड़कर पथिक के रूप में वन की ओर चले॥

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरै गिरि मेरु सिला कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े।
तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥७॥

सरल अर्थ—जिसके नाम ने अजामिल के समान करोड़ों दुष्टों को संसार की भयंकर नदी में डूबने से बचा लिया, जिसको स्मरण करने से सुमेरु पर्वत शिला के टुकड़े के समान हो जाता है और उमड़ा हुआ समुद्र भी बकरी के खुर के गड्ढे के समान छोटा हो जाता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसके चरण कमलों से गंगा प्रकट हुयीं जो घने पापों को हरने की क्षमता रखती हैं, वही भगवान राम अपने चरणों से निकली हुई उन्हीं गंगा को पार करने के लिए किनारे पर खड़े नाव माँग रहे हैं, यह कितने आश्चर्य की बात है॥

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिरि बूझति है 'चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥८॥

सरल अर्थ—इस छंद में सीता की सुकुमारता का वर्णन है। तुलसीदास कहते है—राम की पत्नी सीता अयोध्या से निकलकर धैर्य के साथ दो-चार कदम ही चली होंगी कि उनके मस्तक भर में पसीने की बूंदें छलकने लगीं और उनके मधुर अधर मुरझा गए। फिर वे पूछती हैं कि अभी कितना चलना है और आप कहाँ पहुँचकर पर्णकुटी बनाएँगे। पत्नी की इस प्रकार की व्याकुलता देखकर पति राम की आँखों में आँसू भर आए॥

आगे सोहै साँवरो कुँवर, गोरो पाछे पाछे,
आछे मुनि-वेष धरे लाजत अनंग हैं।

बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि,
कसें है बनाइ नीके राजत निषंग है।
साथ निसिनाथ मुखी पाथनाथ नंदिनी सी,
तुलसी बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनद उमंग मन जोबन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग है ॥८॥

सरल अर्थ – इस छंद मे वन मार्ग पर जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता की शोभा का वर्णन है। तुलसी कहते हैं कि आगे-आगे श्यामवर्ण के कुमार राम चलते हुए शोभायमान हैं। गौर वर्ण के लक्ष्मण पीछे-पीछे चल रहे हैं। दोनो ही मुनियो का वेष धारण किए हुए बडे अच्छे लगते हैं और अपने रूप मे कामदेव को लज्जित करते हैं। वे धनुष-बाण लिए हुए हैं और वृक्षो की छाल के वस्त्र कमर मे पहने हुए हैं और कमर मे तरकस भी शोभायमान है। उनके साथ चन्द्रमा के समान मुख वाली लक्ष्मी जैसी स्त्री है, इस प्रकार वे देखते ही चित्त को अपने साथ ले लेते हैं। उनके मन मे आनन्द उमड रहा है। शरीर मे युवावस्था की उमंग है और उनके अग-प्रत्यग मे रूप की तरंगे उठ रही हैं ॥

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि कै।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि मुनिपट लूटत पटनि कै।
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचै बरूथ बिद्युत छटनि कै।
गोरेको बरन देखे सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोकें गर्व घटत घटनि कै ॥१०॥

सरल अर्थ—उनका सुन्दर मुख है, कमल के समान नेत्र शोभायमान है। सुन्दर फूलो से युक्त उनके मस्तक पर जटाओं का मुकुट है। कन्धे पर धनुष शोभायमान है। पवित्र हाथो मे बाण हैं। कमर मे तरकस है और उनके मुनियो के जैसे वल्कल वस्त्र रेशमी वस्त्रो की शोभा को क्षीण करते हैं। उनके साथ सुकुमारी स्त्री है, जो इतनी गौर वर्ण की कांति से युक्त है कि उसके अगो मे लगाए गए उबटन से विधाता ने बिजली की छटा के समूह का निर्माण किया है। गोरे वर्ण वाले लक्ष्मण को देखकर सोना सुन्दर नही लगता और श्याम वर्ण वाले राम को देखकर मेघ घटाओ का गर्व घट जाता है ॥

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच,
बिलोकहु री सखी! मोहि सी ह्वै।
मग जोग न कोमल, क्यों चलिहैं?
सकुचात मही पद पंकज छ्वै।

यह सब देखकर शत्रु की स्त्रियाँ गाली देती हुई कह
शत्रु रावण ने पागल होकर राम से वैर किया है ।।

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट
दिन दिन बिकल सकल सुख
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध
होत न बिसोक, ओत पावै न
राम की रजाय तें रसायनी समीर
उतरि पयोधिपार सोधि सरव
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जात
रतन जतन जारि कियोहै मृगां

सरल अर्थ---इस विराट् विश्व के हृदय में रावण राजरो
था, जिससे वह दिन-प्रतिदिन व्याकुल रहता था और संसार
गया था। इस राजरोग की दवा करते हुए देवता, सिद्ध और
गए थे। परन्तु विश्व को किंचित मात्र भी लाभ नहीं हो रहा
से रसायन के विशेषज्ञ हनुमान् ने समुद्र के किनारे उतर कर
लंका के सोने के पुटपाक और राक्षसों की बूटी के द्वारा रत्नों को
चन्द्रोदय भस्म तैयार की और इस प्रकार विश्व को उस राजरोग

सुभुज मरीच खर त्रिसिर दूषन बालि
दलत जेहि दूसरो सर न
आनि परबाम बिधिबाम तेहि राम सों,
सकत संग्राम दसकंध
समुझि तुलसीस कपि कर्म घर घर घैरन,
बिकल सुनि सकल पाथोधि
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात

सरल अर्थ---इस झूलना छंद में लंका दाह के उपरान्त फैले हुए
किया गया है। तुलसी कहते हैं कि सुबाहु, मारीच, खर, दूषन,
का वध करने में जिसने एक के बाद दूसरा बाण नहीं चलाया अर्थ
से वध किया, उन्हीं राम की स्त्री को चुराकर---विधाता जिसके प्रति
रावण युद्ध ठानना चाहता है। हनुमान् के लंका-दहन की चर्चा घर-
और समुद्र बाँधा गया---यह सुनकर लोग और भी व्याकुल हैं। लं
रावण के रहते हुए और लंका के सुरक्षित गढ़ में निवास करते हुए भी
आतंक फैला हुआ है कि उस नगर में कोई रँधा (पका) भात भी नहीं

हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों संहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान

चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की।
बार बार सेवक सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखो, देखो, लखन! लरनि हनुमान की ।।२३।।

सरल अर्थ- इस छंद मे हनुमान की युद्ध-पद्धति का वर्णन है। वे हाथी को पकड़कर उसी से दूसरे हाथियो को मारते हैं। घोड़े से ही घोड़े का संहार करते हैं। रथ से रथों को चकनाचूर कर देते हैं। उनके शीघ्रता से हाथो की चपेट और पैरो की चोट और चकोटों के कारण राक्षसों की फौजें भयभीत होकर भगने लगी। राम बार-बार अपने सेवक हनुमान् की सराहना करते हैं और तुलसीदास सुजान राम के शील की प्रशंसा करता है। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि लंबी पूँछ में लपेट कर योद्धाओं को पटकते हुए हनुमान् की लड़ाई को देखो।।

सूर सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो।
केवट पषान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीन बंधु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ।।२४।।

सरल अर्थ—वीरो मे शिरोमणि और महाराजाओं मे श्रेष्ठ ऐसा कौन है कि जिसका नाम लेने से ऊसर भी उपजाऊ खेत बन जाय। जानकी के पति राम के समान ज्ञानवान् संसार मे और कौन स्वामी है जिस कृपालु के स्मरण से उल्लू भी हंस हो जाय। उन्होंने केवट, पत्थर बनी हुई अहिल्या, राक्षस, बंदर, रीछ आदि को तार दिया और तुलसी जैसे निकम्मे और बेकार को भी अपना लिया। अपने वचन के पक्के और अपनी भुजाओ से संरक्षण प्रदान करने वाले दीनों के बंधु और दुर्बल की सहायता करने वाले दया के भण्डार दूसरा कौन है?

विषया परनारि निसा-तरुनाई, सुपाइ पर्‌यो अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग बियोग बिलोकतहूँ न बिरागहि रे।
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महा भय भागहि रे।
जरठाइ दिसा, रविकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ।।२५।।

तक कि उनके लातों के आघात को सहन करके मन में सोचते हैं कि ये बड़े दुष्ट हैं। बच्चों के लिए यह विशेष कौतुक की वस्तु है वे किलकारी लगाते हैं, ताली बजाकर गाली देते हैं और ढोल, तुरही और नगाड़ा बजाते हुए पीछे दौड़ते हैं। इस प्रकार हनुमान् की पूँछ बढ़ने लगी और इतनी बढ़ी कि कई जगह आग लगानी पड़ी। उसे देखकर ऐसा लगता है कि यह विंध्याचल में लगी हुई दावाग्नि है या करोड़ों सूर्य उगे हुए हों॥

> बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानौं,
> लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
> कैधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
> बीर रस बीर तरवारि सी उघारी हैं।
> तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
> कैधौं चली मेरु तें कृसानु सरि भारी है।
> देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
> 'कानन उजारयो अब नगर प्रजारी है' ॥१७॥

सरल अर्थ—विशाल पूँछ में लगी हुई आग की लपटों का समूह ऐसा भयंकर लगता है कि मानों लंका को निगलने के लिए काल ने अपनी जीभ फैला रखी हो, अथवा आकाश मार्ग में अनेक पुच्छल तारे उग आए हों, अथवा वीर रस ने स्वयं प्रकट होकर अपनी तलवार खींच ली हो। तुलसी कहते हैं कि यह इन्द्र धनुष के समान विशाल लगती है अथवा यह बिजुलियों का समूह है या सुमेरु पर्वत से अग्नि की नदी बह चली है, उसको देखकर राक्षस और राक्षसी व्याकुल होकर कहती हैं कि अभी तो इसने बाग को ही उजाड़ा था, अब यह नगर को भी जला देगा।

> गाज्यो कपि गाज ज्यों बिराज्यो ज्वाल जाल जुत,
> भाजे बीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।
> 'धाओ धाओ धरो' सुनि धाए जातुधान धारि,
> वारिधारा उलदै जलद ज्यों न सावनो।
> लपट झपट झहराने हहराने बात,
> भहराने भट पर्‌यो प्रबल परावनो।
> ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चलै लै ठेलि,
> नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो ॥१८॥

सरल अर्थ—हनुमान् ने वज्र के समान गर्जना की और ज्वाला के समूह के साथ वह गर्जना करता हुआ विशेष रूप से सुशोभित था। उसकी गर्जना को सुनकर बड़े धैर्यवान् योद्धा भी भगने लगे। रावण व्याकुल हो गया। और उसने 'दौड़ो-दौड़ो पकड़ो' कहकर ललकारा। उसको सुनकर राक्षसों

की सेना दौड़ी और वह इस प्रकार पानी की धारा उड़ेलने लगी जितनी कि सावन के बादल भी नहीं उड़ेलते। उसी समय झंझावात् चलने से लपटों के झमेट में झुलसते हुए योद्धाओं के बीच भगदड़ मच गयी। मंत्री रावण को ढकेलते हुए ठेलकर वहाँ से यह कहते हुए ले गए कि इस भयंकर अग्निकांड पर आपका कोई बल कारगर नहीं होगा॥

एक करै धौंज, एक कहै काढ़ै सौंज,
एक औंजि पानी पी के कहै बनत न आवनो।
एक परे गाढ़े एक डाढ़त ही काढ़े एक,
देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।
तुलसी कहत एक नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छांड़ै बाल गाल को बजावनो।
धाओ रे बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे या,
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो॥१९॥

सरल अर्थ—लंका-दहन के समय कुछ लोग इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे हैं। कुछ कहते हैं कि जल्दी सामान निकालो। कोई घड़े से पानी उँडेलकर पीते हैं और कहते हैं कि अब निकलते नहीं बनता। एक मुसीबत में पड़े हुए हैं, कुछेक जलते हुए निकाल लिये गए हैं और कोई-कोई खड़े हुए देख रहे हैं, और कहते हैं कि भयंकर अग्निकाण्ड है। तुलसीदास कहते हैं कि उनमें से कुछ यह भी बोलते हैं कि अच्छे हाथों कपि को लाया गया और अब भी मूर्ख बकवास नहीं बन्द करते। दौड़ो आग बुझाओ क्या पागल हो गये हो अथवा यह कोई और आग लगी है जिसको न समुद्र बुझा सकता है और न वर्षा के बादल॥

हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरी कीन्ही भली भाँति भायसों।
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चायसों।
तुलसी निहारि अरि नारि दै दै गारी कहै,
बावरे सुरारि बैर कीन्हों राम राय सों॥२०॥

सरल अर्थ—जली हुई लंका का दृश्य चित्रित करते हुए तुलसी कहते हैं कि बाजार और मार्गों में लंका का सोना ऐसे पिघल चला, जैसे जमा हुआ घी पिघलता है। लंका सोने की कड़ाही के समान हो गई है, जिसमें पिघला हुआ सोना ताप खाकर घी के समान खौल रहा है। जो बलवान् राक्षस थे वे अनेक प्रकार के पकवान के समान जैसे पाग-पागकर ढेर किये गए हों। हनुमान् ने इस प्रकार वायु के द्वारा परोसवाकर अपने मेहमान अग्निदेव को प्रेमपूर्वक भोजन कराया।

यह सब देखकर शत्रु की स्त्रियाँ गाली देती हुई कहती हैं कि देवताओं के शत्रु रावण ने पागल होकर राम से बैर किया है ॥

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर,
दिन दिन बिकल सकल सुख राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो।
राम की रजाय तें रसायनी समीर सून,
उतरि पयोधिपार सोधि सरवाक सों।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियोहै मृगांक सों ॥२१॥

सरल अर्थ—इस विराट् विश्व के हृदय में रावण राजरोग के समान बढ़ रहा था, जिससे वह दिन-प्रतिदिन व्याकुल रहता था और संसार सभी सुखों से रहित हो गया था। इस राजरोग की दवा करते हुए देवता, सिद्ध और मुनि सब हार मान गए थे। परन्तु विश्व को किंचित मात्र भी लाभ नहीं हो रहा था। राम की आज्ञा से रसायन के विशेषज्ञ हनुमान् ने समुद्र के किनारे उतर कर उचित स्थान खोजकर लंका के सोने के पुटपाक और राक्षसों की बूटी के द्वारा रत्नों को यत्न से भस्म करके चन्द्रोदय भस्म तैयार की और इस प्रकार विश्व को उस राजरोग से मुक्त किया ॥

सुभुज मरीच खर त्रिसिर दूषन बालि,
दलत जेहि दूसरो सर न सांध्यो।
आनि परबाम बिधिबाम तेहि राम सों,
सकत संग्राम दसकंध काँध्यो।
समुझि तुलसीस कपि कर्म घर घर वैरन,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥२२॥

सरल अर्थ—इस झूलना छंद में लंका दाह के उपरान्त फैले हुए आतंक का वर्णन किया गया है। तुलसी कहते हैं कि सुबाहु, मारीच, खर, दूषन, त्रिसिरा और बालि का वध करने में जिसने एक के बाद दूसरा बाण नहीं चलाया अर्थात् एक ही बाण से वध किया, उन्ही राम की स्त्री को चुराकर—विधाता जिसके प्रति प्रतिकूल है, ऐसा रावण युद्ध ठानना चाहता है। हनुमान् के लंका-दहन की चर्चा घर-घर फैल रही है और समुद्र बांधा गया—यह सुनकर लोग और भी व्याकुल हैं। लंका के अधिपति रावण के रहते हुए और लंका के सुरक्षित गढ़ में निवास करते हुए भी सब पर इतना आतंक फैला हुआ है कि उस नगर में कोई रँधा (पका) भात भी नहीं खाता ॥

हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों सहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की।

चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की।
बार बार सेवक सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखो, देखो, लखन! लरनि हनुमान की ॥२३॥

सरल अर्थ--इस छंद मे हनुमान की युद्ध-पद्धति का वर्णन है। वे हाथी को पकड़कर उसी से दूसरे हाथियो को मारते हैं। घोडे से ही घोडे का संहार करते हैं। रथ से रथों को चकनाचूर कर देते हैं। उनके शीघ्रता से हाथो की चपेट और पैरो की चोट और चकोटों के कारण राक्षसों की फौजें भयभीत होकर भगने लगी। राम बार-बार अपने सेवक हनुमान् की सराहना करते है और तुलसीदास सुजान राम के शील की प्रशंसा करता है। वे लक्ष्मण से कहते है कि लंबी पूँछ मे लपेट कर योद्धाओ को पटकते हुए हनुमान् की लड़ाई को देखो ॥

सूर सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो।
केवट पषान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीन बंधु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ॥२४॥

सरल अर्थ—वीरो मे शिरोमणि और महाराजाओ मे श्रेष्ठ ऐसा कौन है कि जिसका नाम लेने से ऊसर भी उपजाऊ खेत बन जाय। जानकी के पति राम के समान ज्ञानवान् संसार मे और कौन स्वामी है जिस कृपालु के स्मरण से उल्लू भी हंस हो जाय। उन्होने केवट, पत्थर बनी हुई अहिल्या, राक्षस, बंदर, रीछ आदि को तार दिया और तुलसी जैसे निकम्मे और बेकार को भी अपना लिया। अपने वचन के पक्के और अपनी भुजाओ से संरक्षण प्रदान करने वाले दीनो के बंधु और दुर्बल की सहायता करने वाले दया के भण्डार दूसरा कौन है?

विषया परनारि निसा-तरुनाई, सुपाइ पर्‌यो अनुरागहिं रे।
जम के पहरू दुख रोग वियोग बिलोकतहूँ न विरागहिं रे।
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महा भय भागहि रे।
जरठाइ दिसा, रविकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ॥२५॥

सरल अर्थ—विषय रूपी पर स्त्री के साथ युवावस्था रूपी रात्रि में तू रमण कर रहा है। काल के पहरेदार दुख, रोग और वियोग हैं जिन्हें नित्य देखता हुआ भी तू उनसे विमुख नहीं होता। ममता के कारण सब भूल गया है, अब भोर होने वाला है और बहुत बड़ा भय तेरे समक्ष उपस्थित होने वाला है जिससे बचने के लिए तू शीघ्र पलायन कर। वृद्धावस्था रूपी दिशा में सूर्य रूपी काल उगा है। ऐ जड़ जीव! तू अब भी नहीं जाग रहा॥

भलि भारत-भूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा हिम मारुत धाम सदा सहि कै।
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै।
नतु और सबै विष बीज बये हर-हाटक कामदुहा नहि कै॥२६॥

सरल अर्थ—अच्छी भारत भूमि में अच्छे कुल में जन्म धारण किया और अच्छा समाज और अच्छा शरीर प्राप्त किया। अनेक प्रकार के आकर्षणों को छोड़कर कठोर वर्षा, शीत, आँधी, धूप को सहते हुए जो हठपूर्वक पपीहे के समान भगवान् का भजन करता है, वही चतुर है। नहीं तो और सभी सोने के हल में कामधेनु को जोतकर विष के बीज बोते हैं। अर्थात् सुन्दर शरीर, सुन्दर मन और बुद्धि और अच्छी परिस्थितियाँ प्राप्त करते हुए भी ईश्वर भक्ति न करना विष बोने के समान है॥

'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।
जान पनी को गुमान बड़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है॥२७॥

सरल अर्थ—जिन संतो ने संसार का अंत तक देख लिया है वे कहते हैं कि संसार सदा झूठा है। उस संसार के लिए ऐ मूर्ख तू करोड़ों संकट सह रहा है। दूसरों के सामने दाँत निकालता है और हा-हा करता है। तुझे अपने ज्ञान का बड़ा गुमान है और तुलसी के विचार से तू महा मूर्ख है। यदि तूने जानकी के पति श्री राम को अपने प्राण के समान नहीं समझा तो ज्ञानी होते हुए भी तूने कुछ भी नहीं जाना॥

झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जरे मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते।
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भये तो कहा तुलसी जुपै जानकी नाथ के रंग न राते॥२८॥

सरल अर्थ—अनेक मतवाले हाथी जंजीर में बँधे हुए द्वार पर झूम रहे हों, जिनसे मदस्राव हो रहा हो और मन की गति से भी अधिक तीव्रगामी जो वायु वेग से भी आगे बढ़ जायं, ऐसे चंचल घोड़े भी बँधे हों, घर के भीतर

चन्द्रमा के समान मुख वाली सुन्दर स्त्री प्रतीक्षा करती हो, बाहर मिलने वाले राजाओं की भीड़ लगी हो। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा सब कुछ होने पर भी यदि राम की भक्ति में नहीं रमे तो सब कुछ व्यर्थ है॥

को भरि है हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जो भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जो टरिहै ?
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहि कालहु तें डरिहैं।
कुमया कछु हानि न औरन को जोपै जानकीनाथ मया करिहै॥२९॥

सरल अर्थ—अनन्य भक्ति भावना से तुलसी कहते है कि यदि परमात्मा तुम्हें अकिंचन बनाना चाहेगा तो कौन संपत्ति से तुम्हें भर सकता है और यदि वह भरना चाहेगा तो कौन खाली कर सकता है। जिसे राम स्थापित करेंगे—उसे कौन हटा सकता है और जिसे वे हटाना चाहेंगे उसे कौन टिका सकता है ? यह सोचकर तुलसी स्वप्न में भी काल से भी नहीं डरता क्योंकि यदि सीतापति राम कृपा करेंगे तो किसी दूसरे की अकृपा से कोई हानि नहीं हो सकती॥

आपु हों आपको नीकें कै जानत, रावरो राम ! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो।
सोई है खेद जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥३०॥

सरल अर्थ—मैं अपने को और आपको अच्छी तरह जानता हूँ। हे राम ! आपके द्वारा ही मैं निर्मित किया गया और इस गौरव को प्राप्त हुआ हूँ। मैं जो तोते के समान नाम जपता हूँ, तो संसार यही कहता है कि इसे राम ने ही पढ़ाया है। वेद के अनुसार राम जिसे पोषित करते हैं, वह कभी घटता नहीं है, यही मेरे लिये चिंता की बात है। यों मैं तो सदा गधे की सवारी करने वाला हूँ। तुम्हारे नाम ने ही मुझे हाथी पर चढ़ा दिया है॥

राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को।
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो,
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को।
तुलसी बनी है राम रावरे बनाए, ना तो,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को॥३१॥

सरल अर्थ—मेरे पास संसार से अनुराग करने का साधन नहीं है और न हृदय में वैराग्य, योग साधना या यज्ञ आदि करने की ही इच्छा है। शरीर

बुरे नामों के ठाट-बाट को बनाना नहीं छोड़ता। मन के ऊँची कल्पना करते हुए आज तक अकाज ही होता रहा। मन सुन्दर वस्त्र चाहता है, परन्तु मिलता टाट का टुकड़ा भी नहीं। परमात्मा बड़े नीच के प्रति कृपालु हो गया है कि जो एक कौड़ी चाहता था, उसे रामनाम रूपी पारस मणि प्राप्त हो गई है। तुलसीदास कहते हैं कि मेरी जो भी बनी है, वह राम आपके ही द्वारा बनाई गई है। नहीं, मैं धोबी के कुत्ते के समान न तो घर का हूँ न तो घाट का अर्थात् मैं न इस लोक को ही सफल कर सकता हूँ न परलोक को ही ॥

ऊँचो मन, ऊँचो रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम, परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख,
जानत न कूर कछु किसब कवारु है।
तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम, नतु
भेंट पितरन कों न मूड़ हू में बारु है ॥३२॥

सरल अर्थ—मन ऊँचा है, रुचि भी बहुत उच्च है, पर भाग्य अत्यन्त निम्न कोटि का है। मैं संसार के कर्त्तव्य निभाने के योग्य नहीं हूँ, क्योंकि मैं झूठा और नटखट हूँ। स्वार्थ सिद्ध करना मेरे वश का नहीं है, तब परमार्थ की कौन कहे? उदर पोषण ही कठिन दीखता है, संसार में जीवन-यापन ही बड़ा झंझट है। न मेरे पास कोई नौकरी है, न कोई खान खोदने का काम है, न खेती है, न व्यापार है, न भीख है और न मुझ नीच को कोई कारीगरी और कार-बार का ही ज्ञान है। तुलसी के जीवन की बाजी राम-नाम ने ही रखी है नहीं तो मेरे पास तो पितरों की भेंट के लिये सिर में बाल तक नहीं ॥

आयो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है।
सुनत सिहात सोच बिधि हू गनक को।
नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरीतें गरु तृन तें तनक को ॥ ३३॥

सरल अर्थ—मँगत अर्थात् भिखारी कुल में उत्पन्न हुआ और यह सुनकर कि मैं माता-पिता के कष्ट और भार स्वरूप पैदा हुआ हूँ, दुष्ट लोगों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। बचपन से ही मैं द्वार-द्वार अत्यन्त दीनता से भोजन के लिये

ललकता और बिलखता रहा और मैं भिक्षा मे प्राप्त हुए चार चनों को ही चार फलों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के समान समझता था। वही तुलसी, समर्थ स्वामी का सुन्दर सेवक है। इसको सुनकर सभी सराहना करते हैं और ब्रह्मा को बड़ा सोच है। हे राम! आपका नाम तिनके से भी हल्के और निरर्थक व्यक्ति को पर्वत के समान गौरवशाली बना देता है, चाहे वह चतुर हो, चाहे मूर्ख॥

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-बन अहन अहेटकी।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेटही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़बागि तें बड़ी है आगि पेट की॥३४॥

सरल अर्थ—कारीगर और किसान का कुटुम्ब, व्यापारी, भिखारी, भाट (स्वांग दिखाने वाले), नौकर, नट, चोर, दूत, अभिनेत्री—कोई हो, सभी पेट के लिए विद्या प्राप्त करते हैं, गुणों को सीखते है, पर्वत पर चढते हैं, जंगल में घूमते है, आखेट करते हैं। यहाँ तक कि ऊँचे-नीचे धर्म-अधर्म के काम करते हैं। अपने बेटा-बेटी को भी पेट भरने के लिए बेच देते हैं। इसलिए तुलसीदास कहते हैं कि पेट की आग बड़वाग्नि से भी भयंकर है और इसे बुझाने वाला केवल राम रूपी घनश्याम है॥

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहै एक एकन सों 'कहां जाई, का करी ?'
बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
सांकरै सबै पै राम रावरे कृपाकरी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीन बंधु।
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥३५॥

सरल अर्थ—कलियुग मे दरिद्रता और दुखी जीवन का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं कि किसानों के लिये खेती उपलब्ध नही है। भिखारी को भीख नही मिलती। व्यापार करने वाले को वाणिज्य और नौकर को नौकरी प्राप्त नहीं होती। चारो ओर लोग जीविका से रहित, दुखी और चिंता से ग्रस्त हो रहे हैं और एक दूसरे से कहते है कि कहाँ जायें और क्या करें ?

वेद-पुराण भी कहते हैं और संसार में भी यही दिखलाई देता है कि मुसीबत के समय आप ही कृपा करते हैं। इस समय दरिद्रता रूपी रावण ने दुनिया को दबा रखा है। हे दीनबंधु! भयंकर कष्ट देखकर तुलसी आपसे घिघियाता है। आप सबकी रक्षा करो ॥

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचिहू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
आप महापातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु है अभागी भूरिभागी डाटियतु है।
कलिको कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है ॥३६॥

सरल अर्थ—कलियुग की उल्टी रीति का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं कि इस समय लोग बबूल और बहेड़े के तो बाग लगाते हैं और उनको रूँधने के लिए कल्प वृक्षों को काट रहे हैं। लोग ऐसे नीच हैं कि दानी दधीचि और हरिश्चन्द्र को गाली देते हैं, परन्तु स्वयं चना चबाकर भी हाथ चाट लेते हैं कि कहीं हाथ में लिपटा चने का दाना गिरकर किसी दूसरे को न मिल जाय। आप स्वयं महापापी हैं परन्तु विष्णु और शंकर की भी खिल्ली उड़ाते हैं। स्वयं तो अभागी हैं, परन्तु भाग्यशाली व्यक्तियों को उल्टा-सीधा कहते हैं। कलियुग के पापों ने मन को बहुत कलुषित कर दिया है। लोगों के उल्टे सीधे काम ऐसे ही हैं जैसे कोई मच्छर की पसुलियों से समुद्र पाटना चाहे ॥

धूत कहौं, अवधूत कहौं, रजपूत कहौं, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि को खैबो मसीत के सोइबो, लैबे के एक न दैबो को दोऊ ॥३७॥

सरल अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मुझे चाहे कोई धूर्त कहे, चाहे अवधूत कहे, चाहे कोई राजपूत कहे और चाहे कोई जुलाहा कहे जिसके जो मन में आवे वह कहे। किसी की बेटी से मुझे अपने लड़के का विवाह नहीं करना और किसी की जाति भी नहीं बिगाड़ना है। मैं तुलसीदास के नाम से प्रसिद्ध हूँ। राम का गुलाम हूँ। इसके अतिरिक्त भी जो कोई मुझे जो चाहे कहता रहे। माँग के खाना और देवस्थान में सो जाना, न किसी का लेना और न किसी को देना—यही मेरा जीवन क्रम है ॥

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।

तकत सराध कै बिवाह कै उछाह कछू,
डोलै लोलै बूझत सबद ढोल तुरना।
प्यासे हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार दारि करना।
सोक को अगार दुख-भार-भरो तौलों जन,
जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥३८॥

सरल अर्थ—इस छंद में अन्नपूर्णा देवी के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। तुलसी कहते है कि जब तक भवानी अन्नपूर्णा देवी कृपा नही करती तब तक मनुष्य शोक का घर और दुख के बोझ से भरा हुआ रहता है। वह लालची के समान द्वार-द्वार मांगता-फिरता है। मन सदैव खिन्न रहता है। कभी उसका दुख मिटता नही। वह इस ताक मे रहता है कि किसी के घर श्राद्ध हो, विवाह हो या और कोई उत्सव हो, जहां वह पेट भर भोजन प्राप्त करे। जहां कही ढोल और तुरही के मंगल वाद्य बजते हैं, वहां वह दौड़ता फिरता है, परन्तु अन्नपूर्णा की कृपा के बिना प्यासे होने पर न पानी ही मिलता है, भूखे होने पर न भोजन ही मिलता है, चाहे वह भोजन के पहाड़ और दालो के ढेर की इच्छा करता रहे।।

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़्यो बरदा, घरन्यो बरदाहै।
धाम धतूरो बिभूति को, कूरो, निवास तहां सब लै मरे दाहै।
ब्याली कपाली है ख्याली चहूँ दिसि भांग की टाटिन को परदा है।
रांक सिरोमनि काकिनि भाग बिलोकत लोकप को करदा है॥ ३९॥

सरल अर्थ—इस छंद मे शंकर जी की निंदा के व्याज से स्तुति की गई है। तुलसीदास कहते हैं कि शंकर के सिर पर बर देने वाली गंगा बसती हैं। वे स्वयं बर देने वाले हैं। 'बरदा' अर्थात् बैल पर चढते है। उनकी गृहिणी पार्वती जी भी बरदान की योग्यता रखती हैं। घर मे धतूरा और राख का ढेर है। वे मरघट पर निवास करते हैं। सांप लपेटे हुए मुण्डो की माला धारण किये हुए शंकर बड़े विनोदी हैं। अपने चारो ओर भांग के पौधो की बाड़ लगा रखी है। इतना होते हुए भी जिसके भाग्य मे कौड़ी भी नही है, ऐसे रक को भी वे देखते ही इतना वैभव सम्पन्न बना देते है कि वह लोक पालों को भी सहारा दे॥

चेरो राय राम को सुजस सुनि तेरो, हर!
पाइं तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौ।
वामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौ।

अविभूत, बेदन बिषम होत, भूतनाथ !
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिए तो अनायास कासीवास खास फल,
ज्याइये तो कृपा करि निरुज सरीर हौं ॥४०॥

सरल अर्थ—यूं मैं राम का सेवक हूँ। पर हे शंकर ! तुम्हारा यश सुनकर मैं गंगा के किनारे तुम्हारे चरणों में आकर बस गया हूँ। हे वामदेव ! राम का स्वभाव और शील समझ कर उसी नाते आप भी मेरे ऊपर कृपा करें। हे भूतों के स्वामी ! मेरे शरीर में भयंकर वेदना हो रही है। मैं पीड़ा से बुरी तरह व्याकुल हूँ। आप मेरी रक्षा करें। यदि मारना चाहते हों तो बिना कष्ट के मेरा जीवन समाप्त करें, मुझे काशी में मरने का विशेष फल प्राप्त होगा और यदि जीवित रखना चाहते हों तो मेरे शरीर को निरोग बनाकर जीवित रखें॥ (यह छंद तुलसी की बाहु-पीड़ा के प्रसंग का है।)

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल, तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गये, भूमि चोर भूप भये,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन की।
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दया-धर्म !
रावरी ई गति बल-बिभव बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन की ॥ ४१॥

सरल अर्थ—इस छंद में तुलसीदास ने काशी की महामारी का वर्णन किया है और उस परिस्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि इस समय एक तो भयंकर कलियुग है जो दुख की जड़ है फिर उसी समय मीन का शनिश्चर भी (ज्योतिष में यह दशा बड़ी दुखदायी समझी जाती है) उसमें और भी अधिक कष्टकारक है जैसे कि किसी के कोढ़ में खुजली हो जाय। इस समय वैदिक मर्यादा के धर्म लुप्त हो गए हैं। पृथ्वी को हड़पने वाले राजा हो गए हैं, सज्जन लोग बराबर विषादग्रस्त हैं। क्योंकि पाप के कार्य खूब बढ़ रहे हैं। हे दया के घर राम दुर्बलों के लिए किसी दूसरों का द्वार खुला नहीं है। जो बल, संपत्ति रहित हैं उनको आपका ही सहारा है। यदि आप आज दीन व्यक्ति को सहारा नहीं देते तो आपके चारों ओर फैले यश को निश्चित रूप से धक्का लगेगा ॥

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुख चंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच बिषाद हरी है।
गौरी कौ गंग बिहंगिनी बेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समय सब सोच बिमोचन छेम करी है ॥४२॥

सरल अर्थ—यह छंद गोस्वामी जी का अंतिम छद माना जाता है। इसमे उन्होने क्षेमकरी पक्षी के दर्शन का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि जितना शरीर है वह सब केसर के रंग का है, उसका सुन्दर मुख चन्द्रमा से होड़ करने वाला है। वह जब बोलती है, तो मानो संपदा टपकी पड़ती है। उसके देखने से चिंता और दुख दूर होते है। यह पक्षी के वेप मे गगा हैं या गौरी हैं, जो इतनी सुन्दर और आनद देने वाली मूर्ति बनकर आयी हैं। अंतिम प्रयाण के समय प्रेम-पूर्वक तू क्षेमकरी के दर्शन कर। वह तुझे सभी चिंताओं से मुक्त करेगी॥

गीतावली

(१)

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भये आई ॥१॥
अति पुनीत मधुमास, लगन-ग्रह-बार-जोग-समुदाई।
हरषवंत चर-अचर, भूमिसुर-तनरुह पुलक जनाई ॥ २॥
बरषहिं विबुध-निकर कुसुमावलि, नभ दुंदुभी बजाई।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥ ३॥
सुनि दसरथ सुत-जनम लिए सब गुरुजन विप्र बोलाई।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ॥ ४॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई।
पुरबासिन्ह प्रिय-नाथ-हेतु निज निज संपदा लुटाई ॥ ५॥
मनि-तोरन, बहु केतुपताकनि, पुरी रुचिर करि छाई।
मागध-सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥ ६॥
सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल विपुल बनाई।
गावहिं देहिं असीस मुदित, चिर जिवौ तनय सुखदाई ॥ ७॥
बीथिन्ह कुंकुम-कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ॥ ८॥
अमित धेनु-गज-तुरग-बसन-मनि, जातरूप अधिकाई।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥ ९॥
सुखी भये सुर-संत-भूमिसुर, खलगन-मन मलिनाई।
सबै सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥१०॥
जो सुख सिंधु-सकृत-सीकरतें सिव-बिरंचि-प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि,कौन जतन कहौं गाई॥११॥
जे रघुबीर-चरन-चिंतक, तिन्हकी गति प्रगट दिखाई।
अबिरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई ॥१२॥

सरल अर्थ—आज बड़ा मंगल दिवस है; आज की शुभ घड़ी बड़ी सुहावनी है। आज सौन्दर्य, शील और गुण के आगार भगवान् श्री राम राजा दशरथ के घर में प्रकट हुए हैं। अत्यन्त पवित्र चैत्र का मधुमास है तथा लग्न, ग्रह, दिन और योग—इन सबका संयोग भी परम पवित्र है। चलने वाले और न चलने वाले दोनों प्रकार के प्राणी बड़े प्रसन्न हैं तथा ब्राह्मणों के शरीर में हर्ष

के कारण रोमांच हो रहा है। देववृन्द आकाश में दुन्दुभी बजाते हुए पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं तथा कौसल्या आदि माताओं का मन बड़ा ही हर्षित हो रहा है। इस सुख का वर्णन नहीं हो सकता। दशरथ जी ने पुत्र-जन्म की सूचना पाकर समस्त गुरुजनों और विप्रवृन्द को बुला लिया है और बड़ी पवित्रता से वेदों मे निरूपित समस्त क्रियाएँ की हैं। इस समय उनके हृदय मे आनंद समा नहीं पाता है। राजभवन के मुनि मधुरवाणी से वेदध्वनि का उच्चार कर रहे है तथा अनेक प्रकार के मगल वाद्य बज रहे हैं। नगरवासियों ने भी अपने परम प्रिय स्वामी के लिए अपनी-अपनी सम्पत्ति निछावर कर दी है। मणियों के तोरणों और बहुत-सी ध्वजा पताकाओं से नगरी सुन्दरता से छा गयी हैं। द्वार पर जहाँ-तहाँ मागध, सूत और वन्दी जन प्रशंसा के गीत गा रहे हैं। पुरनारियाँ अपना स्वाभाविक शृङ्गार कर अनेक प्रकार की मंगल सामग्री लिए चली आ रही हैं। वे गीत गाती हैं और प्रसन्न मन से आशीर्वाद देती हैं कि सुखदायक बालक चिरजीवी हो। सुगन्धित द्रव्यों की इतनी भरमार है कि गलियों मे केसर की कीच मच रही है तथा अरगजा, अगर और अबीर उड़ रही है। अयोध्या के नर-नारी प्रेम मे भरे हुए नाच रहे हैं और उन्होंने अपने शरीर की सुध-बुध भी भुला दी है। महाराज दशरथ अगणित वस्त्र, हाथी, घोड़े, गाय तथा मणि और सुवर्ण आदि बहुत अधिक परिमाण मे दे रहे हैं, जिसके लिए जो चीज उचित है राजा उसे वही वस्तु दान कर रहे हैं। इस समय सभी सिद्धियाँ उनके घर आ गयी हैं। इस समय देवता, साधुजन और ब्राह्मण तो प्रसन्न हो रहे हैं, किन्तु दुष्टों का मन उसी प्रकार मलिन है; जिस प्रकार सूर्योदय हो जाने पर सभी पुष्प खिल जाते हैं, किन्तु कुमुदवन मुरझा जाता है। जिस आनंद-समुद्र के एक छींटे से ही शिव जी और ब्रह्मा जी का इतना प्रभुत्व है, वही सुख-सागर इस समय अवधपुरी मे दसों दिशाओं मे उमड़ रहा है। उसका वर्णन मैं किस प्रकार गाकर करूँ। जो श्रीरामचन्द्र जी के चरणों का चिन्तन करने वाले हैं - यहाँ उनकी सुन्दर जीवन गति स्पष्ट दिखाई दे रही है। इस अवसर पर तुलसीदास ने भी आपकी अटूट निर्मल और अनुपम सुदृढ भक्ति प्राप्त की है ॥

(२)

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?
प्रेम पुलकि, उरलाइ सुवन सब, कहति सुमित्रा मैया ॥१॥
सुन्दर तनु सिसु-बसन-बिभूषन नखसिख निरखि निकैया।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ॥२॥
किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि, भनि मिलनि मनोहर तैया।
मनि-खंभनि, प्रतिबिम्ब झलक, छवि छलकिहै भरि अँगनैया ॥३॥

बाल विनोद, मोद मंजुल विधु, लीला ललित जुन्हैया ।
भूपति पुन्य-पयोधि उमंग, घर घर आनन्द-बधैया ॥४॥
ह्वै हैं सकल-सुकृत-सुख-भाजन, लोचन लाहु लुटैया ।
अनायास पाइहैं जनमफल तोतरें बचन सुनैया ॥५॥
भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित-सरित अन्हवैया ।
तुलसी तबके-से अजहुँ जानिबे रघुवर-नगर बसैया ॥६॥

सरल अर्थ—सुमित्रा माता सब बालकों को प्रेम से पुलकित हो हृदय से लगाकर कहती है—'तुम चारों भैया कब पैरों से चलोगे ? तुम्हारे सुन्दर शरीरों पर बालोचित वस्त्राभूषण तथा नख-शिख की सुन्दरता देख माताएँ, (नजर न लग जाय, इसलिए) तिनका तोड़ेंगी और प्राण निछावर कर बलैया लेंगी। तुम्हारे किलकने, नाचने, चलने, देखने और दौड़कर मिलने की मनोहरता से तथा मणिमय खम्भों में तुम्हारा प्रतिबिम्ब पड़ने से आँगन में छवि छलकने लगेगी। तुम्हारे बाल-विनोद के आनंद रूप मनोहर चन्द्र की ललित लीला रूपी चन्द्रिका से महाराज दशरथ का पुण्य रूपी समुद्र उमड़ेगा और घर-घर में आनन्द-बधाई होने लगेगी। सभी लोग नेत्रों का आनन्द लूटकर पुण्य और सुख को प्राप्त करेंगे तथा तुम्हारी तोतली बोली सुनने वाले अनायास ही अपने जन्म का फल पा लेंगे।' तुलसीदास जी कहते हैं कि राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के चरित-रूपी नदी में स्नान करने वाले जैसे उस समय के अवधवासी थे वैसे ही आज के भी अयोध्या नगरी में बसने वाले लोग हैं ॥

(३)

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
चिर रुचि तिलक गोरोचनको कियो है ।
भ्रूपर अनूप मसिबिंदु, बारे बारे बार,
बिलसत सीसपर, हेरि हरै हियो है ॥१॥
मोदभरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि,
देव कहैं, सबको सुकृत उपवियो है ।
मातु, पितु, प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य,
पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है ॥२॥
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,
चाल चाहि सो छबि सुकबि जिय जियो है ।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत,
सोभाकी दीयटि मानो रूप-दीप दियो है ॥३॥
राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ-सुनि,
सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है ।

तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर,
ऐसे सुखजोग विधि विरच्यो न बियो है ॥ ४॥

सरल अर्थ—माताओ ने बालकों को तेल और उबटन लगाकर स्नान कराया और फिर नेत्रो में अंजन लगाकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गोरोचन (पीले रंग) का तिलक लगाया। भृकुटि के ऊपर अति अनुपम काजल की बिंदी लगाई। शीश पर छोटे-छोटे बाल सुशोभित है, जो देखने वाले के चित्त को हर लेते हैं। सुमित्रा को अति आनंद पूर्वक बालकों को गोद में लेकर दुलार करते देख देवगण कहते हैं, इस समय सभी का पुण्य प्रकट हुआ है। ये माता, पिता, प्रिय, कुटुंबी और पुरवासी लोग धन्य है, और बड़े पुण्यशाली हैं जो भगवान् राम को देख-देखकर प्रेम रस पान कर रहे है। इनके अति ललित और लाल-लाल नन्हें-नन्हे चरण-कमल तथा सुहावनी चाल की शोभा को देखकर ही सुकवि तुलसी का हृदय जीवन का उत्साह प्राप्त करता रहता है। बाल चापल्ययुक्त भगवान् राम ऐसे जान पड़ते है मानो शोभा की दीवट पर रूपमय दीपक बालकेलिरूप वायु के झकोरो से झिलमिला रहा हो। सत्पुरुषों ने आदरपूर्वक अनुज सहित बालक राम का चरित्र गा-गाकर और सुनकर अपने जन्म को सफल बनाया है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ब्रह्मा ने महाराज दशरथ को छोड़कर ऐसे सुख का योग चौदहो भुवनो मे और किसी के लिए भी प्रदान नही किया ॥

(४)

पौढ़िये लाल, पालने हौं झुलावौं।
कर पद मुख चखकमल ललित लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥१॥
बाल-विनोद मोद-मंजुलमनि किलकनि-खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहवे कहँ मति-मृगनयनि बुलावौं॥२॥
तुलसी भनिति भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुवर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥३॥

सरल अर्थ—(माता कहती है)—लाल ! तुम पालने मे लेट जाओ और मैं तुम्हें झुलाऊँ। फिर तुम्हारे कर, चरण, मुख और नेत्र रूपी सुन्दर कमलों को देखकर मैं अपने नयन रूपी भ्रमरो को तन्मय कर दूँ। तुम्हारे बाल-क्रीडा के आनंद रूपी मंजुल मणियों की प्राप्ति के लिए मैं तुम्हारी किलकनि (हँसी) रूपी खानि को उद्घाटित करूँ और उन मणियों को प्रेम के तागे मे पिरोने के लिए बुद्धि रूपी सुन्दरी स्त्री को बुलाऊँ। तुलसीदास कहते हैं—उस मनोहर माला को कविता रूपी कामिनी के कण्ठ में पहनाकर मैं उसे प्रफुल्लित करूँ और मैं उस (कविता-कामिनी) के साथ मिलकर तुम्हारे पवित्र चरित गा-गाकर तुम्हारे ही चरणों की भक्ति में तल्लीन हो जाऊँ ॥

(५)

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि !
चारु फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप-घरनि ॥१॥
बाल भूषन बसन, तन सुन्दर रुचिर रजभरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि ॥२॥
झुकनि, झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि, मोहनी मनहरनि ॥३॥
सखि-वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पाँसे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि ॥४॥
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भया चहै तरनि ॥५॥

सरल अर्थ—(किसी समय माता कौसल्या को अन्यमनस्क देखकर कोई सखी कहती है)—हे राजरानी ! तू तनिक इन रघुवीरों की ओर देख तो सही। श्री शंकर ने तेरे हाथ में इनके रूप में चारों फल प्रदान किये हैं। तू इनके बालोचित वस्त्र और आभूषण, शरीर की धूलि-भरी प्यारी शोभा, आंगन में आपस का खेल-कूद, उठ-उठकर चलना और फिर गिर-गिर पड़ना, झुकना, झाँकना, परछाईं देखकर किलकना, नाचना, हठ करके लड़ना, तोतली बोली बोलना तथा मन को हरने वाली मोहिनी चितवन से देखना ये सब बातें तो देख। सखी के ये वचन सुनकर कौसल्या जी ने समझ लिया कि मेरे अनुकूल पाँसे पड़े हैं (मैं भाग्यवती हूँ)। इसलिये वे राम का बार-बार आलिङ्गन करने लगीं, मानों दांव जीतने वाला अपने जीते हुए द्रव्य को दोनों हाथों से बड़ी लालसा के साथ समेटता हो। तुलसीदास जी कहते हैं, इस चरित्र को देवता लोग बादलों की ओट में खड़े होकर देख रहे हैं और (इसे निरंतर देखते रहने की इच्छा से) देवता तो इन्द्र (सहस्राक्ष—हजार नेत्र वाले) होना चाहते हैं और इन्द्र सूर्य (सहस्रकर—हजार हाथ वाले) होने के लिए उत्सुक हैं ॥

(६)

भूमितल भूपके बड़े भाग।
राम लखन रिपुदमन भरत सिसु निरखत अति अनुराग ॥१॥
बालविभूषन लसत पाँय मृदु मंजुल अंग-विभाग।
दसरथ-सुकृत मनोहर बिरवनि रूप-करह जनु लाग ॥२॥
राजमराल बिराजत बिहरत जे हर-हृदय-तड़ाग।
ते नृप-अजिर जानु कर धावत धरन चटक चल काग ॥३॥
सिद्ध सिहात, सराहत मुनिगन, कहैं सुर किन्नर नाग।
'ह्वै बरु बिहंग बिलोकिय बालक बसि पुर उपवन बाग' ॥४॥

परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम-प्रयाग।
तुलसी फल ताके चार्‌यो मनि मरकत पंकजराग ॥ ५॥

सरल अर्थ—इस पृथ्वी तल मे राजा दशरथ के बडे भाग्य हैं, क्योंकि वे बालक राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को अनुरागपूर्ण दृष्टि से निहारते हैं। बालकों के चरणों मे तथा अति मृदुल, सुन्दर अंग-प्रत्यंग मे, जो यथास्थान विभाजित करके बालोचित आभूषण सजाये गये हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महाराज दशरथ के पुण्यरूपी मनोहर पौधों मे रूप का कल्ला (मंजरी या बौर) निकल आया हो। जो (रामरूप) राजहंस श्री शंकर के हृदय सरोवर मे विहार करता है वही इस समय चंचल कौवे को पकड़ने के लिये महाराज दशरथ के आँगन मे तेजी से घुटनों और हाथो के बल दौड रहा है। यह देख कर सिद्ध लोग मन-ही-मन सिहाते (प्रसन्न होते हैं) हैं और मुनि जन महाराज दशरथ के भाग्य की बड़ाई करते हैं और देवता, किन्नर तथा नाग यह कहते हैं—अच्छा होता कि हम पक्षी होकर महाराज दशरथ के नगर, उपवन एवं बगीचों में रहते हुए इन बालकों को निहारा करते। महाराज दशरथ और रानियों ने अपने कुटुम्बियों के सहित प्रेमरूपी प्रयाग (तीर्थराज) मे स्नान किया है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ये मरकत (नीलम) और पद्मराग (पुखराज) मणि की-सी आभा वाले चारो बालक इस पुण्य के ही फल हैं। (राम और भरत नीलम की तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न गौर वर्ण के होने के कारण पुखराज की आभा वाले हैं) ॥

(७)

जागिये कृपानिधान जानराय रामचन्द्र,
जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे।
राजिव लोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥१॥
अरुन उदित, बिगत सरबरी, ससाक किरनहीन,
दीन दीपजोति, मलिन दुति समूह तारे।
मनहुँ ग्यानघन-प्रकास, बीते सब भव-बिलास,
आस-त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥२॥
बोलत खगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु,
स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे।
मनहुँ वेद-बंदी-मुनिवृन्द-सूत-मागधादि,
बिरुद बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥३॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक,
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।

जनु बिराग पाइ सकल सोक-कूप गृह बिहाइ,
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ।।४।।

सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे।
तुलसिदास अति आनन्द देखिकै मुखारबिंद,
छूटे भ्रमफंद परम मन्द द्वंद भारे ।।५।।

सरल अर्थ—माता बार-बार कहती हैं—हे ज्ञानियों में शिरोमणि कृपा-निधान रामचन्द्र! जागो! प्यारे! देखो, सवेरा हो गया। आप कमल के समान विशाल नयनों वाले तथा प्रेम रूप वापी के हंस हैं। आपके मनोहर मुखारविन्द पर करोड़ों कामदेव निछावर हैं। देखो, बालसूर्य उदित हुआ है, रात्रि बीत चुकी है, चन्द्रमा किरण-हीन हो चला है, दीपक का प्रकाश मन्द पड़ गया है और तारामण्डल की ज्योति फीकी पड़ गई है, मानो ज्ञान का घना प्रकाश होने पर सम्पूर्ण सांसारिक विलास शान्त हो गये हों तथा आशा और भय रूप अंधकार को सन्तोष रूपी सूर्य के तेज ने नष्ट कर दिया हो। हे मेरे प्यारे-प्राणों के जीवन धन पुत्र! तुम कान लगाकर सुनो। देखो, ये जो मुखर पक्षि समूह मधुर शब्द कर रहे हैं, तो वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों वेद, वन्दीजन, मुनि वृन्द, सूत और मागध आदि 'हे कैटभारेरि! तुम्हारी जय हो, जय हो' ऐसा कहकर तुम्हारा यश बखान करते हों। देखो, कमलों के समूह खिल गये और उनके भीतर सायंकाल से बन्द हुए भ्रमरगण छोड़कर सुमधुर ध्वनि करते हुए अलग-अलग चल दिये, जैसे वैराग्य के उदित होने पर आपके प्रेमोन्मत्त सेवक सब प्रकार के शोकों के कूप रूप घर को त्याग कर आपका गुणगान करते फिरते है। माता के ये अति मधुर और प्रिय वचन सुनते ही अत्यन्त दयालु भगवान् राम जाग पड़े। इससे सारे जंजाल दूर हो गए तथा सब प्रकार के दुख समूह दलित हो गये। तुलसीदास कहते हैं, भगवान् का मुखारविन्द देखकर सभी भक्तजन अति आनंदित हुए और उनके भ्रम जनित बन्धन छूट गये एवं राग-द्वेषादि भारी द्वन्द्व भी अत्यन्त क्षीण हो गये ।।

(८)

रंग भूमि आये दशरथ के किशोर हैं।
पेखनो सो पेखन चले हैं पुरनर-नारि,
बारे-बूढ़े, अंधु-पंगु करत निहोर हैं ।।१।।
नील पीत नीरज कनक मरकत घन,
दामिनि-बरन तनु, रूपके निचोर हैं।
सहज सलोने, राम-लषन ललित नाम,
जैसे सुने तैसेई कुंवर सिरमौर हैं ।।२।।

चरन-सरोज, चारु जंघा जानु ऊरु कटि,
कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं।
नीकेकै निषंग कसे, करकमलनि लसै,
बान-बिसिषासन मनोहर कठोर हैं ॥३॥

काननि कनकफूल उपबीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं।
राजिव-नयन, बिधुबदन, टिपारे सिर,
नख-सिख अंगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं ॥४॥

सभा-सरवर लोक-कोकनद-कोकगन,
प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं।
अबुध असैले मन-मैले महिपाल भये,
कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं ॥५॥

भाईसों कहत बात, कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर-से बोलत थोर थोर हैं।
सनमुख सबहि, बिलोकत सबहि नीके,
कृपा सों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं ॥६॥

सरल अर्थ—'रंग भूमि मे दशरथ जी के पुत्र पधारे है'—यह सुनकर नगर के स्त्री, पुरुष सभी तमाशा देखने के लिये चल पड़े, बालक और वृद्ध तथा अंधे और पंगु भी (अपने को ले चलने के लिये) निहोरा कर रहे है। दोनो भाई नीले और पीले कमल, सुवर्ण एवं मरकत मणि तथा मेघ और बिजली के-से वर्ण वाले और रूप के सार स्वरूप ही है। वे स्वभावतः ही सुन्दर हैं, उनके राम और लक्ष्मण—ये मनोहर नाम है तथा जैसे सुने गये थे वैसे ही राजकुमारो मे सिरमौर हैं। उनके चरण कमल के समान हैं; जंघा, जानु और कटि प्रदेश बड़े सुन्दर हैं, तथा कन्धे विशाल और भुजाएँ बडी बलशालिनी है। वे अति सुन्दर तरकस कसे हुए हैं तथा उनके कर कमलो में अति मनोहर और कठोर धनुष-बाण शोभित हैं। उनके कानो मे सोने के कर्णफूल, गले मे सुन्दर यज्ञोपवीत तथा शरीर मे अच्छे-अच्छे छोरों वाले पीताम्बर सुशोभित है। उनके नयन कमल के तथा मुख चन्द्रमा के समान है, शिर पर चौतनी टोपियां हैं तथा नख से लेकर शिखा पर्यन्त प्रत्येक अंग मे ठौर-ठौर पर ठगौरी है। (अर्थात् प्रत्येक अंग चित्त को ठग लेने वाला है)। सभा श्रेष्ठ सरोवर के समान है तथा वहां एकत्र हुए लोग कमल एवं चकवा-चकवी तुल्य हैं। वे राम-सूर्यदेव को उदित हुआ देख मन मे परम आनंदित हो रहे है तथा अज्ञानी और द्वेष मानने वाले राजाओ के चित्त, जिनमे से कुछ उल्लू के समान और कुछ कुमुद एवं चकोरवत् जान पड़ते हैं, मैले हो रहे हैं। भगवान् राम जब भाई से बातें करते हैं तो विश्वामित्र जी से सकुचाते हैं और मेघ के समान गंभीर

शब्द बोलते हैं तथा अधिक नहीं बोलते। प्रभु सभी के सम्मुख (अनुकूल) हैं, सभी को अच्छी दृष्टि से देखते हैं तथा तुलसीदास की ओर भी कृपापूर्वक हँसकर देख रहे हैं॥

(९)

राम-लखन जब दृष्टि परे, री।
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे, री ॥१॥
धनुष जग्य कमनीय अवनि-तल कौतुकही भए आय खरे, री।
छवि-सुर सभा मनहु मनसिज के कलित कलपतरु रूप फरे, री ॥२॥
सकल काम-बरषत मुख निरखत, करषत चित हित हरष भरे, री।
तुलसी सबै सराहत भूपहि भले पैत पासे सुढर ढरे, री ॥३॥

सरल अर्थ—'अरी सखी ! जब से राम-लक्ष्मण दृष्टिगोचर हुए हैं तब से उन्हें देखने वाले जनकपुर के लोगों की दशा ऐसी हो गई है, मानों विधाता ने अनेक विदेह बनाये हैं। इसी समय धनुषयज्ञ की सुरम्य भूमि में कौतुक से ही दोनों भाई आ खड़े हुए, मानों छवि रूप देव-सभा में कामदेव के दो मनोहर कल्पवृक्ष सौंदर्य रूपी फल से फलित हुए हों। अरी ! इनका मुख देखते ही सारी कामनाओं की वृष्टि करता है और चित्त में प्रीति तथा आनंद भरकर उसे आकर्षित कर लेता है।' तुलसीदास कहते हैं—सभी लोग महाराज जनक की प्रशंसा करते हैं कि इस समय महाराज को अच्छा दाँव हाथ लगा, उनके पाँसे बहुत अच्छे पड़े॥

(१०)

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री।
राजकुँवर-मूरति रचिबे की रुचि सु बिरंचि श्रम कियो है कितौ, री ॥१॥
नख-सिख सुन्दरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री।
साँवर रूप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल कल कलस रितौ, री ॥२॥
मेरे जान इन्हें बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री।
तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-धनु, भूरिभाग सिय-मातु-पितौ, री ॥३॥

सरल अर्थ—'अरी सुमुखि ! तनिक चित्त लगाकर देख तो इन राजकुमारों की मनोहर मूर्ति रचने की रुचि करके विधाता ने कितना परिश्रम किया है। अरी ! नख से सिख तक इनकी सुन्दरता देखकर जितना सुख होता है—वह कहा नहीं जाता। इस श्यामछवि रूप अमृत को भरने के लिये तुम अपने नेत्र कमल रूप कलसों को खाली करो। मेरे विचार से तो इन्हें बुलाने के लिये ही चतुर जनक जी ने इतना ठाट-बाट रचा है।' तुलसीदास कहते हैं, सीता जी के माता-पिता का बड़ा भाग्य है, भगवान् निश्चय ही धनुष तोड़ेंगे॥'

(११)

मिलो बरु सुन्दर सुन्दरि सीतहिं लायकु,
साँवरो सुभग, शोभाहू को परम सिंगारु।

मनहूको मन मोहै, उपमाको को है ?
सोहै सुखमासागर सग अनुज राजकुमारु ॥१॥
ललित सकल अंग, तनु धरे कै अनंग,
नैननिको फल कैधौं, सियको सुकृत-सारु ।
सरद-सुधा-सदन-छबिहि निंदै बदन,
अरुन आयत नवनलिन-लोचन चारु ॥२॥
जनक-मनकी रीति जानि बिरहित प्रीति,
ऐसी औ मूरति देखे रह्यौ पहिलो बिचारु ।
तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ,
'पन औ कुंवर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु' ॥३॥

सरल अर्थ—'अरी सखी ! शोभा का भी परम शृङ्गार रूप यह अति सुन्दर सांवला वर तो सीता ही के लायक है। यह तो सुन्दरी सीता को ही मिलना चाहिये। यह मन का भी मन मोह लेते हैं। इनकी उपमा के योग्य और कौन हो सकता है ? इनके साथ इनका अनुज यह सुषमा सागर राजकुमार सुशोभित है। इनके सब अंग अति सुन्दर है। यह देहधारी कामदेव, नेत्रो का फल अथवा सीता के सुकृतों का सार ही तो नहीं है ? इनका मुखचन्द्र शरत्कालीन सुधाकर की छवि की निन्दा करता है तथा इनके अरुण और विशाल नयन नवीन कमलदल के समान सुन्दर हैं। यदि ऐसी मन-मोहिनी मूर्ति को देखकर भी जनक जी का पहला (धनुर्भङ्ग के प्रण का) विचार बना हुआ है तो उनके चित्त की रीति, प्रीति से रहित है।' तुलसीदास जी कहते हैं, इस समय राजा जनक को कोई ऐसा कहकर नही समझाता कि अपने प्रण और इन दोनो राजकुमारो को प्रेम के तराजू मे रखकर तौलो तो ।

(१२)

राजा रंगभूमि आज बैठे जाइ जाइकै ।
आपने आपने थल, आपने-आपने साज,
आपनी आपनी बर बानिक बनाइकै ॥१॥
कौसिक सहित राम-लषन ललित नाम,
लरिका ललाम लोने पठए बुलाइकै ।
दरसलालसा-बस लोग चले भाय भले,
बिकसित-मुख निकसत धाइ धाइकै ॥२॥
सानुज सानंद हिये आगे ह्वै जनक लिये,
रचना रुचिर सब सादर देखाइकै ।
दिये दिव्य आसन सुपास सावकास अति,
आछे आछे बीछे-बीछे बिछौना बिछाइकै ॥३॥

भूपतिकिसोर दुहुँ ओर, बीच मुनिराउ,
देखिवेको दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइकै।
उदय-सैल सोहैं सुंदर कुँवर जोहैं,
मानौ भानु भोर भूरि किरनि छिपाइकै ॥४॥

कौतुक कोलाहल निसान-गान पुर, नभ,
बरषत सुमन बिमान रहे छाइकै।
हित-अनहित, रत-बिरत बिलोकि बाल,
प्रेम-मोद-मगन जनम-फल पाइकै ॥५॥

राजाकी रजाइ पाइ सचिव-सहेली धाइ,
सतानंद ल्याए सिय सिविका चढ़ाइकै।
रूप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि,
बिथके बिलोचन-निमेषै बिसराइकै ॥६॥

हानि, लाहु, अनख, उछाहु, बाहुबल कहि,
बंदि बोले बिरद अकस उपजाइकै।
दीप दीपके महीप आए सुनि पैज पन,
कीजै पुरुषारथको अवसर भौ आइकै ॥७॥

आनाकानी, कंठ-हँसी मुँहा-चाही होन लगी,
देखि दसा कहत बिदेह बिलखाइकै।
घरनि सिधारिए, सुधारिए आगिलो काज,
पूजि पूजि धनु कीजै बिजय बजाइकै ॥८॥

जनक-बचन छुए बिरवा लजारु के से,
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइकै।
तुलसी लखन माखे, रोषे, राखे रामरुख,
भाषे मृदु परुष सुभायन रिसाइकै ॥९॥

सरल अर्थ—आज राजा लोग अपने-अपने साज और अपने सुन्दर वेष बनाकर रंगभूमि में अपने-अपने स्थानों पर जाकर बैठ गये हैं। इसी समय महाराज जनक ने, जिनके अति सुन्दर राम और लक्ष्मण नाम हैं, उन महा मनोहर बालकों को विश्वामित्र जी के सहित बुला भेजा। उनके दर्शनों की लालसा से पुरवासी लोग भले भाव से प्रसन्न वदन होकर अपने-अपने घरों से निकल-निकल कर दौड़ पड़े। तब जनक जी ने अपने छोटे भाई कुशध्वज के सहित आनंदित हो आगे आकर उनका स्वागत किया तथा आदरपूर्वक धनुर्यज्ञ की समस्त रुचिर रचना दिखाकर उन्हें दिव्य आसन दिये, जिन पर सब प्रकार का सुपास और सावकाश था तथा अलग-अलग अच्छे-अच्छे बिछौने बिछे हुए थे। (दर्शकगण कहते हैं—) 'अहा! दोनों ओर राजकुमार हैं और बीच में

मुनिराज विश्वामित्र जी विराजमान हैं । यह इन्हें देखने का बड़ा अच्छा अवसर है, इसलिये और सब देखना छोड़कर इन्ही का दर्शन करो । ये दोनों सुन्दर राजकुमार ऐसे जान पड़ते हैं मानो उदयाचल पर प्रातःकालीन सूर्य अपनी सहस्र किरणों को छिपाकर उदित हुआ हो । जनकपुर मे बड़ा कौतिक तथा निशान और गान का कोलाहल हो रहा है तथा आकाश मे देवताओं के विमान छाये हुए हैं, जिनसे फूलों की वर्षा हो रही है । मित्र-शत्रु, रागी-विरागी ये सब इन बालकों को देखकर अपना जन्मफल पाकर प्रेम और आनंद मे मग्न हो रहे है । फिर महाराज जनक की आज्ञा पा मन्त्रि वर्ग और सहेलियाँ दौड़ी तथा शतानन्द जी सीता जी को पालकी पर चढाकर ले आये । श्री जानकी जी के सौंदर्य रूपी दीपक को निहार कर सब नर-नारी नेत्रो के निमेष भूलकर मृग और मृगियो के समान चकित से रह गये । इसी समय बन्दीजन (धनुष न टूटने से) हानि, (धनुर्भङ्ग से सीता जी की प्राप्ति रूप) लाभ, (बहुत बल करने पर भी धनुर्भङ्ग न कर सकने के कारण राजाओं को हुआ) अनख, (जो धनुष तोड़ेगा उसे सीता जी मिलेगी-ऐसा कहकर) उत्साह तथा (रावण-बाणासुरादि विश्व विजयी योद्धाओं के भी दाँत खट्टे करने वाले धनुष को- जो तोड़ेगा उसके) बाहुबल का बखान करके प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करते हुए विरदावली कहने लगे और बोले, इस समय महाराज जनक की दृढ प्रतिज्ञा सुनकर द्वीप-द्वीपान्तर के राजा लोग आये हुए है, सो उसे पूरी करें, अब पुरुषार्थ का समय उपस्थित हो गया है । उसे सुनकर राजाओ मे परस्पर आनाकानी कण्ठ-हँसी (भीतर ही भीतर हँसना) तथा कानाफूसी होने लगी । इस दशा को देखकर महाराज जनक बिलखकर कहने लगे—'हे नृपतिगण ! आप अपने घरों को जाइये और अपना अगला कार्य तो सँभालिये । (यह कार्य तो आप लोगो से हो चुका), अब आप धनुष की पूजाकर अपनी विजय का घोष कीजिये !' जनक जी के ये वचन सुन वे सब वीर लज्जावती (छुई-मुई) के पौधो के समान संकोचवश शिर झुकाकर रह गये । तुलसीदास जी कहते हैं, इन वाक्यो से लक्ष्मण जी भी खीझ गये, किन्तु श्री रामचन्द्र जी का रुख देखकर, अपने स्वभाव के अनुकूल रोष करते हुए कुछ मधुर और कुछ कठोर वचन बोले ॥

(११)

जनक मुदित मन टूटत पिनाक के,
 बाजे है बधावने, सुहावने मंगल-गान,
भयो सुख एकरस रानी राजा राँक के ।।१।।

 दुदुभी बजाइ, गाइ, हरषि बरषि फूल,
सुरगन नाचें नाच नायकहू नाक के ।

तुलसी महीस देखे दिन-रजनीस जैसे,
सूने परे सून-से मनो मिटाए आंक के ।।२।।

सरल अर्थ—धनुष के टूटते ही जनक जी मन में प्रसन्न हो गये । इससे सुहावने बधावे बजने लगे तथा मंगल गान आरंभ हो गया । उस समय राजा, रानी और रंक को एक समान आनंद हुआ । देवता और स्वर्ग के अधिपति भी दुन्दुभी बजाते और आनंद से गाते हुए फूलों की वर्षा कर नाचने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं, उस समय राजा लोग दिन के चन्द्रमा के समान (मलिन) जान पड़ते थे । वे मानों अंक के मिटा देने पर शून्य के समान सूने-से (नगण्य) हो गये थे ।।

(१२)

दूलह राम, सीय दुलही री ।
घन-दामिनि बरबरन, हरन-मन सुंदरता नख सिखनि बही, री ।।१।।
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि सी रही, री ।
जीवन-जनम-लाहु, लोचन फल है इतनोइ, लह्यो आजुसही, री ।।२।।
सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री ।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही, री ।।३।।
तुलसिदास जोरी देखत सुख शोभा अतुल, न जाति कही, री ।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लहीरी ।।४।।

सरल अर्थ—राम दूलह हैं और सीता दुलहिन हैं। दोनों का मेघ और बिजली के समान सुन्दर वर्ण है तथा नख से लेकर शिखा पर्यन्त मन को चुराने वाली सुन्दरता छायी हुई है। इन्हें विवाह के वस्त्राभूषणों से अलंकृत देखकर सारा सखी-समाज ठगा-सा रह गया है। वास्तव में जीने का और जन्म का लाभ तथा नेत्रों का फल तो इतना ही है, जो आज पूरा-पूरा प्राप्त कर लिया। कामदेव रूप ग्वाले ने मानों शोभा रूप सुरभी से शृङ्गार रूप दूध दुहकर जो अमृतमय दही तैयार किया था उसे मथकर ही मक्खन रूप राम और सीता रचे हैं तथा सारे लोकों की शोभा उससे रहा-सहा मट्ठा है। तुलसीदास कहते हैं, उस जोड़ी को देखने से बड़ा सुख होता है; उसकी अतुलित शोभा कही नहीं जाती। उन्हें विधाता ने तो मानों रूप की राशि ही बनाया है तथा रति और काम को तो उनका केवल सीला और लवनी ही मिला है ।।

(१३)

जानकी-वर सुन्दर, माई ।
इन्द्रनील-मनि-स्याम सुभग, अंग-अंग मनो जानि बहु छबि छाई ।।१।।
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत, कछुक अरुनाई ।
कंज दलनि पर मनहु भौम दस बैठे अचल सुसदसि बनाई ।।२।।

पीन जानु, उर चारु, जटित मनि नूपुर पदकल मुखर सोहाई।
पीत पराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई ॥३॥

किंकिन कनक कज अवली मृदु मरकत सिखर मध्य जनु जाई।
गई न उपर, सभीत नमित मुख, बिकसि चहूँ दिसि रही लोनाई ॥४॥

नाभि गंभीर, उदर रेखा बर उर भृगु-चरन चिन्ह सुखदाई।
भुज प्रलंब भूषन अनेक जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई ॥५॥

जग्योपवीत विचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहि भाई।
कंद तडित बिच जनु सुरपति-धनु रुचिर बलाक पांति चली आई ॥६॥

कबु कंठ, चिबुकाधर सुन्दर, क्यों कहौ दसनन की रुचिराई।
पदुम कोस महँ बसे ब्रज मनो निज संग तड़ित-अरुन-रुचि लाई ॥७॥

नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रू कुटिल, कचनि अनुपम छवि पाई।
रहे घेरि राजीव उभय मनो चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥८॥

भाल तिलक, कंचन किरीट सिर, कुण्डल लोल कपोलनि झांई।
निरखहिं नारि-निकर विदेह पुर निमि नृप की मरजाद मिटाई ॥९॥

सारद-सेस-सभु निसि-बासर चिंतन रूप, न हृदय समाई।
तुलसिदास सठ क्यों करि बरने यह छबि, निगम नेति कह गाई ॥१०॥

सरल अर्थ—अरी माई। जानकी के वर बड़े ही सुन्दर हैं, इनका सुन्दर शरीर इन्द्र-नील मणि के समान श्यामवर्ण है तथा अंग-अंग मे अनेको कामदेवो की छवि छायी हुई है इनके चरण अरुण वर्ण, अंगुलियां मनोहर तथा नख कान्तिमय और कुछ-कुछ लालिमा लिए है मानो कमल की पखडियो पर दस मगल ग्रह निश्चल होकर अपनी सभा बनाकर बैठे हैं। इनके घुटने स्थूल है। वक्षःस्थल सुन्दर है तथा चरणो मे सुन्दर ध्वनि करने वाले मणिमय नूपुर हैं जो ऐसे जान पडते हैं मानो भ्रमरगण दो पीत पराग भरे हुए कमलो को देखकर उन्ही मे लुभाकर रह गए हो। कमर में जो सुवर्णमयी करधनी है वह मानो सुवर्णवर्ण 'सरसिजो की माला ही है, जो मरकत मणि के पर्वत के मध्य भाग मे उत्पन्न हुई है और मुख चन्द्र से भयभीत होकर ऊपर को नही गई, बल्कि नीचे को मुख करके रह गयी है। उसकी सुन्दरता दसो दिशाओ मे फैली हुई है। भगवान् की नाभि गंभीर है, उदर देश में सुन्दर रेखाएं हैं, हृदय पर परम सुखदायक भृगुजी का चरण चिह्न है, अनेको आभूषणो से युक्त लम्बी-लम्बी भुजाएं है तथा पीताम्बर की अतिशय शोभा हो रही है। प्रभु के हृदय में मुझे अति विचित्र सुवर्ण-वर्ण यज्ञोपवीत तथा मोतियो की माला प्रिय जान पड़ती है। मानो बादल और बिजली के बीच मे इन्द्र धनुष उदित हो और वहीं बगुलो की पंक्ति भी आ गयी हो। (यहाँ श्याम शरीर मेघ है, पीताम्बर बिजली है, यज्ञोपवीत इन्द्रधनुष है और मोतियो की माला बगुलो की पंक्ति है।) भगवान् का कण्ठ शंख के समान है, चिबुक और अधर सुन्दर हैं तथा दाँतो की सुन्दरता का तो मैं वर्णन ही किस प्रकार करूं?

मानों साक्षात् वज्र (हीरे) ही बिजली और बालसूर्य की कान्ति लेकर कमलकोश में बसने लगा हो। (यहाँ मुख कमलकोश है, दाँत वज्र हैं तथा अधर और ताम्बूल की लालिमा ही बालसूर्य की कान्ति और दाँतों की चमक बिजली है)। उनकी नासिका सुन्दर है, नेत्र सुहावने हैं, भृकुटियाँ टेढ़ी हैं तथा बालों ने अनुपम छवि प्राप्त की है, मानों दो कमलों को हृदय से कुछ-कुछ डरते हुए भौंरों ने घेर रखा हो। (यहाँ दोनों नेत्र कमल हैं और भृकुटियाँ भौंरे हैं)। प्रभु के माथे पर तिलक है, सिर पर सुवर्णमय मुकुट है, कानों में हिलते हुए कुण्डल हैं जिनकी कपोलों पर झाँई पड़ती हैं। उन्हें देख कर जनकपुर की स्त्रियों ने निमिकुल की मर्यादा मिटा दी। (अर्थात् सब पलक मारना छोड़कर एक टक देखती रह गई हैं)। शारदा, शेष और महादेव जी रात दिन प्रभु के स्वरूप का चिन्तन करते हैं, फिर भी उनके हृदय में वह नहीं समाता। फिर दुष्ट तुलसी ही इस छविका कैसे वर्णन कर सकता है, जिसे वेद ने भी 'नेति-नेति' ही कह कर गाया है॥

(१४)

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु?
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको, जोपै पिय परिहर्‌यो राजु॥१॥
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद-मूल-फल अमिय नाजु।
प्रभुपद कमल बिलोकिहैं छिनछिन, इहि तें अधिक कहा सुख-समाजु?॥२॥
हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै, पति कानन कियो मुनि को साजु।
तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु॥३॥

सरल अर्थ—'कहिये, भला आपके बिना इस घर में मेरा क्या काम है? जब प्रियतम ने राज्य त्याग दिया तब मेरे लिए तो वन ही करोड़ स्वर्गलोकों के समान है। मुझे तो वल्कल ही अति मनोहर और निर्मल दुकूल होगा और कन्दमूल-फल ही अमृतमय अन्न होगा। अहा! मेरे नेत्र क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों का दर्शन करेंगे—इससे अधिक और क्या सुख की सामग्री होगी? हाय! मैं तो भोग की लालसा से राजभवन में रहूँ और पतिदेव वन में मुनियों के ठाट से निवास करें—ऐसे विरह सूचक वचनों को सुनकर भी आज मेरा कठोर हृदय क्यों विदीर्ण नहीं हो जाता?'

(१५)

जबहिं रघुपति-संग सीय चली।
बिकल-बियोग लोग पुरतिय कहैं, अति अन्याउ, अली॥१॥
कोउ कहै, मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली।
कोउ कहै, कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-बिष-फलनि फली॥२॥
एक कहैं, बन जोग जानकी! बिधि बड़ बिषम बली।
तुलसी कलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली॥३॥

सरल अर्थ—जिस समय भगवान् राम के साथ सीता जी भी चली उस समय नगर के नर-नारी वियोग-व्यथा से व्याकुल होकर कहने लगे—'अरी आली ! यह तो बडा अन्याय हो रहा है।' कोई कहने लगे—'राजा ने अच्छा नही किया। वे कांच के लिए मणियो को त्याग रहे है।' कोई बोले—'कैकेयी कुल के लिए कुबेल (बुरी बेल) रूप है जो इस समय दुखरूप विषमय फलों से फली है।' किसी ने कहा—'विधाता भी बडा ही विषम और बलवान् है। भला ! जानकी क्या वन के योग्य है ?' तुलसीदास जी कहते है, उस दिन तो वज्र की कठोरता भी तड़ककर नष्ट हो गई ॥

(१६)

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै।
राम लषन मेरी यहै भेंट, बलि, जाउ जहां मोहि मिलि लीजै ॥१॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हे।
अजहुं अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हे ॥२॥
पुनि सिरनाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो ॥३॥
तुलसी रवि कुल-रवि रथ चढि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भये मलिन अवध-सर, बिरह बिषम हिम पाई ॥४॥

सरल अर्थ—(भगवान् को वन की ओर जाते हुए सुन महाराज दशरथ कहने लगे)—'हे राम-लक्ष्मण ! मुझे अपना मुख चन्द्र देख लेने दो। अब मेरी तो यहाँ की अंतिम भेंट है। मैं बलिहारी जाता हूँ, जहाँ भी जाओ, मुझसे मिलकर जाना।' पिता के ये वचन सुनकर रघुनाथ जी ने उनके चरण पकड़ लिये। तब राजा ने भी उन्हे छाती से लगा लिया। उस अवसर को याद आने पर तो आज भी पृथ्वी दरार के मिस से विदीर्ण हो जाती है। फिर प्रभु ने सिर नवाकर वन के लिए प्रस्थान किया। उस समय महाराज मूछित हो गये और उन्हे फिर चेतना न हुई, मानो कर्म रूप चोर राजा रूप पथिक को मारकर उसका राम रूप रत्न लेकर भाग गया। तुलसीदास कहते हैं, तदनन्तर भानुकुलभानु भगवान् राम रथ पर आरूढ हो अति सुहावनी दक्षिण दिशा को चले। उस समय प्रभु का विरह-रूप विषम-हिम पाकर अयोध्या रूप सरोवर के पुरजन रूप कमल मुरझा गये ॥

(१७)

सखि ! सरद-बिमल-बिधु-बदनि बधूटी।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होगी,
रच्यौ रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ॥१॥
सांवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहूँ त्रिभुवन-सोभा मनहु लूटी।
तुलसी निरखि सिय प्रेम बस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥२॥

सरल अर्थ—'अरी सखि ! यह बहू तो शरत्कालीन निर्मल चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाली है। ऐसी सुन्दरी स्त्री तो न पहले हुई, न है और न आगे ही होगी। विधाता ने रति को भी, इसे सुधारते समय जो छवि रह गई थी, उसी से रचा है। यह इन साँवले-गोरे पथिकों के बीच में और भी अधिक शोभायमान होती है, मानों इन तीनों ने मिलकर तीनों लोकों की शोभा लूट ली हो।' तुलसीदास जी कहते हैं, सीता को देखकर स्त्रियाँ प्रेम के वशीभूत होकर कहती हैं—'अरी ! अपने नेत्र रूप बालकों को यह अमृतमयी घुट्टी पिलाओ॥'

(१८)

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही।
गये जो पथिक गोरे-साँवरे सलोने,
सखि ! संग नारि सुकुमारि रही॥१॥
जानि-पहिचानि बिनु आपुतें, आपुनेहुतें,
प्रानहुतें प्यारे प्रियतम उपही।
सुधा के सनेह हू के सार लै सँवारे बिधि,
जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही॥२॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुक, कहत,
तनु पुलक, नयन जलधार बही।
तुलसी प्रभु सुमिरि ग्राम जुवती सिथिल,
बिनु प्रयास परीं प्रेम सही॥३॥

सरल अर्थ—'अरी सखि ! बहुत दिन बीत गये, परन्तु अभी तक जो साँवले-गोरे सुन्दर पथिक गये थे और जिनके साथ एक सुकुमारी स्त्री भी थी, उनकी कुछ भी सुधि नहीं मिली। वे परदेशी—जान-पहचान न होने पर भी—अपने से, अपने प्रिय जनों से तथा अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय जान पड़ते थे। उन्हें विधाता ने अमृत और स्नेह का भी सार लेकर रचा है। वे जैसे प्रिय लगते हैं—वह हमसे कहा नहीं जाता। क्या उन पथिकों को हम फिर भी देख सकेंगी'—ऐसा कहते ही उनके शरीर पुलकित हो जाते हैं और नेत्रों से जल की धाराएँ बहने लगती हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, प्रभु का स्मरण कर ग्रामीण स्त्रियाँ शिथिल हो गई हैं और बिना परिश्रम ही प्रेम में सच्ची सिद्ध हो गई हैं॥

(१९)

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
स्याम गौर, धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री।
इन्हहिं बहुत आदरत महामुनि, समाचार मेरे नाह कहे, री।
बनिता-बंधु समेत बसे बन, पितु हितु कठिन कलेस सहे, री।
वचन परसपर कहति किरातिनि, पुलक गात, जलनयन बहे, री।
तुलसी प्रभुहि बिलोकति एकटक, लोचन जनु बिनु पलक लहे, री।

सरल अर्थ—'अरी सखि ! ये परदेशी कोई मृगयाशील राजकुमार है। ये धनुषबाण और तरकसधारी श्याम-गौर बालक इस समय चित्रकूट पर्वत पर आकर रहने लगे हैं। मेरे पतिदेव ने यह समाचार सुनाया है कि बड़े-बड़े मुनीश्वर लोग इनका बहुत सम्मान करते हैं। इस समय ये स्त्री और भाई के सहित वन में आ बसे हैं, इन्होंने अपने पिता के लिए बड़े-बड़े कष्ट सहे हैं। इस प्रकार किरातिनियाँ आपस में बातचीत कर रही हैं। उनके अङ्ग पुलकित हो रहे हैं और नेत्रों से जल की धाराएँ बह रही हैं। तुलसीदास कहते हैं, प्रभु को देखकर उनके नेत्र तो मानो बिना पलक के ही हो गये हैं॥

(२०)

फटिक सिला मृदु-बिसाल, संकुल सुरतरु-तमाल,
ललित लता-जाल हरति छबि बितान की।
मंदाकिनि-तटिनि-तीर, मंजुल मृग-बिहग-भीर,
धीर मुनि गिरा गभीर सामगान की॥१॥
मधुकर-पिक-बरहि मुखर, सुन्दर गिरि निरझर झर,
जल-कन घन-छाँह, छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-बाटिका नृप पचबान की॥२॥
बिरचित तहँ परनसाल, अति बिचित्र लषनलाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम-जानकी।
निजकर राजीवनयन पल्लव-दल-रचित सयन,
प्यास परसपर पीयूष प्रेम-पान की॥३॥
सिय अंग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग,
तिलक-करनि का कहौं कलानि धान की।
माधुरी-बिलास-हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की॥४॥

सरल अर्थ—(प्रभु को प्रसन्न करने के लिये) विशाल फटिक शिला बड़ी कोमल हो गई है, वहाँ उगे हुए कल्पवृक्ष के समान तमाल तरु तथा मनोहर लता समूह बड़े-बड़े चंदोवों की छवि छीन रहे हैं। मन्दाकिनी नदी के तीर पर मनोहर मृग और पक्षियों की भीड़ लगी रहती है तथा मनस्वी मुनियों के सामगान का गभीर शब्द होता रहता है। भौंरे, कोकिल और मयूरगण कोलाहल करते रहते हैं, सुन्दर पर्वतों से झरने झरते हैं, जलकण भरित मेघों की छाया बनी रहती है—जिससे एक क्षण के लिए भी सूर्य का प्रकाश नहीं होता। सभी ऋतुओं में ऋतुराज वसंत का प्रभाव बना रहता है और निरंतर त्रिविध समीर बहता रहता है। ऐसा जान पड़ता है, मानो यह वन महाराज कामदेव की विहार-वाटिका ही हो। वहाँ लखनलाल ने एक बड़ी ही विचित्र पर्णशाला बनाई है—जहाँ सदा ही कृपामय राम एवं जानकी

जी निवास करती हैं। कमल नयन भगवान् राम ने अपने ही हाथों से नवीन और कोमल पत्तों की शय्या रची है, क्योंकि प्रिया-प्रीतम को परस्पर प्रेम रस-पान की प्यास है। भगवान् राम सीता जी के अङ्ग-प्रत्यङ्गों पर (सिंगरफ, हरताल आदि) धातुओं से पत्र रचना करते हैं और फूलों के आभूषण बनाते हैं। कला-कुशल श्री राम की तिलक रचना का मैं क्या वर्णन करूँ? तुलसीदास के हृदय में वह परम प्राण प्रिय जोड़ी सदा निवास करती है और यह उसकी माधुरी तथा उसके हास, विलास एवं सुयश का गान करता है॥

(२१)

आइ रहे जबतें दोउ भाई।
तबतें चित्रकूट-कानन-छबि दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई॥१॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिबिध पाप, भयताप नसाई॥२॥
उकठेउ हरित भये जल-थल रुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत, फलत, पल्लवत, पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई॥३॥
सरित-सरनि सरसी रुह-संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहंग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई॥४॥
त्रिबिध समीर, नीर झर झरननि, जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग-जप-तप मन लाई॥५॥
भये सब साधु किरात-किरातिनि, राम दरस मिटि गइ कलुषाई।
खग-मृग मुदित एक संग बिहरत सहज बिषम बड़बैर बिहाई॥६॥
काम केलि-वाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई।
सकल-भुवन-सोभा सकेलि मनो राम-बिपिन बिधि आनि बसाई॥७॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल बड़ाई।
पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनि, प्रमुदित मन जीवन फलु पाई॥८॥
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि, संपति-महिमा-मोद-मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लषन रामसिय आनन्द-अवधि अवध बिसराई॥९॥

सरल अर्थ—जब से दोनों भाई आकर रहे हैं, तब से चित्रकूट के वन की शोभा दिनों-दिन अधिक-अधिक हो रही है। सीता, राम और लक्ष्मण जी के चरण चिह्नों से अंकित उस सुहावनी भूमि का वर्णन नहीं होता। मन्दाकिनी का स्नान अथवा दर्शन करने से ही तीनों प्रकार के पाप और ताप नष्ट हो जाते हैं। जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले पौधे, जो सूख चुके थे, फिर हरे हो गये हैं तथा कमल भी नित्य नवीन-नवीन शोभा धारण कर रहे हैं। सब प्रकार के अभिमत और सुखदायी वृक्ष तथा लता आदि पुष्पित, फलित, पल्लवित और हरे-भरे हो रहे हैं। नदी और तालाबों में कमल खिले हुए हैं, मानों लक्ष्मी जी अपने घरों को सँभाल कर निवास करने लगी हैं। पक्षिगण कूज रहे हैं तथा भ्रमरों का मनोहर गुंजार हो रहा है, मानों

वे जाने वाले पथिकों को अपने पास बुला रहे हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रहा है, झरनों में जल झर रहा है। ऋषिगण जहाँ-तहाँ कुटी बनाकर बसे हुए हैं तथा तपस्वी लोग दत्तचित्त होकर शीतल और सुन्दर शिलाओं पर जप, तप एवं योग साधन कर रहे हैं। सारे किरात और किरातिनियाँ साधु हो गये हैं। भगवान् राम का दर्शन पाकर उनकी कलुषता जाती रही है। पक्षी और मृगगण अपना स्वाभाविक वैर भूलकर प्रसन्नता पूर्वक एक साथ विहार कर रहे हैं। उस वन को कामदेव के क्रीडोद्यान और नन्दनवन की लघु उपमा देने में भी कवि को लज्जा होती है, मानो विधाता ने सारे भुवनों की शोभा को एकत्र कर भगवान् राम के वन में ही लाकर बसा दिया है। उस वन के मिस से ही मुनिजन, मुनि पत्नियाँ और मुनि बालक रघुनाथजी के विमल सुयश का वर्णन करते हैं और अपने जीवन का फल पाकर पुलकित एवं शिथिल शरीर, सजल नयन और प्रसन्न चित्त हो जाते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, जहाँ आनन्द के सीमा स्वरूप भगवान् राम, लक्ष्मण और सीता जी अयोध्या को त्यागकर निवास करते हैं—उस चित्रकूट पर्वत की सम्पत्ति, महिमा, प्रसन्नता एवं मनोहरता का मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ ॥

(२२)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषाऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखन मन अनुरागत ॥१॥
चहुँ दिसि बन संपन्न बिहंग-मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥२॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रगमगे सृंगनि।
मनहु आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ॥३॥
सिखर परस घन-घटहिं, मिलति बग पांति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥४॥
जल जुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन-प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहु जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अंग अंग ॥५॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानो राम-भगति के पाछे ॥६॥

सरल अर्थ—चित्रकूट पर्वत सभी दिन बड़ा सुहावना लगता है। वर्षा ऋतु का प्रवेश होने पर तो इसे देखने के लिए मन बहुत ही छटपटाता है। इसके चारों ओर फल-फूल आदि से सम्पन्न वन है, वहाँ बोलते हुए पक्षी और मृगगण ऐसी शोभा पाते हैं मानो किसी अच्छे राजा के देश और नगर में प्रजा आनन्दपूर्वक सब प्रकार के सुख भोग रही हो। (गेरू आदि) धातुओं से रंगे हुए गिरिशिखरों पर मधुर-मधुर घोर करते हुए मेघ ऐसे शोभायमान होते हैं मानो देवता और मुनिजन रूप भ्रमरों से सेवित आदिकमल (जिससे ब्रह्मा जी प्रकट हुए थे) विराजमान हो। जब बगुलों की पंक्ति शिखर को स्पर्श करके श्याम घटाओं से मिलती है तो उसकी छवि कवि

इस प्रकार वर्णन करता है मानों आदिवराह समुद्र में क्रीड़ा कर, दाँतों पर पृथ्वी धारण कर उससे बाहर निकले हैं। (यहाँ पर्वत आदि वराह हैं, बगुलों की पंक्ति दांत है और घटाएँ पृथ्वी हैं) जल से भरी हुई निर्मल शिलाओं में आकाश और वन का प्रतिबिम्ब ऐसा झलकता है जैसे विराट् भगवान् के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में संसार की विचित्र रचना प्रतिफलित हो रही हो। तुलसीदास जी कहते है, स्वच्छ जल से भरे हुए झरने झर-झरकर मन्दाकिनी नदी में मिल जाते हैं, जैसे सारे सुकृत और सुख एक-मात्र रामभक्ति के ही पीछे लगे हुए हैं ॥

(२३)

माई री! मोहि काउ न समुझावै।
राम-गवन सांचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥१॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे, राम-लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भयो बिपरीता ॥२॥
दुख न रहै रघुपतिहिं बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान, सुनहु सखि! अरुझि न परी यहि लेखे ॥३॥
कौसल्या के बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-बिरह की पीर न जाति बखानी ॥४॥

सरल अर्थ—(माता कौसल्या कहती है)—'अरी मैया, मुझे कोई नहीं समझाता। मुझे अभी तक विश्वास नहीं होता कि राम का वन गमन सत्य है या कोई स्वप्न हुआ है। राम, लक्ष्मण और सीता मेरे नेत्रों के सामने सदा लगे ही रहते है, तो भी विधाता ऐसा विपरीत हो गया है कि इस हृदय का दाह दूर ही नहीं होता। रघुनाथ जी के देखने पर तो दुःख नहीं रह सकता और बिना देखे शरीर का रहना असम्भव है। किन्तु मेरे प्राणों ने अभी तक कूच नहीं किया, अतः सखि! सुनो, इस नियम में अवश्य कोई गड़बड़ हुई है। कौसल्या जी के ये विरह वाक्य सुनकर सब रानियाँ रो पड़ीं। तुलसीदास कहते है, रघुनाथ जी के विरह की व्यथा का वर्णन नहीं हो सकता ॥

(२४)

मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ।
नारि बस न बिचारि कीन्हीं काज, सोचत राउ ॥१॥
तिलक को बोलयो, दिये बन, चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिद्रयो समुझि सील-सुभाउ ॥२॥
सीय-रघुबर-लषन बिनु भय भभरि भगी न आउ।
मोहि बूझि न परत, यातें कौन कठिन कुघाउ ॥३॥
सुनि सुमन्त! कि आनिसुन्दर सुवन सहितजि आउ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन-अमिय पिआउ ॥४॥

सरल अर्थ—महाराज दशरथ सोचते हैं—मैंने स्त्री के वशीभूत होकर सोच-समझकर काम नही किया, इससे प्राप्त हुआ मेरा मानसिक पश्चात्ताप मरने पर भी दूर नही होगा। देखो, मैंने राम को राजतिलक के लिए बुलाकर वनवास दे दिया फिर भी उनके चित्त मे चौगुना उत्साह बना रहा। उनका ऐसा शील और स्वभाव जानकर भी मेरा हृदय दाडिम (अनार) के समान फट नही गया। यदि सीता, राम और लक्ष्मण के बिना भी मेरी आयु भय से घबड़ाकर नही भगी तो मुझे यह नही जान पडता कि इससे बढकर और कौन सा कठोर घाव होगा? हे सुमन्त! सुनो, या तो मेरे सुन्दर पुत्रो को लाकर मुझे उनके साथ जीवित रखो, नही तो अब मुझे मृत्यु रूप अमृत का पान करा दो ॥

(२५)

भाई! हौं अवध कहा रहि लैहौं।
राम-लषन-सिय-चरन विलोकन कालिह काननहि जैहौं ॥१॥
जद्यपि मोतें, कै कुमाततें ह्वै आई अति पोची।
सनमुख गये सरन राखहिंगे रघुपति परम संकोची ॥२॥
तुलसी यों कहि चले भोरही, लोग बिकल सग लागे।
जनु बन जरत देखि दारुन दव निकसि बिहंग-मृग भागे ॥३॥

सरल अर्थ—भाई मैं अयोध्या मे रहकर क्या लूँगा? मैं तो राम, लक्ष्मण और सीता जी के चरण देखने के लिए कल ही वन को प्रस्थान करूँगा। यद्यपि मुझसे या मेरी कुटिल माता से बडी बुरी बात बन गई है तो भी परम संकोची भगवान् राम अपने सामने आया देखकर मुझे अपनी शरण मे रख लेगे। तुलसीदास जी कहते हैं, ऐसा कहकर भरत जी प्रात काल होते ही वन को चल दिये तथा अन्य लोग भी व्याकुल होकर उनके साथ हो लिए, जैसे वन को भयंकर दावानल से जलता देखकर पक्षी और मृग उससे निकलकर भागने लगते है ॥

(२६)

सुकसो गहबर हिये कहै सारो।
बीर कीर! सिय-राम-लषन बिनु लागत जग अंधियारो ॥१॥
पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो।
कुल गुरु-सचिव-साधु सोचतु, बिधि को न बसाइ उजारो ॥२॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो।
सुने न बचन करुनाकरके, जब पुर-परिवार सँभारो ॥३॥
भैया भरत भावते के, संग बन सब लोग सिधारो।
हम पख पाइ पीजरनि तरसत अधिक अभाग हमारो ॥४॥
सुनि खग कहत अंब! मौगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो।
गयेते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन गारो ॥५॥

जीवन जग जानकी-लखन को, मरन महीप संवारो।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत, कहा कछु चारो ॥६॥

सरल अर्थ—(इस समय) एक सारिका (मैना) हृदय भरकर शुक से कहने लगी—भैया कीर! सीता, राम और लक्ष्मण बिना तो सारा संसार अन्धकारमय जान पड़ता है। दासी मन्थरा बड़ी पापिनी है, रानी कैकेयी भी बड़ी मूर्खा है, राजा ने भी हिताहित का कोई विचार नहीं किया। इसी से कुलगुरु वसिष्ठ जी, मन्त्रि-मण्डल और साधुजन सोचते हैं कि 'विधाता ने किसे बसा कर नहीं उजाड़ा ?' हमने तो जाते समय नेत्र भर कर उन्हें देखा भी नहीं और जिस समय उन्होंने अपने नगर और परिवार की सँभाल की थी, उस समय नगर में भारी कोलाहल होने के कारण हम करुणाधाम भगवान् राम के वचन भी नहीं सुन सके। अब प्यारे भाई भरत के साथ सब लोग वन को जा रहे हैं, परन्तु हम पांख पाकर भी पिंजड़े में पड़े तरस रहे हैं—यह हमारा बड़ा भारी दुर्भाग्य ही है।" सारिका के ये वचन सुनकर तोता बोला—"अरी मैया। प्रेम का पंथ निराला समझ कर तू मौन ही रह। देख, जो उनके साथ गये थे वे भी प्रभु को वन में पहुँचाकर कर्म (भाग्य) के गुणों की निन्दा करते हुए फिर लौट आए। संसार में जीवन तो सीता और लक्ष्मण का ही है तथा मरण केवल महराज ने सुधारा है और सब तो प्रेम की चर्चा ही करते हैं और इसके सिवा उनके लिए कोई चारा भी नहीं है (क्योंकि न तो वे वन ही को जा सकते हैं और न प्राण ही त्याग सकते हैं॥)

(२७)

तात! विचारो धौं, हौं क्यों आवौं।
तुम्ह सुचि सुहृद सुजान सकल विधि,
बहुत कहा कहि कहि समुझावौं ॥१॥
निजकर खाल खैंचि या तनुतें जौ पितु पग पानही करावौं।
होउं न उरिन पिता दसरथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ॥२॥
तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर, क्यों
तेहि कुलहि कालिमा लावौं।
प्रभु-रुख निरख निरास भरत भये,
जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावौं ॥३॥

सरल अर्थ—(इस पर रघुनाथ जी कहने लगे)—"भैया सोचो, तो मैं किस प्रकार लौट सकता हूँ ? तुम सब प्रकार से निर्दोष, सुहृद् और समझदार हो। तुम्हें बहुत कहकर क्या समझाऊँ ? यदि मैं अपने हाथ से ही इस शरीर की खाल खींचकर पिता जी के चरणों की जूतियाँ बनवाऊँ तो भी पिता दशरथ जी से मैं उऋण नहीं हो सकता, फिर उनके वाक्यों की अवहेलना करके मैं कैसे विश्वासपात्र हो सकता हूँ। भैया! जिस कुल का सुयश तीनों लोकों में छाया हुआ है उसे मैं कैसे कलंकित

कर सकता हूँ।' तुलसीदास कहते है, प्रभु का ऐसा भाव देखकर भरत जी निराश हो गये और उन्होने विधाता को सब प्रकार वाम समझा। पैर मानो सकोच रूप दलदल में गड जाते हैं और उन्हे वे प्रेम के बल से धैर्यपूर्वक बाहर निकालते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं भरत जी की यह दशा देखकर भगवान् प्रेम से अधीर होकर उनकी ओर उठकर दौडे और उनकी विरह-व्यथा को दूर कर कृपानिधान प्रभु ने उन्हे उठाकर हृदय से लगा लिया ॥

(२८)

बिलोके दूरितें दोउ बीर।

उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल-गौर सरीर ॥१॥
सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचीर।
निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु-तीर ॥२॥
मन अगहुँड़, तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन-नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर ॥३॥
तुलसिदास दसा देखि भरत की उठि धाए अतिहि अधीर।
लिए उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर ॥४॥

सरल अर्थ—भरत जी ने दूर से ही दोनो भाइयो को देखा। उनके विशाल वक्ष:स्थल हैं, आजानुपर्यन्त लम्बायमान सुन्दर भुजाएँ है तथा श्याम और गौर शरीर हैं। उनके सिर पर जटाएँ हैं, कमल के समान नेत्र हैं और वे मुनिवस्त्र धारण किये हैं। उनके पास ही मे तरकस रखे हुए हैं, सग मे सीता जी शोभायमान है तथा हाथो से वे धनुष और बाणो को हिला रहे है। प्रभु को देखकर भरत जी का मन तो आगे बढ़ने के लिए उतावला हो रहा है किन्तु शरीर रोमाचित होकर शिथिल हो गया है और नेत्र कमलो मे जल भर आया है पैर मानो सकोच रूपी दलदल मे गडे जा रहे हैं जिसे वे प्रेम बल से धैर्यवश बाहर निकालते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि भरत जी की ऐसी दशा देखकर भगवान् अत्यन्त अधीर होकर उठ कर दौड़े और कृपानिधान प्रभु ने उन्हे हृदय से लगाकर उनकी विरह व्यथा को दूर कर दिया ॥

(२९)

बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं।

सकुच-सिंधु बोहित बिबेक करि बुधि-बल बचन निबाहै ॥१॥
छोटे हुते छोह करि आए, मैं सामुहे न हेरो।
एकहि बार आजु बिधि मेरो सील-सनेह निबेरो ॥२॥
तुलसी जो फिरियो न बनै, प्रभु! तौ हा आयसु पावौं।
घर फेरिए लपन, लरिका हैं, नाथ साथ हौं आवौं ॥३॥

सरल अर्थ—भरत जी फिर भी कुछ कहना चाहते है। अतः सकोच रूप समुद्र मे विवेक को नौका बनाकर उस पर वचन रूप पथिको को बुद्धि रूप केवट के बल से पार करना चाहते है। (वे कहने लगे) 'छोटेपन मे तो प्रभु मुझ पर सदा से ही स्नेह करते रहे हैं और मैंने भी आपको सामने पड़कर कभी नही देखा। किन्तु

आज विधाता ने एक ही बार मेरे शील और स्नेह को दूर कर दिया। अच्छा, यदि घर लौटना संभव नहीं तो प्रभु से मुझे इतनी ही आज्ञा मिल जाय कि लक्ष्मण मुझसे छोटी अवस्था के लड़के हैं, अतः इन्हें घर भेज दिया जाय और मैं स्वामी के साथ चलूं॥'

(३०)

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो।
जनमि कैकयी-कोखि कृपानिधि ! क्यों कछु चपरि कहौंगो॥१॥
भरत भूप सिय-राम-लषन बन' सुनि सानंद सहौंगो।
पुर-परिजन अवलोकि मातु सब सुख-संतोष लहौंगो॥२॥
प्रभु जानत, जेहि भाँति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो।
आगे की बिनती तुलसी तब, जब फिरि चरन गहौंगो॥३॥

सरल अर्थ—कृपानिधे ! आपकी आज्ञा पाकर मैं अवश्य अयोध्या में ही रहूँगा, कैकेयी के गर्भ से जन्म लेकर भला मैं कोई बात बढ़कर कैसे कह सकता हूँ। अब मैं 'भरत राजा हैं और सीता, राम तथा लक्ष्मण वन में हैं' यह बात सुनकर आनंद पूर्वक सहन करूँगा तथा नगर, कुटुम्बी लोग और सब माताओं को देखकर सुख एवं संतोष पाऊँगा। जिस प्रकार मैं आपकी आज्ञा मानकर वनवास की अवधि पर्यन्त निर्वाह करूँगा, सो तो प्रभु जानते ही हैं,—अब आगे की विनती उसी समय करूँगा जब पुनः इन चरणों को पकड़ूँगा॥

(३१)

जबतें चित्रकूट तें आए।
नंदि ग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परनकुटी करि छाए॥१॥
अजिन बसन, फलअसन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें।
प्रभु-पद-प्रेम-नेम-ब्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें॥२॥
सिंहासन पर पूजि पादुका बारहि बार जोहारे।
प्रभु-अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे॥३॥
तुलसी ज्यों-ज्यों घटत तेज तनु त्यों-त्यों प्रीति अधिकाई।
भए न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत-से भाई॥४॥

सरल अर्थ—जब से भरत जी चित्रकूट से लौटकर आये हैं तब से नन्दिग्राम में पृथ्वी खोदकर उसमें कुश बिछा, पत्तों की कुटी बना, वहीं रहते हैं। वहाँ मृगचर्म धारण किये फलाहार करते सिर पर जटाएँ धारण कर अवधि में चित्त लगाए हुए हैं। प्रभु के चरणों में उनके प्रेम, नियम और व्रत को देखकर तो मुनियों ने भी लज्जावश अपना मस्तक नीचा कर लिया है। वे प्रभु की पादुकाओं को सिंहासन पर पूजकर बारंबार उनकी वन्दना करते हैं और प्रभु-प्रेम से भरकर उनकी आज्ञा ले पुरवासियों के सब कार्य सँभालते हैं। तुलसीदास कहते हैं, ज्यों-ज्यों उनके शरीर का तेज (पुष्टता) घटता है त्यों-त्यों उनकी प्रीति बढ़ती जाती है। संसार में भरत-जैसे भाई न कभी हुए हैं, न हैं और न भविष्य में ही कभी होंगे॥

(३२)

मोहि भावति, कहि आवति नहिं भरत जू की रहनि।
सजल नयन सिथिल वचन प्रभु-गुन-गन कहनि ॥१॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम गरुअ गहनि।
दिन दिन पन-प्रेम-नेम निरुपधि निरबहनि ॥२॥
सीता-रघुनाथ-लखन-बिरह-पीर सहनि।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन-चहनि ॥३॥

सरल अर्थ—भरत जी का रहन-सहन मुझे बड़ा प्रिय लगता है किन्तु कहा नहीं जाता। उनका वह सजल नेत्र और शिथिल वाणी से प्रभु का गुणगान करना। भोजन, वस्त्र, गृह और शयन-सम्बन्धी कठोर धर्मों का ग्रहण करना, दिनों-दिन निरुपाधि, प्रतिज्ञा, प्रेम और नियम को निभाना। सीता, राम और लक्ष्मण जी के वियोग की व्यथा सहन करना तथा लोक-परलोक दोनों को त्यागकर केवल भगवान् राम के चरणों की इच्छा करना (ये सभी अकथनीय हैं)॥

(३३)

हाथ मीजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूट हुतें, ह्यां कहा जात बह्यो ॥१॥
पति सुरपुर, सिय-राम-लषन-बन, मुनि ब्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान-पाठक ज्यौं मरिबोइ मृतक दह्यो ॥२॥
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यो।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो ? ॥३॥

सरल अर्थ—(कौसल्या जी सोचती हैं) 'मेरे हाथ तो हाथ मलना ही लगा। भला मेरे बिना यहाँ क्या बहा जाता था (क्या नष्ट हो रहा था) जो मैं चित्रकूट से भी राम के साथ नहीं लगी। पति सुरलोक सिधार गये, राम, लक्ष्मण और सीता वन में जा बसे और भरत ने भी मुनिव्रत धारण कर लिया, किन्तु मैं श्मशान की अग्नि के समान घर में ही रह गई, मैंने तो मानों मृत्युरूप मृतक को ही जला डाला है (अतः अब मुझे मौत भी नहीं आ सकती)। विधाता को मेरा ही हृदय कठोर बनाने के लिए कहीं वज्र मिल गया था (अर्थात् मेरा हृदय बनाते समय ब्रह्मा की दृष्टि में वज्र था, वह उससे भी कोई कठोर वस्तु बनाना चाहता था, फलस्वरूप उसने मेरा हृदय बनाया। तात्पर्य यह कि मेरा हृदय वज्र से भी कठोर है) हाय! मैं पुत्र को वन में पहुँचाकर लौट आई। ऐसी अवस्था में कोई बात कैसे कही जा सकती है॥

(३४)

राघौ! एक बार फिरि आवौ।
एवर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहि सिधावौ ॥१॥
जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहि मेरे लाल लाड़िले! ते अब निपट बिसारे ॥२॥

भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं-दिन होत झाँवरे, मनहु कमल हिम-मारे ।।३।।
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन, कहियो मात-संदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिनतें इन्हको बड़ो अंदेसो ।।४।।

सरल अर्थ—'हे राघव ! तुम एक बार तो अवश्य लौट आओ। यहाँ अपने इन श्रेष्ठ घोड़ों को देखकर फिर वन में चले जाना। जिन्हें तुमने दूध पिलाकर, अपने ही कर-कमलों से पुष्टकर बार-बार पुचकारा था, ऐ मेरे लाड़िले राम ! वे अब एकाएकी भूल जाने से कैसे जीवित रह सकेंगे ? तुम्हारे अत्यन्त प्रिय जानकर यद्यपि भरत जी इनकी सौ गुनी सँभाल रखते हैं तो भी पाले के मारे हुए कमल के समान ये दिन-दिन दुर्बल होते जा रहे हैं। अरे पथिकों ! सुनो, यदि तुम्हें बन में राम मिल जांय तो तुम उनसे माता का यही सन्देश कहना कि मुझे सबसे बढ़कर इन घोड़ों की ही चिन्ता है ।।'

(३५)

हेमको हरिन हनि फिरे रघुकुल-मनि।
लपन ललित कर लिए मृगछाल।
आश्रम आवत चले, सगुन न भये भले,
फरके बाम बाहु, लोचन बिसाल ।।१।।
सरित जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुंजत, कल कूजें न मराल।
कोलिनि-कोल-किरात जहाँ तहाँ बिलखात,
बन न बिलोकि जात खग-मृग-माल ।।२।।
तरु जे जानकी लाए ज्याये हरि-करि-कपि,
हेरैं न हुँकरि, झरैं फल न रसाल।
जे सुक-सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले,
तेउ न पढ़त, न पढ़ावै मुनिबाल ।।३।।
समुझि सहमें सुठि, प्रिया तौ न आई उठि,
तुलसी बिवरन परन-तृन-साल।
औरे सो सब समाजु, कुसल न देखौ आजु,
गहबर हिय कहैं कोसलपाल ।।४।।

सरल अर्थ—इतने ही में रघुवंश मणि भगवान् राम कनक मृग को मारकर लौटे। लक्ष्मण जी अपने हाथ में उसकी मनोहर मृग छाला लिए हुए थे। आश्रम को आते समय उन्हें अच्छे शकुन नहीं हुए। उनकी वाम भुजा और विशाल नयन फड़क रहे थे। नदियों का जल मैला दिखाई देता था। कमल तालाबों में भी सूख रहे थे, भ्रमर गुंजार नहीं करते थे और हंस मनोहर शब्द नहीं करते थे। किरात, कोल और कोलिनी जहाँ-तहाँ बिलख रहे थे, वन के पक्षी और मृग समूह की ओर देखा नहीं जाता था। जानकी जी ने जिन वृक्षों को लगाया था, वे रसीले फल नहीं देते थे और जिन सिंह, हाथी और वानरों का उन्होंने पोषण किया था वे

हुँकार भरकर देखते नहीं थे। जिन शुक और सारिकाओं को सीता जी ने पाला था और माता के समान बड़े चाव से जिन्हें लाड़ लड़ाया था वे भी इस समय पढ़ते नहीं थे और न मुनि बालिकाएँ उन्हें पढ़ाती ही थीं। तुलसीदास जी कहते हैं, जब कोसल पाल प्रभु राम ने देखा कि प्राण प्रिया सीता जी स्वागत करने के लिए नहीं आईं और पर्णकुटी भी विवरण (कान्तिहीन) जान पड़ती है, तो सब रहस्य जानकर सहम गये और विह्वल हृदय से कहने लगे—'आज सारा समाज और ही तरह का हो रहा है, मुझे कुशल नहीं जान पड़ता॥'

(३६)

आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि-खग-मृग मानो कबहुँ न हे।
मुनि न मुनि बधूटी, उजरी परन कुटी,
पंचबटी पहिचानि ठाढेइ रहे॥१॥
उठि न सलिल लिए, प्रेम मुदित हिये,
प्रिया न पुलकि प्रिय वचन कहे।
पल्लव-सालन हेरी, प्रान बल्लभा न टेरी,
बिरह बिथकि लखि लखन गहे॥२॥
देखे रघुपति-गति बिबुध बिकल अति,
तुलसी गहन बिनु दहन दहे।
अनुज दियो भरोसो, तौलौ है सोचु खरो सो,
सिय-समाचार प्रभु जौ लौं न लहे॥३॥

सरल अर्थ—वे आश्रम को देखकर भी भूल गये क्योंकि वहाँ के वृक्ष न फूले हैं, न फले हैं। भौंरे, पक्षी और मृग तो मानो वहाँ कभी थे ही नहीं, इसके सिवा न वहाँ मुनि थे और न मुनि पत्नियाँ ही। पर्णकुटी भी उजड़ पड़ी थी। भगवान् पंचवटी को पहचान कर खड़े ही रह गये। वे कहने लगे—'आज प्राण-प्रिया प्रसन्न चित्त से जल लेकर नहीं उठीं और न उसने कोई प्रिय वचन ही कहे, (और दिन की तरह) आज पत्तों के झरोखों में से देखकर उसने आवाज भी नहीं दी।' इस प्रकार विरह-व्यथा से थकित देखकर उन्हें लक्ष्मण जी ने पकड़ लिया। तुलसीदास जी कहते हैं, रघुनाथ जी की ऐसी दशा देखकर देवता लोग बड़े व्याकुल हो गये और वन अग्नि के बिना ही दग्ध से हो गये। तब भाई लक्ष्मण ने उन्हें भरोसा दिया कि जब तक प्रभु को सीता जी का समाचार नहीं मिलता तभी तक यह शोक खड़ा-सा रहेगा॥

(३७)

प्रेम-पट पाँवड़े देत, सुअरघ बिलोचन-बारि।
आश्रम लै दिये आसन पकज, पाँय पखारि॥

पद-पंकजात पखारि पूजे, पंथ-श्रम-बिरहित भये।
फल-फूल अंकुर-मूल धरे सुधारि भरि दोना नये।।
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि दहि, परचारि-फल सबरी दये।।

सरल अर्थ—शबरी प्रेम रूप वस्त्र के पाँवड़े बिछाती और नेत्र जल से अर्घ्य देती भगवान् को अपने आश्रम पर ले आई और उनके चरण कमलों को धोकर उसने उनका पूजन किया। इससे उनका मार्ग का श्रम जाता रहा। फिर उसने फल, फूल, अंकुर और मूल आदि नये-नये दोनों में सजाकर भगवान् के आगे रखे और प्रभु उनका स्वाद सराह-सराह कर पुलकित शरीर हो खाने लगे, मानों वे आदर उत्पन्न करते थे। भगवान् राम ने शबरी के इन फलों से (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष-इन) चारों फलों को जलाकर उसे (प्रेम लक्षणा भक्ति रूप) सेवा का फल दिया।।

(३८)

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयननि्ह छायो।।१।।
कहन चह्यो संदेश, नहि कह्यो,
पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।।
देखि दसा व्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनितायो।।२।।

मीचतें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मातु-प्रीतिसों असीस दीन्हीं ह्वै है तिहारोई मन भायो।।३।।

करुना-कोप-लाज-भय भरो कियो गौन, मौन ही चरन-कमल सीस नायो।
यह सनेह-सरबस समौ, तुलसी रसना रूखी, ताही तें परल गायो।।४।।

सरल अर्थ—हनुमान् जी के चलते ही सीता जी का हृदय भर आया। उनका शरीर रोमाञ्चित और शिथिल हो गया तथा नेत्रों में जल भर आया। वे सन्देश कहना चाहती थीं, परन्तु पति के चित्त की अवस्था को विचार कर नहीं कहा, अपने दुःसह दुख को हृदय में ही छिपा रखा। उनकी वह दशा देखकर कपि-पति-हनुमान् जी व्याकुल हो गये; जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से तपी हुई भूमि पर चलने वाला पथिक तिलमिला उठता है। उन्हें अपनी अमरता मृत्यु से भी बुरी लगी। वहाँ छल या बल किसी का अवसर न देखकर उन्हें अपना प्रेम कठोर जान पड़ने लगा। तब जानकी जी ने उन्हें मातृ प्रेम से समझाकर आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारे ही मन की इच्छापूर्ण होगी'। फिर हनुमान् जी ने करुणा, कोप, लज्जा

और भय से भरे हुए ही वहाँ से प्रस्थान किया और चुपचाप सीता जी के चरण कमलों में सिर नवाया। तुलसीदास की रसना रूखी है, इसी से वह उस स्नेह सर्वस्व समय का वर्णन कर सकी है (अन्यथा सरस हृदय तो उसका वर्णन ही नहीं कर सकते)॥

(३९)

अतिहि अधिक दरसन की आरति।
राम-बियोग असोक-बिटपतर सीय निमेष कलपसम टारति ॥१॥
बार बार बर बारिजलोचनभरि भरि बरत बारि उर ढारति।
मनहु बिरहके सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति ॥२॥
तुलसिदास जद्यपि निसिबासर छिन-छिन प्रभु मूरतिहि निहारति।
मिटति न दुसह ताप तउ तन की, यह बिचारि अंतर गति हारति ॥३॥

सरल अर्थ—जानकी जी को आपके दर्शनों की बड़ी ही लालसा है। वे राम-वियोग में उस अशोक वृक्ष के नीचे एक-एक पल को कल्प के समान बिताती हैं। वे अपने कमल रूप नेत्रों में गर्म जल भरकर बारंबार अपने हृदय पर डालती हैं, मानों हृदय में विरह के नये-नये घाव देखकर वे धैर्यपूर्वक तक-तककर उन्हें गर्म जल की धारा से धोती हैं। तुलसीदास कहते है, यद्यपि वे रात-दिन क्षण-क्षण में प्रभु की मूर्ति का दर्शन करती हैं तो भी उनके शरीर का दुसह ताप दूर नहीं होता, अतः आपके बाह्य वियोग के सामने उनका ध्यानादि जनित आन्तरिक सुख हार मान जाता है॥

(४०)

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि! जानौं कछु, पै सकौ कहि हौं न।
लोचन नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन-कौन।
'हा' धुनि-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन।
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग-मृग तजि-तजि भजे पुरातन भौन॥
स्वास समीर भेंट भइ भोरेहु, तेहि मग पगु न धर्‌यो तिहुँ पौन।
तुलसिदास प्रभु! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख, हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन॥

सरल अर्थ—हे करुणानिधान रघुनाथजी! आपके विरह में जानकी जी की जो गति हुई है उसे ध्यान देकर सुनिये। मैं उसे कुछ जानता तो हूँ, पर कह नहीं सकता। उनके नेत्रों का जल कृपण के धन के समान सर्वदा नेत्रों के कोनों में ही रह जाता है। मौन रूप भारी बधिक ने 'हा' ध्वनिरूप पक्षिणी को हठपूर्वक लज्जारूप पिंजड़े में बंदकर हृदय में ही रखा है (अतः वह उनके हृदय में ही रहती है, बाहर नहीं निकलने पाती)। जिस वाटिका में वे रहती हैं, वहाँ के पशु-पक्षी (उनकी

विरहाग्नि से संतप्त होकर) अपने पुराने निवास स्थानों को छोड़कर चले गये हैं और उनके श्वास वायु के साथ भूल से भी भेंट हो जाने पर सीतल मंद-सुगंध पवन फिर उस ओर पैर नहीं रखता। प्रभो ! सीता जी की दशा का इस मुख से वर्णन करने से तो वह अत्यन्त गौण-सी जान पड़ती है। अतः अब आप उन्हें दर्शन दीजिए और उनका दुख दूर कीजिए, क्योंकि आप तो दीन जनों के दुख का दमन करने वाले हैं ॥

(४१)

अबलौं मैं तोसों न कहे री।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहेरी ॥१॥
बिरह विषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहेरी।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहेरी ॥२॥
सर-सरीर सूखे प्रान-बारिचर जीवन-आस तजि चलनु चहेरी।
तैं प्रभु सुजस-सुधा सीतल करि राखे, तदपि न तृप्ति लहेरी ॥३॥
रिपु रिस घोर नदी बिबेक बल, धीर-सहित हुते जात बहेरी।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीर सुत पैरि गहेरी ॥४॥
तुलसीदास सब सोच पोच मृग मन-कानन भरि पूरि रहे री।
अब सखि सिय सदेह परिहरु हिय, आइ गए दोउ बीर अहेरी ॥५॥

सरल अर्थ—'अरी त्रिजटे ! सुन, मैंने तुझसे अभी तक नहीं कहा। परम प्रिय प्राणनाथ के बिना मैंने रात-दिन बड़े दुःसह दुःख सहे हैं। मेरे हृदय में विरह रूप विषम विष की बेलि बढ़ी हुई है। उसने स्वभाव से ही सारे सुखों को दग्ध कर दिया है और उसे सींचने के लिए ही मानों कामदेव के रहँट में हमारे नेत्र (रूप बैल) सर्वदा जुते रहते हैं। हमारा शरीर रूप सरोवर सूख गया है, अतः उसमें रहने वाले प्राणरूप जलचर अब जीवन की आशा छोड़कर उससे कूच करना चाहते हैं। इस समय प्रभु के सुयश रूप अमृत से सींचकर यद्यपि तूने उन्हें रोक लिया है तो भी उन्हें तृप्ति नहीं हुई है। वे तो शत्रु की रिसरूप प्रबल नदी में विवेक के बल से और धैर्य के साथ बहे जाते थे। परन्तु पवित्र चित्र पवन पुत्र ने मुद्रिका रूप आधार देकर उन्हें तैर कर पकड़ लिया। तुलसीदास जी कहते हैं, अरी त्रिजटे ! मेरे मन रूप वन में तो सब प्रकार शोक रूप तुच्छ मृग भरे हुए हैं। (इस पर त्रिजटा कहती है—) 'सखि सीते ! अब तू अपने हृदय का सन्देह छोड़ दे। देख, दोनों वीर अहेरी (शिकारी) आ गये हैं (वे इन सब मृगों को मार डालेंगे) ॥

(४२)

मेरे सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ॥१॥
सुनु, सुग्रीव ! साचे हू मो पर फेर्यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन-सो भ्राता ॥२॥
गिरि, कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज-संघाती।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति रही सोच करि छाती ॥३॥

तुलसी सुनि प्रभु बचन भालु-कपि सकल बिकल हिय हारे।
जामवंत हनुमंत बोलि तब, औसर जानि प्रचारे ॥४॥

सरल अर्थ—'अब मेरा सारा पुरुषार्थ थक गया। अपनी विपत्ति को बँटाने वाले भाई रूप भुजा के बिना अब मैं किसका भरोसा करूँ? सुग्रीव! सुनो, विधाता ने सचमुच मेरी ओर से मुह फेर रखा है, इसी से ऐसे समय युद्ध का संकट उपस्थित होने पर मुझे लक्ष्मण जैसे भाई ने त्याग दिया। वानर तो पर्वत और वनों में चले जायेंगे और मैं भैया लक्ष्मण का साथ पकड़ूँगा। परन्तु मेरे हृदय मे यही सोच भरा हुआ है कि विभीषण की क्या गति होगी'। तुलसीदास जी कहते हैं, प्रभु के ये वचन सुनकर सब रीछ-वानर हृदय मे व्याकुल होकर थकित हो गये। तब जाम्बवान् ने हनुमान् को बुलाकर उत्तेजित किया ॥

(४३)

जो हैं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल-ज्यों, आनि सुधा सिरनावौं ॥१॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥२॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौं प्रभु-अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यौं, सबहि को पापु वहावौं ॥३॥
तुम्हरिहि कृपा, प्रताप तिहारेहिं नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी-प्रभु, जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥४॥

सरल अर्थ—(तब हनुमान् जी कहने लगे—) 'प्रभो! यदि इस समय मुझे आज्ञा मिले तो मैं चन्द्रमा को वस्त्र के समान निचोड़कर उससे अमृत लाकर ही आपको सिर नवाऊँ। अथवा पाताल मे (अमृत की रक्षा करने वाले) सर्पों को मार-कर अमृत-कुण्ड को भूमि पर उठा लाऊँ। (यदि इससे भी काम न चले तो)—भुवनकोश को फोड़कर सूर्य को बाहर निकाल दूँ और तुरन्त ही उस छिद्र पर राहु को रखकर उसे मूँद दूँ। (जिससे फिर सूर्य न आ सके और प्रातःकाल न हो)। यही नही, यदि मैं देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों को बलपूर्वक ले आऊँ तभी प्रभु का अनुचर कहलाऊँ। नीच मृत्यु को मूषक के समान पटक दूँ और इस प्रकार सभी का पाप काट दूँ (फिर किसी को मरने का ही भय न रहे) प्रभो! आपकी कृपा और आप ही के प्रताप से मैं इन कार्यों मे तनिक भी देर नही करूँगा। अतः हे तुलसीदास के स्वामी! जिसके करने से मैं तुमको प्रिय लगूँ—वही आज्ञा दीजिए ॥

(४४)

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन, जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै ॥१॥

मोहि कहा बूझत पुनि पुनि, जैसे पाठ-अरथ-चरचा कीरै।
सोभा-सुख, छति-लाहु भूप कहँ, केवल कांति-मोल हीरै ॥२॥
तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै।
उपमा राम-लषन की प्रीति की क्यौं दीजै खीरै-नीरै ॥३॥

सरल अर्थ—संजीवनी बूटी खाकर सचेत होने पर (जब पीड़ा आदि के विषय में पूछा गया तो) लक्ष्मण जी ने प्रेम से पुलकित हो शरीरानुसंधान को भूलकर कहा—'मेरे हृदय में तो केवल घाव ही है उसकी पीड़ा तो रघुनाथ जी को है। जैसे तोते से कोई उसके पाठ के अर्थ की चर्चा करे वैसे ही आप लोग बार-बार मुझसे क्या पूछते हैं? हीरे के द्वारा शोभा, सुख तथा हानि या लाभ—ये सब तो राजा को ही होते हैं, हीरे की तो केवल कान्ति तथा कीमत ही होती है। तुलसीदास जी कहते हैं, लक्ष्मण जी के ये वचन सुनकर बड़े-बड़े धीर भी धैर्य धारण नहीं कर सकते। उन राम और लक्ष्मण के प्रेम की उपमा दूध और पानी से भी कैसे दी जाय?

(४५)

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग! फुरि बाता ॥१॥
दूध-भात की दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय-सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥२॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ, पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥३॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकटतें समाचार लै आयौ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायौ ॥४॥

सरल अर्थ—माता बैठी-बैठी शकुन मनाती हैं—'अरे काक! सच-सच बता, मेरे बालक कुशलपूर्वक कब घर आ जायेंगे। जिस समय मैं नेत्र भरकर सीता के सहित राम और लक्ष्मण को देखकर हृदय से लगाऊँगी उस समय मैं तुझे दूध-भात का दोना दूँगी और तेरी चोंच सोने से मढ़वा दूँगी।' फिर वनवास की अवधि को समीप ही जान माता अत्यन्त आतुर होकर हृदय में व्याकुल हो जाती हैं और किसी ज्योतिषी को बुला उसके पैरों पड़, प्रेम में मग्न होकर मधुर वाणी से पूछती हैं। इसी समय भरत जी के पास से कोई रघुनाथ जी के आने का समाचार लेकर आया। तुलसीदास जी कहते हैं, उसके मुख से भगवान् जी का आगमन सुनते ही (कौसल्या जी को ऐसी शान्ति मिली) मानों मरती हुई मछली को जल मिल गया हो॥

(४६)

छेमकरी! बलि, बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय राम लषन कब ऐहैं, अंब! अवध रजधानी ॥१॥

ससि मुखि, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि, गोचनि सोचनि वेद बखानी।
देवि ! दया करि देहि दरस फल, जोरि पानि विनवहिं सब रानी ॥२॥
सुनि सनेह मय बचन, निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मड़रानी।
सुभ मंगल आनंद गगन-धुनि अकनि-अकनि उर-जरनि जुड़ानी ॥३॥
फरकन लगे सुअंग बिदिसि दिसि, मन प्रसन्न, दुख-दसा सिरानी।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु, मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥४॥
तेहि अवसर हनुमान भरत सों कही सकल कल्यान-कहानी।
तुलसिदास सोइ चाह सजीवनि विषम वियोग व्यथा बड़भानी ॥५॥

सरल अर्थ—'अरी क्षेमकरी (लाल चील) मैं बलिहारी जाती हूँ। अरी मैया ! तू अपनी सुन्दर वाणी से सच-सच बता कि सीता, राम और लक्ष्मण कुशल-क्षेम पूर्वक कब अपनी राजधानी अयोध्या को लौट आवेंगे ? हे देवि ! तू चन्द्रमा के समान मुखवाली, कुंकुमवर्णा और सुनयना है। वेदो ने तुझे सब प्रकार के शोकों से छुडाने वाली कहा है। तू दया करके हमें अपने दर्शनों का फल दे'—इस प्रकार सब रानियाँ हाथ जोडकर प्रार्थना करती है। उनके ये स्नेहपूर्ण वचन सुनकर वह चील उनके पास होकर सुन्दर मण्डल बाँधकर मँडराने लगी। उस समय आकाश मे उसकी शुभ, आनंद और मंगलमयी ध्वनि सुन-सुनकर उनके हृदय की तपन शांत हो गयी। दिशा दिशाओ मे सबके शुभ अंग फडकने लगे, मन प्रसन्न हो गये और दुःखमयी दशा का अंत हो गया तथा कौसल्या आदि सुचतुर स्त्रियाँ तरह-तरह की बलि और शकुन मनाती हुई प्रेम से पुलकित शरीर हो अपने इष्ट देवो को प्रणाम करने लगी। इसी समय हनुमान जी ने भरत को सारा मंगल समाचार सुनाया। तुलसीदास जी कहते है, उस (मंगल समाचार रूप) अभीष्ट संजीवनी बूटी ने उनकी अत्यन्त घोर वियोग व्यथा को नष्ट कर दिया॥

(४७)

बनते आइ कै राजा राम भये भुआल।
मुदित चौदह भुअन, सब सुख सुखी सब सब काल ॥१॥
मिटे कलुष-कलेस-कुलपन; कपट-कुपथ-कुचाल।
गये दारिद, दोष दारुन, दंभ-दुरित-दुकाल ॥२॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनिगन लाल।
नारि नर तेहिं समय सुकृती, भरे भाग सुभाल ॥३॥
बरन-आश्रम-धरमरत, मन वचन वेष मराल।
राम-सिय-सेवक-सनेही, साधु सुमुख, रसाल ॥४॥
राम-राज-समाज बरनत सिद्ध-सुर-दिगपाल।
सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत बिसाल ॥५॥

सरल अर्थ—वन से आकर महाराज राम भूपति हुए। उनके राज्य में चौदहों भुवन आनंदित हो गये और सब लोग सब समय सब प्रकार के सुखो से

सुखी रहने लगे। सब प्रकार के पाप, क्लेश, कुलक्षण, कपट, कुमार्ग और कुचाल नष्ट हो गये तथा दरिद्रता, दारुण दोष, दम्भ, दुरित और दुष्काल आदि का नाम मिट गया। पृथ्वी कामधेनुरूपा हो गई, वृक्ष साक्षात् कल्पतरु हो गये और पत्थर मणि तथा लाल आदि हो गये। इस प्रकार उस समय सभी स्त्री, पुरुष पुण्यवान् एवं भाग्यशाली थे। वे अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मों से तत्पर, मन, वचन और वेष से हंस के समान स्वच्छ-पवित्र, राम और सीता के सेवक, प्रेमी, साधु चरित्र, प्रसन्न वदन एवं विनम्र थे। भगवान् राम के राज-समाज का तो सिद्ध, देवता और दिग्पालगण भी बखान किया करते थे। तुलसीदास जी कहते है, उसकी बातों को याद करके हृदय में आज भी अत्यन्त आनंद होता है ॥

(४८)

सखि ! रघुबीर-मुख छबि देखु।
चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु ॥१॥
नयन-सुषमा निरखि नागरि ! सफल जीवन लेखु।
मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु ॥२॥
भ्रुकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर-कुँकुम-रेखु।
भ्रमर द्वै रबि किरनि ल्याए करन जनु उनमेखु ॥३॥
सुमुखि ! केस सुदेस सुंदर सुमन संजुत पेषु।
मनहु उडुगन-निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु ॥४॥
स्रवन कुण्डल मनहु गुरु-कबि करत बाद बिसेषु।
नासिका, द्विज, अधर जनु रह्यो मदनु करि बहु वेषु ॥५॥
रूप बरनि न सकत नारद-संभु, सारद सेषु।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद सकल नरेषु ॥६॥

सरल अर्थ—अरी सखि ! तू रघुनाथ जी के मुख की छवि देख। तू उनकी सुन्दरता को अपनी चित्तरूप भित्ति पर सम्यक् प्रीतिरूप रंग से अंकित कर ले। अरी आली ! प्रभु के नेत्रों की सुन्दरता देखकर तू अपने जीवन को सफल जान। वे तो ऐसे जान पड़ते हैं मानों मेषराशि की पूर्णिमा के चन्द्रमा में विधाता ने दो कमल बना दिये हों। भगवान् के भृकुटि युक्त विशाल भाल पर कुंकुम की रेखाएँ (तिलक) शोभायमान है, मानों भ्रमरगण (नेत्र रूप कमलों के विकास के लिए) सूर्य की दो किरणें ले आये हों। अरी सुमुखि ! प्रभु के मनोहर मस्तक पर सुन्दर फूलों के सहित उनका केश कलाप देख, मानों (पुष्परूप) तारे (केशरूप) अन्धकार से द्वेष त्यागकर मिलने के लिए आए है। उनके कानों में जो कुण्डल है वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों बृहस्पति और शुक्र विशेष वाद-विवाद कर रहे हों तथा नासिका, दाँत और अधर तो ऐसे शोभायमान हैं मानों कामदेव ही कई प्रकार के वेष बनाकर बस गया हो। प्रभु के रूप का तो श्री शंकर, शेष, शारदा और नारद भी वर्णन नहीं कर सकते, फिर मन्दमतियों का राजा (अत्यन्त मन्दमति) तुलसीदास ही उसे किस प्रकार कह सकता है ॥

(४८)

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं।
होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लांघत, कोउ उतरत थाहैं ।।१।।
सुन्दर-स्याम-सरीर-सैलतें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।
अमित अमल जल-बल परिपूरन, जनु जनमी सिंगार सविताहैं।।२।।
धारैं बान, कूलधनु, भूपन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं।
बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर सरोज सोहत सुषमा हैं।।३।।
सकल भुवन-मंगल-मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं।
जे पूजी कौसिक-मख ऋषियनि, जनक-गनप, संकर-गिरजाहैं ।।४।।
भवधनु दलि जानकी बिबाही, भये बिहाल नृपाल त्रपा हैं।
परसुपानि जिन्ह किये महामुनि जे चितए कबहू न कृपा हैं ।।५।।
जातु धान-तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।
जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिबाई धाहैं ।।६।।
दस मुख बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं।
सुबस बसे गावत जिन्ह के जस अमरनाग-नर-सुमुखि सना हैं ।।७।।
जे भुज बेद-पुरान, सेष-शुक-सारद सहित सनेह सराहैं।
कलपलताहु की कलपलता बर, कामदुहहुकी कामदुहाहैं ।।८।।
सरनागत-आरत-प्रनतनिको दै दै अभय पद और निबाहैं।
करि आईं करिहैं, करती हैं तुलसिदास दासनि पर छाहैं ।।९।।

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी की भुजाओं का स्मरण करते ही संसार समुद्र, जो कि बड़ा ही दुर्गम है—सुगम हो जाता है फिर कोई तो उसे लाँघ जाते हैं और कोई थहाकर पार कर लेते है। (वे भुजाएँ भगवान् के शरीर मे ऐसी शोभित हैं) मानो अति सुन्दर श्याम शरीर रूप पर्वत से दो यमुना जी की धाराएँ निकली है, जो बल-रूप अथाह एवं निर्मल जल से भरी हुई हैं, तथा श्रृंगार रूप सूर्य से उत्पन्न हुई हैं। बाण उनकी धाराएँ है, धनुष ही किनारा है, आभूषण जलचर जन्तु हैं और घुइयाँ (अंगुलियों के बीच मे सन्धि स्थान) भँवर हैं। विजय की विरुदावली ही उसमें तरग रूप से शोभायमान है तथा उसमे कर रूप कमलों की शोभा हो रही है। वे मानो सम्पूर्ण लोकों के कल्याण रूप भवन के द्वार की दो विशाल और शोभायमान खड़ी लकड़ियाँ (खंभे अर्थात् बाजू) हैं, जो विश्वामित्र जी के यज्ञ मे ऋषियों द्वारा पूजित हुई तथा जिन्होंने जनक जी, गणेश जी, भगवान श्री शंकर और पार्वती जी से पूजित होकर सब की कामनाएँ पूर्ण की हैं। इन्होंने महादेव जी का धनुष तोड़कर जानकी जी से विवाह किया, जिससे सब राजा लोग मारे शर्म के बेहाल हो गये तथा जिन्होंने कृपा की और कभी दृष्टिपात भी नहीं किया, उन परशुराम जी को भी जिन्होंने महामुनि (मुनीश्वरों के समान क्षमाशील) बना दिया है। जब राक्षसियों ने सीता जी को वियोगिनी जानकर बहुत सी अप्रिय बातें

कहकर उन्हें व्यथित किया, तब उन भुजाओं ने शत्रु का संहार कर उन असुर पत्नियों के सिर उघाड़कर उन्हें धाड़ मारकर रुलाया। रावण ने तीनों लोकों को विवश करके लोकपालों को व्याकुल कर उनसे नाकों चने विनचाए थे। (उसी रावण के मारे जाने से) देवता, नाग और मनुष्यगण अपने-अपने धामों में सुखपूर्वक बसकर अपनी पत्नियों के सहित जिन भुजाओं का सुयश गान करते हैं। जिन भुजाओं की वेद पुराण, शेष, शारदा और शुकदेव जी भी स्नेह पूर्वक सराहना करते हैं, जो कल्पलता की भी श्रेष्ठ कल्पलता तथा कामधेनु की भी कामधेनु हैं। तथा जो अपने शरणागत दीन एवं प्रणत पुरुषों को अभयपद देकर अन्त तक उनका निर्वाह करती हैं—तुलसीदास कहते हैं, भगवान् की वे ही भुजाएँ अपने दासों पर सदा से छाया करती आयी हैं, अब भी करती हैं और आगे भी करती रहेंगी॥

(५०)

आली री! राघो के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए।
फटिक-भीति सुचारु चहुँ दिसि, मंजु मनिमय पौरि।
गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु, पाँचसर-सुफ सौरि॥
तोरन-वितान-पताक-चामर-धुज-सुमन-फल-धौरि।
प्रतिछांह-छविकवि-साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि॥१॥

मदन-जयके खंभ-से रचे खंभ सरल विसाल।
पाटीर-पाटि विचित्र भँवरा बलित, वेलन लाल॥
डाँड़ो कनक कुंकुम-तिलक-रेख-सी मनसिज-भाल।
पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत कोमल माल॥२॥

उनये सघन घनघोर, मृदु झरि सुखद सावन लाग।
बगपांति, सुरधनु, दमक दामिनि हरित भूमि विभाग॥
दादुरमुदित, भरे सरित-सर महि उमग जनु अनुराग।
पिक-मोर-मधुप चकोर-चातक-सोर उपवन बाग॥३॥

सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि।
गुन-रूप-जोवन-सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि॥
हिंडोल-साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि।
लागीं असीसन राम-सीतहि सुख-समाजु निहारि॥४॥

झूलहिं, झुलावहिं, औसरिन्ह गावैं सुहौ, गौंडमलार।
मंजीर नूपुर-वलय-धुनि जनु काम-करतल-तार॥
अति मुचत स्रमकन मुखनि, बिथुरे चिकुर, बिलुलित हार।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम-बिहार॥५॥

हिय हरषि, बरषि प्रसून निरखति बिबुध तिय तृन तूरि।
आनंद-जल लोचन, मुदित मन, पुलक तनु भरि पूरि।

सब कहहिं, अविचल राज नित, कल्याण-मंगल भूरि।
चिर जियो जानकिनाथ जग तुलसी-राजीवनिमूरि ॥६॥

सरल अर्थ—अरी आली! रघुनाथ जी के मनोहर हिंडोले में झूलने के लिए चलो। उसके चारों ओर स्फटिक मणि की मनोहर भीते हैं तथा मणियों के सुन्दर दरवाजे हैं। उसकी कांच की गचें देखकर मन मयूर के समान नाचने लगता है, मानो वह कामदेव का फंदा ही हो। उस हिंडोले में जो बंदनवार, वितान, पताका, चमर, ध्वजा तथा पुष्प और फलों की आकृतियाँ बनाई गई हैं उनकी परछाही मानो कवि की साखी देकर अपने बिम्बों से (जिनके अनुरूप उनकी प्रतिछाया मणि और कांच की गच मे प्रतिबिम्बित है) कहती हैं कि हम तुमसे बड़ी हैं। उस हिंडोले मे कामदेव के विजयस्तम्भ के समान सीधे और खम्भे बनाए गये हैं। उसमे विचित्र भौरो (आंकडो) में लटकी हुई चन्दन की पाटी तथा लाल रंग का बेलन है। बेलन में जो सोने की डंडी लगी हुई है वह ऐसी जान पडती है मानो कामदेव के माथे पर कुंकुम के तिलक की रेखा हो तथा पटुली, मानो रति के वक्ष स्थल पर पदिक तथा सोने की कोमल माला हो। सुखदायक श्रावण मास आरम्भ हो गया है, घनघोर घटाएँ उमड़ी हुई हैं जल की मन्द-मन्द फुहारे पड़ रही हैं, बगुलों की पंक्ति और इन्द्रधनुष शोभायमान है, बिजली चमक रही है, सम्पूर्ण भू-भाग हरे-भरे हो रहे हैं, मेढक बड़े प्रसन्न है तथा नदी और तालावो मे जल भरा हुआ है, मानो सम्पूर्ण पृथ्वी में प्रेम की बाढ आ रही है। बाग-बगीचो मे सब ओर कोयल, मोर भौरे, चकोर और चातकों का शोर हो रहा है। वह सुहावना समय देखकर रूप, गुण और यौवन की सीमा रूप बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ सोलहो शृंगार करके दल बांधकर चली और उस हिंडोले की शोभा देख अचल फैला-फैलाकर राम और सीता को—उनका सुख-समाज देखकर—आशीर्वाद देने लगी। फिर वे सूहो, गौंडमलार आदि राग गाती हुई बारी-बारी से झूलने और झुलाने लगी। उस समय जो मजीर, नूपुर और कंकणो की ध्वनि होती थी वह कामदेव के हाथो की ताल-सी जान पड़ती थी (झूलते समय श्रम की अधिकता के कारण) उनके मुख पर छाई हुई पसीने की बूंदे, बिखरे हुए बाल और उलझे हुए हार ऐसे जान पड़ते मानो अन्धकार, बिजली, नक्षत्रगण, बालसूर्य और चन्द्रमा आकाश मे विहार कर रहे हो (यहाँ बिखरे हुए बाल अंधकार हैं, अंग की कांति बिजली है, पसीने की बूंदें नक्षत्र-गण हैं, हार बाल-सूर्य हैं तथा मुख चन्द्रमा है)। इस तरह देवाङ्गनाएँ हृदय मे हर्षित हो फूलो की वर्षा कर (नजर न लग जाय इसलिए) तिनका तोडती हुई यह सब लीला देख रही हैं। उनके नेत्रों मे आनदाश्रु छाए हुए है, मन प्रसन्न है तथा सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा है। वे सब यही कह रही हैं कि यह अत्यन्त कल्याण और मंगलमय राज्य सर्वदा अविचल रहे तथा तुलसीदास जी के जीवनमूल जानकीनाथ भगवान् राम संसार मे दीर्घजीवी हो॥

(५१)

गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढार।
चित्र विचित्र चहू दिसि परदा फटिक-पगार॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर॥
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि.जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहु विधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा।
नव-सुमन-माल-सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा॥

सरल अर्थ—घर-घर में हिंडोले, पृथ्वी पर काँच की सुन्दर और सुढाल गच तथा चारों दिशाओं में स्फटिक की भीतों पर चित्र-विचित्र परदे लटक रहे हैं। मूँगे के सीधे, विशाल और सुदृढ़ खंभ सुशोभित हैं तथा सोने से मढ़ी हुई सुन्दर पटलियों पर मरकत मणि के भौंरे (आँकड़े) झिलमिला रहे हैं। इस प्रकार हिंडोलों में मरकत मणि के भौंरे और सोने की मणि जटित डंडियों की कान्ति जगमगा रही है और पटली तो ऐसी सुशोभित होती है मानों विधाता ने सचमुच ही अपनी रचना-चातुरी को प्रकट करके रखा हो। उन हिंडोलों में मोतियों की लड़ियों सहित अनेकों रंग-बिरंगे मनोहर चंदोवे शोभायमान हो रहे हैं तथा उनमें लटकी हुई नवीन पुष्पों की मालाओं की सुगन्ध पर लुब्ध होकर भ्रमरगण मनोहर गुंजार कर रहे हैं॥

(५२)

झुंड झुंड झूलन चलीं गजगामिनि वर नारि।
कुसुंभि चीर तनु सोहहीं, भूषन बिबिध सँवारि॥
पिक बयनी मृग लोचनी, सारद ससि सम तुंड।
राम सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारंग गुंड॥
सारंग, गुंड-मलार, सोरठ, सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान-तरंग सुनि गंधरब किंनर लाजहीं॥
अति मचत, छूटत कुटिल कच, छबि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त, भूषन खसत, हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं॥४॥

सरल अर्थ—(उन हिंडोलों में) झुंड की झुंड गजगामिनी सुन्दर नारियाँ झूलने के लिए जा रही हैं। उनके शरीर पर कुसुंभी साड़ी तथा तरह-तरह के सजाए हुए आभूषण शोभायमान हैं। उनके मुख शरद चन्द्र के समान हैं, वे कोकिल के समान स्वरवाली, मृगनयनी, बालाएँ सुन्दर स्वर से सारंग और गौंड राग से भगवान् राम का सुयश गान कर रही हैं। इस प्रकार अयोध्या के सुन्दर घरों में सारंग, गौंड मलार, सोरठ और सूही रागों में मनोहर बाजे बज रहे हैं। उनकी अनेक प्रकार की तान-तरंगावली सुनकर गन्धर्व और किन्नर भी लज्जित हो जाते हैं। इस प्रकार खूब झूला मचता है, झूलने वाली नारियों की घुँघराली अलकें बिखर जाती हैं जिससे उन

रमणियों की सुन्दरता और भी बढ जाती है। हवा लगने से उनके वस्त्र उड़ने लगते हैं और आभूषण खिसक जाते है। इस पर अन्यान्य सखियां उन्हे हँस-हँसकर झुलाने लगती है ॥

(५३)

साझ समय रघुबीर-पुरी की सोभा आजु बनी।
ललित दीप मालिका बिलोकहिं हितकरि अवध धनी ॥१॥
फटिक-भीत-सिखरन-पर राजति कंचन-दीप-अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयौ मनि-सोभित सहसफनी ॥२॥
प्रति मदिर कलसनिपर भ्राजहिं मनिगन द्युति अपनी।
मानहुँ प्रगटि विपुल लोहितपुर पठइ दिए अवनी ॥३॥
घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक-गनी।
तुलसिदास कल कीरति गावहिं, जो कलिमल-समनी ॥४॥

सरल अर्थ—आज सायंकाल मे रघुनाथ जी की राजधानी की खूब शोभा हो रही है। अयोध्यानाथ रामचन्द्र जी प्रीतिपूर्वक मनोहर दीप मालिका देख रहे हैं। स्फटिक मणि की भीतो के ऊपर सुवर्णमय दीपको की पक्ति ऐसी शोभायमान है मानो (रघुनाथ जी से) मिलने के लिए मणि विभूषित सहस्र फणधारी शेष जी आये हो। प्रत्येक महल के कलशो के ऊपर मणिगण अपनी काति से इस प्रकार शोभा पा रहे हैं मानों बहुत-से मगललोक उत्पन्न करके पृथ्वी पर भेज दिए गये हो। घर-घर मे मंगलाचार हो रहा है तथा निर्धन और धनी सभी एक समान आनन्दित हैं। तुलसीदास भगवान् की पवित्र कीर्ति गाता है, जो कलियुग के पापो का नाश करने वाली है ॥

(५४)

कैकेयी जौलो जियत रही।
तौलो बात मातु सो मुँह परि भरत न भूलि कही ॥१॥
मानी राम अधिक जननी तें, जननिहु गंस न गही।
सीय-लषन रिपुदमन राम-रुख लखि सबकी निबही ॥२॥
लोक वेद-मरजाद दोष-गुन-गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम-सनेह सही ॥३॥

सरल अर्थ—कैकेयी जब तक जीवित रही, तब तक भरत जी ने भूल कर भी अपनी माता से मुंह खोलकर बात नही की। किन्तु रामचन्द्र जी ने उसे अपनी माता कौसल्या से भी बढकर माना और माता कौसल्या ने भी उससे किसी प्रकार का मनमुटाव नही रक्खा। रामचन्द्र जी का रुख देखकर सीता, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न इन सबने भी उसका निर्वाह किया। तुलसीदास जी कहते हैं, भरत जी ने तो राम प्रेम को ही सुन और समझकर उसी की रक्षा की। उन्होने लोक या वेद की मर्यादा अथवा गुण-दोष की गति की ओर न तो कभी चित्त ही लगाया और न दृष्टिपात ही किया ॥

(५५)

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर गावहिं सकल अवधवासी।
अति उदार अवतार मनुज वपु धरे ब्रह्म अज अबिनासी ॥१॥
प्रथम ताड़का हति, सुबाहु बधि मख राख्यो, द्विज हितकारी।
देखि दुखी अति सिला सापबस रघुपति बिप्रनारि तारी ॥२॥
सब भूपन को गरब हर्‌यो भंज्यो संभु-चाप भारी।
जनक सुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी ॥३॥
तात-बचन तजि राज-काज सुर चित्रकूट मुनिबेष धर्‌यो।
एक नयन कीन्हीं सुरपति-सुत बधि बिराध रिषि-सोक हर्‌यो ॥४॥
पंचवटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हीं।
खर दूषन संहारि कपट-मृग गीधराज कहुँ गति दीन्हीं ॥५॥
हति कबंध, सुग्रीव सखा करि, बेधे ताल, बालि मार्‌यो।
बानर-रीछ सहाय, अनुज संग सिंधु बाँधि जस बिस्तार्‌यो ॥६॥
सकुल पुत्र दल सहित दसानन मारि अखिल सुर-दुख टार्‌यो।
परम साधु जिय जानि बिभीषन लंकापुरी तिलक सार्‌यो ॥७॥
सीता अरु लछिमन संग लीन्हें औरहु जिते दास आये।
नगर निकट बिमान आए, सब नर-नारी देखन धाये ॥८॥
सिव-बिरंचि, सुक नारदादि मुनि अस्तुति करत बिमल बानी।
चौदह भुवन चराचर हरषित, आये राम राजधानी ॥९॥
मिले भरत, जननी, गुरु, परिजन, चाहत परम अनंद भरे।
दुसह-बियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे ॥१०॥
बेद-पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो।
तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भगति-दान तब माँगि लियो ॥११॥

सरल अर्थ—हे रघुनाथ जी ! आप परम उदार और अवतार रूप से मनुष्य देह धारण किए अजन्मा और अविनाशी परब्रह्म ही हैं। आपके पवित्र चरित्रों को समस्त अयोध्यावासी इस प्रकार गाते हैं—विप्रहितकारी भगवान् राम जी ने पहले ताड़का को मारकर और सुबाहु का वध करके विश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा की, फिर शाप के कारण शिला रूप अहल्या को बहुत दुखी देखकर उसका उद्धार किया। जनकपुर में शिव जी का भारी धनुष तोड़कर सब राजाओं का गर्व दूर किया, फिर सीता जी के सहित घर को लौटते हुए समय परशुराम जी का मान मर्दन किया। तदनन्तर पिता जी के वचन से राज्य त्यागकर देवताओं का कार्य करने के लिए मुनि वेष धारण कर चित्रकूट पर्वत पर रहे। वहाँ इन्द्र के पुत्र जयन्त को एक नेत्र वाला बनाया तथा विराध का बध करके ऋषियों का शोक दूर किया। फिर श्री रामचन्द्र जी ने पंचवटी को पवित्र कर शूर्पणखा को कुरूप किया तथा खर, दूषण को मारकर मारीच तथा जटायु को शुभ गति दी। वहाँ से चलकर कबन्ध का वध किया तथा सुग्रीव से मित्रता

कर ताल वृक्षों को भेदकर बालि का वध किया। फिर रीछ और वानरों की सहायता से भाई लक्ष्मण के सहित समुद्र पर पुल बाँधकर अपना सुयश फैलाया। तत्पश्चात् रावण को उसके कुटुम्ब और पुत्रों के सहित मारकर देवताओं का सारा दुख दूर किया और अपने हृदय में विभीषण को अत्यन्त साधु जान लंकापुरी में उसका राज्याभिषेक किया। फिर, सीता, लक्ष्मण और जितने सेवक साथ में आए थे उन सबको सग लेकर विमान पर अयोध्यापुरी के निकट आये, उस समय सब स्त्री-पुरुष भगवान् का दर्शन करने के लिये दौड गये।। तब चौदहों लोकों के सम्पूर्ण चराचर प्राणी आनन्दित हो गये तथा शिव, ब्रह्मा, शुकदेव और नारदादि मुनिगण विमल वाक्यों से स्तुति करते हुए भगवान् श्री रामजी की राजधानी अयोध्या में आये। उस समय श्री राम दर्शन के लिए लालायित भरत जी, सब माताएँ, गुरु जी और परिवार के लोग अति आनन्द में भरकर मिले। उनके दु.सह् वियोग-जनित दारुण दुख भगवान् राम के चरण देखते ही विस्मृत हो गए। तब वसिष्ठ जी ने वेद और पुराण से विचार कर शुभ लग्न में भगवान् का राज्याभिषेक किया। उसी समय तुलसीदास जी ने अपने हृदय में सुअवसर जानकर प्रभु से भक्ति का दान माँग लिया॥

□ □

९: विनय-पत्रिका

गाइये गनपति जगवंदन। संकर-सुवन भवानी नंदन ॥१॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, विनायक। कृपा सिंधु, सुंदर सब लायक ॥२॥
मोदक प्रिय, मुद-मंगल-दाता। विद्या-वारिधि, बुद्धि विधाता ॥३॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे ॥४॥

सरल अर्थ—सम्पूर्ण जगत के वंदनीय, गणों के स्वामी श्री गणेश जी का गुण-गान कीजिये, जो शिव-पार्वती के पुत्र और उनको प्रसन्न करने वाले हैं। जो सिद्धियों के स्थान हैं, जिनका हाथी का-सा मुख है, जो समस्त विघ्नों के नायक हैं यानी विघ्नों को हटाने वाले हैं, कृपा के समुद्र हैं, सुन्दर हैं, सब प्रकार से योग्य हैं। जिन्हें लड्डू बहुत प्रिय हैं, जो आनन्द और कल्याण को देने वाले हैं, जो विद्या के अथाह सागर हैं, बुद्धि के विधाता हैं। ऐसे श्री गणेश जी से यह तुलसीदास हाथ जोड़कर केवल वर माँगता है कि मेरे मन मन्दिर में श्री सीताराम जी सदा निवास करें ॥

दीन-दयालु दिवाकर देवा। कर मुनि, मनुज सुरासुर सेवा ॥१॥
हिमतम-करि-केहरि कर माली। दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली ॥२॥
कोक-कोकनद लोक-प्रकासी। तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी ॥३॥
सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी। हरि-शंकर-विधि-मूरति स्वामी ॥४॥
वेद-पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी रामभगति बर माँगै ॥५॥

सरल अर्थ—हे दीन दयालु भगवान् सूर्य ! मुनि, मनुष्य, देवता और राक्षस-सभी आपकी सेवा करते हैं। आप पाले और अंधकार रूपी हाथियों को मारने वाले वनराज सिंह हैं, किरणों की माला पहने रहते हैं, दोष, दुःख, दुराचार और रोगों को भस्म कर डालते हैं। रात के बिछुड़े चकवा-चकवियों को मिलाकर प्रसन्न करने वाले, कमल को खिलाने वाले तथा समस्त लोकों को प्रकाशित करने वाले हैं। तेज, प्रताप, रूप और रस की आप खानि हैं। आप दिव्य रथ पर चलते हैं, आपका सारथी (अरुण) लूला है ! हे स्वामी ! आप विष्णु, शिव और ब्रह्मा के ही रूप हैं। वेद, पुराणों में आपकी कीर्ति जगमगा रही है। तुलसीदास आपसे श्रीराम-भक्ति का वर माँगता है ॥

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥१॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि किये विषपान।
दारुन दनुज, जगत दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान ॥२॥
जोगति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति सकल पुरान।
सो गति मरन काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥३॥

सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारवती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥४॥

सरल अर्थ—भगवान् शिव जी को छोड़कर और किससे याचना की जाय ? आप दीनो पर दया करने वाले, भक्तो के कष्ट हरने वाले और सब प्रकार से समर्थ ईश्वर हैं। समुद्र मंथन के समय जब कालकूट विष की ज्वाला से सब देवता और राक्षस जल उठे, तब आप अपने दीनो पर दया करने के प्रण की रक्षा के लिए तुरन्त उस विष को पी गये। जब दारुण दानव त्रिपुरासुर जगत् को बहुत दुख देने लगा, तब आपने उसको एक ही बाण से मार डाला। जिस परम गति को संत महात्मा, वेद और सब पुराण महान् मुनियो के लिए भी दुर्लभ बताते हैं, हे सदाशिव ! वही परम गति काशी में मरने पर आप सभी को समान भाव से देते हैं।

हे पार्वतीपति ! हे परम सुजान ! सेवा करने पर आप सहज मे ही प्राप्त हो जाते है। आप कल्पवृक्ष के समान मुँह मांगा फल देने वाले उदार हैं, आप कामदेव के शत्रु हैं। अतएव हे कृपानिधान ! तुलसीदास को श्रीराम के चरणों की प्रीति दीजिए ॥

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी ॥१॥
निज घर की बरबाद बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री सारदा सिहानी ॥२॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नही निसानी।
तिन रकन को नाक सँवारत, हौ आयो नकबानी ॥३॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी ॥४॥
प्रेम-प्रसंसा-विनय-व्यंग जुत, सुनि विधि की बरबानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी ॥५॥

सरल अर्थ—(ब्रह्मा जी लोगों का भाग्य बदलते-बदलते हैरान होकर पार्वती जी के पास जाकर कहने लगे) हे भवानी ! आपके नाथ (शिव जी) पागल हैं। सदा देते ही रहते हैं। जिन लोगों ने कभी किसी को दान देकर बदले मे पाने का कुछ भी अधिकार नही प्राप्त किया, ऐसे लोगों को भी वे दे डालते हैं, जिससे वेद की मर्यादा टूटती है। आप बडी सयानी हैं, अपने घर की भलाई तो देखिए (यो देते-देते घर खाली होने लगा है अनाधिकारियो को) शिव जी की दी हुई अपार सम्पत्ति देख-देखकर लक्ष्मी और सरस्वती भी (व्यंग से) आपकी बड़ाई कर रही हैं। जिन लोगों के मस्तक पर मैंने सुख का नाम निशान भी नहीं लिखा था, आपके पति शिव जी के पागलपन के कारण उन कंगालो के लिए स्वर्ग सजाते-सजाते मेरे नाको दम आ गया है। कही भी रहने की जगह न पाकर दीनता और दुखियो के दुख भी दुखी हो रहे हैं और याचकता तो

व्याकुल हो उठी है। लोगों को भाग्यलिपि बनाने का यह अधिकार कृपा कर आप किसी दूसरे को सौंपिये, मैं तो इस अधिकार की अपेक्षा भीख माँगकर खाना अच्छा समझता हूँ। इस प्रकार ब्रह्मा जी की प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंग से भरी हुई सुन्दर वाणी सुनकर महादेव जी मन-ही-मन मुदित हुए और जगज्जननी पार्वती मुस्कराने लगीं ॥

हरनि पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुर सरित।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद-मनोरथ फरित ॥१॥
सोहत ससि धवल धार सुधा-सलिल-भरित।
बिमलतर तरंग लसत रघुबर के-से चरित ॥२॥
तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित?
घोर भव अपार सिंधु तुलसी किमि तरित ॥३॥

सरल अर्थ—हे गंगा जी! स्मरण करते ही तुम पापों और दैहिक, दैविक, भौतिक—इन तीनों तापों को हर लेती हो। आनन्द और मनःकामनाओं के फलों से फली हुई कल्पलता के सदृश तुम पृथ्वी पर शोभित हो रही हो। अमृत के समान मधुर एवं मृत्यु से छुड़ाने वाले जल से भरी हुई तुम्हारी चन्द्रमा के सदृश धवल धारा शोभा पा रही है। उसमें निर्मल रामचरित्र के समान अत्यन्त निर्मल तरंगें उठ रही हैं। हे जगज्जननी गंगा जी! तुम न होतीं तो पता नहीं कलियुग क्या-क्या अनर्थ करता और यह तुलसीदास घोर अपार संसार-सागर से कैसे तरता?

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ॥
त्यों त्यों सुकृत-सुभट कलि-भूपहि निदरि लगे बहु काढ़न ॥१॥
ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों-त्यों जम गन मुख मलीन अहै आढ़न।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघमेघ लगे डाढ़न ॥२॥

सरल अर्थ—यमुना जी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगीं, त्यों-त्यों पुण्य रूपी योद्धागण कलियुग रूपी राजा का निरादर करते हुए उसे निकालने लगे। बरसात में यमुना जी का जल बढ़कर ज्यों-ज्यों मैला होने लगा त्यों-त्यों यमदूतों का मुख भी काला होता गया। अंत में उन्हें कोई भी आसरा नहीं रहा, अब वे किसको यमलोक में ले जायें? तुलसीदास कहते हैं कि यमुना जी के बढ़ते ही पुण्य रूपी मेघ ने संसार के पाप रूपी जवासे को जलाकर भस्म कर डाला ॥

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि, लोपित मंगल मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया मलु ॥१॥
भूमि बिलोकि राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार थलु।
सैल-सृंग भव भंग-हेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु ॥२॥
जहँ जनमे जग-जनक जगतपति, बिधि-हरि-हर परिहरि प्रपंच छलु।
सकृत प्रवेस करत जेहि आश्रम, बिगत बिषाद भये पारथ नलु ॥३॥

नकरु विलंब विचारु चारुमति, बरष पाछिले सम अगिले पलु ।
मंत्र सो जाइ जपहि, जो जपि भे, अजर अमर हर अचइ हलाहलु ॥४॥
रामनाम-जप जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु ।
करिहैं राम भावतौ मन कौ, सुख-साधन, अनयास महाफलु ॥५॥
कामदमनि कामता, कलपतरु सो जुग-जुग जागत जगती तलु ।
तुलसी तोहि बिसेषि बूझिए, एक प्रतीति-प्रीति एकैबलु ॥६॥

सरल अर्थ—हे चित्त । अब तो चेतकर चित्रकूट को चल । कलियुग ने क्रोध कर धर्म और ईश्वर भक्ति रूप कल्याण के मार्गों का लोप कर दिया है; मोह, माया और पापों की नित्य वृद्धि हो रही है । चित्रकूट में श्री रामजी के चरणों से चिह्नित भूमिका और उनके विहार के स्थान वन का दर्शन कर । वहाँ कपट, पाखंड और दम्भ के दल (समूह) का नाश करने वाले पर्वत के उन शिखरों को देख, जो जन्ममरण रूप संसार से छुटकारा मिलने के कारण हैं । जहाँ पर जगत्पिता जगदीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने सती अनसूया के पुत्र रूप से पंच और छल छोड़कर जन्म लिया है । जिस चित्रकूट रूपी आश्रम में एक बार प्रवेश करते ही जुए में हारकर वन-वन भटकते हुए युधिष्ठिर आदि पाडव और राजा नल का सारा दुःख दूर हो गया, वहाँ जाने में अब देर न कर, अपनी अच्छी बुद्धि से यह तो विचार कर कि जितने वर्ष बीत गये सो तो गए, अब आयु के जितने पल बाकी हैं, वे बीते हुए वर्षों के समान हैं । एक-एक पल को एक-एक वर्ष के समान बहुमूल्य समझकर मृत्यु को समीप जानकर, जल्दी चित्रकूट जाकर श्री राम-मन्त्र का जप कर, जिसे जपने से श्री शिव जी कालकूट विष पीने पर भी अजर, अमर हो गए । जब तू वहाँ निरन्तर श्री राम-नाम जप रूपी सर्वश्रेष्ठ यज्ञ और पयस्विनी नदी के पवित्र जल में स्नान तथा उसके जल का पान करता रहेगा, तब श्री रामजी तेरी मनःकामना पूरी कर देंगे और इस सुखमय साधन से सहज ही में तुझे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चारों फल दे देंगे । चित्रकूट में जो कामतनाथ पर्वत है, वही मनोरथपूर्ण करने वाली चिन्तामणि और कल्पवृक्ष है, जो युग-युग पृथ्वी पर जगमगाता है । यों तो चित्रकूट सभी के लिए सुखदायक है, परन्तु हे तुलसीदास ! तुझे तो विशेष रूप से उसी के विश्वास, प्रेम और बल पर निर्भर रहना चाहिये ॥

ऐसो तेहि न बूझिए हनुमान हठीले ।
साहेब कहूँ न राम से तोसे न उसीले ॥१॥
तेरे देखत सिंह के सिसु मेंढक लीले ।
जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुनगन कीले ॥२॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले ।
सो बल गयो किधौं भये अब गरब गहीले ॥३॥
सेवक को परदा फटे तू समरथ सीले ।
अधिक आपुते आपुनो सुनि मान सहीले ॥४॥

साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुहीले ।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम-रंगीले ।।५।।

सरल अर्थ—हे हठीले (भक्तों के कष्ट बरबस दूर करने वाले) हनुमान् । तुझे ऐसा नहीं चाहिए । श्रीराम सरीखे तो कहीं स्वामी नहीं हैं और तेरे समान कहीं सहायक नहीं हैं । यह होते हुए भी आज तेरे देखते-देखते मुझ सिंह के बच्चे को (तुझ सिंह रूप सहायक के शरणागत मुझ बालक को) कलियुग रूप मेंढ़क (जिसकी तेरे सामने कोई हस्ती नहीं है) निगले लेता है । मालूम होता है, इस कलियुग ने तेरे भक्तवत्सलता, शरणागत की रक्षा के लिए हठकारिता, उदारता आदि गुणों को कील दिया है । एक दिन तेरी हुँकार सुनते ही रावण के अंग-अंग के जोड़ ढीले हो गए; वह तेरा बल पराक्रम आज कहाँ गया अथवा क्या तू अब दयालु के बदले घमण्डी हो गया है ? आज तेरे सेवक का पर्दा फट रहा है, उसे तू सी दे,—जाती हुई इज्जत को बचा दे, तू बड़ा समर्थ है, पहले तो तू सेवक को अपने से अधिक मानता, उसकी सुनता था और सहता था, पर अब क्या हो गया है ? इस तुलसीदास के संकट को सुनकर उसे दूर करके यह सुयश तू ही ले ले । वास्तव में तो जो राम के रंगीले भक्त हैं उनका तीनों कालों में कल्याण ही है ॥

कबहुँक अंब, अवसर पाइ ।
मेरिओ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ।।१।।
दीन, सब अंग हीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ।।२।।
बूझि हैं 'सो है कौन' कहिबी नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ।।३।।
जानकी जग जननि जग की किये बचन सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ ।।४।।

सरल अर्थ—हे माता । कभी अवसर हो तो कुछ करुणा की बात छेड़कर श्री रामचन्द्र जी को मेरी भी याद दिला देना, (इसी से मेरा काम बन जायगा) । यों कहना कि एक अत्यन्त दीन, सर्व साधनों से हीन, मन मलीन, दुर्बल और पूरा पापी मनुष्य आपकी दासी (तुलसी) का दास कहलाकर और आपका नाम ले-लेकर पेट भरता है । इस पर प्रभु कृपा करके पूछें कि वह कौन है, तो मेरा नाम और मेरी दशा उन्हें बता देना । कृपालु श्रीरामचन्द्र जी के इतना सुन लेने से ही मेरी सारी बिगड़ी बात बन जाएगी । हे जगज्जननी जानकी जी ! यदि इस दास की आपने इस प्रकार वचनों से ही सहायता कर दी तो यह तुलसीदास आपके स्वामी की गुणावली गाकर भवसागर से तर जायगा ।।

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं ।
नवकंज लोचन, कंज मुख, कर कंज पद-कंजारुणं ।।१।।

कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील नीरद सुन्दरं।
पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं॥२॥
भजु दीन बंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं।
रघुनंद आनंद कंद कोसल चंद दशरथ-नन्दनं॥३॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानु भुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खर दूषणं॥४॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।
मम हृदय कंज निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं॥५॥

सरल अर्थ—हे मन! कृपालु श्री रामचन्द्र जी का भजन कर। वे संसार के जन्म-मरण रूप दारुण भय को दूर करने वाले है, उनके नेत्र नवविकसित कमल के समान हैं, मुख, हाथ और चरण भी लाल कमल के सदृश हैं। उनके सौन्दर्य की छटा अगणित काम देवों से बढ़कर है, उनके शरीर का नवीन नील सजल मेघ के जैसा सुन्दर वर्ण है, पीताम्बर मेघरूप शरीर में मानो बिजली के समान चमक रहा है, ऐसे पावन रूप जानकीपति श्रीराम जी को मैं नमस्कार करता हूँ। हे मन! दीनों के बन्धु, सूर्य के समान तेजस्वी, दानव और दैत्यों के वंश का समूल नाश करने वाले, आनन्द कन्द, कोशल देश रूपी आकाश में निर्मल चन्द्रमा के समान, दशरथ नन्दन श्रीराम का भजन कर। जिनके मस्तक पर रत्न जटित मुकुट, कानों में कुण्डल, भाल पर सुन्दर तिलक और प्रत्येक अंग में सुन्दर आभूषण सुशोभित हो रहे है, जिनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी है, जो धनुषबाण लिए हुए हैं, जिन्होंने संग्राम में खरदूषण को जीत लिया है। जो शिव, शेष और मुनियों के मन को प्रसन्न करने वाले और काम-क्रोध-लोभादि शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। तुलसीदास प्रार्थना करता है कि वे भी श्री रघुनाथ जी मेरे हृदय-कमल में सदा निवास करें॥

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥१॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।
ग्रसे काल रोग जोग-संजम-समाधि रे॥२॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिने जो बाम रे।
राम-नाम ही सौं अंत सब ही को काम रे॥३॥
जग नभ-वाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥४॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥५॥

सरल अर्थ—अरे पागल! राम जप, राम जप, राम जप। इस भयानक संसार रूपी समुद्र से पार उतरने के लिए श्री राम नाम ही अपनी नाव है, अर्थात् इस राम नाम रूपी नाव में बैठकर मनुष्य जब चाहे तभी पार उतर सकता है, क्योंकि

यह मनुष्य के अधिकार में है। इसी एक साधन के बल से सब ऋद्धि-सिद्धियों को साध ले, क्योंकि योग, संयम और समाधि आदि साधनों को कलिकाल रूपी रोग ने ग्रस लिया है। भला हो, बुरा हो, उल्टा हो, सीधा हो, अन्त में सबको राम नाम से ही काम पड़ेगा। यह जगत् भ्रम से आकाश में फले-फूले दीखने वाले बगीचे के समान सर्वथा मिथ्या है, धुएँ के महलों की भाँति क्षण-क्षण में दीखने और मिटने वाले इन सांसारिक पदार्थों को देखकर तू मत भूल। जो राम नाम को छोड़कर दूसरे का भरोसा करता है, हे तुलसीदास! वह उस मूर्ख के समान है जो सामने परोसे हुए भोजन को छोड़कर एक-एक कौर के लिए कुत्ते की तरह घर-घर माँगता फिरता है॥

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरों सौ
झूठ क्यों कहौगो जानौ सबही के मन की।
करम-बचन-हिए, कहौं न कपट किये,
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सनकी॥१॥

दूसरो भरोसो नाहिं बासना उपासना की,
बासव, बिरंचि सुर नर मुनि गन की।
स्वारथ के साथी मेरे, हाथी स्वान लेवा देई,
काहू तौ न पीर रघुबीर! दीन जनकी॥२॥

सांप-सभा साबर लबार भये देव दिव्य,
दुसह सांसति कीजै आगे ही या तन की।
सांचे परौं, पाऊँ पान, पंच में पन प्रमान,
तुलसी चातक आस रामस्याम घन की॥३॥

सरल अर्थ—भला बुरा जो कुछ भी हूँ सो आपका हूँ। आपकी सौंह मैं, आपसे झूठ क्यों कहूँगा? आप तो सभी के मन की बात जानते हैं। मैं कपट से नहीं, परन्तु, कर्म, वचन और हृदय से कहता हूँ कि 'मैं आपका हूँ।' यह आपकी गुलामी का हठ इतना पक्का है कि जैसे पानी से भीगे हुए सनकी गाँठ। हे रामजी! न तो मुझे दूसरे का भरोसा है और न मुझे इन्द्र, ब्रह्मा अथवा अन्य देवता, मनुष्य और मुनियों की उपासना करने की ही इच्छा है। आपके सिवा सभी स्वार्थ के साथी हैं, जन्म भर हाथी की तरह सेवा करने पर कुत्ते जैसा तुच्छ फल देते हैं। इनमें से किसी को भी दीनों के दुख में ऐसी सहानुभूति नहीं है जैसी आपको है। हे दिव्य देव! मैं आपका गुलाम हूँ, यह बात यदि मैं झूठ कहता हूँ तो मेरे इस शरीर को अपने ही आगे असह्य दुख दीजिए जैसा सांपों की सभा में (सांप को वश करने का मन्त्र नहीं जानने वाले) झूठे सपेरे को मिलता है अर्थात् उस पाखंडी को सांप काट खाते हैं। और यदि मैं सच्चा (राम का गुलाम) सिद्ध हो जाऊँ तो हे नाथ! मुझे पंचों के बीच में सच्चाई का एक बीड़ा मिल जाय। क्योंकि मुझ तुलसी रूपी चातक को एक राम रूपी श्याम मेघ की ही आशा है॥

राम को गुलाम, नाम राम बोला राख्यो राम,
काम यहै, नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी-लूगा नीके राखै, आगेहू की बेद भाखै,
भलो ह्वै है तेरो, ताते आनंद लहत हौं ॥१॥
बाँध्यो हौं करम जड़ गरब मूढ़-निगड़,
सुनत दुसह हौं तो सांसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-नाथ, कौसल पाल कृपाल,
लीन्हों छीन दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥२॥
बूझ्यो ज्यों ही, कह्यों, मैं हूँ चेरो ह्वै हौं रावरो जू,
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं चरन गहत हौं।
मीजो गुरु पीठ, अपनाइ गहि बाँह बोलि,
सेवक सुखद, सदा बिरद बहत हौं ॥३॥
लोग कहैं पोच, सो न सोच न सकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी, जाति-पाति न चहत हौं।
तुलसी अकाज-काज राम ही कै रीझे-खीझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥४॥

सरल अर्थ—मैं श्री राम जी का गुलाम हूँ। लोग मुझे 'राम बोला' कहने लगे हैं। काम यही करता हूँ कि कभी-कभी दो-चार बार राम नाम कह लेता हूँ। इसी से राम मुझे रोटी कपड़ो से अच्छी तरह रखते हैं। यह तो इस लोक की बात हुई, आगे परलोक के लिए तो वेद पुकार ही रहे हैं कि राम-नाम के प्रताप से तेरा कल्याण हो जायेगा। बस, इसी से मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ। पहले मुझे जड़ कर्मों ने अहंकार रूपी कठिन बेड़ियों से बाँध लिया था। वह ऐसा भयानक कष्ट था, जो सुनने मे भी बड़ा असह्य है। मैंने दुखी हो पुकार कर कहा, 'हे आर्त्त और अनाथों के नाथ! हे कोमलेश! हे कृपासिन्धु! मैं बड़ा कष्ट सह रहा हूँ।' (यह सुनते ही) श्री राम ने मुझ दीन को पापों से जलता हुआ देखकर तुरन्त कर्मबन्धन से छुड़ा लिया। ज्यों ही उन्होंने मुझसे पूछा 'तू कौन है?' त्यों ही मैंने कहा, 'हे नाथ! मैं आपका दास बनना चाहता हूँ। मेरे कहीं भी कोई और नहीं है। आपके चरणों मे पड़ा हूँ।' इस पर भक्त सुखकारी परम गुरु श्री राम जी ने मेरी पीठ ठोकी, बाँह पकड़कर मुझे अपनाया और आश्वासन दिया। तब से मैं यह (कण्ठी, तिलक माला, राम नाम-जप, अहिंसा, अभेद, नम्रता आदि) भगवान का वैष्णवी बना सदा धारण किए रहता हूँ। राम का गुलाम बना देखकर लोग मुझे नीच कहते हैं, परन्तु मुझे इसके लिए कोई चिन्ता या सकोच नहीं है, क्योंकि न तो मुझे किसी के साथ विवाह-सगाई करनी है और न मुझे जाति-पाँति से ही कुछ मतलब है। तुलसी का बनना बिगड़ना तो श्री राम जी के रीझने-खीझने में ही है। परन्तु मुझे आपके प्रेम पर विश्वास है, इसी से मैं मन मे सदा सानन्द रहता हूँ॥

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥१॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो ॥२॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात मातु, गुरु-सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥३॥
तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥४॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! तू दीनों पर दया करने वाला है, तो मैं दीन हूँ। तू अतुलदानी है, तो मैं भिख मंगा हूँ। मैं प्रसिद्ध पापी हूँ, तो तू पाप-पुंजों का नाश करने वाला है। तू अनाथों का नाथ है तो मुझ जैसा अनाथ भी और कौन है ? मेरे समान कोई दुखी नहीं है और तेरे समान कोई दुखों को हरने वाला नहीं है। तू ब्रह्म है, मैं जीव हूँ। तू स्वामी है, मैं सेवक हूँ। अधिक क्या मेरा तो माता, पिता, गुरु, मित्र और सब प्रकार से हितकर तू ही हैं। मेरे-तेरे अनेक नाते हैं, नाता तुझे जो अच्छा लगे, वही मान ले। परन्तु बात यह है कि हे कृपालु ! किसी भी तरह यह तुलसीदास तेरे चरणों की शरण पा जावे ॥

मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ॥१॥
नयन मलिन पर नारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन वासना-मान-मद, जीव सहज सुख त्यागे ॥२॥
परनिंदा सुनि श्रवन मलिन भै, बचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराये ॥३॥
तुलसिदास व्रत-दान, ग्यान-तप, सुद्धि हेतु श्रुति गावै।
राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥४॥

सरल अर्थ—मोह से उत्पन्न जो अनेक प्रकार का (पाप रूपी) मल लगा हुआ है, वह करोड़ों उपायों से भी नहीं छूटता। अनेक जन्मों से यह मन पाप में लगे रहने का अभ्यासी हो रहा है, इसलिए यह मल अधिकाधिक लिपटता ही चला जाता है। पर स्त्रियों की ओर देखने से नेत्र मलिन हो गए है, विषयों का संग करने से मन मलिन हो गया है तथा सुख रूप स्व-स्वरूप के त्याग से जीव मलिन हो गया है। पर-निन्दा सुनते-सुनते कान और दूसरो का दोष कहते-कहते वचन मलिन हो गए हैं। अपने नाथ श्री राम जी के चरणों को भूल जाने से ही यह मल का भार सब प्रकार से मेरे पीछे लगा फिरता है। इस पाप के धुलने के लिए वेद तो व्रत, दान, ज्ञान, तप आदि अनेक उपाय बतलाता है, परन्तु हे तुलसीदास! श्री राम के चरणों के प्रेमरूपी जल बिना इस पाप रूपी मल का समूल नाश नही हो सकता ॥

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ! यह समुझ सबेरो ॥१॥
बिछुरे ससि-रबि मन-नैननि तें, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥२॥
जद्यपि अति पुनीत सुर सरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥३॥
छूटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति सदेहु निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहु राम को चेरो ॥४॥

सरल अर्थ—हे मूर्ख मन! मेरी सीख सुन! हरि के चरणों से विमुख होकर किसी ने भी सुख नहीं पाया। हे दुष्ट! इस बात को शीघ्र ही समझ ले (अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, शरण जाने से काम बन सकता है)। देख! यह सूर्य और चन्द्रमा जब भगवान् के नेत्र और मन से अलग हुए तभी से बड़ा दुखभोग रहे हैं। रात-दिन आकाश में चक्कर लगाते हुए बिताने पड़ते हैं, वहाँ भी बलवान् शत्रु राहु पीछा किए रहता है। यद्यपि गंगा जी देवनदी कहाती हैं और बड़ी पवित्र हैं, तीनों लोकों में उनका बड़ा यश भी फैल रहा है, परन्तु भगवान् के चरणों से अलग होने पर तब से आज तक उनका भी नित्य बहना कभी बन्द नहीं होता। श्री रघुनाथ जी के भजन बिना विपत्तियों का नाश नहीं होता। इस सिद्धान्त का सदेह वेदों ने नष्ट कर दिया है। इसलिए हे तुलसीदास! सब प्रकार की आशा छोड़कर श्री राम का दास बन जा॥

मेरो मन हरि जू! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाउ निजै ॥१॥
ज्यों जुबती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनिखल पतिहि भजै ॥२॥
लोलुप भ्रम गृहपति सु ज्यों जँह तँह सिर पद त्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ लजै ॥३॥
हौं हार्‌यो करि जतन बिबिध बिधि अति सैं प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥४॥

सरल अर्थ—हे श्री हरि! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता। हे नाथ! मैं दिन-रात इसे अनेक प्रकार से समझाता हूँ, पर यह अपने ही स्वभाव के अनुसार करता है। जैसे युवती स्त्री सतान जनने के समय असह्य कष्ट का अनुभव करती है (उस समय सोचती है कि अब पति के पास नहीं जाऊँगी) पर वह मूर्खा सारी वेदना भूलकर पुनः उसी दुःख देने वाले पति का सेवन करती है। जैसे लालची कुत्ता जहाँ जाता आता है - वहीं उसके सिर जूते पड़ते हैं तो भी वह नीच फिर उसी रास्ते भटकता है, मूर्ख को जरा भी लज्जा नहीं आती। (ऐसी ही दशा मेरे इस मन की है, विषयों ने कष्ट पाने पर भी यह उन्हीं की ओर दौड़ा जाता है) मैं नाना प्रकार उपाय करते-करते थक

गया, परन्तु यह मन अत्यन्त बलवान् और अजेय है। हे तुलसीदास ! यह तो तभी वश में हो सकता है, जबकि प्रेरणा करने वाले भगवान् स्वयं ही इसे रोकें ॥

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परि हरि राम-भगति-सुर-सरिता, आस करत ओस कन की ॥१॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यौं, तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की ॥२॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आनन की ॥३॥
कहँ लौ कहौं कुचाल कृपानिधि ! जानत हौ गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥४॥

सरल अर्थ—इस मन की ऐसी मूर्खता है कि यह श्री राम-भक्ति रूपी गंगा जी को छोड़कर ओस की बूंदों से तृप्त होने की आशा करता है। जैसे प्यासा पपीहा धुएँ का गोट देखकर उसे मेघ समझ लेता है परन्तु वहाँ—(जाने पर) न तो उसे शीतलता मिलती है और न जल मिलता है, धुएँ से आँखें और फूट जाती हैं। (वही दशा इस मन की है)। जैसे मूर्ख बाज काँच की फर्श में अपने ही शरीर की परछाईं देखकर उस पर चोंच मारने से वह टूट जाएगी, इस बात को भूख के मारे भूलकर जल्दी से उस पर टूट पड़ता है (वैसे ही यह मेरा मन भी विषयों पर टूटा पड़ता है)। हे कृपा के भण्डार ! इस कुचाल का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ ? आप तो दासों की दशा जानते ही हैं। हे स्वामिन् ! तुलसीदास का दारुण दुःख हर लीजिए और अपने (शरणागत वत्सला रूपी) प्रण की रक्षा कीजिए ॥

जौ पै जिय धरि हौ अवगुन जनके ।
तौ क्यों कटत सुकृत-नखते मों पै, बिपुल बृंद अघ-बन के ॥१॥
कहि है कौन कलुष मेरे कृत, करम बचन अरु मन के ।
हारहिं अमित सेष सारद श्रुति, गिनत एक-एक छन के ॥२॥
जो चित चढ़े नाम-महिमा निज, गुन-गन पावन पन के ।
तो तुलसिहिं तारि हौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जम गन के ॥३॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! यदि आप इस दास के दोषों पर ध्यान देंगे, तब तो पुण्य रूपी नख से पाप रूपी बड़े-बड़े वनों के समूह मुझसे कैसे कटेंगे ? (मेरे जरा-से पुण्य से भारी-भारी पाप कैसे दूर होंगे ?)। मन, वचन और शरीर से किए हुए मेरे पापों का हिसाब जोड़ने में अनेक शेष, सरस्वती और वेद हार जाएँगे। (मेरे पुण्यों के भरोसे तो पापों से छूटकर उद्धार होना असम्भव है) यदि आपके मन में अपने नाम की महिमा और पतितों का पावन करने वाले अपने गुणों का स्मरण आ जाय तो आप इस तुलसीदास को यमदूतों के दांत तोड़कर संसार-सागर से अवश्य वैसे ही तार देंगे, जैसे अजामिल ब्राह्मण को तार दिया था ॥

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ ॥१॥
सिसुपनते पितु, मातु, बंधु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसोहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥२॥
खेलत संग अनुज बालक नित, जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ॥३॥
सिला साप-संताप बिगत भइ, परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए को पछिताउ ॥४॥
भव-धन भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ ॥५॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मरम कुघाउ ॥६॥
कपि सेवा बस भये कनौडे, कह्यो पवनसुत आउ।
देवे को न कछु रिनियाँ हौं धनिक तूँ पत्र लिखाउ ॥७॥
अपनाए सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ॥८॥
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ ॥९॥
समुझि समुझि गुन ग्राम राम के, उर अनुराग बढाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहै प्रेम-पसाउ ॥१०॥

सरल अर्थ—श्री सीतानाथ रामजी का शील स्वभाव सुनकर, जिसके मन मे आनन्द नही होता, जिसका शरीर पुलकायमान नही होता, जिसके नेत्रो मे प्रेम के आँसू नही भर आते, वह दुष्ट धूल फाँकता फिरे, तो ही ठीक है। बचपन से ही माता, पिता, भाई, गुरु, नौकर, मित्र और मन्त्री यही कहते हैं कि हममे से किसी ने स्वप्न मे भी श्री रामचन्द्र जी के चन्द्रमुख पर कभी क्रोध नही देखा। उनके साथ जो उनके तीनो भाई और नगर के दूसरे बालक खेलते थे, उनकी अनीति और हानि को सदा वे देखते रहते थे और अपनी जीत मे भी (उनको प्रसन्न करने के लिए) हार मान लेते थे तथा उन लोगों को पुकार-पुकार कर प्रेम से अपना दाँव देते थे और दूसरो से दिलाते थे। चरण का स्पर्श होते ही पत्थर की शिला अहल्या शाप से संताप से छूट गई। उसे सद्गति दे दी, पर इस बात का तो उनके मन में कुछ भी हर्ष नहीं हुआ, उल्टे इस बात का पश्चात्ताप अवश्य हुआ कि ऋषि-पत्नी को मेरे चरण क्यो लग गए? शिवजी का धनुष तोड़कर राजाओ का मान हर लिया, इससे जब परशुराम जी ने आकर क्रोध किया, तब उनका अपराध क्षमा करके उल्टे श्री लक्ष्मण जी से माफी मँगवाई और स्वयं उनके चरणो पर गिर पड़े, इतनी सहिष्णुता और कही नही है। राजा दशरथ ने राज्य देने को कहकर कैकेयी के वश मे होने से

कारण वनवास दे दिया और इसी ग्लानि के मारे वे मर भी गये। ऐसी बुरी माता कैकेयी का मन भी आप ऐसे सँभाले रहे, जैसे कोई अपने शरीर के मर्मस्थान के घाव को देखता रहता है, अर्थात् आप सदा उसके मन के अनुसार ही चलते रहे। जब आप हनुमान् जी की सेवा के वश होकर उपकृत हो गये, तब उनसे कहा कि 'हे पवनसुत ! यहाँ आ, तुझे देने को तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं तेरा ऋणी हूँ, तू मेरा महाजन है, तो तू चाहे लिखा पढ़ी करवा ले।' सुग्रीव और विभीषण ने अपना कपट भाव नहीं छोड़ा, परन्तु आपने तो उन्हें अपना ही लिया। भरत जी का तो सदा भरी सभा में सम्मान आप करते रहते हैं, उनकी प्रशंसा करते करते तो आपके हृदय में तृप्ति ही नहीं होती। भक्तों पर आपने जो-जो दया एवं उपकार किये हैं, उनकी तो चर्चा चलते ही आप मानों लज्जा से गड़ जाते हैं (अपनी प्रशंसा आपको सुहाती नहीं), परन्तु एक बार भी आपको जो प्रणाम करता है और शरण में आ जाता है, आप सदा उसके यश का वर्णन करते हैं, सुनते हैं और कह-कहकर दूसरों से गान करवाते हैं। ऐसे कोमल हृदय श्री राम जी के गुण-समूहों को समझ-समझ कर मेरे हृदय में प्रेम की बाढ़ आ गई है, हे तुलसीदास ! इस प्रेमानन्द के कारण तू अनायास ही श्री राम के चरण-कमलों को प्राप्त करेगा ॥

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥१॥
कौने देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग-मृग, व्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥२॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥३॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! आपके चरणों को छोड़कर और कहाँ जाऊँ ? संसार में 'पतित पावन' नाम और किसका है ? (आपकी भाँति) दीन-दुःखियारे किसे बहुत प्यारे हैं ? आज तक किस देवता ने अपने बाने को रखने के लिए हठपूर्वक चुन-चुनकर नीचों का उद्धार किया ? किस देवता ने पक्षी (जटायु), पशु (ऋक्ष-वानर आदि), व्याध (वाल्मीकि), पत्थर (अहल्या), जड़ वृक्ष (यमलार्जुन) और यवनों का उद्धार किया है ? देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुष्य आदि सभी बेचारे माया के वश हैं। (स्वयं बँधा हुआ दूसरे के बन्धन को कैसे खोल सकता है इसलिए) हे प्रभु ! यह तुलसीदास अपने को उन लोगों के हाथों में सौंपकर क्या करे ?

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ॥१॥
पायेउँ नाम चारु चिन्तामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित-कंचनहिं कसैहौं ॥२॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं ॥३॥

सरल अर्थ—अब तक तो (यह आयु व्यर्थ ही) नष्ट हो गई। परन्तु अब इसे नष्ट नहीं होने दूँगा। श्रीराम की कृपा से संसार रूपी रात्रि बीत गई है, (मैं संसार की माया-रात्रि से जग गया हूँ) अब जागने पर फिर (माया का) बिछौना नहीं बिछाऊँगा (अब फिर माया के फंदे में नहीं फँसूँगा)। मुझे रामनाम रूपी सुन्दर चिन्तामणि मिल गई है। उसे हृदय रूपी हाथ से कभी नहीं गिरने दूँगा। अथवा हृदय से राम नाम का स्मरण करता रहूँगा और हाथ से राम नाम की माला जपा करूँगा। श्री रघुनाथ जी का जो पवित्र श्याम सुन्दर रूप है उसकी कसौटी बनाकर अपने चित्त रूपी सोने को कसूँगा। अर्थात् यह देखूँगा कि श्री राम के ध्यान में मेरा मन सर्वदा लगता है कि नहीं। जब तक मैं इन्द्रियों के वश में था, तब तक उन्होंने (मुझे मन-माना नाच नचाकर) मेरी बड़ी हँसी उड़ाई, परन्तु अब स्वतन्त्र होने पर यानी मन इन्द्रियों को जीत लेने पर उनसे हँसी नहीं कराऊँगा। अब तो अपने मन रूपी भ्रमर को प्रण करके श्रीराम के चरण कमलों में लगा दूँगा। अर्थात् श्री राम जी के चरणों को छोड़कर दूसरी जगह मन को जाने नहीं दूँगा॥

केशव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये॥१॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइअ एहि तनु हेरे॥२॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं॥३॥
कोऊ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै॥४॥

सरल अर्थ—हे केशव! क्या कहूँ? कुछ कहा नहीं जाता। हे हरे! आपकी यह विचित्र रचना देखकर मन ही मन (आपकी लीला) समझकर रह जाता हूँ। कैसी अद्भुत लीला है कि इस (संसार रूपी) चित्र को निराकार (अव्यक्त) चित्रकार (सृष्टिकर्ता परमात्मा) ने शून्य (माया) दीवार पर बिना ही रंग के (संकल्प से ही) बना दिया। (साधारण स्थूल चित्र तो धोने से मिट जाते हैं,) परन्तु यह (महा-मायावी-रचित माया-चित्र) किसी प्रकार धोने से नहीं मिटता। (साधारण चित्र जड़ है, उसे मृत्यु का डर नहीं लगता, परन्तु) इसको मरण का भय बना हुआ है। (साधारण चित्र देखने से सुख मिलता है, परन्तु) इस संसार रूपी भयानक चित्र की ओर देखने से दुःख होता है। सूर्य की किरणों में (भ्रम है) जो जल दिखाई देता है, उस जल में एक भयानक मगर रहता है, उस मगर के मुँह नहीं है, तो भी वहाँ जो भी जल पीने जाता है, चाहे वह जड़ हो या चेतन, यह मगर उसे ग्रस लेता है। भाव यह कि संसार सूर्य की किरणों में जल के समान भ्रम जनित है। जैसे सूर्य की किरणों में जल समझकर उनके पीछे दौड़ने वाला मृग जल न पाकर प्यासा ही मर जाता है, उसी प्रकार इस भ्रमात्मक संसार में सुख समझकर उसके पीछे दौड़ने वालों

को भी बिना मुख का मगर यानी निराकार काल खा जाता है। इस संसार को कोई सत्य कहता है, कोई मिथ्या बतलाता है और कोई सत्य-मिथ्या से मिला हुआ मानता है, तुलसीदास के मन से तो (ये तीनों ही भ्रम हैं)—जो इन तीनों भ्रमों से निवृत्त हो जाता है (अर्थात् सब कुछ परमात्मा की लीला समझता है) वही अपने असली स्वरूप को पहचान सकता है ॥

माधव ! मोह-फाँस क्यों टूटै ।
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥१॥
घृत पूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिम्ब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाय कलपसत औटत नास न पावै ॥२॥
तरु कोटर महँ बस विहंग तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय विचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥३॥
अंतर मलिन विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि विविध विधि मारे ॥४॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु बिमल बिवेक न होई ।
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई ॥५॥

सरल अर्थ—हे माधव ! मेरी यह मोह की फाँसी कैसे छूटेगी । बाहर से चाहे करोड़ों साधन क्यों न किये जायँ, उनसे भीतर की (अज्ञान की) गाँठ नहीं छूट सकती । घी से भरे हुये कड़ाह में जो चन्द्रमा की परछाईं दिखाई देती है, वह (जब तक घी रहेगा तब तक) सौ कल्प तक ईंधन और आग लगाकर औटाने से भी नष्ट नहीं हो सकती । (इसी प्रकार जब तक मोह रहेगा तब तक यह आवागमन की फाँसी भी रहेगी) । जैसे किसी पेड़ के कोटर में कोई पक्षी रहता हो, वह उस पेड़ के काट डालने से नहीं मर सकता, उसी प्रकार बाहर से कितने ही साधन क्यों न किए जायें पर बिना विवेक के यह मन कभी शुद्ध होकर एकाग्र नहीं हो सकता । जैसे साँप के बिल पर अनेक प्रकार से मारने पर और बाहर से अन्य उपायों के करने पर भी उसमें रहने वाला साँप नहीं मरता, वैसे ही शरीर को खूब मल-मलकर धोने से विषयों के कारण मलिन हुआ मन भीतर से कभी पवित्र नहीं हो सकता । हे तुलसीदास ! भगवान् और गुरु की दया के बिना संशय शून्य विवेक नहीं होता और विवेक हुए बिना इस घोर संसार सागर से कोई पार नहीं जा सकता ॥

जौं निज मन परिहरै बिकारा ।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा ॥१॥
सत्रु, मित्र, मध्यस्थ, तीनि ये मन कीन्हें बरिआई ।
त्यागन, गहन, उपेच्छनीय अहि, हाटक, तृन की नाई ॥२॥
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे ।
सरग, नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे ॥३॥

बिटप-मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये ॥४॥
रघुपति-भगति-बारि-छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै ॥५॥

सरल अर्थ—यदि हमारा मन विकारों को छोड दे, तो फिर द्वैत भाव से उत्पन्न संसारी दुःख, भ्रम और अपार शोक क्यों हो? (यह सब मन के विकारो के कारण ही होते हैं)। शत्रु, मित्र और उदासीन इन तीनों की ही मन ने ही हठ से कल्पना कर रखी है। शत्रु को साँप के समान त्याग देना चाहिए, मित्र को सुवर्ण के समान ग्रहण करना चाहिए और उदासीन की तृण की तरह उपेक्षा कर देनी चाहिए। ये सब मन की ही कल्पनाएँ है। जैसे (बहुमूल्य) मणि मे भोजन, वस्त्र, पशु और अनेक प्रकार की चीजे रहती हैं वैसे ही स्वर्ग, नरक, चर, अचर और बहुत से लोक इस मन मे रहते हैं। भाव यह कि छोटी-सी मणि के मोल से जो चाहे सो खाने, पीने पहनने की चीजे खरीदी जा सकती हैं, वैसे ही इस मन के प्रताप से जीव स्वर्ग-नरकादि मे जा सकता है। जैसे पेड के बीच में कठपुतली और सूत मे वस्त्र, बिना बनाए ही, सदा रहते हैं, उसी प्रकार इस मन मे भी अनेक प्रकार के शरीर लीन रहते हैं, जो समय पाकर प्रकट हो जाते हैं। इस मन के विकार कब छूटेंगे, जब श्री रघुनाथ जी की भक्ति रूपी जल से धुलकर चित्त निर्मल हो जाएगा, तब अनायास ही सत्य रूप परमात्मा दिखलाई देंगे। किन्तु तुलसीदास कहते हैं, इस चैतन्य के विलास रूप जगत् का सत्य तत्त्व परमात्मा समझते-समझते ही समझ मे आवेगा॥

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहि दियो॥
दियो सुकुल जनम, सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारिको।
जो पाइ पंडित परमपद, पावत पुरारि-मुरारि को॥
यह भरतखण्ड, समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली।
तेरी कुमति कायर! कलप-बल्ली चहति है विष फल फली॥

सरल अर्थ—अरे, जिन्होने तुझे देव-दुर्लभ मनुष्य शरीर दिया—उन परम प्रेमी श्री रामजी के साथ तूने प्रेम नहीं किया। उन्होंने अच्छे कुल मे जन्म और सुन्दर शरीर दिया, जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का कारण है। जिसे पाकर ज्ञानी लोग भगवान् शिव अथवा कृष्ण के परम पद को प्राप्त करते हैं। फिर यह भारत-वर्ष देश, पास ही देवनदी गंगा जी, कैसा सुन्दर स्थान है। साथ ही सत्संग भी उत्तम है। इतने पर भी अरे कायर! तेरी कुबुद्धि के कारण इन सब साधनो को—कल्पलता भी (जन्म-मरण रूपी) विषैले फल फला चाहती है। अर्थात् इतने सुन्दर साधनो को पाकर भी तू अपने बुद्धि दोष से इनका दुरुपयोग ही कर रहा है॥

दीनदयालु, दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुवार पुकारत आरत, सबकी सब सुख हानि भई है ॥१॥
प्रभु के वचन, वेद,-बुध सम्मत, मम मूरति महिदेव मई है।
तिनकी मति रिस-राग-मोह-मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है।
नीति, प्रतीति प्रीति परमित पति हेतुवाद हठि हेरि हई है ॥३॥
आश्रम-बरन-धरम-बिरहित जग, लोकबेद, मरजाद गई है।
प्रजा पतित, पाखंड-पापरत, अपने अपने रंग रई है ॥४॥
शान्ति, सत्य, सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति, कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है ॥५॥
परमारथ स्वारथ, साधन भए अफल, सफल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल जामति न बई है ॥६॥
कलि-करनी बरनिये कहाँ लौं, करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दाँत पीसि कर मीजत, को जानै चित कहा ठई है ॥७॥
त्यों-त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यों-ज्यों सीलबस ढील दई है।
सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ॥८॥
दीजै दादि देखि ना तौ, बलि मही मोद-मंगल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं, राम कृपा-चितवनि चितई है ॥९॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि, करुणा बारि भूमि भिजई है।
राम-राज भयो काज, सगुन सुभ, राजाराम जगत-बिजई है ॥१०॥
समरथ बड़ो, सुजान सुसाहब, सुकृत सैन हारत जितई है।
सुजन सुभाव, सराहत सादर, अनायास सांसति बितई है ॥११॥
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोरि बिरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर, अभय बाँह केहि केहि न दई है ॥१२॥

सरल अर्थ—हे दीनदयालु ! पाप, दारिद्र्य, दुःख और तीन प्रकार के दुसह दैविक, भौतिक, दैहिक तापों से दुनियाँ जली जा रही है। हे भगवन् ! यह आर्त्त आपके द्वार पर पुकार रहा है, क्योंकि सभी के सब प्रकार के सुख जाते रहे हैं। वेद और विद्वानों की सम्मति है तथा प्रभु के श्रीमुख के वचन हैं कि ब्राह्मण साक्षात् मेरा ही स्वरूप है, पर आज उन ब्राह्मणों की बुद्धि को क्रोध, आसक्ति, मोह, मद और लालच, लोभ ने निगल लिया है अर्थात् वे अपने स्वाभाविक शम-दमादि गुणों को छोड़कर अज्ञानी, कामी, क्रोधी, घमंडी और लोभी हो गए हैं। इसी तरह राज-समाज (क्षत्रिय जाति) करोड़ों कुचालों से भर गया है, वे (मनमाने रूप में लूट-मार, अन्याय, अत्याचार, व्यभिचार, अनाचार रूप) नित्य नई कुचालें चल रहे हैं और हेतुवाद (नास्तिकता) ने राजनीति, (ईश्वर और शास्त्र पर यथार्थ) विश्वास, प्रेम,

धर्म की और कुल की मर्यादा का ढूंढ़-ढूंढ़ कर नाश कर दिया है। संसार वर्ण और आश्रम-धर्म से भली-भांति विहीन हो गया है। लोक और वेद दोनों की मर्यादा चली गई। न कोई लोकाचार मानता है और न शास्त्र की आज्ञा ही सुनता है। प्रजा अवनत होकर पाखण्ड और पाप में रत हो रही है। सभी अपने-अपने रंग में रँग रहे हैं, यथेच्छाचारी हो गए हैं। शान्ति, सत्य और सुप्रथाएँ घट गई हैं और कुप्रथाएँ बढ़ गई हैं तथा (सभी आचरणों पर) कपट (दम्भ) की कलई हो गई है (एवं दुराचार तथा छल-कपट की बढ़ती हो रही है)। साधु पुरुष कष्ट पाते हैं, साधुता शोकग्रस्त है, दुष्ट मौज कर रहे हैं और दुष्टता आनन्द मना रही है अर्थात् बगुला भक्ति बढ़ गई है। परमार्थ स्वार्थ में परिणत हो गया अर्थात् ज्ञान-भक्ति, परोपकार और धर्म के नाम पर लोग धन बटोरने लगे हैं। (विधि पूर्वक न करने से) साधन निष्फल होने लगे हैं और सिद्धियां प्राप्त होना बन्द हो गई हैं, कामधेनु रूपी पृथ्वी कलियुग रूपी गोमर (कसाई) के हाथ में पड़कर ऐसी व्याकुल हो गई है कि उसमें जो बोया जाता है, वह जमता ही नहीं (जहाँ-तहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं)। कलियुग की करनी कहाँ तक बखानी जाय। यह बिना काम का काम करता फिरता है। इतने पर भी दाँत पीस-पीसकर हाथ मल रहा है। न जाने इसके मन में अभी क्या-क्या है। हे प्रभु! ज्यों-ज्यों आप शील वश इसे ढील दे रहे हैं, क्षमा करते जा रहे हैं, त्यों-ही-त्यों यह नीच सिर पर चढ़ता जाता है। जरा क्रोध करके इसे डांट दीजिए। आपकी तरजनी देखते ही यह कुम्हड़े की बतिया की तरह मुरझा जाएगा। आपकी बलैया लेता हूँ, देखकर न्याय कीजिए, नहीं तो अब पृथ्वी आनन्द-मंगल से शून्य हो जाएगी। ऐसा कीजिए जिसमें लोग बड़भागी होकर प्रेमपूर्वक यह कहें कि श्रीराम जी ने हमें कृपा दृष्टि से देखा है (बड़भागी वही है जिसका राम के चरणों में अनुराग है। यह अनुराग श्री राम-कृपा से ही प्राप्त होता है)। मेरी यह विनती सुनकर श्री राम जी ने आनन्द से मेरी ओर देखा और मुस्कराकर करुणा की ऐसी वृष्टि की जिससे सारी भूमि तर हो गई (हृदय का सारा स्थान शान्ति से पूर्ण हो गया)। राम-राज्य होने से सब काम सफल हो गये। शुभ शकुन होने लगा, क्योंकि महाराज श्री रामचन्द्र जी जगद्विजयी हैं (हृदय में उनके विराजित होते ही कलियुग की सारी सेना भाग गयी।) सर्व समर्थ ज्ञान के स्वरूप दयालु स्वामी जी ने पुण्यरूपी सेना को हारने से जिता लिया, सद्भक्त स्वभाव से ही आदरपूर्वक उनकी सराहना करते हैं, कि नाथ ने सहज ही सारी यातनाएँ दूर कर दी। (परन्तु) आप ऐसा क्यों न करते? आपका तो सदा से यह बाना चला आता है कि उजड़े हुए को बसाना और गई हुई वस्तु को फिर से दिला देना (जैसे विभीषण और सुग्रीव को राज्य पर बिठा देना, जैसे रावण के भय से डरे हुए देवताओं को फिर से स्वर्ग में बसा देना)। हे तुलसी! दुखियों के दुःख दूर कर भगवान् ने किस-किस को अभय की बांह नहीं दी?

मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ॥१॥

व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ॥२॥
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक सुरपुर मने।
दासतुलसी सरन आयो, राखिये आपने ॥३॥

सरल अर्थ—हे हरे ! मैंने तुम्हें पतितों को पवित्र करने वाला सुना है। सो मैं तो पतित हूँ और तुम पतित पावन हो। बस, दोनों बानक बन गये, दोनों का मेल मिल गया (अब मेरे पावन होने में क्या सन्देह है?) वेद साक्षी दे रहे हैं कि तुमने व्याध (वाल्मीकि), गणिका (पिंगला वेश्या), गजेन्द्र और अजामिल को तथा और भी अनेक नीचों को संसार-सागर से पार कर दिया है, जिनकी गिनती ही किससे हो सकती है? जिन्होंने जानकर या बिना जाने तुम्हारा नाम ले लिया, उन्हें नरक और स्वर्ग में जाने की मनाई कर दी है अर्थात् वे भव-सागर से पार होकर मुक्त हो जाते हैं (यह सब समझ-बूझकर ही अब) तुलसी भी तुम्हारी शरण में आया है, इसे भी अपना लो।

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥१॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥२॥
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्ही ॥३॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥४॥

सरल अर्थ—संसार में ऐसा कौन उदार है, जो बिना ही सेवा किए दीन-दुखियों पर (उन्हें देखते ही) द्रवित हो जाता है? ऐसे एक श्री रामचन्द्र ही हैं, उनके समान दूसरा कोई नहीं। बड़े-बड़े ज्ञानी-मुनि योग, वैराग्य आदि अनेक साधन करके भी जिस परम गति को नहीं पाते, वह गति प्रभु रघुनाथ जी ने गीध और शबरी तक को दे दी और उसको उन्होंने अपने मन में कुछ बहुत नहीं समझा। जिस सम्पत्ति को रावण ने शिव जी को अपने दसों सिर चढ़ाकर प्राप्त किया था, वही सम्पत्ति श्री राम ने बड़े ही संकोच के साथ विभीषण को दे डाली। तुलसीदास कहते हैं कि अरे मेरे मन ! जो तू सब तरह से सब सुख चाहता है, तो श्री राम जी का भजन कर। कृपानिधान प्रभु तेरी सारी कामनाएँ पूरी कर देंगे।

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो ॥१॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत-निरंतर, मन-क्रम-वचन नेम निबहौंगो ॥२॥

परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ॥३॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भगति लहौंगो ॥४॥

सरल अर्थ—क्या मैं कभी इस रहनी से रहूँगा? क्या कृपालु श्री रघुनाथ जी की कृपा से मैं संतों का स्वभाव ग्रहण करूँगा। जो कुछ मिल जाएगा—उसी में सन्तुष्ट रहूँगा, किसी से (मनुष्य या देवता से) कुछ भी नहीं चाहूँगा। निरन्तर दूसरों की भलाई करने में ही लगा रहूँगा। मन, वचन और कर्म से यम-नियमों का पालन करूँगा। कानों से अति कठोर और असह्य वचन सुनकर भी उससे उत्पन्न हुई (क्रोध की) आग में न जलूँगा। अभिमान छोड़कर सबमें सम बुद्धि रहूँगा और मन को शांत रखूँगा। दूसरों की स्तुति-निन्दा कुछ भी नहीं करूँगा। सदा आपके चिन्तन में लगे हुए मुझको दूसरों की स्तुति-निन्दा के लिए, समय ही नहीं मिलेगा। शरीर सम्बन्धी चिन्ताएँ छोड़कर सुख और दुःख को समान भाव से सहूँगा। हे नाथ! क्या तुलसीदास इस (उपर्युक्त) मार्ग पर रहकर कभी अविचल हरि भक्ति को प्राप्त करेगा?

नाहि न आवत आन भरोसो।
यहि कलि काल सकल साधन तरु है स्रम-फलनि फरो सो ॥१॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि-भरि बेद परोसो ॥२॥
आगम बिधि जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग-बियोग धरो सो ॥३॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो।
बिगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो ॥४॥
बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहि लगत राजडगरो सो ॥५॥
तुलसी बिनु परतीति-प्रीति फिरि-फिरि पचि मरै मरो सो।
राम-नाम बोहित, भव-सागर चाहै तरन तरो सो ॥६॥

सरल अर्थ—(श्री राम नाम के सिवा) मुझे दूसरे किसी (साधन) पर भरोसा नहीं होता। इस कलियुग में सभी साधन रूपी वृक्षों में केवल परिश्रम रूपी फल ही फले से दिखाई देते है अर्थात् उन साधनों में लगे रहने से केवल श्रम ही हाथ लगता है, फल कुछ नहीं होता। तप, तीर्थ, व्रत, दान, यज्ञ आदि जो जिसे अच्छा लगे सो करे। किन्तु इन सब कर्मों का फल पाने पर ही जान पड़ेगा, यद्यपि वेदों ने (पत्तल) भर-भर कर फलों को परोसा है। भाव यह कि वेदों में इन कर्मों की बड़ी प्रशंसा है, परन्तु कलियुग इन्हें सफल नहीं होने देगा तब फल कहाँ से मिलेगा? शास्त्र की विधि से मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं, किन्तु उनसे असली कार्य की सिद्धि नहीं

होती। योग-सिद्धियों के साधन में सुख स्वप्न में भी नहीं है। (क्रिया जानने वालों के अभाव से) इस साधन में भी रोग और वियोग प्रस्तुत है (शरीर रोगी हो जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रियजनों से बिछोह हो जाता है)। काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह ने मिलकर ज्ञान-वैराग्य को तो हर-सा लिया है और संन्यास लेने पर तो यह मन ऐसा बिगड़ जाता है, जैसे पानी के डालने से कच्चा घड़ा गल जाता है। मुनियों के अनेक मत हैं, (छः दर्शन हैं) और पुराणों में नाना प्रकार के पंथ देखकर जहाँ-तहाँ झगड़ा-सा ही जान पड़ता है। गुरु ने मेरे लिए राम-भजन को ही उत्तम बतलाया है और मुझे भी सीधे राजमार्ग के समान वही अच्छा लगता है। हे तुलसी! विश्वास और प्रेम के बिना जिसे बार-बार पच-पचकर मरना हो, वह भले ही मरे, किन्तु संसार-सागर से तरने के लिए तो राम-नाम ही जहाज है। जिसे पार होना हो, वह (इस पर चढ़कर) पार हो जाय।

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद मंगलकारी ॥२॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहाँ आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥३॥
तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥४॥

सरल अर्थ—जिसे श्री राम-जानकी जी प्यारे नहीं, उसे करोड़ों शत्रुओं के समान छोड़ देना चाहिए। चाहे वह अपना अत्यन्त ही प्यारा क्यों न हो? (उदाहरण के लिए देखिए) प्रह्लाद ने अपने पिता (हिरण्यकशिपु) को, विभीषण ने अपने भाई (रावण) को, भरत जी ने अपनी माता (कैकेयी) को, राजा बलि ने अपने गुरु (शुक्राचार्य) को और ब्रज-गोपियों ने अपने-अपने पतियों को (भगवत्प्राप्ति में बाधक समझकर) त्याग दिया, परन्तु ये सभी आनन्द और कल्याण करने वाले हुए। जितने सुहृद् और अच्छी तरह पूजने योग्य लोग हैं, वे सब श्री रघुनाथ जी के ही सम्बन्ध और प्रेम से माने जाते हैं। बस, अब अधिक क्या कहूँ। जिस अन्जन के लगाने से आँखें ही फूट जायें—वह अन्जन ही किस काम का। हे तुलसीदास! जिसके कारण (जिसके सङ्ग या उपदेश से) श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम हो, वही सब प्रकार से अपना परम हितकारी पूजनीय और प्राणों से भी अधिक प्यारा है। हमारा तो यही मत है।

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँ परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ॥१॥
बांस पुरान साज सब अठकठ, सरल तिकोन खटोला रे।
हमहि दिहल करि कुटिल करमचंद मंद-मोल बिनु डोला रे ॥२॥

विषम कहार मार-मद माते चलहिं न पाउँ बटोरा रे।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥३॥
काँट-कुराय लपेटन लोटन ठावँहि ठाउँ बझाऊ रे।
जस-जस चलिय दूरि तस-तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥४॥
मारग अगम संग नहिं संबल नाउं गाउं कर भूला रे।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

सरल अर्थ—अरे भाई ! राम-राम, राम-राम कहते चलो, नहीं तो कहीं संसार की बेगार में पकड़े जाओगे तो फिर छूटना अत्यन्त कठिन हो जाएगा (राजा की बेगार से दो-चार दिनों में छूटा जा सकता है, पर संसार का जन्म-मरण का चक्र तो ज्ञान न होने तक सदा चलता ही रहेगा। यदि राम नाम जपता चला जाएगा, तो माया-जन्य विषय रूपी शत्रु तुझे बेगार में न पकड़ सकेंगे। क्योंकि राम के दास पर राम की माया नहीं चलती)। कुटिल कर्मचन्द ने (हमारे पूर्व-जन्म कृत पाप कर्मों के प्रारब्ध ने) बिना ही मोल के (संसार चक्र की कर्मानुसार-स्वाभाविक गति के अनुसार) ऐसा बुरा खटोला (भजनहीन तामस प्रधान मनुष्य शरीर) हमें दिया है कि जिसके पुराना तो बाँस (अनादिकालीन अविद्या-मोह) लगा है, जिसके साज सब अट-संट हैं, (चित्त की तामस-विषयाकार वृत्तियाँ हैं, जिनके कारण शरीर से बुरे कर्म होते हैं—मनुष्य कुमार्ग में जाता है) जो सीधा तिकोन है (केवल अर्थ, काम और सकाम धर्म की प्राप्ति में ही लगा हुआ है, जिसे मोक्ष का ध्यान ही नहीं है)। जिसके (उठाकर चलने वाले) कहार विषम हैं और काम के मद में मतवाले हो रहे हैं (शरीर को चलाने वाली पाँच इन्द्रियाँ हैं, कहारों जोड़ी होनी चाहिए। पाँच होने से जोड़ी नहीं है, इसलिए विषम हैं, एक से नहीं हैं और पाँचों ही इन्द्रियाँ विषय-भोगों के पीछे मतवाली हो रही है। कुकर्मों के कारण जब शरीर और मन ही तामस विषयाकार हैं, तब इन्द्रियाँ विषयों से हटी हुई कैसे हों ?) और वे पाँव बटोर कर समान पैर रखकर नहीं चलते। (इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर दौड़ती हैं) इससे कभी ऊँचे कभी नीचे चलने से धक्के और झटके लग रहे हैं, इस खींचतान में बड़ा ही दुःख हो रहा है (कभी स्वर्ग या कीर्ति आदि की इच्छा से धर्म कार्य में, कभी भोगों की प्राप्ति के लिए संसार के विविध व्यवसायों में, कभी कामवश होकर स्त्रियों के पीछे। सो भी समान भाव से नहीं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन अपने-अपने विषयों द्वारा कभी ऊँचे और कभी नीचे जाती हैं, फलस्वरूप जीव महान् - क्लेश पाता है)। रास्ते में काँटे बिछे है, कंकड़ पड़े है (विषैली) बेलें लपेटती है और झाड़ियाँ उलझा लेती हैं, इस प्रकार जगह-जगह रुकना पड़ता है। (परमात्मा को भुलाकर सांसारिक विषयों के घने जंगल में दौड़ने वाली इन्द्रियों को विषय-नाश रूपी काँटे, प्रतिकूल विषय रूपी कंकड, घर परिवार की ममता रूपी लपेटने वाली बेलें और कामना रूपी उलझन है, जिनसे पद-पद पर रुक कर दुःख भोगते हुए चलना पड़ता है।) फिर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं त्यों-ही-त्यों अपना घर दूर होता

चला जा रहा है। (संसार के भोगों में ज्यों-ज्यों मन फँसता है त्यों-ही-त्यों भगवत् प्राप्ति रूप निज-निकेतन दूर होता जाता है) और कोई राह बताने वाला भी नहीं है। (विषयी पुरुष संतों का संग ही नहीं करते, फिर उन्हें सीधा परमार्थ का रास्ता कौन बतावे? संग वाले तो उल्टा ही मार्ग बतलाते हैं)। मार्ग बड़ा कठिन है, (विषयों के झाड़-झंखाड़ों और पहाड़ जंगलों से परिपूर्ण है) साथ में (भजन रूपी) राह खर्च नहीं है, यहाँ तक कि अपने गांव का नाम तक भूल गये हैं। (भूलकर भी परमात्मा का नाम नहीं लेते और परमात्मास्वरूप पर विचार नहीं करते, अतएव भगवान् की कृपा बिना इस शरीर के द्वारा तो परम पद रूपी घर पहुँचना असम्भव ही है), इसलिए हे श्रीराम जी! अब आप ही कृपा करके इस तुलसीदास के (जन्म-मरण-रूपी) संसार-भय को दूर कीजिए॥

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु हीते॥१॥
सहसबाहु, दसवदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम-हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥२॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अतहुँ तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अब हीते॥३॥
अब नाथहिं अनुराग, जागु जड़, त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घीते॥४॥

सरल अर्थ—'अरे मन! (मनुष्य-जन्म की आयु का यह) सुअवसर बीत जाने पर तुझे पछताना पड़ेगा। इसलिए इस दुर्लभ मनुष्य-शरीर को पाकर कर्म, वचन और हृदय से भगवान् के चरण-कमलों का भजन कर। सहस्रबाहु और रावण आदि (महाप्रतापी) राजा भी—बलवान् काल से नहीं बच सके, उन्हें भी मरना पड़ा। जिन्होंने 'हम-हम' करते हुए धन और धाम सँभाल कर रखे थे, वे भी अन्त समय में यहाँ से खाली हाथ ही चले गये (एक कौड़ी भी साथ न गई)। पुत्र, स्त्री-आदि को स्वार्थी समझ इन सबसे प्रेम न कर। अरे अधम! जब ये सब तुझे अन्त समय में छोड़ ही देंगे तो तू इन्हें अभी से क्यों नहीं छोड़ देता? (इनका मोह छोड़कर अभी से भगवान् में प्रेम क्यों नहीं करता?)। अरे मूर्ख! (अज्ञान निद्रा से) जाग, अपने स्वामी (श्री रघुनाथ जी) से प्रेम कर और हृदय से (सांसारिक विषयों से सुख की) दुराशा को त्याग दे, (विषयों में सुख है ही नहीं, तब मिलेगा कहाँ से?)—हे तुलसी-दास! जैसे अग्नि बहुत सा घी डालने से नहीं बुझती (अधिक प्रज्वलित होती है) वैसे ही यह कामना भी ज्यों-ज्यों विषय मिलते हैं त्यों-ही-त्यों बढ़ती जाती है। (यह तो संतोष रूपी जल से ही बुझ सकती है)॥

पन करि हौं हठि आजुतें रामद्वार पर्‌यो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनमभरि,
प्रभु की सौंकरि निबर्‌यो हौं॥१॥

दै दै धक्का जमभट थकै टारै न टर्‌यो हौं।
उदर दुसह सांसति सही बहुबार जनमि जग,
नरकि निदर निकर्‌यो हौं ॥२॥
हौं मचला लै छाड़िहौं, जेहि लागि अर्‌यो हौं।
तुम दयालु, बनि है दिये,बलि, बिलंब न कीजिए,
जात गलानि गर्‌यो हौं ॥३॥
प्रगट कहत जो सकुचिये अपराध-भर्‌यो हौं।
तो मनमें अपनाइये, तुलसिहिं कृपा करि,
कलि बिलोकि हहर्‌यो हौं ॥४॥

सरल अर्थ—हे श्री राम जी! आज से मैं सत्याग्रह करने की प्रतिज्ञा करके आपके द्वार पर पड़ गया हूँ, जब तक आप यह न कहेंगे कि 'तू मेरा है' तब तक मैं यहां से जीवन भर नहीं उठूंगा, यह मैं आपकी शपथ खाकर कह चुका हूं। (यह न समझिएगा कि पुलिस के धक्के खाकर मैं उठ जाऊंगा।) यमदूत मुझे धक्के मार-मार कर थक गये, मुझे जबरदस्ती नरक के द्वार से हटाना चाहा, पर मैं वहां से उनके हटाये हटा ही नहीं। (इतने अधिक पाप किए कि अनेक जीवन नरक में ही बीते)। संसार में बार-बार जन्म लेकर (माता के) पेट की असह्य पीड़ा को सहा, तब कहीं नरक का निरादर कर वहां से निकला हूँ। जिस चीज के लिए मचल गया हूँ और अड़ बैठा हूँ—उसे लेकर ही छोड़ूंगा, क्योंकि आप दयालु हैं, (मेरा अड़ना देखकर अंत में) आपको वह चीज देनी ही पड़ेगी। मैं आप की बलैया लेता हूँ (जब देनी ही है तब तुरन्त दे डालिए) देर न कीजिये, क्योंकि मैं ग्लानि के मारे गला जाता हूँ (लोग कहेंगे कि ऐसे दयालु स्वामी के द्वार पर धरना दिये इतने दिन बीत गये, इसलिए तुरन्त इतना कह दीजिए की 'तुलसी मेरा है।' बस, इतना सुनते ही मैं धरना त्याग दूंगा)। मैं अपराधों से भरा हूँ, इस कारण से यदि आपको सबके सामने प्रकट में कहते सकोच होता है तो कृपा कर मन में ही तुलसी को अपना लीजिए, क्योंकि मैं कलि को देखकर बहुत घबरा गया हूँ॥

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिर परिहै।
जेहि सुभाव विषयनि लग्यौ, तेहि सहज नाथ सो नेह छाड़ि छल करि है ॥१॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डरि है।
अपनो सो स्वारथ स्वामिसों,चहुँ बिधि चातक ज्यो एक टेकते नहिं टरि है॥२॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि-लाभ-दुख-सुख सबै समचित हित अनहित,कलि-कुचाल परिहरिहैं॥३॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषि है, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को, बिश्वास, प्रेम लखि आनंद उमगि उर भरि है ॥४॥

सरल अर्थ—जब मेरा मन (आपकी ओर को) फिर जाएगा, तभी मैं समझूंगा कि आपने मुझे अपना लिया। जब यह मन, जिस सहज स्वभाव से ही विषयों में लग

रहा है उसी प्रकार कपट छोड़कर आपके साथ प्रेम करेगा (जब तक ऐसा नहीं होता तब तक मैं कैसे समझूं कि मुझको आपने अपना दास मान लिया)। जैसे मेरा वह मन पुत्र से प्रेम करता है, मित्र पर विश्वास करता है और राज-भय से डरता है, वैसे ही जब वह अपना सब स्वार्थ केवल स्वामी से ही रक्खेगा और चारों ओर से चातक की तरह अपनी अनन्य टेक से नहीं टलेगा (एक प्रभु पर ही निर्भर करेगा)। अत्यन्त आदर पाने पर जब उसे हर्ष न होगा, निरादर होने पर वह जलकर न मरेगा और हानि-लाभ, सुख-दुख, भलाई-बुराई सबमें चित्त को सम रक्खेगा और कलिकाल की कुचालों को (सर्वथा) छोड़ देगा (तभी मानूंगा कि नाथ मुझे अपना रहे है)। और जब मेरा मन प्रभु का गुणानुवाद सुनते ही हर्ष में विह्वल हो जाएगा, मेरे नेत्रों से प्रेम के आँसुओं की धारा बहने लगेगी तभी तुलसीदास को यह विश्वास होगा कि वह श्री राम जी का हो गया। तब उस (अनन्य) प्रेम को देखकर हृदय में आनन्द उमड़ कर भर जाएगा (हे प्रभो ! शीघ्र ही अपना कर मेरी ऐसी दशा कर दीजिये)॥

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम ! बिनु रावरे लोकहु परलोकहु, कोउ न कहूँ हितु मेरो ॥१॥
अगुन-अलायक-आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजराको-सो टोटक, औचट उलटि न हेरो ॥२॥
भगतिहीन, वेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो।
देवनिहू देव ! परिहर्‌यो अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो ॥३॥
नाम की ओट पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो।
जगत विदित बात ह्वै परी, समुझिये धौं अपने लोक कि बेद बड़ेरो ॥४॥
ह्वै है जब-तब तुम्हहि ते तुलसी को भलेरो।
दिन हू-दिन दीन ! बिगरि है, बलि जाउं, बिलंब किये, अपनाइए सबेरो ॥५॥

सरल अर्थ—हे श्रीराम जी ! आप मुझ पर मन मैला न कीजिए, मेरी ओर से अपनी (कृपा की) नजर न फिराइए। (मुझको दोषी न समझकर न तो क्रोध कीजिए और न अपनी कृपा दृष्टि ही हटाइए)। हे नाथ सुनिये, इस लोक और परलोक में आपको छोड़कर मेरा कल्याण करने वाला कोई दूसरा नहीं है। मुझे गुणहीन, नालायक, आलसी, नीच अथवा दरिद्र और निकम्मा समझकर (जगत के) स्वार्थ के संगियों ने तिजारी के टोट की तरह छोड़ दिया और फिर भूल कर भी पलट कर मुझे नहीं देखा। (स्वार्थ छूटते ही ऐसा छोड़ दिया कि फिर कभी याद तक नहीं किया)। मुझे भक्ति हीन वेदोक्त मार्ग से बाहर एवं कलियुग के पापों से घिरा हुआ देखकर, हे नाथ ! देवताओं ने भी छोड़ दिया। इसमें उनका कोई अन्याय भी नहीं है, क्योंकि मैं सभी का अपराधी हूँ। मैं तो बस, आपके नाम की ओट लेकर पेट भर रहा हूँ, इतने पर भी आपका दास कहलाता हूँ और यह बात सारा संसार जान गया है। अब आप ही विचार कीजिए कि संसार बड़ा है या वेद ? (वेदों की विधि को देखते तो मैं आपका दास नहीं हूँ, परन्तु जब संसार मुझको आपका दास मानता और कहता

है, तब आपको भी यही स्वीकार कर लेना चाहिये। तुलसी का भला तो जब कभी होगा, तब आपके ही द्वारा होगा (आखिर जब आपको मेरा कल्याण करना ही पड़ेगा तो शीघ्र ही कर देना उत्तम है)। मैं आपकी बलैया लेता हूँ यदि आप देर करेंगे, तो यह गरीब दिन-पर-दिन बिगड़ता ही जाएगा। (तब सुधारने में भी अधिक कष्ट होगा) इसलिए मुझे शीघ्र ही अपना लीजिये ॥

द्वार-द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनी दस दिसा, दुख-दोष-दलन-छम, कियो न संभाषन काहूँ ॥१॥
तनु जनतेउ कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु-पिता हूँ।
काहे को रोष,दोष काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ ॥२॥
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु-पाँवर-पातकी परिहरे न सरन गये, रघुबर ओर निबाहूँ ॥३॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति बिनाहूँ।
नाम की महिमा सील नाथ को,मेरो भलो बिलोकि अब तें सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥४॥

सरल अर्थ — हे नाथ ! मैं द्वार-द्वार पर दाँत निकाल कर और पैरों पड़-पड़कर अपनी दीनता सुनाता फिरा। दुनियाँ में ऐसे-ऐसे दयालु है, जो दसों दिशाओं के दुखों और दोषों के दमन करने में समर्थ है, किन्तु मुझसे तो किसी ने बात भी नहीं की। माता-पिता ने मुझे ऐसा त्याग दिया, जैसे कुटिल कीड़ा अर्थात् सर्पिणी अपने ही शरीर से जने हुए (बच्चे) को त्याग देती है। मैं किसलिए तो क्रोध करूँ और किसको दोष दूँ। यह सब मेरे ही दुर्भाग्य से हुआ। (ऐसा नीच हूँ कि) मेरी छाया तक छूने में भी लोग संकोच करते है। मुझे दुखी देखकर सन्तों ने कहा कि तू मन में चिन्ता न कर। तुझ सरीखे पामर और पापी पशु पक्षियों तक को शरण में जाने पर भी रघुनाथ जी ने नहीं त्यागा और अपनी शरण में रखकर इनका अन्त तक निर्वाह किया (तू भी उन्हीं की शरण में जा)। यह तुलसी तभी से आपका हो गया और आप पर इसकी प्रीति-प्रतीति न होने पर भी अभी से यह बड़े सुख में भी है (प्रीति-प्रतीति होती, तो आनन्द की कोई सीमा ही न रहती।) हे नाथ ! आपके नाम की महिमा तथा शील ने (मेरी-नालायकी होने पर भी) मेरा कल्याण किया, यह देखकर अब मैं मन-ही-मन सकुचाता हूँ (इसलिए कि मैंने कृपापात्र होने योग्य तो एक भी कार्य नहीं किया, फिर भी मुझ कृतघ्न पर प्रभु की ऐसी कृपा है) और आपकी शरणागत वत्सलता की प्रशंसा करता हूँ ॥

राम राय ! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो ?
स्वामी सहित सबसों कहौं, सुनि-गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥१॥
देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किये बिचार सार कदलि ज्यों,मनि कनक संग लघु लसत बीच बिच काँचो ॥२
'बिनय-पत्रिका' दीनकी, बापु ! आपु ही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिये पाँचो ॥३॥

सरल अर्थ—हे महाराज श्री रामचन्द्र जी। आपको छोड़कर मेरा सच्चा हितू और कौन है ? मैं अपने स्वामी सहित सभी से कहता हूँ, उसे सुन-समझकर यदि कोई और बड़ा हो, तो दूसरी लकीर खींच दीजिए। शरीर और जीवात्मा के सम्बन्ध के जितने सखा या हितू मिलते हैं. वे सब (असत्) मिथ्या टांकों से सिले हुए हैं (संसार के सभी सम्बन्ध मायिक हैं) विचार करने पर ये 'सखा' केले के पेड़ के सार के समान है। (जैसे केले के पेड़ को छीलने पर छिलके ही निकलते है, वैसे ही संसार के सारे सम्बन्ध भी सार हीन केवल अज्ञात जनित ही हैं) ये वैसे ही सुन्दर जान पड़ते हैं, जैसे मणि-सुवर्ण के संयोग से बीच-बीच क्षुद्र काँच भी शोभा देता है। हे बाप जी ! इस दीन की लिखी 'विनय-पत्रिका' को तो आप स्वयं ही पढ़िये (किसी दूसरे से न पढ़वाइये)। तुलसी ने इसमें अपने हृदय की सच्ची बातें ही लिखी हैं, इस पर पहले आप अपने (दयालु) स्वभाव से 'सही' बना दीजिए। फिर पीछे पंचों से पूछिये ॥'

पवन-सुवन ! रिपु-दवन ! भरत लाल ! लखन ! दीन की।
निज-निज अवसर सुधि किये, बलि जाउं, दास-आस पूजि है खास खीन की ॥१॥
राज-द्वार भली सब कहैं साधु-समीचीन की।
सुकृत-सुजस साहिब कृपा, स्वारथ-परमारथ, गति भये गति-बिहीन की ॥२॥
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की।
प्रीति-रीति समुझाइबी नत पाल, कृपालुहि पर मिति पराधीन की ॥३॥

सरल अर्थ—हे पवन कुमार ! हे शत्रुघ्न जी ! हे भरत लाल जी ! हे लखनलाल जी ! अपने-अपने अवसर से (मौका लगते ही) इस दीन तुलसी को याद करना। मैं आप लोगों की वलैया लेता हूँ। आपके (कृपापूर्वक) ऐसा करने से इस सर्वथा दुर्बलदास की आशा पूरी हो जायगी (श्री रघुनाथ जी मेरी पत्रिका पर 'सही' कर देंगे)। राज दरबार में सच्चे साधुओं की तो सभी अच्छी कहते है, इसमें क्या विशेषता है ? किन्तु यदि आप लोग इस शरण रहित दीन की सिफारिश कर देंगे तो इसको भगवान् की शरण मिल जायेगी। आपको पुण्य होगा और सुन्दर यश फैलेगा, आपके स्वामी आप पर कृपा करेंगे (क्योंकि वह दीनों पर दया करने वालों पर स्वाभाविक ही प्रसन्न हुआ करते है)। आपके स्वार्थ और परमार्थ दोनों बन जायेंगे। इसलिए अवसर देखकर (मौका पाते ही) इस पतित तुलसी की बात सुधार देना। शरणागत वत्सल कृपालु रघुनाथ जी से मुझ पराधीन के प्रेम की रीति की हद को समझाकर कह देना ॥

मारुति-मन, रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ ! नाम सों परतीति-प्रीति, एक किंकर को निबही है ॥१॥
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है ॥२॥

बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है'।
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है ॥३॥

प्रसंग - भगवान् श्री राम का दिव्य दरबार लगा है, प्रभु जगज्जननी श्री जानकी जी के सहित आलौकिक यह रत्न जटित राज्य सिंहासन पर विराजमान हैं। हनुमान् जी प्रेममग्न हुए, नाथ की ओर से अनन्य दृष्टि से निहारते हुए चरण दबा रहे हैं। भरत जी, लक्ष्मण जी और शत्रुघ्न जी अपने-अपने अधिकारानुसार सेवा में संलग्न हैं। उसी समय तुलसीदास जी की 'विनय पत्रिका' पहुँची। तुलसीदास जी की प्रार्थना सबको याद थी। भक्त प्रिय मारुति श्री हनुमान् और भरत ने धीरे से लक्ष्मण जी से कहा कि बड़ा अच्छा मौका है, इस समय तुलसीदास की बात छेड़ देनी चाहिए। लक्ष्मण जी ने उनका रुख देखकर प्रभु की सेवा में 'विनय पत्रिका' पेश कर दी॥

सरल अर्थ—हनुमान् जी और भरत जी का मन और उनकी रुचि को देखकर लक्ष्मण जी ने भगवान् से कहा कि हे नाथ ! कलियुग में भी आपके एक दास की आपके नाम से प्रीति और प्रतीति निभ गई (देखिये उसकी यह सच्ची विनय-पत्रिका भी आई है)। इस बात को सुनकर सारी सभा एक मत से कह उठी कि हाँ यह बात सर्वथा सत्य है, हम लोग भी उसकी रीति जानते हैं। गरीब-निवाज भगवान् श्री राम जी की उस पर (बड़ी) कृपा है। स्वामी ने सबके देखते-देखते उस गरीब की बाँह पकड़ कर उसे अपना लिया है। सबकी बात सुनकर श्री राम जी ने मुसकरा कर कहा कि हाँ, यह सत्य है, मुझे भी उसकी खबर मिल गई है (श्री जनकनन्दिनी जी कई बार कह चुकी होंगी, क्योंकि गोसाईं जी पहले उनसे प्रार्थना कर चुके हैं) बस, फिर क्या था—अनाथ तुलसी की रची हुई विनय-पत्रिका पर रघुनाथ जी ने अपने हाथ से 'सही' कर दी। अपनी बात बनने पर मैंने भी परम प्रसन्न होकर भगवान् के श्री चरणों में सिर टेक दिया (सदा के लिए शरण हो गया)॥

□□

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

१०. श्री रामचरितमानस

प्रथम सोपान

(बालकाण्ड)

श्लोक—वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥१॥

सरल अर्थ—अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मंगलों की करने वाली सरस्वती जी और गणेश जी की मैं वन्दना करता हूँ।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥२॥

श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वती जी और श्री शंकर जी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥३॥

ज्ञानमय, नित्य, शंकर रूपी गुरु की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥४॥

श्री सीताराम जी के गुण समूह रूपी पवित्र वन में विहार करने वाले, विशुद्ध विज्ञान-सम्पन्न कवीश्वर श्री वाल्मीकि जी और कवीश्वर श्री हनुमान् जी की मैं वन्दना करता हूँ।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥५॥

उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली श्री रामचन्द्र जी की प्रियतमा श्री सीता जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः॥
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥६॥

जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिये एक मात्र नौका हैं, उन समस्त कारणो से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहाने वाले भगवान् हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमति मञ्जुल मातनोति॥७॥

अनेक पुराण, वेद और (तन्त्र) शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण मे वर्णित हैं और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथ जी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भाषा रचना मे विस्तृत करता है।

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥१॥

सरल अर्थ—जिन्हे स्मरण करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं, जो गणो के स्वामी और सुन्दर हाथी के मुख वाले हैं, वे ही बुद्धि के राशि और शुभ गुणो के धाम (श्री गणेश जी) मुझ पर कृपा करें।

मूक होइ बाचाल पंगु चढइ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥२॥

सरल अर्थ—जिनकी कृपा से गूंगा बहुत उत्तम बोलने वाला हो जाता है और लगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ जाता है, वे कलियुग के सब पापो को जला डालने वाले दयालु (भगवान्) मुझ पर द्रवित हो (दया करें)।

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन॥३॥

सरल अर्थ—जो नील कमल के समान श्याम वर्ण हैं, पूर्ण खिले हुये लाल कमल के समान जिनके नेत्र है और जो सदा क्षीर सागर मे शयन करते है वे (भगवान् नारायण) मेरे हृदय मे निवास करें।

कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन॥४॥

सरल अर्थ—जिनका कुन्द के पुष्प और चन्द्रमा के समान (गौर) शरीर है, श्री पार्वती जी के प्रियतम और दया के धाम हैं और जिनका दीनो पर स्नेह है, वे कामदेव का नाश करने वाले (शंकर जी) मुझ पर दया करें।

वंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।५।।

सरल अर्थ—मैं उन गुरु के चरणकमल की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर रूप में श्री हरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अन्धकार के नाश करने के लिये सूर्य-किरणों के समूह हैं।

चौ०—बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू ।।
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती ।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी ।।
श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।।
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू ।।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक ।।

सरल अर्थ—मैं श्री गुरु के चरण-कमलों की रज की वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि (सुन्दर स्वाद), सुगन्ध तथा अनुरागरूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुन्दर चूर्ण है, जो सम्पूर्ण भव-रोगों के परिवार को नाश करनेवाला है। वह रज सुकृती (पुण्यवान पुरुष) रूपी शिव जी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुन्दर कल्याण और आनन्द की जननी है, भक्त के मनरूपी सुन्दर दर्पण के मैल को दूर करनेवाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करनेवाली है। श्री गुरु महाराज के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने वाला है, वह जिसके हृदय में आ जाता है उसके बड़े भाग्य हैं। उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते है और संसार रूपी रात्रि के दोष-दुःख मिट जाते हैं एवं श्री रामचरितरूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान में है, सब दिखाई पड़ने लगते हैं।

दोहा—जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ।।१।।

सरल अर्थ—जैसे सिद्धांजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अन्दर कौतुक (आश्चर्य) से ही बहुत सी खानें देखते हैं।

चौ०-गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष बिभंजन ।।
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ रामचरित भव मोचन ।।
बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना ।।
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ।।

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जस पावा॥
मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥
बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रविनंदनि बरनी॥
हरिहर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सरल अर्थ—श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुन्दर नयनामृत-अंजन है, जो नेत्रों के दोषों का नाश करनेवाला है। उस अंजन से विवेकरूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसाररूपी बन्धन से छुड़ानेवाले श्री रामचरित्र का वर्णन करता हूँ। पहले पृथ्वी के देवता ब्राह्मण के चरणों की वन्दना करता हूँ, जो अज्ञान से उत्पन्न सब सन्देहों को हरने वाले है। फिर सब गुणों की खान संत-समाज को प्रेम सहित सुन्दर वाणी से प्रणाम करता हूँ। संतों का चरित्र कपास के चरित्र (जीवन) के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपास की डोडी नीरस होती है, सत-चरित्र में भी विषयाशक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है, कपास उज्ज्वल होता है, संत का हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकार से रहित होता है, इसलिए वह विशद है, और कपास में गुण (तन्तु) होते है, इसी प्रकार सत का चरित्र भी सद्गुणों का भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है।) (जैसे कपास का धागा सुई के किए हुए छेद को अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढे जाने, काते जाने और बुने जाने का कष्ट सह कर भी वस्त्र के रूप में परिणत होकर दूसरों के गोपनीय स्थानों को ढकता है, उसी प्रकार) सत स्वयं दुःख सह कर दूसरो के छिद्रों (दोषों) को ढकता है, जिसके कारण उसने जगत् में वन्दनीय यश प्राप्त किया है। संतो का समाज आनंद और कल्याणमय है, जो जगत् में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। जहाँ (उस संतसमाजरूपी प्रयागराज में) रामभक्तिरूपी गंगा जी की धारा है और ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती जी है। विधि और निषेध (यह करो और यह न करो) रूपी कर्मों की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली सूर्यतनया यमुना जी हैं और भगवान् विष्णु और श्री शंकर जी की कथाएँ त्रिवेणी रूप से सुशोभित है, जो सुनते ही सब आनंद और कल्याणों को देनेवाली है। (उस संतसमाजरूपी प्रयाग में) अपने धर्म में जो अटल विश्वास है वह अक्षयवट है और शुभ कर्म ही उस तीर्थराज का समाज (परिकर) है। वह (संत-समाजरूपी प्रयागराज) सब देशों में, सब समय सभी को सहज ही में प्राप्त हो सकता है और आदरपूर्वक सेवन करने से क्लेशों का नष्ट करनेवाला है।

दोहा—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥२॥

सरल अर्थ—जो मनुष्य इस संत-समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते और समझते हैं और फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फल पा जाते हैं।

चौ०-मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सत संगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
बिधि हरिहर कवि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुन गन जैसे॥

सरल अर्थ - उनमें से जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्‌गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पायी है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है। सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और श्री रामचन्द्र जी की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में मिलता नहीं। सत्संगति आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है और सब साधन तो फूल हैं। दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है (सुन्दर सोना बन जाता है)। किन्तु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार साँप का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टों के संग में रहकर भी दूसरों को प्रकाश ही देते हैं, दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।) ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और पंडितों की वाणी भी संत-महिमा का वर्णन करने में सकुचाती है, वह मुझसे किस प्रकार नहीं कही जाती, जैसे साग-तरकारी बेचने वाले से मणियों के गुण समूह नहीं कहे जा सकते।

दोहा—बंदउँ सन्त समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥३॥

सरल अर्थ—मैं संतों को प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु। जैसे अंजलि में रक्खे हुए सुन्दर फूल (जिस हाथ ने फूलों को तोड़ा और जिसने उनको रखा उन) दोनों ही हाथों को समान रूप से सुगन्धित करते हैं (वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनों का ही समानरूप से कल्याण करते हैं)।

चौ०-बहुरि बंदि खल गन सति भाएं। जो बिनु काज दाहिनेहु बाएं ॥
परहित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरप बिषाद बसेरें ॥
हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से ॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिन्ह के मन माखी ॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा ॥
उदय केत सम हित सबही के। कुंभ करन सम सोवत नीके ॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं ॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा ॥
पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन पर दोष निहारा ॥

सरल अर्थ—अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है। जो हरि और हर के यश रूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए राहु के समान हैं (अर्थात् जहाँ कहीं भगवान् विष्णु और श्री शंकर के यश का वर्णन होता है, उसी में वे बाधा देते हैं) और दूसरों की बुराई करने में सहस्रबाहु के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हित रूपी घी के लिए जिनका मन मक्खी के समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिर कर उसे खराब कर देती है और स्वयं मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने बनाए काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं।) जो तेज (दूसरों को जलानेवाले ताप) में अग्नि और क्रोध में यमराज के समान हैं, पाप और अवगुण रूपी धन में कुबेर के समान धनी हैं, जिनकी बढ़ती सभी के हित का नाश करने के लिए केतु (पुच्छल तारे) के समान है, और जिनके कुम्भकर्ण की तरह सोते रहने में ही भलाई है। जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे दूसरों के काम बिगाड़ने के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टों को (हजार मुख वाले) शेष जी के समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो पराए दोषों का हजार मुखों से बड़े रोष के साथ वर्णन करते हैं। पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान् का यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे थे) के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानों से दूसरे के पापों को सुनते हैं। फिर इन्द्र के समान मानकर उनकी विनय करता हूँ, जिनको सुरा (मदिरा) नीकी और हितकारी मालूम देती है (इन्द्र के लिए भी सुरानीक अर्थात् देवताओं की सेना हितकारी है) जिनको कठोर वचनरूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखों से दूसरों के दोषों को देखते हैं।

दोहा—उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति ॥४॥

सरल अर्थ—दुष्टों की यह रीति है कि वे उदासीन शत्रु अथवा मित्र, किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है।

चौ०-बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

सरल अर्थ—अब मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ, दोनों ही दुःख देने वाले हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अन्तर यह है कि एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिलते हैं तब दारुण दुःख देते हैं (अर्थात् संतों का बिछुड़ना मरने के समान दुःखदायी होता है और असंतों का मिलना)। दोनों (संत और असंत) जगत् में एक साथ पैदा होते हैं, पर (एक साथ पैदा होने वाले) कमल और जोंक की तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, किन्तु जोंक शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृत के समान (मृत्यु रूपी संसार से उबारनेवाला) और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करने वाला) है, दोनों को उत्पन्न करनेवाला जगत्रूपी अगाध समुद्र एक ही है। (शास्त्रों में समुद्र-मन्थन से ही अमृत और मदिरा दोनों की उत्पत्ति बताई गई है।) भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुन्दर यश और अपयश की सम्पत्ति पाते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गंगा जी और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुग के पापों की नदी अर्थात् कर्मनाशा और हिंसा करनेवाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं, किन्तु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है।

दोहा—भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरतां गरल सराहिअ मीचु ॥५॥

सरल अर्थ—भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचता को ही ग्रहण किए रहता है। अमृत की सराहना अमर करने में होती है और विष की मारने में।

दोहा—जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥६॥

सरल अर्थ—विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है। किन्तु संत रूपी हंस दोष रूपी जल को छोड़कर गुण रूपी दूध को ही ग्रहण करते है।

चौ०-हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमरहिं राम देहिं गनि गारी॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

सरल अर्थ—बुरे संग से हानि और अच्छे संग से लाभ होता है। यह बात लोक और वेद मे है और सभी लोग इसको जानते है। पवन के संग से धूल आकाश पर चढ जाती है और वही नीच (नीचे की ओर बहने वाले) जल के संग से कीचड मे मिल जाती है। साधु के घर के तोता-मैना राम-राम सुमिरते हैं और असाधु के घर के तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते है। कुसंग के कारण धुआँ कालिख कहलाता है, वही धुआँ (सुसंग से) सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखने के काम आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवन के संग से बादल होकर जगत् को जीवन देने वाला बन जाता है।

दोहा—ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥७क॥

सरल अर्थ—ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसार मे बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस बात को जान पाते हैं।

दोहा—सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥७ख॥

सरल अर्थ—महीने के दोनो पखवाड़ो मे उजियाला और अँधेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाता ने इनके नाम मे भेद कर दिया है (एक का नाम शुक्ल और दूसरे का नाम कृष्ण रख दिया)। एक को चन्द्रमा का बढानेवाला और दूसरे को उसका घटानेवाला समझकर जगत् ने एक को सुयश और दूसरे को अपयश दे दिया।

दोहा—जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥७ग॥

सरल अर्थ—जगत् मे जितने जड़ और चेतन जीव हैं, सबको राममय जानकर मैं उन सबके चरण कमलो की सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।

चौ०-आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू ।।
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं ।।
करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा ।।
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ ।।
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी ।।
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई ।।

सरल अर्थ—चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज) जीव, जल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं। उन सबसे भरे हुए इस सारे जगत् को श्री सीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। मुझको अपना दास जानकर कृपा की खान आप सब लोग मिलकर छल छोड़कर कृपा कीजिए। मुझे अपने बुद्धि बल का भरोसा नहीं है, इसीलिए मैं सबसे विनती करता हूँ। मैं श्री रघुनाथ जी के गुणों का वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है; और श्री रामचन्द्र जी का चरित्र अथाह है। इसके लिए मुझे उपाय का एक भी अंग अर्थात् कुछ (लेश मात्र) भी उपाय नहीं सूझता। मेरे मन और बुद्धि कंगाल हैं, किन्तु मनोरथ राजा है। मेरी बुद्धि तो अत्यन्त नीची है और चाह बड़ी ऊँची है, चाह तो अमृत पाने की है, पर जगत् में जुड़ती छाछ भी नहीं। सज्जन मेरी ढिठाई को क्षमा करेंगे और मेरे बालवचनों को मन लगाकर (प्रेमपूर्वक) सुनेंगे।

दोहा—भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास ।।८।।

सरल अर्थ—मेरा भाग्य छोटा है और इच्छा बहुत बड़ी है, परन्तु मुझे एक विश्वास है कि इसे सुनकर सज्जन सभी सुख पायेंगे और दुष्ट हँसी उड़ावेंगे।

चौ०-खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा ।।
हंसहि बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही ।।
कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू ।।
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ।।
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ।।
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की ।।
राम भगति भूपित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ।।
कबि न होउँ नहि बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू ।।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना ।।
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ।।
कबित बिबेक एक नहि मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें ।।

सरल अर्थ—किंतु दुष्टों के हँसने से मेरा हित ही होगा। मधुर कंठवाली कोयल को कौए तो कठोर ही कहा करते हैं। जैसे बगुले हंस को और मेंढक पपीहे को हँसते

हैं वैसे ही मलिन मनवाले दुष्ट निर्मल वाणी को हँसते है। जो न तो कविता के रसिक हैं और न जिनका श्री रामचन्द्र जी के चरणो मे प्रेम है, उनके लिए भी यह कविता सुखद हास्यरस का काम देगी। प्रथम तो यह भाषा की रचना है, दूसरे मेरी बुद्धि भोली है, इससे यह हँसने के योग्य ही है, हँसने मे उन्हे कोई दोष नही। जिन्हे न तो प्रभु के चरणों मे प्रेम है और न अच्छी समझ ही है, उनको यह कथा सुनने मे फीकी लगेगी। जिनकी श्री हरि (भगवान् विष्णु) और श्री हर (भगवान् शिव) के चरणो मे प्रीति है, और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नही है (जो श्री हरि-हर मे भेद) या ऊँच नीच की कल्पना नहीं करते), उन्हे श्री रघुनाथ जी की यह कथा मीठी लगेगी। सज्जनगण इस कथा को अपने जी मे श्री रामचन्द्र जी की भक्ति भूषित जानकर सुन्दर वाणी से सराहना करते हुए सुनेंगे। मैं न तो कवि हूँ, न वाक्य रचना मे ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाओ तथा सब विद्याओ से रहित हूँ। नाना प्रकार के अक्षर, अर्थ और अलंकार, अनेक प्रकार की छंद रचना, भावो और रसो के अपार भेद और कविता के भाँति-भाँति के गुण-दोष होते हैं। इनमे से काव्य-सम्बन्धी एक भी बात का ज्ञान मुझमे नही है, यह मैं कोरे कागज पर लिखकर (शपथपूर्वक) सत्य-सत्य कहता हूँ।

दोहा—भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक ॥९॥

सरल अर्थ—मेरी रचना सब गुणो से रहित है; इसमे बस जगत्प्रसिद्ध एक गुण है। उसे विचार कर अच्छी बुद्धिवाले पुरुष जिनके निर्मल ज्ञान है, इसको सुनेंगे।

चौ०-एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥
भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधु बदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥
सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुन ग्राही॥
जदपि कबित रस एकउ नाही। राम प्रताप प्रकट एहि माही॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा॥
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी॥

सरल अर्थ—इसमें श्री रघुनाथ जी का उदार नाम है, जो अत्यन्त पवित्र है, वेद पुराणो का सार है, कल्याण का भवन है और अमंगलों को हरने वाला है, जिसे पार्वती जी सहित भगवान् शिव जी सदा जपा करते हैं। जो अच्छे कवि के द्वारा रची हुई बड़ी अनूठी कविता है, वह भी राम नाम के बिना शोभा नही पाती, जैसे

चंद्रमा के समान मुखवाली सुन्दर स्त्री सब प्रकार से सुसज्जित होने पर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं देती। इसके विपरीत, कुकवि की रची हुई सब गुणों से रहित कविता को भी, राम के नाम एवं यश से अंकित जानकर, बुद्धिमान् लोग आदरपूर्वक कहते और सुनते हैं, क्योंकि सन्त जन भौंरे की भाँति गुण ही को ग्रहण करनेवाले होते हैं। यद्यपि मेरी इस रचना में कविता का एक भी रस नहीं है, तथापि इसमें श्री रामचंद्र जी का प्रताप प्रकट है। मेरे मन में यही एक भरोसा है। भले संग से भला, किसने बड़प्पन नहीं पाया? धुआँ भी अगर के संग से सुगन्धित होकर अपने स्वाभाविक कड़ुवेपन को छोड़ देता है। मेरी कविता अवश्य भद्दी है, परन्तु इसमें जगत् का कल्याण करने वाली रामकथा रूपी उत्तम वस्तु का वर्णन किया गया है (इससे यह भी अच्छी ही समझी जाएगी)।

छन्द—मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथकी॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री रघुनाथ जी की कथा कल्याण करनेवाली और कलियुग के पापों को हरनेवाली है। मेरी इस भद्दी कविता रूपी नदी की चाल पवित्र जलवाली नदी (गंगा जी) की चाल की भाँति टेढ़ी है। प्रभु श्री रघुनाथ जी के सुन्दर यश के संग से यह कविता सुन्दर तथा सज्जनों के मन को भानेवाली हो जाएगी। श्मशान की अपवित्र राख भी श्री महादेव जी के अंग के संग से सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करनेवाली होती है।

दोहा—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग॥१०क॥

सरल अर्थ—श्री रामचंद्र जी के यश के संग से मेरी कविता सभी को अत्यन्त प्रिय लगेगी। जैसे मलय पर्वत के संग से काष्ठ मात्र (चंदन बनकर) वन्दनीय हो जाता है, फिर क्या कोई काठ (की तुच्छता) का विचार करता है?

दोहा—स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥१०ख॥

सरल अर्थ—श्याम गौ काली होने पर भी उसका दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है। यही समझकर सब लोग उसे पीते हैं। इस तरह गँवारू भाषा होने पर भी श्री सीता राम जी के यश को बुद्धिमान् लोग बड़े चाव से गाते और सुनते हैं।

चौ०-मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहिं सुकबि बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥

भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाएं। सो श्रम जाइ न कोटि उपाए॥
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥

सरल अर्थ—मणि, माणिक और मोती की जैसी सुन्दर छवि है, वह साप, पर्वत, और हाथी के मस्तक पर वैसी शोभा नहीं पाती। राजा के मुकुट और नवयुवती के शरीर को पाकर ही ये सब अधिक शोभा को प्राप्त होते हैं। इसी तरह बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि सुकवि की कविता भी उत्पन्न और कहीं होती है और शोभा अन्यत्र कहीं पाती है (अर्थात् कवि की वाणी से उत्पन्न हुई कविता वहाँ शोभा पाती है जहाँ उसका विचार, प्रचार तथा उसमे कथित आदर्श का ग्रहण और अनुसरण होता है)। कवि के स्मरण करते ही उसकी भक्ति के कारण सरस्वती जी ब्रह्मलोक को छोड़कर दौड़ी आती हैं। सरस्वती जी की दौड़ी आने की वह थकावट श्री रामचरित रूपी सरोवर में उन्हें नहलाए बिना दूसरे करोड़ो उपायो से भी दूर नहीं होती। कवि और पण्डित अपने हृदय में ऐसा विचार कर कलियुग के पापो को हरने वाले श्री हरि के यश का ही गान करते हैं। ससारी मनुष्यो का गुणगान करने से सरस्वती जी सिर धुनकर पछताने लगती हैं (कि मैं क्यों इसके बुलाने पर आयी)। बुद्धिमान् लोग हृदय को समुद्र, बुद्धि को सीप और सरस्वती को स्वाति नक्षत्र के समान कहते हैं।

जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुता मनि चारू॥

सरल अर्थ—इसमे यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल बरसता है तो मुक्ता मणि के समान सुन्दर कविता होती है।

दोहा—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं राम चरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥११॥

सरल अर्थ—उन कविता रूपी मुक्तामणियो को युक्ति से बेधकर फिर श्री रामचरित्र रूपी सुन्दर तागे मे पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय मे धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुराग उत्पन्न होता है और शोभा होती है (वे आत्यतिक प्रेम को प्राप्त होते हैं)।

चौ०-समुझि बिबिधि बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका॥
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

सरल अर्थ—मेरी अनेकों प्रकार की विनती को समझकर, कोई भी इस कथा

को सुनकर दोष नहीं देगा। इतने पर जो शंका करेंगे, वे तो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धि के कंगाल हैं। मैं न तो कवि हूँ और न चतुर कहलाता हूँ, अपनी बुद्धि के अनुसार श्री रामचन्द्र जी के गुण गाता हूँ। कहाँ तो श्री रघुनाथ जी के अपार चरित्र, कहाँ संसार में आसक्त मेरी बुद्धि। जिस हवा से सुमेरु जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, कहिए तो, उसके सामने रुई किस गिनती में है। श्री रामचन्द्र जी की असीम प्रभुता को समझकर कथा रचने में मेरा मन बहुत हिचकता है।

दोहा—सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ॥१२॥

सरल अर्थ—सरस्वती जी, शेष जी, शिव जी, ब्रह्मा जी, शास्त्र, वेद और पुराण—ये सब 'नेति नेति' कहकर (पार नहीं पाकर 'ऐसा नहीं', ऐसा नहीं' कहते हुए) सदा जिनका गुणगान किया करते हैं।

चौ०-सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहाँ वेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥
एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
व्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू॥

सरल अर्थ—यद्यपि श्री रामचन्द्र जी की प्रभुता को सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा। इसमें वेद ने ऐसा कारण बताया है कि भजन का प्रभाव बहुत तरह से कहा गया है। (अर्थात् भगवान् की महिमा का पूरा वर्णन तो कोई कर नहीं सकता, परन्तु जिससे जितना बन पड़े उतना भगवान् का गुणगान करना चाहिए। क्योंकि भगवान् के गुणगानरूपी भजन का प्रभाव बहुत ही अनोखा है, उसका नाना प्रकार से शास्त्रों में वर्णन है। थोड़ा-सा भी भगवान् का भजन मनुष्य को सहज ही भवसागर से तार देता है। जो परमेश्वर एक है, जिनके कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम हैं और जो सबमें व्यापक एवं विश्व रूप हैं उन्हीं भगवान् ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है। वह लीला केवल भक्तों के हित के लिए ही है, क्योंकि भगवान् परम कृपालु हैं और शरणागत के बड़े प्रेमी हैं। जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता और कृपा है, जिन्होंने एक बार जिस पर कृपा कर दी, उस पर फिर कभी क्रोध नहीं किया।

चौ०-गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥
तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

सरल अर्थ—वे प्रभु श्री रघुनाथ जी गई हुई वस्तु को फिर प्राप्त करानेवाले, गरीबनिवाज (दीनबन्धु), सरल स्वभाव, सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं। यही समझकर बुद्धिमान् लोग उन श्री हरि का यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और उत्तम फल (मोक्ष और दुर्लभ भगवत्प्रेम) देने वाली बनाते हैं। उसी बल से (महिमा का यथार्थ दर्शन नही, परन्तु महान् फल देनेवाला भजन समझकर भगवत्कृपा के बल पर ही) मैं श्री रामचन्द्र जी के चरणो मे सिर नवाकर श्री रघुनाथ जी के गुणो की कथा कहूँगा। इसी विचार से (वाल्मीकि, व्यास आदि) मुनियो ने पहले हरि की कीर्ति गाई है, भाई ! उसी मार्ग पर चलना मेरे लिए सुगम होगा।

दोहा—अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम-पारहि जाहिं ॥१३॥

सरल अर्थ—जो अत्यन्त बडी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि राजा उनपर पुल बँधा देता है तो अत्यन्त छोटी चीटियाँ भी उनपर चढकर बिना ही परिश्रम के पार चली जाती हैं (इसी प्रकार मुनियो के वर्णन के सहारे मैं भी श्री रामचरित का वर्णन सहज ही कर सकूँगा।

चौ०-एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई ॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥
चरन कमल बदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ॥
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने ॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें ॥
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू ॥
जो प्रबध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं ॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा ॥
तुम्हारी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥

सरल अर्थ—इस प्रकार मन को बल दिखला र मैं श्री रघुनाथ जी की सुहावनी कथा की रचना करूंगा। व्यास आदि जो अनेको श्रेष्ठ कवि हो गए हैं, जिन्होने बडे आदर से श्री हरि का सुयश वर्णन किया है, मैं उन सब (श्रेष्ठ कवियो) के चरणो मे प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथो को पूरा करें। कलियुग के भी उन कवियो को मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होने श्री रघुनाथ जी के गुण समूहो का वर्णन किया है। जो बडे बुद्धिमान् प्राकृत कवि हैं, जिन्होने भाषा मे हरि चरित्रो का वर्णन किया है, जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं, और जो आगे होंगे, उन सबको मैं सारा कपट त्यागकर प्रणाम करता हूँ। आप सब प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिए कि साधु-समाज मे मेरी कविता का सम्मान हो, क्योंकि बुद्धिमान्

लोग जिस कविता का आदर नहीं करते, मूर्ख कवि ही उसकी रचना का व्यर्थ परिश्रम करते हैं। कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा जी की तरह सबका हित करने वाली हो। श्री रामचंद्र जी की कीर्ति तो बड़ी सुन्दर (सबका अनन्त कल्याण करने वाली हो) है, परन्तु मेरी कविता भद्दी है। यह असामंजस्य है (अर्थात् इन दोनों का मेल नहीं मिलता), इसीकी मुझे चिन्ता है। परन्तु हे कवियों! आपकी कृपा से यह बात भी मेरे लिए सुलभ हो सकती है। रेशम की सिलाई टाट पर भी सुहावनी लगती है।

दोहा—सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराय रिपु जो सुनि करहिं बखान ॥१४क॥

सरल अर्थ—चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं, जो सरल हो, और जिसमें निर्मल चरित्र का वर्णन हो तथा जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक वैर भूलकर सराहना करने लगें।

दोहा—सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर ॥१४ख॥

सरल अर्थ—ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धि के होती नहीं और मेरे बुद्धि का बल बहुत ही थोड़ा है। इसलिए बार-बार निहोरा करता हूँ कि हे कवियों! आप कृपा करें, जिससे मैं हरि-यश का वर्णन कर सकूँ।

दोहा-कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल ॥१४ग॥

सरल अर्थ—कवि और पण्डितगण! आप जो रामचरित्र रूपी मानसरोवर के सुन्दर हंस हैं, मुझ बालक की विनती सुनकर और सुन्दर रुचि देखकर मुझ पर कृपा करें।

सो०-बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित ॥१४घ॥

सरल अर्थ—मैं उन वाल्मीकि मुनि के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायण की रचना की है, जो खर (राक्षस) सहित होने पर भी [खर (कठोर) से विपरीत] बड़ी कोमल और सुन्दर है तथा जो दूषण (राक्षस) सहित होने पर भी दूषण अर्थात् दोष से रहित है।

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु ॥१४ङ॥

सरल अर्थ—मैं चारों वेदों की वन्दना करता हूँ, जो संसार समुद्र के पार होने के लिए जहाज के समान हैं तथा जिन्हें श्री रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन करते स्वप्न में भी खेद (थकावट) नहीं होता।

बंदउँ बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी ॥१४च॥

सरल अर्थ—मैं ब्रह्मा जी के चरण-रज की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने भव-सागर बनाया है, जहाँ से एक ओर संत रूपी अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु निकले और दूसरी ओर दुष्ट मनुष्य रूपी विष और मदिरा उत्पन्न हुए।

दोहा-बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न परवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥१४छ॥

सरल अर्थ—देवता, ब्राह्मण, पण्डित, ग्रह—इन सबके चरणों की वन्दना करके हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप प्रसन्न होकर मेरे सारे सुन्दर मनोरथों को पूरा करें।

चौ०-पुनि बंदउँ सारद सुर सरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका॥
गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीन बन्धु दिन दानी॥

सरल अर्थ—फिर मैं सरस्वती जी और देव नदी गंगा जी की वन्दना करता हूँ। दोनों पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं। एक (गंगा जी) स्नान करने और जल पीने से पापों को हरती हैं और दूसरी (सरस्वती जी) गुण और यश कहने और सुनने से अज्ञान का नाश कर देती हैं। श्री महेश और पार्वती जी को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता-पिता हैं, जो दीनबन्धु और नित्य दान करनेवाले हैं।

चौ०-सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के॥
कलि बिलोक जगहित हर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रकट प्रभाउ महेस प्रतापू॥
सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥
भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं रामचरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥

सरल अर्थ—जो सीतापति श्री रामचंद्र जी के सेवक, स्वामी और सखा हैं, तथा मुझ तुलसीदास का सब प्रकार से कपटरहित (सच्चा) हित करने वाले हैं, जिन शिव-पार्वती ने कलियुग को देखकर, जगत् के हित के लिए शाबर मंत्र समूह की रचना की, जिन मंत्रों के अक्षर बेमेल हैं, जिनका न कोई ठीक अर्थ होता है और न जप ही होता है, तथापि श्री शिव जी के प्रताप से जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष है, वे उमापति शिव जी मुझ पर प्रसन्न होकर (श्रीरामजी की) इस कथा को आनंद और मंगल की मूल (उत्पन्न करने वाली) बनाएँगे। इस प्रकार पार्वती जी और शिव जी दोनों का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चाव भरे चित्त से श्री रामचरित्र का वर्णन करता हूँ। मेरी कविता श्री शिव जी की कृपा से ऐसी सुशोभित होगी, जैसी

तारागणों के सहित चन्द्रमा के साथ रात्रि शोभित होती है। जो इस कथा को प्रेम सहित एवं सावधानी के साथ समझ-बूझकर कहें-सुनेंगे, वे कलियुग के पापों से रहित और सुन्दर कल्याण के भागी होकर रामचन्द्र जी के चरणों के प्रेमी बन जाएँगे।

दोहा—सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ॥१५॥

सरल अर्थ—यदि मुझ पर श्री शिव जी और पार्वती जी की स्वप्न में भी सचमुच प्रसन्नता हो तो मैंने इस भाषा कविता का जो प्रभाव कहा है, वह सब सच हो।

चौ०-बंदउँ अवधपुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ॥
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥
बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची ॥
प्रगटेउ जहं रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू ॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी ॥
करउं प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता ॥

सरल अर्थ—मैं अति पवित्र श्री अयोध्यापुरी और कलियुग के पापों का नाश करने वाली श्री सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। फिर अवधपुरी के उन नर-नारियों को प्रणाम करता हूँ जिन पर श्री रामचन्द्र जी की ममता थोड़ी नहीं है (अर्थात् बहुत है)। उन्होंने (अपनी पुरी में रहनेवाले) सीता जी की निन्दा करने वाले (धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों) के पाप समूह को नाश कर उनको शोक रहित बनाकर अपने लोक (धाम) में बसा दिया। मैं कौशल्या रूपी पूर्व दिशा की वन्दना करता हूँ जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैल रही है। जहाँ (कौसल्या रूपी पूर्व दिशा) से विश्व को सुख देने वाले और दुष्ट रूपी कमलों के लिये पाले के समान श्री रामचन्द्र जी रूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए। सब रानियों सहित राजा दशरथ जी को पुण्य और सुन्दर कल्याण की मूर्ति मानकर मैं मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ। अपने पुत्र का सेवक जानकर वे मुझ पर कृपा करें, जिनको रचकर ब्रह्मा जी ने भी बड़ाई पाई तथा जो श्री रामचन्द्र जी के माता और पिता होने के कारण महिमा की सीमा हैं।

सो०—बंदउं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥१६॥

सरल अर्थ—मैं अवध के राजा श्री दशरथ जी की वन्दना करता हूँ, जिनका श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सच्चा प्रेम था और जिन्होंने दीनदयालु प्रभु के बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीर को मामूली तिनके की तरह त्याग दिया।

चौ०-प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू । जाहि राम पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ॥
बंदउँ लछिमन पद जल जाता । सीतल सुभग भगत सुख दाता ॥
रघुपति कीरति बिमल पताका । दंड समान भयउ जस जाका ॥
सेष सहस्रसीस जग कारन । जो अवतरेउ भूमि भय टारन ॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर । कृपा सिंधु सौमित्रि गुनाकर ॥
रिपुसूदन पद कमल नमामी । सूर सुसील भरत अनुगामी ॥
महावीर बिनवउँ हनुमाना । राम जासु जस आप बखाना ॥

सरल अर्थ—मैं परिवार सहित राजा जनक जी को प्रणाम करता हूँ, जिनका श्री रामचन्द्र जी के चरणों में गूढ़ प्रेम था, जिसको उन्होंने योग और भोग में छिपा रक्खा था, परन्तु श्री रामचन्द्र जी को देखते ही वह प्रकट हो गया । (भाइयों में) सबसे पहले मैं श्री भरत जी के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नहीं किया जा सकता तथा जिनका मन श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों में भौरे की तरह लुभाया हुआ है, कभी उनका पास नहीं छोड़ता । मैं श्री लक्ष्मण जी के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तों को सुख देने वाले है । श्री रघुनाथ जी की कीर्ति रूपी विमल पताका में जिनका (लक्ष्मण जी का) यश (पताका को ऊँचा करके फहराने वाले) दण्ड के समान हुआ । जो हजार सिर वाले और जगत् के कारण (हजार सिरों पर जगत् को धारण कर रखने वाले) शेष जी हैं, जिन्होंने पृथ्वी का भय दूर करने के लिए अवतार लिया, वे गुणों की खानि कृपा-सिन्धु सुमित्रानन्दन श्री लक्ष्मण जी मुझ पर सदा प्रसन्न रहें । मैं श्री शत्रुघ्न जी के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो बड़े वीर, सुशील और श्री भरत जी के पीछे चलने वाले हैं । मैं महावीर श्री हनुमान् जी की विनती करता हूँ, जिनके यश का श्री रामचन्द्र जी ने स्वयं (अपने मुख से) वर्णन किया है ।

सो०—प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यान घन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥१७॥

सरल अर्थ—मैं पवनकुमार श्री हनुमान् जी को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्ट-रूपी वन को भस्म करने के लिए अग्नि रूप है, जो ज्ञान की घन मूर्ति हैं और जिनके हृदय रूपी भवन में धनुष-बाण धारण किए श्री रामचन्द्र जी निवास करते है ।

चौ०-सुकसनकादि भगत मुनि नारद । जे मुनिबर बिग्यान बिसारद ॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा । करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥
जनकसुता जग जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ । जासु कृपा निर्मल मति पावउँ ॥

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक ।।
राजिव नयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक ।।

सरल अर्थ—शुकदेव जी, सनकादि, नारद मुनि आदि जितने भक्त और परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं धरती पर सिर टेक कर उन सबको प्रणाम करता हूँ, हे मुनीश्वरों ! आप सब मुझको अपना दास जानकर कृपा कीजिए। राजा जनक की पुत्री, जगत् की माता और करुणानिधान श्री रामचन्द्र जी की प्रियतमा श्री जानकी जी के दोनों चरणकमलों को मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि पाऊँ। फिर मैं मन, वचन, और कर्म से कमलनयन, धनुष-बाणधारी, भक्तों की विपत्ति का नाश करने और उन्हें सुख देने वाले भगवान् श्री रघुनाथ जी के सर्वसमर्थ चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ।

दोहा—गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ।।१८।।

सरल अर्थ—जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर के समान कहने में अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं, उन श्री सीताराम जी के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुखी बहुत ही प्रिय हैं।

चौ०-बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को ।।
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो ।।
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ।।
महिमा जासु जान गनराउ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ।।
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ।।
सहस नाम सम सुनि सिब बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी ।।
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को ।।
नाम प्रभाउ जान सिब नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ।।

सरल अर्थ—मैं श्री रघुनाथ जी के नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् 'र', 'आ' और 'म' रूप से बीज है। वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप है। वह वेदों का प्राण है; निर्गुण, उपमारहित और गुणों का भण्डार है। जो महामंत्र है, जिसे महेश्वर श्री शिव जी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशी में मुक्ति का कारण है, तथा जिसकी महिमा को श्री गणेश जी जानते हैं, जो इस 'राम' नाम के प्रभाव से ही सबसे पहले पूजे जाते हैं। आदि कवि श्री वाल्मीकि जी राम-नाम के प्रताप को जानते हैं, जो उलटा नाम ('मरा', 'मरा') जपकर पवित्र हो गए। श्री शिव जी के इस वचन को सुनकर कि एक राम-नाम सहस्त्र नाम के समान है, पार्वती जी सदा अपने पति (श्री शिव जी) के साथ राम-नाम का जप करती रहती

हैं। नाम के प्रति पार्वती जी के हृदय की ऐसी प्रीति देखकर श्री शिव जी हर्षित हो गए और उन्होंने स्त्रियों में भूषण रूप (पतिव्रताओं में शिरोमणि) पार्वती जी को अपना भूषण बना लिया (अर्थात् उन्हें अपने अंग में धारण करके अर्द्धाङ्गिनी बना लिया)। नाम के प्रभाव को श्री शिव जी भली-भाँति जानते हैं, जिस (प्रभाव) के कारण कालकूट जहर ने उनको अमृत का फल दिया।

दोहा—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादों मास ॥१८॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी की भक्ति वर्षा-ऋतु है, तुलसीदास जी कहते हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं और 'राम' नाम के दो सुन्दर अक्षर सावन-भादो के महीने हैं।

चौ०-आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू ॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती ॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥
जनमन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से ॥

सरल अर्थ—दोनो अक्षर मधुर और मनोहर हैं, जो वर्णमाला रूपी शरीर के नेत्र हैं, भक्तो के जीवन तथा स्मरण करने मे सबके लिए सुलभ और सुख देने वाले हैं, और जो इस लोक मे लाभ और परलोक मे निर्वाह करते है (अर्थात् भगवान् के दिव्य धाम मे दिव्य देह से सदा भगवत्सेवा मे नियुक्त रखते हैं)। ये कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत ही अच्छे (सुन्दर और मधुर) हैं, तुलसीदास को तो श्री रामचन्द्र-लक्ष्मण के समान प्यारे हैं। इनका ('र' और 'म' का) अलग-अलग वर्णन करने मे प्रीति बिलगाती है (अर्थात् बीज मंत्र की दृष्टि से इनके उच्चारण, अर्थ और फल में भिन्नता दीख पड़ती है), परन्तु है ये जीव और ब्रह्म के समान स्वभाव से ही साथ रहने वाले (सदा एकरूप और एकरस)। ये दोनो अक्षर नर-नारायण के समान सुन्दर भाई हैं। ये जगत् का पालन और विशेष रूप से भक्तो की रक्षा करने वाले हैं। ये भक्तिरूपिणी सुन्दर स्त्री के कानों के सुन्दर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत् के हित के लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्य है। ये सुन्दर गति (मोक्ष) रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं, कच्छप और शेष जी के समान पृथ्वी के धारण करने वाले हैं, भक्तो के मन रूपी सुन्दर कमल मे विहार करने वाले भौंरे के समान हैं और जीभ रूपी यशोदा जी के लिए श्रीकृष्ण और बलराम जी के समान (आनन्द देने वाले) हैं।

दोहा—एकु छत्र एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं—श्री रघुनाथ जी के नाम के दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमें से एक (रकार) छत्र रूप (रेफ) से और दूसरा (मकार) मुकुटमणि (अनुस्वार ं) रूप से सब अक्षरों के ऊपर हैं।

चौ०-समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

सरल अर्थ—समझने में नाम और नामी दोनों एक-से हैं, किन्तु दोनों में परस्पर स्वामी और सेवक के समान प्रीति है (अर्थात् नाम और नामी में पूर्ण एकता होने पर भी जैसे स्वामी के पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नाम के पीछे नामी चलते हैं। प्रभु श्री रामचन्द्र जी अपने 'राम' नाम का ही अनुगमन करते हैं, नाम लेते ही वहाँ आ जाते हैं।) नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि हैं, ये (भगवान् के नाम और रूप) दोनों—अनिवर्चनीय हैं, अनादि हैं और सुन्दर (शुद्ध भक्ति युक्त) बुद्धि से ही इनका (दिव्य अविनाशी) स्वरूप जानने में आता है। इन (नाम और रूप) में कौन बड़ा है, कौन छोटा, यह कहना तो अपराध है। इनके गुणों का तारतम्य (कमी-बेशी) सुनकर साधु-पुरुष स्वयं ही समझ लेंगे। रूप नाम के अधीन देखे जाते हैं, नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता।

चौ०-रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

सरल अर्थ—कोई-सा विशेष रूप बिना उसका नाम जाने हथेली पर रक्खा हुआ भी पहचाना नहीं जा सकता, और रूप के बिना देखे भी नाम का स्मरण किया जाय तो विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय में आ जाता है। नाम और रूप की गति की कहानी (विशेषता की कथा) अकथनीय है। वह समझने में सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुण के बीच में नाम सुन्दर साक्षी है, और दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है।

दोहा—राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौं चाहसि उजियार ॥२१॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है तो मुख रूपी द्वार की जीभ रूपी देहली पर राम-नाम रूपी मणि-दीपक को रख।

चौ०-अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें॥

सरल अर्थ—निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति में नाम इन दोनों से बड़ा है, जिसने अपने बल से दोनों को अपने वश में कर रखा है। सज्जनगण इस बात को मुझ दास की ढिठाई या केवल काव्योक्ति न समझें। मैं अपने मन के विश्वास, प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ। (निर्गुण और सगुण) दोनों प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है। निर्गुण उस अप्रकट अग्नि के समान है जो काठ के अन्दर है, परन्तु दिखती नहीं, और सगुण उस प्रकट अग्नि के समान है जो प्रत्यक्ष दिखती है। (तत्त्वतः दोनों एक ही है, केवल प्रकट-अप्रकट के भेद से भिन्न मालूम होती हैं। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्त्वतः एक ही है। इतना होने पर भी) दोनों ही जानने में बड़े कठिन है, परन्तु नाम से दोनों सुगम हो जाते हैं। इसी से मैंने नाम को (निर्गुण) ब्रह्म से और (सगुण) राम से बड़ा कहा है। ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है; सत्ता, चैतन्य और आनन्द की घन राशि है। ऐसे विकार रहित प्रभु के हृदय में रहते भी जगत् के सब जीव दीन और दुखी है। नाम का निरूपण करके (नाम के यथार्थ स्वरूप, महिमा, रहस्य और प्रभाव को जानकर) नाम का जतन करने से (श्रद्धापूर्वक नाम जप रूपी साधन करने से) वही ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे रत्न के जानने से उसका मूल्य।

दोहा—निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाव अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥२३॥

सरल अर्थ—इस प्रकार निर्गुण से नाम का प्रभाव अत्यन्त बड़ा है। अब अपने विचार के अनुसार कहता हूँ कि नाम (सगुण) राम से भी बड़ा है।

चौ०-राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन।।
निसिचर निकर दले रघुनन्दन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन ।।

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र ने भक्तों के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण करके स्वयं कष्ट सहकर साधुओं को सुखी किया, परन्तु भक्तगण प्रेम के साथ नाम का जप करते हुए सहज ही में आनन्द और कल्याण के घर हो जाते हैं। श्री रामचंद्र जी ने एक तपस्वी की स्त्री (अहिल्या) को ही तारा, परन्तु नाम ने करोड़ों दुष्टों की बिगड़ी बुद्धि को सुधार दिया। रामचन्द्र जी ने ऋषि विश्वामित्र के हित के लिये एक सुकेतु यक्ष की कन्या ताड़का की सेना और पुत्र (सुबाहु) सहित समाप्ति की, परन्तु नाम अपने भक्तों के दोष, दुःख और दुराशाओं का इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रि का। श्री रामचन्द्र जी ने तो स्वयं शिव जी के धनुष को तोड़ा, परन्तु नाम का प्रताप ही संसार के सब भयों का नाश करने वाला है। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने (भयानक) दण्डक वन को सुहावना बनाया, परन्तु नाम ने असंख्य मनुष्यों के मनों को पवित्र कर दिया। श्री रघुनाथ जी ने राक्षसों के समूह को मारा, परन्तु नाम तो कलियुग के सारे पापों की जड़ उखाड़ने वाला है।

दोहा—ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ।।२३(क)।।

सरल अर्थ—इस प्रकार नाम (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) राम दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। श्री शिव जी ने अपने हृदय में यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्र में से इस 'राम' नाम को (सार रूप से चुनकर) ग्रहण किया है।

दोहा—नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदासु।।२३(ख)।।

सरल अर्थ—कलियुग में राम का नाम कल्पतरु (मन चाहा पदार्थ देने वाला) और कल्याण का निवास (मुक्ति का घर) है, जिसको स्मरण करने से भाँग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान (पवित्र) हो गया।

चौ०-अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ।।
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें ।।
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही।।
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की ।।

सरल अर्थ—यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, मेरे पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड़ ली है (अर्थात् नरक में भी मेरे लिए ठौर नहीं है)। यह समझ कर मुझे अपने ही कल्पित डर से डर हो रहा है, किन्तु भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने तो स्वप्न में भी इस पर (मेरी इस ढिठाई और दोष पर) ध्यान नहीं दिया। पर मेरे प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने तो इस बात को सुनकर, देखकर और अपने सुचित्त रूपी चक्षु से निरीक्षण कर मेरी भक्ति और बुद्धि की (उलटे) सराहना की। क्योंकि

कहने में चाहे बिगड़ जाय (अर्थात् मैं चाहे अपने को भगवान् का सेवक कहता-कहलाता रहूँ), परन्तु हृदय में अच्छापन होना चाहिए। (हृदय में तो अपने को उनका सेवक बनने योग्य नहीं मानकर पापी और दीन ही मानता है, यह अच्छापन है।) श्री रामचन्द्र जी भी दास के हृदय की (अच्छी) स्थिति जानकर रीझ जाते हैं।

चौ०-रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की।।
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी।।
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभाँ रघुबीर बखाने।।

सरल अर्थ—प्रभु के चित्त में अपने भक्तों की की हुई भूल-चूक याद नहीं रहती (वे उसे भूल जाते हैं) और उनके हृदय (की अच्छाई-नीकी) को सौ-सौ बार याद करते रहते हैं। जिस पाप के कारण उन्होंने बालि को व्याध की तरह मारा था, वैसी ही कुचाल फिर सुग्रीव ने चली। वही करनी विभीषण की थी, परन्तु श्री रामचन्द्र जी ने स्वप्न में भी उसका मन में विचार नहीं किया। उलटे भरत जी से मिलने के समय श्री रघुनाथ जी ने उनका सम्मान किया और राजसभा में भी उनके गुणों का बखान किया।

दोहा—राम निकाई रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक।।२९क।।

सरल अर्थ—हे श्री रामचन्द्र जी! आपकी अच्छाई से सभी का भला है (अर्थात् आपका कल्याणमय स्वभाव सभी का कल्याण करने वाला है)। यदि यह बात सच है, तो तुलसीदास का भी सदा कल्याण होगा।

दोहा—एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ।।२९ख।।

सरल अर्थ—इस प्रकार अपने गुण-दोषों को कहकर और सबको फिर सिर नवाकर मैं श्री रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं।

चौ०-जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई।।
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी।।
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा।।
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।।
ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरि लीला।।
जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना।।
औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना।।

सरल अर्थ—मुनि याज्ञवल्क्य जी ने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज जी को सुनाई थी, उसी संवाद को मैं बखान कर कहूँगा, सब सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उसे सुनें। शिव जी ने पहले इस सुहावने चरित्र को रचा, फिर कृपा करके पार्वती जी को सुनाया। वही चरित्र शिव जी ने काकभुशुण्डि जी को रामभक्त और अधिकारी पहचान कर दिया। उन काकभुशुण्डि जी से फिर याज्ञवल्क्य जी ने पाया और उन्होंने फिर भरद्वाज जी को गाकर सुनाया। वे दोनों वक्ता और श्रोता (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज) समान शील वाले समदर्शी हैं और श्री हरि की लीला को जानते हैं। वे अपने ज्ञान से तीनों कालों की बातों को हथेली पर रखे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष) जानते हैं और भी जो सुजान (भगवान् की लीलाओं का रहस्य जानने वाले) हरि भक्त हैं, वे इस चरित्र को नाना प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं।

दोहा—मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥२५क॥

सरल अर्थ—फिर वही कथा मैंने बाराह-क्षेत्र में अपने गुरु जी से सुनी; परन्तु उस समय मैं लड़कपन के कारण बहुत बेसमझ था, इससे उसको उस प्रकार (अच्छी तरह) समझा नहीं।

दोहा—श्रोता बकता ग्यानिनिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ॥२५ख॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी की गूढ़ कथा के वक्ता (कहने वाले) और श्रोता (सुनने वाले) दोनों ज्ञान के खजाने (पूरे ज्ञानी) होते हैं। मैं कलियुग के पापों से ग्रसा हुआ महामूढ़ जड़ जीव भला उसको कैसे समझ सकता था?

चौ०-तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥
जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियं हरि के प्रेरें॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥
बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥
राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥
असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी॥
जमगन मुहँ मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी॥
सिव प्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥

सरल अर्थ—तो भी गुरु जी ने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ मे आई। वही अब मेरे द्वारा भाषा मे रची जाएगी, जिससे मेरे मन को संतोष हो। जैसा कुछ मुझमे बुद्धि और विवेक का बल है, मैं हृदय में हरि की प्रेरणा से उसी के अनुसार कहूँगा। मैं अपने सन्देह, अज्ञान और भ्रम को हरने वाली कथा रचता हूँ, जो संसार रूपी नदी के पार करने के लिये नाव है। राम कथा पंडितो को विश्राम देने वाली, सब मनुष्यो को प्रसन्न करने वाली और कलियुग के पापो का नाश करने वाली है। राम कथा कलियुग रूपी साँप के लिये मोरनी है और विवेक रूपी अग्नि के प्रकट करने के लिये अरणि (मन्थन की जाने वाली लकडी) है (अर्थात् इस कथा से ज्ञान की प्राप्ति होती है)। राम कथा कलियुग में सब मनोरथो को पूर्ण करने वाली कामधेनु गौ है और सज्जनो के लिए सुन्दर संजीवनी जडी है। पृथ्वी पर यही अमृत की नदी है, जन्म-मरणरूपी भय का नाश करने वाली और भ्रमरूपी मेढको को खाने के लिये सर्पिणी है। यह श्रीराम-कथा असुरो की सेना के समान नरको का नाश करने वाली और साधु रूप देवताओं के कुल का हित करने वाली पार्वती (दुर्गा) है। यह संत समाजरूपी क्षीर-समुद्र के लिये लक्ष्मी जी के समान है और सम्पूर्ण विश्व का भार उठाने मे अचल पृथ्वी के समान है। यमदूतो के मुख पर कालिख लगाने के लिये यह जगत् मे यमुना जी के समान है और जीवो को मुक्ति देने के लिये मानो काशी ही है। यह श्री रामचन्द्र जी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास के लिए हुलसी (तुलसीदास जी की माता) के समान हृदय से हित करने वाली है। यह श्रीरामकथा शिव जी को नर्मदा जी के समान प्यारी है, यह सब सिद्धियो की तथा सुख-सम्पत्ति की राशि है। सद्गुण रूपी देवताओ के उत्पन्न और पालन-पोषण करने के लिये माता अदिति के समान है। श्री रघुनाथ जी की भक्ति और प्रेम की परम सीमा-सी है।

दोहा—राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥३१॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि रामकथा मंदाकिनी नदी है, सुन्दर (निर्मल) चित्त चित्रकूट है और सुन्दर स्नेह ही वन है, जिसमे श्री सीताराम जी विहार करते हैं।

चौ०-रामचरित चितामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
सद्गुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल व्रत धरम नेम के॥
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जनमन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

मंत्र महामनि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।
हरन मोहतम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से।।

सरल अर्थ – तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी का चरित्र सुन्दर चिन्तामणि है और संतों की सुबुद्धि रूपी स्त्री का सुन्दर श्रृङ्गार है। श्री रामचन्द्र जी के गुण-समूह जगत् का कल्याण करने वाले और मुक्ति, धन, धर्म और परमधाम के देने वाले हैं। ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सद्गुरु हैं और संसार रूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिये देवताओं के वैद्य (अश्विनीकुमार) के समान हैं। ये श्री सीताराम जी के प्रेम के उत्पन्न करने के लिए माता-पिता हैं और सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमों के बीज हैं। पाप, सन्ताप और शोक का नाश करने वाले तथा इस लोक और परलोक के प्रिय पालन करने वाले हैं। विचार (ज्ञान) रूपी राजा के शूर-वीर मन्त्री और लोभरूपी अपार समुद्र के सोखने के लिये आगस्त्य मुनि हैं। भक्तों के मन रूपी वन में बसने वाले, काम, क्रोध और कलियुग के पाप रूपी हाथियों के मारने के लिये सिंह के बच्चे हैं। शिव जी के पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं और दरिद्रता रूपी दावानल के बुझाने के लिए कामना पूर्ण करने वाले मेघ हैं। विषय रूपी साँप का जहर उतारने के लिए मन्त्र और महामणि हैं। ये ललाट पर लिखे हुए कठिनता से मिटने वाले बुरे लेखों (मन्द प्रारब्ध) को मिटा देने वाले हैं। अज्ञान-रूपी अन्धकार के हरण करने के लिए सूर्य किरणों के समान और सेवक रूपी धान-के पालन करने में मेघ के समान है।

दोहा—रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ।।२७।।

सरल अर्थ—रामचरित्र पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान सभी को सुख देने वाले हैं, परन्तु सज्जनरूपी कुमुदिनी और चकोर के चित्र के लिए तो विशेष हितकारी और महान् लाभदायक हैं।

चौ०-कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी।।
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबन्ध बिचित्र बनाई।।
जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई।।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु कर अस जानी।।
राम कथा के मिति जग नाहीं। अस प्रतीति तिन्ह के मन माहीं।।
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।।
कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए।।
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी।।

सरल अर्थ—जिस प्रकार श्री पार्वती जी ने श्री शिव जी से प्रश्न किया और जस प्रकार से श्री शिव जी ने विस्तार से उत्तर कहा, वह सब कारण मैं विचित्र की रचना करके गाकर कहूँगा। जिसने यह कथा पहले न सुनी हो, वह इसे

सुनकर आश्चर्य न करे। जो ज्ञानी इस विचित्र कथा को सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नही करते कि संसार मे रामकथा की कोई सीमा नही है (रामकथा अनंत है)। उनके मन मे ऐसा विश्वास रहता है। नाना प्रकार से श्री रामचन्द्र जी के अवतार हुए हैं और सौ करोड तथा अपार रामायण है। कल्पभेद के अनुसार श्री हरि के सुन्दर चरित्रो को मुनीश्वरो ने अनेको प्रकार से गाया है। हृदय मे ऐसा विचार कर सन्देह न कीजिए और आदर सहित प्रेम से इस कथा को सुनिये।

दोहा—राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्हकें बिमल बिचार ॥२८॥

सरल अर्थ श्री रामचन्द्र जी अनंत है, उनके गुण भी अनंत हैं और उनकी कथाओ का विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके विचार निर्मल हैं वे इस कथा को सुनकर आश्चर्य नही मानेगे।

चौ०-एहि विधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी॥
पुनि सबही बिनवउँ करि जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी॥
सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउँ बिसद राम गुन गाथा॥
संवत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहि॥
असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहि रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहि सुजाना। करहि राम कल कीरति गाना॥

सरल अर्थ—इस प्रकार सब सन्देहो को दूर करके और श्री गुरु जी के चरण कमलो की रज को सिर पर धारण करके मैं पुनः हाथ जोडकर सबकी विनती करता हूँ, जिससे कथा की रचना मे कोई दोष स्पर्श न करने पाये। अब मैं आदर-पूर्वक श्री शिव जी को सिर नवाकर श्री रामचन्द्र जी के गुणो की निर्मल कथा कहता हूँ। श्री हरि के चरणो पर सिर रखकर संवत् १६३१ मे इस कथा का आरम्भ करता हूँ। चैत्रमास की नवमी तिथि मगलवार को श्री अयोध्या जी मे यह चरित्र प्रकाशित हुआ। जिस दिन श्री रामचन्द्र जी का जन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ (श्री अयोध्या जी मे) चले आते हैं। असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्या जी में आकर श्री रघुनाथ जी की सेवा करते है। बुद्धिमान् लोग जन्म का महोत्सव मनाते हैं और श्री रामचन्द्र जी की सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

दोहा—मज्जहि सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर ॥२९॥

सरल अर्थ—सज्जनो के बहुत से समूह उस दिन श्री सरयू जी के पवित्र जल

में स्नान करते हैं और हृदय में सुन्दर श्याम शरीर श्री रघुनाथ जी का ध्यान करके उनके नाम का जप करते हैं।

चौ०-राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि ॥
सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥
रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई ॥
रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥

सरल अर्थ—यह शोभायमान अयोध्यापुरी श्री रामचन्द्र जी के परमधाम की देने वाली है, सब लोकों में प्रसिद्ध है और अत्यन्त पवित्र है। उस अयोध्यापुरी को सब प्रकार से मनोहर, सब सिद्धियों की देने वाली और कल्याण की खान समझकर मैंने इस निर्मल कथा का आरम्भ किया, जिसके सुनने से काम, मद और दम्भ नष्ट हो जाते हैं। इसका नाम रामचरितमानस है, जिसके कानों से सुनते ही शान्ति मिलती है, मनरूपी हाथी विषय रूपी दावानल में जल रहा है, वह यदि इस रामचरितमानस रूपी सरोवर में आ पड़े तो सुखी हो जाय। यह रामचरितमानस मुनियों का प्रिय है, इस सुहावने और पवित्र मानस की शिव जी ने रचना की। यह तीनों प्रकार के दोषों, दुखों और दरिद्रता को तथा कलियुग की कुचालों और सब पापों का नाश करने वाला है। श्री महादेव जी ने इसको रचकर अपने मन में रखा था और सुअवसर पाकर पार्वती जी से कहा। इसी से शिव जी ने इसको अपने हृदय में देखकर प्रसन्न होकर इसका सुन्दर 'रामचरितमानस' नाम रखा। मैं उसी सुख देने वाली रामकथा को कहता हूँ, हे सज्जनों। आदरपूर्वक मन लगाकर इसे सुनिये।

दोहा—जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु ॥३०॥

सरल अर्थ—यह रामचरितमानस जैसा है, जिस प्रकार बना है और जिस हेतु से जगत् में इसका प्रचार हुआ अब वह सब कथा मैं श्री उमा-महेश्वर का स्मरण करके कहता हूँ।

चौ०-संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥
ति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू ॥
हिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी ॥

लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ।।
प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोई मधुरता सुसीतलताई ।।
सो जल सुकृत सालि हित होई । राम भगत जन जीवन सोई ।।
मेधा महि गत सो जल पावन । सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना ।।

सरल अर्थ—श्री शिव जी की कृपा से उसके हृदय मे सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास, श्री रामचरितमानस का कवि हुआ । अपनी बुद्धि के अनुसार तो वह इसे मनोहर ही बनाता है, किन्तु फिर भी हे सज्जनों ! सुन्दर चित्त से सुनकर इसे आप सुधार लीजिए । सुन्दर (सात्विकी) बुद्धि भूमि है, हृदय ही उसमे गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-सन्त मेघ हैं । वे (साधु रूपी मेघ) श्री रामचन्द्र जी के सुयश रूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं । सगुण लीला का जो विस्तार से वर्णन करते है, वही राम-सुयश रूपी जल की निर्मलता है, जो मल का नाश करती है, और जिस प्रेम-भक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जल की मधुरता और शीतलता है । वह (राम-सुयश रूपी) जल सत्कर्म रूपी धान के लिए हितकर है और श्री रामचन्द्र जी के भक्तों का तो जीवन ही है । वह पवित्र जल बुद्धिरूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमट कर सुहावने कान रूपी मार्ग से चला और मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थान मे भर कर वही स्थिर हो गया । वही पुराना होकर सुन्दर, रुचिकर, शीतल और सुखदायी हो गया ।

दोहा—सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ।।३१।।

रल अर्थ—इस कथा मे बुद्धि से विचार कर जो चार अत्यन्त सुन्दर और उत्तम सवाद (भुशुण्डि-गरुड, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास और सत) रचे है, वही इस पवित्र और सुन्दर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं ।

चौ०-सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना । ग्यान नयन निरखत मन माना ।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ।।
राम सीय जस सलिल सुधासम । उपमा बीचि बिलास मनोरम ।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ।।
छन्द सोरठा- सुंदर दोहा । सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ।।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुबासा ।।
सत सभा चहुँ दिसि अवँराई । श्रद्धा रितु बसत सम गाई ।।
भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम लता बिताना ।।
सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरि पद रति रस बेद बखाना ।।
औरउ कथा अनेक प्रसगा । तेइ सुक पिक बहुबरन बिहगा ।।

और बड़े ही पवित्र आसन पर उन्हें बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्य जी के सुयश का वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र और कोमल वाणी से बोले—हे नाथ! मेरे मन में एक बड़ा संदेह है, वेदों का तत्त्व सब आपकी मुट्ठी में है (अर्थात् आप ही वेद का तत्त्व जानने वाले होने के कारण मेरा सन्देह निवारण कर सकते हैं।) पर उस संदेह को कहते मुझे भय और लाज आती है (भय इसलिए कि कहीं आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है, लाज इसलिए कि इतनी आयु बीत गई अब तक ज्ञान नहीं हुआ) और यदि नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है (क्योंकि अज्ञानी बना रहता हूँ)।

दोहा—संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर गुर सन किएँ दुराव ॥३७॥

सरल अर्थ—हे प्रभो! संत लोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनि जन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता।

चौ०-अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा ॥
संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥
सोपि राम महिमा मुनि राया। सिव उपदेसु करत करि दाया ॥
राम कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥

सरल अर्थ—यही सोचकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ! सेवक पर कृपा करके इस अज्ञान का नाश कीजिए। संतों, पुराणों और उपनिषदों ने राम नाम के असीम प्रभाव का गान किया है। कल्याणस्वरूप, ज्ञान और गुणों की राशि, अविनाशी, भगवान् शम्भु निरंतर राम-नाम का जप करते रहते हैं। संसार में चार जाति के जीव हैं, काशी में मरने से सभी परमपद को प्राप्त करते हैं। हे मुनिराज! वह भी राम (नाम) की ही महिमा है, क्योंकि शिवजी महाराज दया करके (काशी में मरनेवाले जीव को) राम नाम का ही उपदेश करते हैं (इसी से उसको परम पद मिलता है)। हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं? हे कृपानिधान! मुझे समझाकर कहिए। एक राम तो अवध नरेश दशरथजी के कुमार हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है। उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुख उठाया और क्रोध आने पर युद्ध में रावण को मार डाला।

दोहा—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि ॥३८॥

सरल अर्थ—हे प्रभो ! वही राम हैं या कोई दूसरे हैं, जिनको शिव जी जपते हैं ? आप सत्य के धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, ज्ञान विचार कर कहिए।

चौ०-जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई ॥
राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥
तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुनाई ॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥
रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी ॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! जिस प्रकार से मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय, आप वही कथा विस्तारपूर्वक कहिए। इस पर याज्ञवल्क्य जी मुस्कराकर बोले, श्री रघुनाथ जी की प्रभुता को तुम जानते हो। तुम मन, वचन और कर्म से श्रीरामचन्द्र जी के भक्त हो। तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया। तुम श्री रामचन्द्र जी के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो, इसी से तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो बड़े ही मूढ़ हो। हे तात ! तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो, मैं श्रीरामचन्द्र जी की सुन्दर कथा कहता हूँ। बड़ा भारी अज्ञान विशाल महिषासुर है और श्री रामचन्द्र जी की कथा (उसे नष्ट कर देनेवाली) भयंकर काली जी हैं। श्री रामचन्द्र जी की कथा चन्द्रमा की किरणों के समान है, जिसे संतरूपी चकोर सदा पान करते हैं। ऐसा ही संदेह पार्वती जी ने किया था, तब महादेव जी ने विस्तार से उसका उत्तर दिया था।

दोहा—कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटहि बिषाद ॥४७॥

सरल अर्थ—अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वही उमा और शिव जी का संवाद कहता हूँ। वह जिस समय और जिस हेतु से हुआ, उसे हे मुनि ! सुनो तुम्हारा विषाद मिट जाएगा।

चौ०-एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी ॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी ॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई ॥
कहत सुनत रघुपति गुनगाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी ॥
तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी ॥

सरल अर्थ—एक बार त्रेतायुग में शिव जी अगस्त्य ऋषि के पास गए उनके साथ जगज्जननी भवानी सती जी भी थीं। ऋषि ने सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर

जानकर उनका पूजन किया। मुनिवर अगस्त्य जी ने रामकथा विस्तार से कही, जिसको महेश्वर ने परम सुख मानकर सुना। फिर ऋषि ने शिव जी से सुन्दर हरिभक्ति पूछी और शिव जी ने उनको अधिकारी पाकर (रहस्य सहित) भक्ति का निरूपण किया। श्री रघुनाथ जी के गुणों की कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनों तक शिव जी वहाँ रहे। फिर मुनि से विदा माँगकर शिव जी दक्ष कुमारी सती जी के साथ घर (कैलाश) को चले। उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्री हरि ने रघुवंश में अवतार लिया था। वे अविनाशी भगवान् उस समय पिता के वचन से राज्य का त्याग करके तपस्वी या साधुवेष में दण्डक वन में विचर रहे थे।

दोहा—हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ ॥४०॥

सरल अर्थ—श्री शिव जी हृदय में विचारते जा रहे थे कि भगवान के दर्शन मुझे किस प्रकार हों। प्रभु ने गुप्त रूप से अवतार लिया है, मेरे जाने से सब लोग जान जाएंगे।

चौ०-रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा ॥
करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही ॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रम देखि नयन जल छाए ॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें ॥

सरल अर्थ—रावण ने (ब्रह्मा जी से) अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथ से माँगी थी। ब्रह्मा जी के वचनों को प्रभु सत्य करना चाहते हैं। उसी समय नीच रावण ने जाकर मारीच को साथ लिया और वह (मारीच) तुरंत कपट मृग बन गया। मूर्ख (रावण) ने छल करके सीता जी को हर लिया। उसे श्री रामचन्द्र जी के वास्तविक प्रभाव का कुछ भी पता न था। मृग को मारकर भाई लक्ष्मण सहित श्री हरि आश्रम में आए और उसे खाली देखकर (अर्थात् वहाँ सीता जी को न पाकर) उनके नेत्रों में आँसू भर आए। श्री रघुनाथ जी मनुष्यों की भाँति विरह से व्याकुल हैं और दोनों भाई वन में सीता जी को खोजते हुए फिर रहे हैं। जिनके कभी कोई संयोग-वियोग नहीं है, उनमें प्रत्यक्ष विरह का दुःख देखा गया।

दोहा—अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मति मंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन ॥४१॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी का चरित्र बड़ा ही विचित्र है, उसको पहुँचे हुए ज्ञानीजन ही जानते हैं। जो मन्दबुद्धि हैं वे तो विशेष रूप से मोह के वश होकर हृदय में कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं।

चौ०-संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरपु बिसेषा ॥
भरि लोचन छबि सिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥
जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन ॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी ॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥
तिन्ह नृप सुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा ॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

सरल अर्थ—श्री शिव जी ने उसी अवसर पर श्री रामचन्द्र जी को देखा और उनके हृदय में बहुत भारी आनंद उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र (श्री रामचन्द्रजी) को शिव जी ने नेत्र भरकर देखा, परन्तु अवसर ठीक न जानकर परिचय नही किया। जगत् के पवित्र करने वाले सच्चिदानंद की जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेव का नाश करने वाले शिव जी चल पड़े। कृपानिधान श्री शिव जी बार-बार आनन्द से पुलकित होते हुए सतीजी के साथ चले जा रहे थे। सती जी ने श्री शंकर जी की वह दशा देखी तो उनके मन मे बड़ा संदेह उत्पन्न हो गया। (वे मन ही मन कहने लगी कि) शंकर जी की सारा जगत् वन्दना करता है, वे जगत् के ईश्वर हैं, देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके प्रति सिर नवाते हैं। उन्होने एक राजपुत्र को सच्चिदानद परमधाम कहकर प्रणाम किया और शोभा उसकी देखकर वे इतने प्रेम मग्न हो गए कि अब तक उनके हृदय में प्रीति रोकने से भी नही रुकती।

दोहा—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥५०॥

सरल अर्थ—जो ब्रह्म सर्वव्यापक, माया रहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छा-रहित, भेद-रहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है?

चौ०-अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ ॥
जासु कथा कुभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥

सरल अर्थ—सती के मन मे इस प्रकार का अपार संदेह उठ खड़ा हुआ। किसी तरह भी उनके हृदय मे ज्ञान का प्रादुर्भाव नही होता था। यद्यपि भवानी जी ने प्रकट कुछ नही कहा, पर अंतर्यामी शिव जी सब जान गए। वे बोले—हे सती! सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। ऐसा संदेह मन मे कभी न रखना चाहिए।

जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनाई, वे वही मेरे इष्टदेव श्री रघुवीर जी हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं।

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ ॥४३॥

सरल अर्थ—यद्यपि श्री शिव जी ने बहुत बार समझाया फिर भी सती जी के हृदय में उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेव जी मन में भगवान् की माया का बल जानकर मुस्कराते हुए बोले—

चौ०-जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई ॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना ॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं ॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥

सरल अर्थ—जो तुम्हारे मन में बहुत संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं? जब तक तुम मेरे पास लौट आओगी तब तक मैं इसी बड़ की छाँह में बैठा हूँ। जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञान जनित भारी भ्रम दूर हो, (भली-भाँति) विवेक के द्वारा सोच-समझकर तुम वही करना। श्री शिव जी की आज्ञा पाकर सती चलीं और मन में सोचने लगीं कि भाई क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूं)? इधर श्री शिव जी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि दक्ष कन्या सती का कल्याण नहीं है। जब मेरे समझाने से भी सन्देह दूर नहीं होता, तब (मालूम होता है) विधाता ही उल्टे हैं, अब सती का कुशल नहीं है। जो कुछ राम ने रच रखा है वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे। (मन में) ऐसा कहकर श्री शिव जी भगवान् श्री हरि का नाम जपने लगे और सती जी वहाँ गईं जहाँ सुख के धाम प्रभु श्री रामचन्द्र जी थे।

दोहा—पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप ॥४४॥

सरल अर्थ—सती बार-बार मन में विचार कर सीता जी का रूप धारण करके उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं जिससे (सती जी के विचारानुसार) मनुष्यों के राजा श्रीरामचन्द्र जी आ रहे थे।

चौ०-लछिमन दीख उमा कृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥
सती कपट जानेउ सुर स्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना॥
सती कीन्ह चह तहँहु दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

सरल अर्थ—सती के बनावटी वेष को देखकर लक्ष्मण जी चकित हो गए और उनके हृदय में बड़ा भ्रम हो गया। वे बहुत गम्भीर हो गए, कुछ कह नहीं सके। धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रभु श्रीरघुनाथ जी के प्रभाव को जानते थे। सब कुछ देखने वाले, सबके हृदय को जानने वाले देवताओं के स्वामी श्री रामचन्द्र जी सती के कपट को जान गए, जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान् श्री रामचन्द्र जी हैं। स्त्री-स्वभाव का असर तो देखो कि वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान् के सामने) भी सती जी छिपाव करना चाहती है। अपनी माया के बल को हृदय में बखान कर, श्री रामचन्द्र जी हँसकर कोमल वाणी से बोले। पहले प्रभु ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम बताया। फिर कहा कि वृषकेतु शिव जी कहाँ हैं? आप यहाँ वन में अकेली किसलिए फिर रही हैं?

दोहा—राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥५२॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के कोमल और रहस्य भरे वचन सुनकर सती जी को बड़ा संकोच हुआ। वे डरती हुई (चुपचाप) शिव जी के पास चलीं, उनके हृदय में बड़ी चिन्ता हो गई—

चौ०-मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥
जाना राम सती दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर वेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥

सरल अर्थ—कि मैंने श्री शंकर जी का कहना न माना और अपने अज्ञान का श्री रामचन्द्र जी पर आरोप किया। अब जाकर मैं शिव जी को क्या उत्तर दूँगी? (यों सोचते-सोचते) सती जी के हृदय में अत्यन्त भयानक जलन पैदा हो गई।

श्री रामचन्द्र जी ने जान लिया कि सती जो को दुख हुआ, तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके उन्हें दिखलाया। सती जी ने मार्ग में जाते हुए यह कौतुक देखा कि श्री रामचन्द्र जी सीता जी और लक्ष्मण जी सहित आगे चले जा रहे हैं। (इस अवसर पर सती जी को इसलिए दिखाया कि सती जी श्री रामचन्द्र जी के सच्चिदानन्दमय रूप को देखें, वियोग और दुख की कल्पना जो उन्हें हुई थी दूर हो जाय तथा वे प्रकृतिस्थ हों)। (तब उन्होंने) पीछे की ओर फिरकर देखा तो वहाँ भी भाई लक्ष्मण जी और सीता जी के साथ श्री रामचन्द्र जी सुन्दर वेश में दिखाई दिए। वे जिधर देखती हैं, उधर ही प्रभु श्री रामचन्द्र जी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं। सती जी ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बढ़कर असीम प्रभाव वाले थे। (उन्होंने देखा कि) भाँति-भाँति के वेष धारण किए सभी देवता श्री रामचन्द्र जी की चरण वन्दना और सेवा कर रहे है।

दोहा—गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन विधि कहहु सत्य सब बात ॥४६॥

सरल अर्थ—जब पास पहुँची, तब श्री शिव जी ने हँस कर कुशल प्रश्न करके कहा—कि तुमने श्री रामचन्द्र जी की किस प्रकार परीक्षा ली, सारी बात सच-सच कहो।

चौ०—सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥
बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूंठ कहावा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ विचारत संभु सुजाना॥
सतीं कीन्ह सीता कर वेषा। सिव उर भयउ विषाद विसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

सरल अर्थ—सती जी ने श्रीरघुनाथ जी के प्रभाव को समझकर डर के मारे श्री शिव जी से छिपाव किया और कहा—हे स्वामिन्! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, (वहाँ जाकर) आपकी ही तरह प्रणाम किया। आपने जो कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन में यह बड़ा (पूरा) विश्वास है। तब शिव जी ने ध्यान करके देखा और सती जी ने जो चरित्र किया था, सब जान लिया। फिर श्री रामचन्द्र जी की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुँह से झूंठ कहला दिया। सुजान शिव जी ने मन में विचार किया कि हरि की इच्छारूपी भावी प्रबल है। सती जी ने सीता जी का वेष धारण किया, यह जानकर शिवजी के हृदय में बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब सती से प्रीति करता हूँ तो भक्ति मार्ग लुप्त हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है।

दोहा--सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपट मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य ॥५७॥

सरल अर्थ—सती जी ने हृदय मे अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिवजी सब जान गए। मैंने श्री शिव जी से कपट किया, स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और बेसमझ होती हैं।

सो०—जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥५८॥

सरल अर्थ—प्रीति की सुन्दर रीति देखिए कि जल भी (दूध के साथ मिलकर) दूध के समान भाव बिकता है परन्तु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है।

चौ०-बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥
तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बटतर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥
नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पति बचनु मृषा करि जाना॥
सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥

सरल अर्थ—इस प्रकार मार्ग मे विविध प्रकार के इतिहासों को कहते हुए विश्वनाथ कैलास जा पहुँचे। वहाँ फिर श्री शिव जी अपनी प्रतिज्ञा याद करके बड़ के पेड़ के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गए। शिव जी ने अपना स्वाभाविक रूप सँभाला। उनकी अखण्ड और अपार समाधि लग गई। सती जी के हृदय में नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि इस दुख-समुद्र के पार कब जाऊँगी। (सती ने कहा—) मैंने जो श्री रघुनाथ जी का अपमान किया और फिर पति के वचनों को झूठ जाना। उसका फल विधाता ने मुझको दिया, जो उचित था वही किया, परन्तु हे विधाता! अब तुझे यह उचित नहीं है जो शंकर से विमुख होने पर भी मुझे जिला रहा है। सती जी के हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमती सती जी ने मन में श्री रामचन्द्र जी का स्मरण किया और कहा—

दोहा—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥५९॥

सरल अर्थ हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनिए और शीघ्र ही वह उपाय कीजिए, जिससे मेरा मरण हो और बिना ही परिश्रम यह (पति-परित्यागरूपी) असह्य विपत्ति दूर हो जाय।

चौ०-बीते संवत सहस सतासी । तजी समाधि संभु अविनासी ॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सती जगतपति जागे ॥
सती बिलोके ब्योम बिमाना । जात चले सुंदर बिधि नाना ॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना । सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥
पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी । पिता जग्य सुनि कछु हरषानी ॥
कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा । यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाई । हमरे बयर तुम्हउ बिसराई ॥
ब्रह्म सभाँ हम सन दुख माना । तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना ॥
जो बिनु बोले जाहु भवानी । रहइ न सीलु सनेहु न कानी ॥

सरल अर्थ—सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी श्री शिव जी ने समाधि खोली । शिव जी रामनाम का स्मरण करने लगे, तब सती जी ने जाना कि अब जगत् के स्वामी (शिवजी) जागे । सती जी ने देखा, अनेकों प्रकार के सुन्दर विमान आकाश में चले आ रहे हैं । देवसुन्दरियाँ मधुर गान कर रही हैं, जिन्हें सुनकर मुनियों का ध्यान टूट जाता है । सती जी ने (विमानों में देवताओं के जाने का कारण) पूछा, तब शिवजी ने सब बातें बतलाईं । पिता के यज्ञ की बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुईं । शिव जी ने कहा—तुमने बात तो अच्छी कही, यह मेरे मन को भी पसन्द आई । पर उन्होंने न्यौता नहीं भेजा, यह अनुचित है । दक्ष ने अपनी सब लड़कियों को बुलाया है किन्तु हमारे वैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया । एक बार ब्रह्मा की सभा में हमसे अप्रसन्न हो गए थे, उसी से वे अब भी हमारा अपमान करते हैं । हे भवानी ! जो तुम बिना बुलाए जाओगी तो न शील स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी ।

दोहा—कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छ कुमारि ।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥६०॥

सरल अर्थ—शिव जी ने बहुत प्रकार से कहकर देख लिया, किन्तु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकीं, तब त्रिपुरारि महादेव जी ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको विदा कर दिया ।

चौ०-पिता भवन जब गईं भवानी । दच्छ त्रास काहु न सनमानी ॥
सादर भलेहिं मिली एक माता । भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता ॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ । प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा । जस यह भयउ महा परितापा ॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति अवमाना ॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा । बहुबिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा ॥

सरल अर्थ—भवानी जब पिता (दक्ष) के घर पहुँची, तब दक्ष के डर के मारे किसी ने उनकी आवभगत नही की। केवल एक माता भले ही आदर से मिली। बहिनें बहुत मुसकराती हुई मिली। दक्ष ने तो उनकी कुछ कुशल तक नही पूछी, सती जी को देखकर उलटे उनके सारे अंग जल उठे। सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कही शिव जी का भाग दिखाई नही दिया। तब श्री शिव जी ने जो कहा था, वह उनकी समझ मे आया। स्वामी का अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा। पिछला (पति परित्याग का) दुख उनके हृदय में उतना नहीं व्यापा था जितना महान् दुख इस समय (पति अपमान के कारण) हुआ। यद्यपि जगत् मे अनेक प्रकार के दारुण दुख हैं, तथापि जाति-अपमान सब से बढ़कर कठिन है। यह समझ कर सती जी को बडा क्रोध हो आया। माता ने उन्हे बहुत प्रकार से समझाया-बुझाया।

दोहा—सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध ॥६१॥

सरल अर्थ परन्तु उनसे शिव जी का अपमान सहा नही गया, इससे उनके हृदय मे कुछ भी प्रबोध नही हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोध भरे वचन बोली—

चौ०-सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ। भली भाँति पछिताब पिताहूँ॥
संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिय पराई॥
जगदातमा महेस पुरारी। जगत जनक सबके हितकारी॥
पिता मंद मति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

सरल अर्थ—हे सभासदों और सब मुनीश्वरो! सुनो। जिन लोगो ने यहाँ शिव जी की निन्दा की या सुनी है, उन सबको उनका फल तुरन्त ही मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भली-भाँति पछताएँगे। जहाँ संत, शिव जी और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् की निन्दा सुनी जाय, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निंदा करने वाले) की जीभ काट ले और नही तो कान मूँदकर वहाँ से भाग जाय। त्रिपुर दैत्य को मारने वाले भगवान् महेश्वर सम्पूर्ण जगत् के आत्मा हैं, वे जगत्पिता और सबका हित करने वाले हैं। मेरा मन्दबुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है और मेरा यह शरीर दक्ष ही के वीर्य से उत्पन्न है। इसलिए चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले वृषकेतु श्री शिव जी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरन्त ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सती जी ने योगाग्नि मे अपना शरीर भस्म कर डाला। भारी यज्ञशाला मे हाहाकार मच गया।

दोहा—सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस ॥५२॥

सरल अर्थ—सती का मरण सुनकर शिव जी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगु जी ने उसकी रक्षा की।

चौ०-सती मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम शिव पद अनुरागा ॥
तेहि कारन हिम गिरि गृह जाई। जनमी पारवती तनु पाई ॥
नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा ॥
नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा ॥

सरल अर्थ—सती ने मरते समय भगवान् हरि से यह वर माँगा कि मेरा जन्म-जन्म में शिव जी के चरणों में अनुराग रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचल के घर जाकर पार्वती के शरीर से जन्म लिया। जब नारद जी ने सब समाचार सुने तो वे कौतुक ही से हिमाचल के घर पधारे। पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर उनको उत्तम आसन दिया। फिर अपनी स्त्री सहित मुनि के चरणों मे सिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर में छिड़काया।

दोहा—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि ॥
कहहु सुता के दोष गुन मुनिवर हृदयँ बिचारि ॥५३॥

सरल अर्थ—(और कहा)—हे मुनिवर। आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुँच है। अतः आप हृदय में विचार कर कन्या के दोष-गुण कहिये।

चौ०-कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी ॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी ॥
सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पियारी ॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं ॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥

सरल अर्थ—नारद मुनि ने हँसकर रहस्ययुक्त कोमल वाणी से कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह स्वभाव से ही सुन्दर, सुशील और समझदार है। उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं। कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है, यह अपने पति को सदा प्यारी होगी। यह सारे जगत् में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। हे पर्वतराज ! तुम्हारी कन्या सुलच्छनी है। अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हें भी सुन लो।

दोहा—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलहि परी हस्त असि रेख ॥५४॥

सरल अर्थ—योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नंगा और अमंगल वेष वाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है।

चौ०-जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥
जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥
संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥
कहि अस ब्रह्म भवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना॥
जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रान पिआरी॥
जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू॥
उमहि बिलोकि नयन भए बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥
बारहि बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी॥

सरल अर्थ—(मुनीश्वर ने कहा)—उमा को वर तो निःसंदेह वैसा ही मिलेगा जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है। परन्तु मैंने वर के जो दोष बतलाए हैं, मेरे अनुमान से वे सभी शिवजी में हैं। यदि शिव जी के साथ विवाह हो जाय तो दोषों को भी सब लोग गुणों के समान ही कहेंगे। सूर्य, अग्नि और गंगा जी की भाँति समर्थ को कुछ दोष नहीं लगता। शिव जी सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं, इसलिए इस विवाह में सब प्रकार कल्याण है। यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो त्रिपुरारि महादेव जी होनहार को मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में वर अनेक हैं, पर इसके लिए शिवजी को छोड़कर दूसरा वर नहीं है। यों कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गए। अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो। पति को एकान्त में पाकर मैना ने कहा—हे नाथ ! मैंने मुनि के वचनों का अर्थ नहीं समझा। जो हमारी कन्या के अनुकूल घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिए। नहीं तो लड़की चाहे कुमारी ही रहे (मैं अयोग्य वर के साथ उसका विवाह नहीं करना चाहती) क्योंकि हे स्वामिन् ! पार्वती मुझको प्राणों के समान प्यारी है। यदि पार्वती के योग्य वर न मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड़ (मूर्ख) होते हैं। हे स्वामी ! इस बात को विचार कर ही विवाह कीजिएगा, जिसमें फिर पीछे हृदय में संताप न हो। पार्वती को देखकर उनकी (मैना) आँखों में आँसू भर आया। उसे स्नेह के साथ गोद में बैठा लिया। फिर बार-बार उसे हृदय में लगाने लगी। प्रेम से मैना

का गला भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगज्जननी भवानी जी तो सर्वज्ञ ठहरीं। (माता के मन की दशा को जानकर) वे माता को सुख देने वाली कोमल वाणी से बोलीं—

दोहा—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुविप्रवर अस उपदेसेउ मोहि ॥५५॥

सरल अर्थ—मा ! सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि मुझे एक सुन्दर गौर वर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ऐसा उपदेश दिया है—

चौ०-करहि जाइ तपु सैल कुमारी। नारद कहा सो सत्य विचारी ॥
मातु पितहि पुनि यह मतु भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥
तपबल रचइ प्रपंच विधाता। तप बल विष्नु सकल जग त्राता ॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥
उरधरि उमा प्रानपति चरना। जाइ विपिन लागीं तपु करना ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा ॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए ॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा ॥
बेलिपाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संवत सोइ खाई ॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना ॥

सरल अर्थ - हे पार्वती ! नारद जी ने जो कहा है उसे सत्य समझकर तू जाकर तप कर। फिर यह बात मेरे माता-पिता को भी अच्छी लगी है। तप सुख देने वाला और दुख दोष का नाश करने वाला है। तप के ही बल से ब्रह्मा संसार को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे जगत् का पालन करते हैं। तप के बल से ही शम्भु (रुद्ररूप से जगत् का) संहार करते हैं और तप के बल से ही शेष जी पृथ्वी का भार धारण करते हैं। प्राणपति (शिवजी) के चरणों को हृदय में धारण करके पार्वती जी वन में जाकर तप करने लगीं। स्वामी के चरणों में नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तप में ऐसा मन लगा कि शरीर की सारी सुध बिसर गई। एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल और फल खाये फिर सौ वर्ष साग खाकर बिताए। कुछ दिन जल और वायु का भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किये। जो बेल पत्र सूखकर पृथ्वी पर गिरते थे, तीन हजार वर्ष तक उन्हीं को खाया। फिर सूखे पर्ण (पत्ते) भी छोड़ दिये, तभी पार्वती का नाम 'अपर्णा' हुआ।

दोहा—भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारी ॥५६॥

सरल अर्थ—(आकाश से गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई) हे पर्वतराज की कुमारी !

सुन । तेरा मनोरथ सफल हुआ । तू अब सारे असह्य क्लेशों को (कठिन तप को) त्याग दे । अब तुझे शिवजी मिलेंगे ।

चौ०-उमा चरित सुंदर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥
जब तें सती जाइ तनु त्यागा । तब तें सिव मन भयउ बिरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥
प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला । रूप सील निधि तेज बिसाला ॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा । तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा ॥
बहु बिधि राम सिवहि समुझावा । पारबती कर जन्मु सुनावा ॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी । बिस्तर सहित कृपा निधि बरनी ॥

सरल अर्थ—(याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी से बोले कि) मैंने पार्वती का सुन्दर चरित्र सुनाया, अब शिवजी का सुहावना चरित्र सुनो। जब से सती ने जाकर शरीर त्याग किया, तब से शिव जी के मन में वैराग्य हो गया। वे सदा श्री रघुनाथ जी का नाम जपने लगे और जहाँ-तहाँ श्री रामचन्द्र जी के गुणों की कथाएँ सुनने लगे।' तब कृतज्ञ (उपकार मानने वाले) कृपालु रूप और शील के भण्डार महान् तेज पुंज भगवान् श्री रामचन्द्र जी प्रकट हुए। उन्होंने बहुत तरह से शिव जी की सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा (कठिन) व्रत कौन निबाह सकता है। श्री रामचन्द्र जी ने बहुत प्रकार से शिव जी को समझाया और पार्वती जी का जन्म सुनाया। कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी ने विस्तारपूर्वक पार्वती जी की अत्यन्त पवित्र करनी का वर्णन किया।

दोहा—अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु ।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु ॥७६-क॥

सरल अर्थ—(फिर उन्होंने शिव जी से कहा—) हे शिव जी ! यदि मुझ पर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी विनती सुनिए। मुझे यह माँगें दीजिए कि आप जाकर पार्वती के साथ विवाह कर लें।

दोहा—पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ॥७६-ख॥

सरल अर्थ—आप लोग पार्वती के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा लीजिए और हिमाचल को कहकर (उन्हें पार्वती को लिवा लाने के लिए भेजिए तथा) पार्वती को घर भिजवाइए और उनके संदेह को दूर कीजिए।

चौ०-रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी । मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी । करहु कवन कारन तपु भारी ॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू । हम सन सत्य मरमु किन कहहू ॥
कहत बचन मनु अति सकुचाई । हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा । चहत बारि पर भीति उठावा ॥

नारद कहा सत्य सोइ जाना । बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना ॥
नारद सिख जे सुनहि नर नारी । अवसि होहिं तजि भवन भिखारी ॥
तेहि कें वचन मानु विस्वासा । तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन निलज कुवेष कपाली । अकुल अगेह दिगंबर व्याली ॥
पंच कहें सिवँ सती बिबाही । पुनि अब डेरि मराएन्हि ताही ॥

सरल अर्थ—ऋषियों ने (वहाँ जाकर) पार्वती को कैसी देखा मानों मूर्तिमान तपस्या ही हो। मुनि बोले—हे शैल कुमारी ! सुनो। तुम किसलिए इतना कठोर तप कर रही हो ? -तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो ? हमसे अपना सच्चा भेद क्यों नहीं कहतीं ? (पार्वती ने कहा—) बात कहते मन बहुत सकुचाता है। आप लोग मेरी मूर्खता सुनकर हँसेगे। मन ने हठ पकड़ लिया है, वह उपदेश नहीं सुनता और जल पर दीवाल उठाना चाहता है। नारद जी ने जो कह दिया उसे सत्य मानकर मैं बिना ही पंख के उड़ना चाहती हूँ। (ऋषियों ने कहा—) जो स्त्री-पुरुष नारद की सीख सुनते हैं, वे घर-बार छोड़कर अवश्य ही भिखारी हो जाते हैं। उनके वचनों पर विश्वास मानकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला, नर-कपालों की माला पहनने वाला, कुलहीन, विना घर-बार का, नंगा और शरीर पर साँपों को लपेटे रखने वाला है ! पहले पंचों के कहने से शिव ने सती से विवाह किया था परन्तु फिर उसे त्याग कर मरवा डाला।

दोहा—अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं ।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥७८॥

सरल अर्थ—अब शिव को कोई चिन्ता नहीं रही, भीख माँग कर खा लेते हैं और सुख से सोते है। ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहने वालों के घर भी भला, क्या कभी स्त्रियाँ टिक सकती हैं ?

चौ०-अजहूँ मानहु कहा हमारा । हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ॥
सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥
कनकउ पुनि पषान तें होई । जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥
नारद वचन न मैं परिहरऊँ । बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ ॥
जो तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा । को गुन दूषन करै बिचारा ॥
जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । बर कन्या अनेक जग माहीं ॥
जन्म कोटि लगि रगर हमारी । बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥

सरल अर्थ—अब भी हमारा कहा मानो, हमने तुम्हारे लिए अच्छा वर विचारा है। (पार्वती जी हँसकर बोलीं—) आपने यह सत्य ही कहा कि मेरा यह

शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है। इसलिए हठ नहीं छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है। सो वह जलाए जाने पर भी अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को नहीं छोड़ता। अतः मैं नारद जी के वचनों को नहीं छोड़ूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। हे मुनीश्वरो! यदि आप पहले मिलते, तो मैं आपका उपदेश सिर माथे रखकर सुनती। परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिवजी के लिए हार चुकी। फिर गुण-दोषों का विचार कौन करे? यदि आपके हृदय में बहुत ही हठ है और विवाह की बातचीत (बरेखी) किए बिना आपसे रहा ही नहीं जाता, तो संसार में वर-कन्या बहुत हैं। खिलवाड़ करने वालों को आलस्य तो होता नहीं (और कहीं जाकर कीजिए)। मेरा तो करोड़ जन्मों तक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजी को वरूँगी नहीं तो कुमारी ही रहूँगी।

दोहा—तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ॥५८-क॥

सरल अर्थ—आप माया हैं और शिव जी भगवान् हैं। आप दोनों समस्त जगत् के माता-पिता हैं। (यह कहकर) मुनि पार्वती जी के चरणों में सिर नवाकर चल दिए। उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे।

दोहा—सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु ॥५८-ख॥

सरल अर्थ—हे शंकर! सब देवताओं के मन में ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ! वे अपनी आँखों से आपका विवाह देखना चाहते हैं।

दोहा—लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान ॥५८-ग॥

सरल अर्थ—सब देवता अपने भाँति-भाँति के वाहन और विमान सजाने लगे, कल्याणप्रद मंगल शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं।

चौ०-इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई॥

सरल अर्थ—इधर हिमाचल ने ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जगत् में जितने छोटे-बड़े पर्वत थे, जिनका वर्णन करके पार नहीं मिलता तथा जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे हिमाचल ने सबको नेवता भेजा। नगर की सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना चातुरी भी तुच्छ लगती थी।

दोहा—जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ ॥६०॥

सरल अर्थ—जिस नगर में स्वयं जगदम्बा ने अवतार लिया; क्या उसका वर्णन हो सकता है ? वहाँ ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नए बढ़ते जाते हैं।

चौ०-नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खर भरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥
हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देख अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥
धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूँछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥
कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥
बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

सरल अर्थ—बरात को नगर के निकट आई सुनकर नगर में चहल-पहल मच गयी, जिससे उसकी शोभा बढ़ गई। अगवानी करने वाले लोग बनाव-श्रृङ्गार करके तथा नाना प्रकार की सवारियों को सजाकर आदर सहित बरात को लेने चले। देवताओं के समाज को देखकर सब मन में प्रसन्न हुए और विष्णु भगवान् को देखकर तो बहुत ही सुखी हुए। किन्तु जब शिवजी के दल को देखने लगे तब तो उनके सब वाहन (सवारियों के हाथी, घोड़े, रथ के बैल आदि) डर कर भाग चले। कुछ बड़ी उम्र के समझदार लोग धीरज धरकर वहीं डटे रहे। लड़के तो सब अपने प्राण लेकर भागे। घर पहुँचते ही जब माता-पिता पूँछते हैं तब वे भय से काँपते हुए शरीर से ऐसा वचन कहते हैं—क्या कहें, कोई बात कही नहीं जाती। यह बारात है या यमराज की सेना। दूल्हा पागल है और बैल पर सवार है। साँप, कपाल और राख ही उसके गहने हैं।

छंद—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा॥
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही॥
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥

सरल अर्थ—दूल्हे के शरीर पर राख लगी है, साँप और कपाल के गहने हैं, वह नंगा, जटाधारी और भयंकर है। उसके साथ भयानक मुखवाले भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ और राक्षस हैं। जो बारात को देखकर जीता बचेगा सचमुच उसके बड़े ही पुण्य हैं और वही पार्वती का विवाह देखेगा। लड़कों ने घर-घर यही बात कही।

चौ०-लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैंना सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥

मैना हृदय भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥
अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

सरल अर्थ—अगवान लोग बारात को लिवा लाए। उन्होंने सब को सुन्दर जनवासे ठहरने को दिये। मैना (पार्वती की माता) ने शुभ आरती सजायी और उनके साथ की स्त्रियां उत्तम मंगलगीत गाने लगी। सुन्दर हाथों में सोने का थाल शोभित है। इस प्रकार मैना हर्ष के साथ शिवजी का परछन करने चली। जब महादेव जी को भयानक वेष में देखा तब तो स्त्रियों के मन मे बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया। बहुत ही डर के मारे भागकर वे घर में घुस गईं और शिवजी जहां जनवासा था वहां चले गए। मैना के हृदय मे बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने पार्वती जी को अपने पास बुला लिया और अत्यन्त स्नेह से गोद मे बैठाकर अपने नीलकमल के समान नेत्रो मे आंसू भरकर कहा—जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया, उस मूर्ख ने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बनाया?

दोहा—भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि॥९१-क॥

सरल अर्थ—हिमाचल की स्त्री (मैना) को दुःखी देखकर सारी स्त्रियां व्याकुल हो गईं। मैना अपनी कन्या के स्नेह को याद करके विलाप करती, रोती और कहती थी—

दोहा—सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संवाद॥९१-ख॥

सरल अर्थ—तब नारद के वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षण भर मे यह समाचार सारे नगर मे घर-घर फैल गया।

चौ०-हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥
तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई॥
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥
जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउं बखानी॥
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥
तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥

सरल अर्थ—श्री शिव-पार्वती जी का विवाह हो गया। सारे ब्रह्माण्ड मे आनन्द भर गया। पर्वतराज हिमाचल तुरन्त घर आए और उन्होंने सब पर्वतो और सरोवरो को बुलाया। हिमवान् ने आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक

सबकी विदाई की। जब शिवजी कैलाशपर्वत पर पहुँचे तब सब देवता अपने-अपने लोकों को चले गए। (तुलसीदास जी कहते हैं कि) पार्वती जी और शिवजी जगत् के माता-पिता हैं, इसलिए मैं उनके शृङ्गार का वर्णन नहीं करता। शिव-पार्वती जी विविध प्रकार के भोग-विलास करते हुए अपने गणों सहित कैलाश पर रहने लगे। वे नित्य नए विहार करते थे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। तब छः मुख वाले पुत्र (स्वामिकार्तिक) का जन्म हुआ, जिन्होंने (बड़े होने पर) युद्ध में तारकासुर को मारा। वेद, शास्त्र और पुराणों में स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा प्रसिद्ध है और सारा जगत् उसे जानता है।

दोहा—चरित सिंधु गिरिजा रमन वेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गँवारु ॥६२॥

सरल अर्थ—गिरिजापति महादेव जी का चरित्र समुद्र के समान (अपार) है, उसका पार वेद भी नहीं पाते। तब अत्यन्त मन्दबुद्धि और गँवार तुलसीदास इसका वर्णन कैसे कर सकता है।

चौ०-संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा ॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी ॥
प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी ॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥
सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं ॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू ॥
सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥

सरल अर्थ—शिव जी के रसीले और सुहावने चरित्र को सुनकर मुनि भरद्वाज जी ने बहुत ही सुख पाया। कथा सुनने की उनकी लालसा बहुत बढ़ गई। नेत्रों में जल भर आया तथा रोमावली खड़ी हो गई। वे प्रेम में मुग्ध हो गए, मुख से वाणी नहीं निकलती। उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए (और बोले—) हे मुनीश! अहा हा! तुम्हारा जन्म धन्य है, तुमको गौरी पति शिव जी प्राणों के समान प्रिय हैं। शिव जी के चरण-कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्री रामचन्द्र जी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ श्री शिव जी के चरणों में निष्कपट (विशुद्ध) प्रेम होना, यही राम भक्ति का लक्षण है। शिव जी के समान रघुनाथ जी (की भक्ति) का व्रत धारण करने वाला कौन है। जिन्होंने बिना ही पाप के सती जैसी स्त्री को त्याग दिया और प्रतिज्ञा करके श्री रघुनाथ जी की भक्ति को दिखा दिया। हे भाई! श्री रामचन्द्र जी को शिव जी के समान और कौन प्यारा है।

दोहा—प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार ॥६३॥

सरल अर्थ—मैंने पहले ही श्री शिव जी का चरित्र कहकर तुम्हारा भेद समझ लिया। तुम श्री रामचन्द्र जी के पवित्र सेवक हो और समस्त दोषों से रहित हो।

चौ०-मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला ॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें ॥
रामचरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा ॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ॥
सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी ॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥
प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा ॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू ॥

सरल अर्थ—मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया। अब मैं श्री रघुनाथ जी की लीला कहता हूँ, सुनो। हे मुनि! सुनो, आज तुम्हारे मिलने से मेरे मन में जो आनन्द हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता। हे मुनीश्वर! रामचरित्र अत्यन्त अपार है। सौ करोड़ शेष जी भी उसे नहीं कह सकते। तथापि जैसा मैंने सुना है वैसा वाणी के स्वामी (प्रेरक) और हाथ में धनुष लिए प्रभु श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके कहता हूँ। सरस्वती जी कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी स्वामी श्री रामचन्द्र जी (सूत पकड़कर कठपुतली के नचाने वाले) सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उसके हृदयरूपी आँगन में सरस्वती को वे नचाया करते हैं। उन्हीं कृपालु श्री रामचन्द्र जी को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हीं के निर्मल गुणों की कथा कहता हूँ। कैलास पर्वतों में श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है, जहाँ शिव-पार्वती जी सदा निवास करते हैं।

दोहा -सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनि बृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुख कंद ॥५८॥

सरल अर्थ—सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देवता, किन्नर और मुनियों के समूह उस पर्वत पर रहते हैं। वे सब बड़े पुण्यात्मा हैं और आनन्दकन्द श्री महादेव जी की सेवा करते हैं।

चौ०-तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला ॥
त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया ॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ ॥
निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला ॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ॥
तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना ॥
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबि हारी ॥

सरल अर्थ—उस पर्वत पर एक विशाल बरगद का पेड़ है, जो नित्य नवीन और सब काल (छहों ऋतुओं) में सुन्दर रहता है। वहाँ तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द और सुगन्ध) वायु बहती रहती है और उसकी छाया बड़ी ठण्डी रहती है। वह श्रीशिव जी के विश्राम करने का वृक्ष है, जिसे वेदों ने गाया है। एक बार प्रभु श्री शिव जी उस वृक्ष के नीचे गये और उसे देखकर उनके हृदय में बहुत आनन्द हुआ। अपने हाथ से बाघम्बर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वभाव से ही (बिना किसी खास प्रयोजन के) वहाँ बैठ गए। कुन्द के पुष्प चन्द्रमा और शंख के समान उनका गौर शरीर था। बड़ी लम्बी भुजाएँ थीं और वे मुनियों के से (वल्कल) वस्त्र धारण किए हुए थे। उनके चरण नये (पूर्णरूप से खिले हुए) लाल कमल के समान थे, नखों की ज्योति भक्तों के हृदय का अंधकार हरने वाली थी। साँप और भस्म ही उनके भूषण थे और त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी का मुख शरद (पूर्णिमा) के चन्द्रमा की शोभा को भी हरने वाला (फीकी करने वाला) था।

दोहा—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्य निधि सोह बालबिधु भाल ॥६५॥

सरल अर्थ—उनके सिर पर जटाओं का मुकुट और गंगा जी (शोभायमान) थीं। कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे। उनका नीलकण्ठ था और वे सुन्दरता के भण्डार थे। उनके मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभित था।

चौ०-बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरे सरीरु सांत रसु जैसे॥
पारवती भल अवसरु जानी। गई संभु पहिं मातु भवानी॥
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हरि दीन्हा॥
बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥
पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोली प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥
बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुअन महिमा बिदित तुम्हारी॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा॥

सरल अर्थ—कामदेव के शत्रु श्रीशिव जी वहाँ बैठे हुए ऐसे शोभित हो रहे थे, मानों शांतरस ही शरीर धारण किए बैठा हो। अच्छा मौका जानकर शिव पत्नी माता पार्वती जी उनके पास गयीं। अपनी प्यारी पत्नी जानकर श्री शिव जी ने उनका बहुत आदर सत्कार किया और अपनी बायीं ओर बैठने के लिए आसन दिया। पार्वती जी प्रसन्न होकर शिव जी के पास बैठ गयीं। उन्हें पिछले जन्म की कथा स्मरण हो आई। स्वामी के हृदय में (अपने ऊपर पहले की अपेक्षा) अधिक प्रेम समझकर पार्वती जी हँसकर प्रिय वचन बोलीं। (याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि) जो कथा सब लोगों का हित करने वाली है, उसे ही पार्वती जी पूछना चाहती हैं। (पार्वती जी ने कहा)—हे संसार के स्वामी! हे मेरे नाथ! हे त्रिपुरासुर का वध

करने वाले ! आपकी महिमा तीनों लोकों मे विख्यात है। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं।

दोहा—प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान वैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ॥६६॥

सरल अर्थ—हे प्रभो, आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याण स्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के निधान हैं और योग, ज्ञान तथा वैराग्य के भण्डार हैं। आपका नाम शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष है।

चौ०-जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी ॥
तौं प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ॥
जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई ॥
ससि भूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी ॥
प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुनगाना ॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती ॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई ॥

सरल अर्थ—हे सुख के राशि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी (या अपनी सच्ची दासी) जानते हैं तो हे प्रभो ! आप श्री रघुनाथ जी की नाना प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिए। जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दुख को कैसे सहेगा ? हे शशिभूषण ! हे नाथ ! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिए। हे प्रभो ! जो परमार्थ तत्त्व (ब्रह्म) के ज्ञाता और वक्ता मुनि हैं, वे श्री रामचन्द्र जी को अनादि ब्रह्म कहते हैं; और शेष, सरस्वती, वेद और पुराण सभी श्री रघुनाथ जी का गुण गाते हैं। और हे कामदेव के शत्रु। आप भी दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते हैं। ये राम वही अयोध्या के राजा के पुत्र हैं ? या अजन्मा, निर्गुण और अगोचर कोई और राम हैं ?

दोहा—जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥६७॥

सरल अर्थ—यदि वे राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे ? (और यदि ब्रह्म हैं तो) स्त्री के विरह में उनकी मति बावली कैसे हो गई ? इधर उनके ऐसे चरित्र देखकर और उधर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यन्त चकरा रही है।

चौ०-अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥
औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥
हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा ॥

सरल अर्थ—हे देवताओं के स्वामी ! मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ, आप मुझ पर दया करके श्री रघुनाथ जी की कथा कहिए। (इसके सिवा) श्री रामचन्द्र जी के और भी जो अनेक रहस्य (छिपे हुए भाव अथवा चरित्र) हैं, उनको कहिए। पार्वती जी के सहज सुन्दर और छलरहित (सरल) प्रश्न सुनकर श्री शिव जी के मन को बहुत अच्छे लगे। श्री महादेव जी के हृदय में सारे रामचरित्र आ गए। प्रेम के मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया। श्री रघुनाथ जी का रूप उनके हृदय में आ गया, जिससे स्वयं परमानन्दस्वरूप शिव जी ने भी अपार सुख पाया।

दोहा—मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥१११॥

सरल अर्थ—श्री शिवजी दो घड़ी तक ध्यान के रस (आनंद) में डूबे रहे, फिर उन्होंने मन को बाहर खींचा और तब वे प्रसन्न होकर श्री रघुनाथ जी का चरित्र वर्णन करने लगे।

चौ०-झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥
बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥

सरल अर्थ—जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य मालूम होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है, और जिसके जान लेने पर जगत् का उसी तरह लोप हो जाता है जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है। मैं उन्हीं श्री रामचन्द्र जी के बाल-रूप की वन्दना करता हूँ, जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। मंगल के धाम, अमंगल के हरने वाले और श्री दशरथ जी के आँगन में खेलने वाले (बालरूप) श्री रामचन्द्र जी मुझ पर कृपा करें। त्रिपुरासुर का वध करने वाले श्री शिवजी श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम करके आनन्द में भरकर अमृत के समान वाणी बोले—हे गिरिराजकुमारी पार्वती ! तुम धन्य हो ! धन्य हो ! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है। जो तुमने श्री रघुनाथ जी की कथा का प्रसंग पूछा है, जो कथा समस्त लोगों के लिए जगत् को पवित्र करने वाली गंगा जी के समान है। तुमने जगत् के कल्याण के लिए ही प्रश्न पूछे हैं। तुम श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रेम रखने वाली हो।

दोहा—राम कृपातें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं॥
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं ॥११२-क॥

सरल अर्थ—हे पार्वती ! मेरे विचार में तो श्री रामचन्द्र जी की कृपा से तुम्हारे मन में स्वप्न में भी शोक, मोह, सन्देह और भ्रम कुछ भी नहीं है।

दोहा—राम कथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि ॥
सत समाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि ॥६९-ख॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी की कथा कामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है और सत्पुरुषों के समाज ही सब देवताओं के लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा।

चौ०-सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना ॥

सरल अर्थ—सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है—मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है।जो निर्गुण है वही सगुण कैसे है? जैसे जल और ओले में भेद नहीं। (दोनों जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही है।) जिनका नाम भ्रम रूपी अन्धकार के मिटाने के लिए सूर्य है, उसके लिए मोह का प्रसंग भी कैसे कहा जा सकता है? श्री रामचन्द्र जी सच्चिदानन्द स्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोहरूपी रात्रि का लवलेश भी नहीं है। वे स्वभाव से ही प्रकाशरूप और (षडैश्वर्ययुक्त) भगवान् है, वहाँ तो विज्ञान रूपी प्रातःकाल भी नहीं होता (अज्ञान रूपी रात्रि हो तब तो विज्ञान रूपी प्रातः काल हो हो, भगवान् तो नित्य ज्ञान स्वरूप हैं)। हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अभिमान—ये सब जीव के धर्म हैं। श्री रामचन्द्र जी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं। इस बात को सारा जगत् जानता है।

दोहा—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ॥७०॥

सरल अर्थ—जो (पुराण) पुरुष प्रसिद्ध है, प्रकाश के भण्डार हैं, सब रूपों में प्रकट है, जीव, माया और जगत् सब के स्वामी है, वे ही रघुकुल मणि श्री रामचन्द्र जी मेरे स्वामी हैं, ऐसा कहकर श्री शिव जी ने उनको मस्तक नवाया।

चौ०-आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥

आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

सरल अर्थ—जिनका आदि और अन्त किसी ने नहीं (जान) पाया। वेदों ने अपनी बुद्धि से अनुमान करके इस प्रकार (नीचे लिखे अनुसार) गाया—वह (ब्रह्म) बिना ही पैर के चलता है, बिना ही कान के सुनता है, बिना ही हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे (छहों) रसों का आनन्द लेता है और बिना ही वाणी के बहुत योग्य वक्ता है। वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना ही आँखों के देखता है और बिना ही नाक के सब गंधों को ग्रहण करता है (सूँघता है)। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

दोहा—जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ॥७१-क॥

सरल अर्थ—जिसका वेद और पंडित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि जिसका ध्यान धरते है, वही दशरथनन्दन, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान् श्री रामचन्द्र जी हैं।

दोहा—हिय हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ॥७१-ख॥

सरल अर्थ—तब कामदेव के शत्रु, स्वाभाविक ही सुजान, कृपानिधान शिव जी मन में बहुत ही हर्षित हुए और बहुत प्रकार से पार्वती की बड़ाई करके फिर बोले—

सो०—सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़ ॥७१-ग॥
सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ ॥७१-घ॥
हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ॥७१-ङ॥

सरल अर्थ—हे पार्वती! निर्मल रामचरित मानस की वह मंगलमयी कथा सुनो, जिसे काकभुशुण्डि ने विस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड़ जी ने सुना था। वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ वह मैं आगे कहूँगा। अभी तुम श्री रामचन्द्र जी के अवतार का परम सुन्दर और पवित्र (पापनाशक) चरित्र सुनो। श्री हरि के गुण, नाम, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और असीम हैं। फिर भी हे पार्वती मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, तुम आदरपूर्वक सुनो।

चौ०-सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

सरल अर्थ—हे पार्वती! सुनो, वेद शास्त्रों ने श्री हरि के सुन्दर, विस्तृत और निर्मलचरित्रों का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है,' ऐसा नहीं कहा जा सकता (अनेकों कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते है जिन्हे कोई जान ही नहीं सकता)। हे सयानी! सुनो, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणी से श्री रामचन्द्रजी की तर्कना नहीं की जा सकती। तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं, और जैसा कुछ मेरी समझ मे आता है, हे सुमुखि! वही कारण मे तुमको सुनाता हूँ। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ जाते हैं और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भांति-भाँति के (दिव्य) शरीर धारण कर सज्जनो की पीड़ा हरते हैं।

दोहा—असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥७२-क॥

सरल अर्थ—वे असुरो को मारकर देवताओ को स्थापित करते है, अपने (श्वास रूप) वेदो की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत् मे अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्री रामचन्द्र जी के अवतार का यह कारण है।

दोहा—भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जगजान॥७२-ख॥

सरल अर्थ—वे ही (दोनो) जाकर देवताओ को जीतने वाले तथा बडे योद्धा, रावण और कुम्भकर्ण नामक बडे बलवान् और महावीर राक्षस हुए हैं, जिन्हें सारा जगत् जानता है।

चौ०-तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुक निधि कृपालु भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥
नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥

गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिष्नु भगत पुनि ग्यानी ॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥

सरल अर्थ—लीलाओं के भण्डार कृपालु हरि ने उस स्त्री के शाप को प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया)। वही जलन्धर उस कल्प में रावण हुआ, जिसे श्री रामचन्द्र जी ने युद्ध में मारकर परमपद दिया। एक जन्म का कारण यह था, जिससे श्री रामचन्द्र जी ने मनुष्य देह धारण किया। हे भरद्वाज मुनि! सुनो, प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा का कवियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है। एक बार नारद जी ने शाप दिया, अतः एक कल्प में उसके लिए अवतार हुआ। यह बात सुनकर पार्वती जी बड़ी चकित हुईं (और बोलीं कि) नारद जी तो विष्णु भक्त और ज्ञानी हैं। मुनि ने भगवान् को शाप किस कारण से दिया? लक्ष्मीपति भगवान् ने उनका क्या अपराध किया था?

दोहा—बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥७३॥

सरल अर्थ—तब महादेव जी ने हँसकर कहा—न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्री रघुनाथ जी जब जिसका जैसा करते हैं वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है।

सो०—कहहुँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद ॥७४॥

सरल अर्थ—(याज्ञवल्क्य जी कहते हैं) - हे भरद्वाज! मैं श्री रामचन्द्र जी के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो' तुलसीदास जी कहते है—मान और मद को छोड़कर आवागमन का नाश करने वाले श्री रघुनाथ जी को भजो।

दोहा—उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप ॥७५॥

सरल अर्थ—यद्यपि वे (रावण इत्यादि राक्षस) पुलस्त्य ऋषि के पवित्र निर्मल और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण वे सब पाप रूप हुए।

चौ०-कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥
करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें ॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ ॥
जो एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू ॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नींद मास षट केरी ॥

सरल अर्थ—तीनों भाइयों (रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण) ने अनेकों

प्रकार की बड़ी ही कठिन तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। (उनका उग्र) तप देखकर ब्रह्मा जी उनके पास गए और बोले—हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। रावण ने विनय करके और चरण पकड़ कर कहा—हे जगदीश्वर! सुनिए, वानर और मनुष्य इन दो जातियों को छोड़कर हम किसी के मारे न मरें (यह वर दीजिए)। (शिवजी कहते हैं कि—) मैंने और ब्रह्मा ने मिलकर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है। फिर ब्रह्मा जी कुम्भकर्ण के पास गए। उसे देखकर उनके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार ही उजाड़ हो जाएगा, (ऐसा विचारकर) ब्रह्मा जी ने सरस्वती को प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी। (जिससे) उसने छः महीने की नींद माँगी।

दोहा—गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।।७६।।

सरल अर्थ—फिर ब्रह्मा जी विभीषण के पास गए और बोले—हे पुत्र! वर माँगो। उसने भगवान् के चरण कमलों में निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगा।

चौ०-तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए।।
मय तनुजा मदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा।।
सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी।।
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई।।
गिरि त्रिकूट एक सिन्धु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी।।
सोई मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनिभवन अपारा।।
भोगावति जसि अहि कुल बासा। अमरावति जसि सक्र निवासा।।
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका।।

सरल अर्थ—उनको वर देकर ब्रह्मा जी चले गए। और वे (तीनों भाई) हर्षित होकर अपने घर लौट आए। मय दानव की मन्दोदरी नाम की कन्या परम सुन्दरी और स्त्रियों में शिरोमणि थी। मय ने उसे लाकर रावण को दिया: उसने जान लिया कि यह राक्षसों का राजा होगा। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयों का विवाह कर दिया। समुद्र के बीच में त्रिकूट नामक पर्वत पर ब्रह्मा का बनाया हुआ एक बड़ा भारी किला था। (महान् मायावी और निपुण कारीगर) मय दानव ने उसे फिर से सजा दिया। उसमें मणियों से जड़े हुए सोने के अनगिनत महल थे। जैसी नागकुल के रहने की (पाताल लोक में) भोगावतीपुरी है और इन्द्र के रहने की (स्वर्गलोक में) अमरावती पुरी है, उनसे भी अधिक सुन्दर और बांका वह दुर्ग था। जगत् में उसका नाम लंका प्रसिद्ध हुआ।

दोहा—खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव।।७७-क।।

सरल अर्थ—उसे चारों ओर से समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए है। उस (दुर्ग) के मणियों से जड़ा हुआ सोने का मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दोहा—हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ ॥७७-ख॥

सरल अर्थ—भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान् अपनी सेना सहित उस पुरी में बसता है।

चौ०-रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥
फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥

सरल अर्थ—(पहले) वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। देवताओं ने उन सबको युद्ध में मार डाला। अब इन्द्र की प्रेरणा से वहाँ कुबेर के एक करोड़ रक्षक (यक्ष लोग) रहते हैं। रावण को कहीं ऐसी खबर मिली तब उसने सेना सजाकर किले को जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेना को देखकर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गए। तब रावण ने घूम-फिरकर सारा नगर देखा। उसकी (स्थान सम्बन्धी) चिंता मिट गई और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही सुन्दर और (बाहर वालों के लिए) दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी कायम की। योग्यता के अनुसार घरों को बाँटकर रावण ने सब राक्षसों को सुखी किया। एक बार वह कुबेर पर चढ़ दौड़ा और उससे पुष्पक विमान को जीतकर ले आया।

दोहा—कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ ॥७८॥

सरल अर्थ—फिर उसने जाकर (एक बार) खिलवाड़ ही में कैलास पर्वत को उठा लिया और मानों अपनी भुजाओं का बल तौलकर, बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चला आया।

चौ०-सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥
अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥

करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई ॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना ॥
बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई ॥

सरल अर्थ—सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई—ये सब उसके नित्य नए (वैसे ही) बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण-सा उसका भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा जगत् में पैदा ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छः महीने सोया करता था। उसके जागते ही तीनों लोकों में तहलका मच जाता था। यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (खाली) हो जाता। रणधीर ऐसा था जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (लङ्का में) उसके—ऐसे असंख्य बलवान् वीर थे। मेघनाद रावण का बड़ा लड़का था, जिसका जगत् के योद्धाओं में पहला नम्बर था। रण में कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वर्ग में तो (उसके भय से) नित्य भगदड़ मची रहती थी।

दोहा—कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय ॥७०॥

सरल अर्थ—(इसके अतिरिक्त) दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे जो अकेले ही सारे जगत् को जीत सकते थे।

चौ०-कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया ॥
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा ॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी ॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाई सुनहु अब सोई ॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥

सरल अर्थ—सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और (आसुरी) माया जानते थे। उनके दया-धर्म स्वप्न में भी नहीं था। एक बार सभा में बैठे हुए रावण ने अपने अगणित परिवार को देखा। पुत्र-पौत्र, कुटुम्बी और सेवक ढेर के ढेर थे। (सारी) राक्षसों की जातियों को तो गिन ही कौन सकता था। अपनी सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व में सनी हुई वाणी बोला—हे समस्त राक्षसों के दलो! सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर युद्ध नहीं करते। बलवान शत्रु को देखकर भाग जाते हैं। उनका मरण एक ही उपाय से हो

सकता है। मैं समझा कर कहता हूँ। अब उसे सुनो, (उनके बल को बढ़ाने वाले) ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध इन सब में जाकर तुम बाधा डालो।

दोहा—छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ ॥८०॥

सरल अर्थ—भूख से दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहज में ही आ मिलेंगे। तब उनको मैं मार डालूँगा। अथवा भली-भाँति अपने अधीन करके (सर्वथा पराधीन करके) छोड़ दूँगा।

चौ०-चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ॥
दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए ॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी ॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा ॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी ॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥

सरल अर्थ—रावण के चलने से पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जना से देवरमणियों के गर्भ गिरने लगे। रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत की गुफाएँ तकी (भागकर सुमेरु की गुफाओं में आश्रय लिया)। दिक्पालों के सारे सुन्दर लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंह-गर्जना करके देवताओं को ललकार-ललकार गालियाँ देता था। रण के मद में मतवाला होकर वह अपनी जोड़ी का योद्धा खोजता हुआ जगत् भर में दौड़ता फिरा, परन्तु उसे ऐसा योद्धा कहीं नहीं मिला। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग सभी के पीछे वह हठपूर्वक पड़ गया (किसी को भी उसने शांतिपूर्वक नहीं बैठने दिया।) ब्रह्मा जी की सृष्टि में जहाँ तक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे सभी रावण के अधीन हो गए। डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे।

दोहा—भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र ॥८१-क॥

सरल अर्थ—उसने भुजाओं के बल से सारे विश्व को वश में कर लिया, किसी को स्वतन्त्र नहीं रहने दिया। (इस प्रकार) मण्डलीक राजाओं का शिरोमणि (सार्वभौम सम्राट) रावण अपने इच्छानुसार राज्य करने लगा।

दोहा—देव जच्छ गंधर्व नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि ॥८१-ख॥

सरल अर्थ—देवता, यक्ष, गंधर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथा बहुत सी अन्य सुन्दरी और उत्तम स्त्रियों को उसने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर ब्याह लिया।

चौ०-इन्द्रजीत सन जो कुछ कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥
देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना॥

सरल अर्थ—मेघनाद से उसने जो कुछ कहा उसे उसने (मेघनाद ने) मानो पहले से ही कर रखा था (अर्थात् रावण के कहने भर की देर थी, उसने आज्ञा-पालन में तनिक भी देर नहीं की)। जिनको (रावण ने मेघनाद से) पहले ही आज्ञा दे रखी थी, इन्होंने जो करतूतें कीं उन्हें सुनो। सब राक्षसों के समूह देखने में बड़े भयानक पापी और देवताओं को दुःख देने वाले थे। वे असुरों के समूह उपद्रव करते थे और माया से अनेकों प्रकार के रूप धरते थे। जिस प्रकार धर्म की जड़ कटे, वे वही सब वेद विरुद्ध काम करते थे। जिस-जिस स्थान में वे गौ और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवे में वे आग लगा देते थे। (उनके डर से) कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, श्राद्ध आदि) नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। न हरि भक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे।

छंद—जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा॥
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना॥
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥

सरल अर्थ—जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञ में (देवताओं के) भाग पाने की बात रावण कहीं कानों से सुन पाता, तो (उसी समय) स्वयं उठ दौड़ता। कुछ भी रहने नहीं पाता, वह सबको पकड़कर विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों से भी सुनने में नहीं आता था, जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरह से त्रास देता और देश से निकाल देता था।

सो०-बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहिं कवनि मिति ॥८२॥

सरल अर्थ—राक्षस लोग जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना ?

चौ०-बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ॥
गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भयभीता ॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई ॥

सरल अर्थ—पराये धन और परायी स्त्री पर मन चलाने वाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गए। लोग माता-पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं (की सेवा करना तो दूर रहा उल्टे उन) से सेवा करवाते थे। (श्री शिव जी कहते हैं कि—) हे भवानी! जिनके ऐसे आचरण हैं, उन सब प्राणियों को राक्षस ही समझना। इस प्रकार धर्म के प्रति (लोगों की) अतिशय ग्लानि (अरुचि अनास्था) देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो गई। (वह सोचने लगी कि) पर्वतों, नदियों और समुद्रों का बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता जितना भारी मुझे एक परद्रोही (दूसरों का अनिष्ट करने वाला) लगता है। पृथ्वी सारे धर्मों को विपरीत देख रही है, पर रावण से भयभीत हुई वह कुछ बोल नहीं सकती। (अन्त में) हृदय में सोच-विचार कर, गौ का रूप धारण कर धरती वहाँ गई जहाँ सब देवता और मुनि (छिपे) थे। पृथ्वी ने रोकर उनको अपना दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम नहीं बना।

छंद—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका ॥
संग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई ॥
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ॥

सरल अर्थ—तब देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्मा जी के लोक (सत्यलोक) को गए। भय और शोक से अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौ का शरीर धारण किए हुए उनके साथ थी। ब्रह्मा जी सब जान गए। उन्होंने मन में अनुमान लगाया कि इसमें मेरा कुछ भी वश नहीं चलने का। (तब उन्होंने पृथ्वी से कहा—कि) जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनों का सहायक है।

सो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥८३॥

सरल अर्थ—ब्रह्मा जी ने कहा—हे धरती ! मन में धीरज धारण करके श्री हरि के चरणों का स्मरण करो। प्रभु अपने दासों की पीड़ा को जानते हैं, वे तुम्हारी कठिन विपत्ति का नाश करेंगे।

चौ०-बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥
जाके हृदयँ भगति जस प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती ॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेउँ। अवसर पाइ बचन एक कहेउँ ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जग मय रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर बचन सबके मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

सरलअर्थ—सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पावें ताकि उनके सामने पुकार (फर्याद) करें। कोई बैकुण्ठपुरी जाने को कहता था, और कोई कहता था कि वही प्रभु क्षीरसमुद्र में निवास करते हैं। जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (उसके लिए) सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। हे पार्वती ! उस समाज में मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही—मैं तो यह सब जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूप से व्यापक है, प्रेम से वे प्रकट हो जाते हैं। देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ, ऐसी जगह कहाँ है जहाँ प्रभु न हो। वे चराचरमय (चराचर में व्याप्त) होते हुए ही सबसे रहित है, और विरक्त हैं (उनकी कहीं आसक्ति नहीं है) वे प्रेम से प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि। (अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु जहाँ उसके लिए अरणिमन्थनादि साधन किए जाते हैं वहाँ वह प्रकट होती है। इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान् भी प्रेम से प्रकट होते हैं।) मेरी बात सबको प्रिय लगी। ब्रह्मा जी ने 'साधु साधु' कह कर बड़ाई की।

दोहा—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर ॥८४॥

सरल अर्थ—मेरी बात सुनकर ब्रह्मा जी के मन में बड़ा हर्ष हुआ, उनका तन पुलकित हो गया और नेत्रों से (प्रेम में) आँसू बहने लगे। तब वे धीरबुद्धि ब्रह्मा जी सावधान होकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता ॥
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रियकंता ॥

पालन सुरधरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई ।।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ।।१।।

जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा ।।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ।।
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिवृंदा ।।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ।।२।।

जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ।।
जो भव भय भंजन मुनि मनरंजन गंजन बिपति बरूथा ।।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा ।।३।।
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना ।।
जेहि दीन पियारे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना ।।
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुख पुंजा ।।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा ।।४।।

सरल अर्थ—हे देवताओं के स्वामी, सेवकों को सुख देने वाले, शरणागत की रक्षा करने वाले भगवान् ! आपको जय हो !! जय हो !! हे गो-ब्राह्मणों का हित करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले, समुद्र की कन्या (लक्ष्मी) के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो ! हे देवता और पृथ्वी का पालन करने वाले ! आपकी लीला अद्भुत है। उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभाव से ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हम पर कृपा करें। हे अविनाशी, सबके हृदय में निवास करने वाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक परम आनन्दस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियों से परे, पवित्र चरित्र, माया से रहित मुकुन्द (मोक्षदाता) ! आप की जय हो ! जय हो !! (इस लोक और परलोक के सब भोगों से) विरक्त तथा सब मोहों से सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणों के समूह का गान करते हैं, उन सच्चिदानन्द की जय हो। जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी अथवा सहायक के अकेले ही (या स्वयं अपने को त्रिगुण रूप-ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूप बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारण के अर्थात् स्वयं ही सृष्टि का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर) तीन प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की, वे पापों का नाश करने वाले भगवान् हमारी सुधि लें हम न भक्ति जानते हैं न पूजा ! जो संसार के (जन्म-मृत्यु के) भय का नाश करने वाले, मुनियों के मन को आनंद देने वाले और विपत्तियों के समूह को नष्ट करने वाले हैं। हम सब देवताओं के समूह मन, वचन और कर्म से चतुराई करने की बात छोड़कर उन (भगवान्) की शरण (आए) हैं। सरस्वती, वेद, शेष जी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकार कर कहते हैं, वे

ही श्री भगवान् हम पर दया करें। हे संसार रूपी समुद्र के (मथने के) लिए मन्दराचल रूप सब प्रकार से सुन्दर, गुणों के धाम और सुखों की राशि नाथ! आपके चरण कमलों में मुनि, सिद्ध और सारे देवता भय से अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

दोहा—जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥८५॥

सरल अर्थ—देवता और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और संदेह को हरने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई।

चौ०-जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥
ते दशरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा ॥
तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ॥
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा ॥

सरल अर्थ—हे मुनि, सिद्ध और देवताओं के स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिए मैं मनुष्य का रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंश में अंशों सहित मनुष्य का अवतार लूँगा। कश्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर श्री अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं। उन्हीं के घर जाकर मैं रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूँगा। नारद के सब वचन मैं सत्य करूँगा और अपनी पराशक्ति के सहित अवतार लूँगा। मैं पृथ्वी का सब भार हर लूँगा। हे देववृन्द! तुम निर्भय हो जाओ। आकाश में ब्रह्म (भगवान्) की वाणी को कान से सुनकर देवता तुरन्त लौट गए। उनका हृदय शीतल हो गया। तब ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को समझाया। वह भी निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा (ढाढस) आ गया।

दोहा—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥८६॥

सरल अर्थ—देवताओं को यही सिखाकर कि वानरों का शरीर धर-धर कर तुम लोग पृथ्वी पर जाकर भगवान् के चरणों की सेवा करो, ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गए।

चौ०-गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा ॥
जो कुछ आयसु ब्रह्मां दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा ॥
बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा ॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी ॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा ॥
अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥
धरम धुरंधर गुन निधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारँग पानी ॥

सरल अर्थ—सब देवता अपने-अपने लोक को गए। पृथ्वी सहित सबके मन को शान्ति मिली। ब्रह्मा जी ने जो कुछ आज्ञा दी, उससे देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने (वैसा करने में) देर नहीं की। पृथ्वी पर उन्होंने वानर देह धारण की। उनमें अपार बल और प्रताप था। सभी शूरवीर थे; पर्वत, वृक्ष और नख ही उनके शस्त्र थे। वे धीर बुद्धिवाले (वानर रूप देवता) भगवान् के आने की राह देखने लगे। वे (वानर) पर्वतों और जंगलों में जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी सुन्दर सेना बनाकर भरपूर छा गए। यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा। अब वह चरित्र सुनो जिसे बीच ही में छोड़ दिया था। श्री अवधपुरी में रघुकुलशिरोमणि दशरथ नाम के राजा हुए, जिनका नाम वेदों में विख्यात है। वे धर्म धुरंधर, गुणों के भण्डार और ज्ञानी थे। उनके हृदय में शार्ङ्गधनुष धारण करने वाले भगवान् की भक्ति थी और उनकी बुद्धि भी उन्हीं में लगी रहती थी।

दोहा—कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत ॥८७॥

सरल अर्थ—उनकी कौसल्यादि प्रिय रानियाँ सभी पवित्र आचरणवाली थीं! वे (बड़ी) विनीत और पति के अनुकूल (चलने वाली) थीं और श्री हरि के चरण कमलों में उनका दृढ़ प्रेम था।

चौ०-एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं ॥
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला ॥
निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझायउ ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी ॥
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बुलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा ॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे ॥
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥

सरल अर्थ—एक बार राजा के मन में बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है। राजा तुरन्त ही गुरु के घर गए और चरणों में प्रणाम कर बहुत विनय की। राजा

ने अपना सारा सुख-दुःख गुरु को सुनाया। गुरु वशिष्ठ जी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया (और कहा—) धीरज धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध और भक्तों के भय को हरने वाले होंगे। वशिष्ठ जी ने शृङ्गी ऋषि को बुलवाया और उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया। मुनि के भक्ति सहित आहुतियाँ देने पर अग्निदेव हाथ में चरु (हविष्यान्न, खीर) लिए प्रकट हुए। (और दशरथ जी से बोले—) वशिष्ठ जी ने हृदय में जो कुछ विचारा था, तुम्हारा वह सब काम सिद्ध हो गया। हे राजन्! (अब) तुम जाकर इस हविष्यान्न (पायस) को जिसको जैसा उचित हो, वैसा भाग बनाकर बाँट दो।

दोहा—तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ ॥८८॥

सरल अर्थ—तदनन्तर अग्निदेव सारी सभा को समझाकर अंतर्धान हो गए। राजा परमानन्द में मग्न हो गए, उनके हृदय में हर्ष समाता न था।

चौ०-तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं ॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥
कौसल्या कैकेयी हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥
एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी ॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए ॥
मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेज की खानी ॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ ॥

सरल अर्थ—उसी समय राजा ने अपनी प्यारी पत्नियों को बुलाया। कौसल्या आदि सब (रानियाँ) वहाँ चली आईं। राजा ने (पायस का आधा भाग कौसल्या को दिया (और शेष) आधे के दो भाग किए। वह (उनमें से एक भाग) राजा ने कैकेयी को दिया। शेष जो बच रहा उसके फिर दो भाग हुए और राजा ने उनको कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर (अर्थात्—उनकी अनुमति लेकर), और इस प्रकार उनका मन प्रसन्न करके सुमित्रा को दिया। इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय में बहुत हर्षित हुईं, उन्हें बड़ा सुख मिला। जिस दिन से श्री हरि (लीला से ही) गर्भ में आए, सब लोकों में सुख और सम्पत्ति छा गई। शोभा, शील और तेज की खान (बनी हुई) सब रानियाँ महल में सुशोभित हुईं। इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया जिसमें प्रभु को प्रकट होना था।

दोहा—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम-जनम सुख मूल ॥८९॥

सरल अर्थ—योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हो गए। जड़

और चेतन सब हर्ष से भर गए। (क्योंकि) श्री रामचन्द्र जी का जन्म सुख का मूल है।

चौ०-नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥
सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥
बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा॥

सरल अर्थ—पवित्र चैत्र का महीना, नवमी तिथि थी। शुक्ल पक्ष और भगवान् का प्रिय अभिजित मुहूर्त था। दोपहर का समय था। न बहुत सरदी थी, न धूप (गरमी) थी। वह पवित्र समय सब लोकों को शान्ति देने वाला था। शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन बह रहा था। देवता हर्षित थे और संतों के मन में (बड़ा) चाव था। वन फूले हुए थे, पर्वतों के समूह मणियों से जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृत की धारा बहा रही थीं। जब ब्रह्मा जी ने वह (भगवान् के प्रकट होने का)—अवसर जाना, तब (उनके समेत) सारे देवता विमान सजा-सजाकर चले। निर्मल आकाश देवताओं के समूहों से भर गया। गन्धर्वों के दल गुणों का गान करने लगे और सुन्दर अंजलियों में सजा-सजाकर पुष्प बरसाने लगे। आकाश में घमाधम नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकार से अपनी-अपनी सेवा (उपहार) भेंट करने लगे।

दोहा—सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥१९०॥

सरल अर्थ—देवताओं के समूह विनती करके अपने-अपने लोक जा पहुँचे। समस्त लोकों को शान्ति देने वाले, जगदाधार प्रभु प्रकट हुए।

छंद-भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बन माला नयन बिसाला सोभा सिन्धु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनंता॥
करुना सुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता॥
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्री कंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥

उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ॥
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ॥
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥

सरल अर्थ—दीनो पर दया करने वाले, कौसल्या जी के हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरने वाले उनके अद्भुत रूप का विचार करके माता हर्ष से भर गयी। नेत्रों को आनंद देने वाला, मेघ के समान श्याम शरीर था, चारों भुजाओं में अपने (खास) आयुध (धारण किए हुए) थे, (दिव्य) आभूषण और वनमाला पहने हुए थे, बड़े-बड़े नेत्र थे। इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर राक्षस को मारने वाले भगवान् प्रकट हुए। दोनो हाथ जोडकर माता कहने लगी—हे अनंत ! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति करूँ। वेद और पुराण तुमको माया, गुण और ज्ञान से परे और परिमाण रहित बतलाते हैं। श्रुतियाँ और संत जन दया और सुख का समुद्र, सब गुणों का धाम कहकर जिनका गान करते हैं, वही भक्तो पर प्रेम करने वाले लक्ष्मीपति भगवान् मेरे कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं। वेद कहते हैं कि तुम्हारे रोम-रोम मे माया के रचे हुए अनेको ब्रह्माण्डो के समूह (भरे) हैं। वे तुम मेरे गर्भ में रहे—इस हँसी की बात सुनने पर धीर (विवेकी) पुरुषो की बुद्धि भी स्थिर नही रहती (विचलित हो जाती है)। जब माता को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब प्रभु मुसकराए। वे बहुत प्रकार के चरित्र करना चाहते हैं। अत. उन्होने (पूर्व जन्म की) सुन्दर कथा कहकर माता को समझाया, जिससे उन्हें पुत्र का (वात्सल्य) प्रेम प्राप्त हो (भगवान् के प्रति पुत्र भाव हो जाय)। माता की वह बुद्धि बदल गई, तब फिर वह बोली—हे तात ! यह रूप छोडकर अत्यन्त प्रिय बाललीला करो, (मेरे लिए) यह सुख परम अनुपम होगा। (माता का) यह वचन सुनकर देवताओ के स्वामी सुजान भगवान् ने बालक (रूप) होकर रोना शुरू कर दिया। (तुलसीदास जी कहते हैं—) जो इस चरित्र का गान करते हैं, वे श्री हरि का पद पाते हैं और (फिर) संसार रूपी कूप मे नही गिरते।

दोहा—बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ॥१९२॥

सरल अर्थ—ब्राह्मण, गौ, देवता और संतों के लिए भगवान् ने मनुष्य का अवतार लिया। वे (अज्ञानमयी, मलिना) माया और उसके गुण (सत, रज, तम) और (बाहरी तथा भीतरी) इन्द्रियों से परे हैं। उनका (दिव्य) शरीर अपनी इच्छा से ही बना है। (किसी कर्मबन्धन से परवश होकर त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थों के द्वारा नहीं)।

चौ०-सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी ॥
दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥
गुर बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृप द्वारा ॥
अनुपम बालक देखन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई ॥

सरल अर्थ—बच्चे के रोने की बहुत ही प्यारी ध्वनि सुनकर सब रानियाँ उतावली होकर दौड़ चली आयीं। दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ीं। सारे पुरवासी आनंद में मग्न हो गए। राजा दशरथ जी पुत्र का जन्म कानों से सुनकर मानो ब्रह्मानन्द में समा गए। मन में अतिशय प्रेम है, शरीर पुलकित हो गया। (आनन्द मे अधीर हुई) बुद्धि को धीरज देकर (और प्रेम में शिथिल हुए शरीर को सँभालकर) वे उठना चाहते हैं। जिनका नाम सुनने से ही कल्याण होता है, वही प्रभु मेरे घर आए हैं। (यह सोचकर) राजा का मन परम आनंद से पूर्ण हो गया। उन्होंने बाजे वालों को बुलाकर कहा कि बाजा बजाओ। गुरु वशिष्ठ जी के पास बुलावा गया। वे ब्राह्मणों को साथ लिए राजद्वार पर आए। उन्होंने आकर अनुपम बालक को देखा, जो रूप की राशि है और जिसके गुण कहने से समाप्त नहीं होते।

दोहा—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥१९२॥

सरल अर्थ—फिर राजा ने नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म-संस्कार आदि किए और ब्राह्मणों को सोना, गौ, वस्त्र और मणियों का दान दिया।

चौ०-ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा ॥
सुमनवृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानन्द मगन सब लोई ॥
बृंद बृंद मिलि चली लोगाईं। सहज सिंगार किएँ उठि धाईं ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥
करि आरति नेवछावरि करहीं। बार-बार सिसु चरनन्हि परहीं ॥
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥
सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू ॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथीन्ह बिच बीचा ॥

सरल अर्थ—ध्वजा, पताका और तोरणों से नगर छा गया। जिस प्रकार से वह सजाया गया, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। आकाश से फूलों की वर्षा हो रही है, सब लोग ब्रह्मानंद में मग्न है। स्त्रियाँ झुण्ड-की-झुण्ड मिलकर चलीं। स्वाभाविक श्रृङ्गार किए ही वे उठ दौड़ीं। सोने का कलश लेकर और थालों में मंगल

द्रव्य भरकर गाती हुई राजद्वार मे प्रवेश करती हैं। वे आरती करके निछावर करती हैं और बार-बार बच्चे के चरणों पर गिरती हैं। मागध, सूत, बन्दीजन और गवैये रघुकुल के स्वामी के पवित्र गुणों का गान करते हैं। राजा ने सब किसी को भरपूर दान दिया। जिसने पाया उसने भी नहीं रखा (लुटा दिया)। (नगर की) सभी गलियों के बीच-बीच मे कस्तूरी, चन्दन और केसर की कीच मच गई।

दोहा—गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद ॥१९३॥

सरल अर्थ—घर-घर मङ्गलमय बधावा बजने लगा, क्योंकि शोभा के मूल भगवान् प्रकट हुए है। नगर के स्त्री-पुरुष झुण्ड-के-झुण्ड जहाँ-तहाँ आनन्द-मग्न हो रहे हैं।

चौ०-कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ ॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा ॥
अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती ॥
देखि भानु जन मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी ॥
अगरधूप बहु जनु अँधिआरी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी ॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा ॥
भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनु सानी ॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना ॥

सरल अर्थ—कैकेयी और सुमित्रा इन दोनो ने भी सुन्दर पुत्रो को जन्म दिया। उस सुख, सम्पत्ति, समय और समाज का वर्णन सरस्वती और सर्पों के राजा शेष जी भी नहीं कर सकते। अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो रात्रि प्रभु से मिलने आयी हो और सूर्य को देखकर मानो सकुचा गयी हो, परन्तु फिर भी मन मे विचार कर वह मानो सध्या बन (कर रह) गयी हो। अगर की धूप का बहुत-सा धुआँ मानो (संध्या का) अन्धकार है और जो अबीर उड रहा है, वह उसकी ललाई है। महलो मे जो मणियो के समूह हैं, वे मानो तारागण हैं। राज-महल का जो कलश है, वही मानो श्रेष्ठ चन्द्रमा है। राजभवन मे जो अति कोमल वाणी से वेद ध्वनि हो रही है, वही मानो समय के (समयानुकूल) सनी हुई पक्षियो की चहचहाहट है। यह कौतुक देखकर सूर्य भी (अपनी चाल) भूल गए। एक महीना उन्होंने जाता हुआ न जाना। (अर्थात् उन्हे एक महीना वहीं बीत गया)।

दोहा—मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ ॥१९४॥

सरल अर्थ—महीने भर का दिन हो गया। इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथ सहित वही रुक गए, फिर रात किस तरह होती।

चौ०-कछुक दिवस बीते एहि भाँती । जात न जानिअ दिन अरु राती ॥
नामकरन कर अवसरु जानी । भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥
करि पूजा भूपति अस भाषा । धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा ॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥
जो आनन्द सिंधु सुख रासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुख धाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा । नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥

सरल अर्थ—इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। दिन और रात जाते हुए जान नहीं पड़ते। तब नामकरण-संस्कार का समय जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि श्री वशिष्ठ जी को बुला भेजा। मुनि की पूजा करके राजा ने कहा—हे मुनि ! आपने मन में जो विचार रक्खे हों, वे नाम रखिए। (मुनि ने कहा—) हे राजन् ! इनके अनेक अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा। ये जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि हैं, जिस (आनन्दसिन्धु) के एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का नाम 'राम' है, जो सुख का भवन और सम्पूर्ण लोकों को शान्ति देने वाला है। जो संसार का भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम 'भरत' होगा। जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका वेदों में प्रसिद्ध 'शत्रुघ्न' नाम है।

दोहा—लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार ॥१९७॥

सरल अर्थ—जो शुभ लक्षणों के धाम, श्री रामचन्द्र जी के प्यारे और सारे जगत् के आधार हैं, गुरु वशिष्ठ जी ने उनका 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठ नाम रखा।

चौ०-धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी ॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना । बाल केलि रस तेहिं सुख माना ॥
बारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई ॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी । निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी ॥
चारिउ सील रूप गुन धामा । तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥
हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा । सूचत किरन मनोहर हासा ॥
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना । मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना ॥

सरल अर्थ—गुरु जी ने हृदय में विचार कर ये नाम रक्खे (और कहा—) हे राजन् ! तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्व (साक्षात् परात्पर भगवान्) हैं। जो मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व और शिवजी के प्राण हैं, उन्होंने (इस समय तुम लोगों के प्रेमवश) बाल लीला के रस में सुख माना है। बचपन से ही श्री रामचन्द्र जी को

अपना परम हितैषी स्वामी जानकर लक्ष्मण जी ने उनके चरणों में प्रीति जोड़ ली। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों में स्वामी और सेवक की जिस प्रीति की प्रशंसा है वैसी प्रीति हो गई। श्याम और गौर शरीर वाली दोनों सुन्दर जोड़ियों की शोभा को देखकर माताएँ तृण तोड़ती हैं (जिससे दीठ न लग जाय)। यों तो चारों ही पुत्र शील, रूप और गुण के धाम हैं, तो भी सुख के समुद्र श्री रामचन्द्र जी सबसे अधिक हैं। उनके हृदय में कृपारूपी चन्द्रमा प्रकाशित है। उनकी मन को हरने वाली हँसी उस (कृपारूपी चन्द्रमा) किरणों को सूचित करती है। कभी गोद में (लेकर) और कभी उत्तम पालने में (लिटाकर) माता 'प्यारे ललना' कहकर दुलार करती है।

दोहा—व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ॥१९॥

सरल अर्थ—जो सर्व व्यापक, निरंजन (माया रहित), निर्गुण, विनोद रहित और अजन्मा ब्रह्म हैं, वही प्रेम और भक्ति के वश कौसल्या जी की गोद में (खेल रहे) हैं।

चौ०-काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनिमन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा ॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा ॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे ॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा ॥

सरल अर्थ—उनके नील कमल और गम्भीर (जल से भरे हुए) मेघ के समान श्याम शरीर में करोड़ों कामदेवों की शोभा है। लाल-लाल चरण कमलों के नख की (शुभ्र) ज्योति ऐसी मालूम होती है जैसे (लाल) कमल के पत्तों पर मोती स्थिर हो गए हों। (चरणतलों में) वज्र, ध्वजा और अंकुश के चिह्न शोभित हैं। नूपुर (पैंजनी) की ध्वनि सुनकर मुनियों का भी मन मोहित हो जाता है। कमर में करधनी और पेट पर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभि की गम्भीरता को तो वही जानते हैं, जिन्होंने उसे देखा है। बहुत से आभूषणों से सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदय पर बाघ के नख की बहुत ही निराली छटा है। छाती पर रत्नों से युक्त मणियों के हार की शोभा और ब्राह्मण (भृगु) के चरणचिह्न को देखते ही मन लुभा जाता है। कण्ठ शंख के समान (उतार-चढ़ाव वाला, तीन रेखाओं से सुशोभित) है और

ठोड़ी बहुत ही सुन्दर है। मुख पर असंख्य कामदेवों की छटा छा रही है। दो-दो सुन्दर दंतुलियाँ हैं, लाल-लाल ओठ हैं। नासिका और तिलक (के सौन्दर्य) का तो वर्णन ही कौन कर सकता है। सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं। मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्म के समय से रक्खे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माता ने बहुत प्रकार से बनाकर सँवार दिया है। शरीर पर पीली झँगुली पहनायी हुई है। उनका घुटनों और हाथों के बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। उनके रूप का वर्णन वेद और शेष जी भी नहीं कर सकते। उसे वही जानता है जिसने कभी स्वप्न में भी देखा हो।

दोहा—सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत ॥८७॥

सरल अर्थ—जो सुख के पुंज, मोह से परे तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं, वे भगवान् दशरथ-कौसल्या के अत्यन्त प्रेम के वश होकर पवित्र बाल-लीला करते हैं।

चौ०-एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी॥
रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥
भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥
एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगर बासिन्ह सुख दीन्हा॥
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालनें घालि झुलावै॥

सरल अर्थ—इस प्रकार (सम्पूर्ण) जगत् के माता-पिता श्री रामचन्द्र जी अवधपुर के निवासियों को सुख देते हैं। जिन्होंने श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रीति जोड़ी है, हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है (कि भगवान् उनके प्रेमवश बाल-लीला करके उन्हें आनन्द दे रहे हैं)। श्री रघुनाथ जी से विमुख रह कर मनुष्य चाहे करोड़ों उपाय करे, परन्तु उसका संसार-बन्धन कौन छुड़ा सकता है। जिसने सब चराचर जीवों को अपने वश में कर रक्खा है, वह माया भी प्रभु से भय खाती है। भगवान् उस माया को भौं के इशारे पर नचाते हैं। ऐसे प्रभु को छोड़कर कहो, (और) किसका भजन किया जाय। मन, वचन और कर्म से चतुराई छोड़कर भजते ही श्री रघुनाथ जी कृपा करेंगे। इस प्रकार से प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने बालक्रीड़ा की और समस्त नगर निवासियों को सुख दिया। कौसल्या जी कभी उन्हें गोद में लेकर हिलाती-डुलाती और कभी पालने में लिटाकर झुलाती थीं।

दोहा—प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान ॥८८॥

सरल अर्थ—प्रेम में मग्न कौसल्या जी रात और दिन का बीतना नहीं जानती थी। पुत्र के स्नेहवश माता उनके बाल-चरित्रों का गान किया करती थीं।

चौ०-एक बार जननी अन्हवाये। करि सिंगार पलना पौढ़ाए॥
निज कुल इष्ट देव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥
गै जननी सिसु पहि भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोरि कि आन बिसेषा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

सरल अर्थ—एक बार माता ने श्री रामचन्द्र जी को स्नान कराया और शृंगार करके पालने पर पौढा दिया। फिर अपने कुल के इष्टदेव भगवान् की पूजा के लिए स्नान किया। पूजा करके नैवेद्य चढाया और स्वयं वहाँ गयी, जहाँ रसोई बनाई गई थी। फिर माता वही (पूजा के स्थान मे) लौट आयी और वहाँ आने पर पुत्र को (इष्टदेव भगवान् के लिये चढाये हुए नैवेद्य का) भोजन करते देखा। माता भयभीत होकर (पालने में सोया था, यहाँ किसने लाकर बैठा दिया, इस बात से डर कर) पुत्र के पास गयी, तो वहाँ बालक को सोया हुआ देखा। फिर (पूजा स्थान मे लौटकर) देखा कि वही पुत्र वहाँ (भोजन कर रहा) है। उनके हृदय मे कंप होने लगा और मन को धीरज नही होता। वह सोचने लगी कि—) यहाँ और वहाँ मैंने दो बालक देखे। यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या और कोई विशेष कारण है? प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने माता को घबड़ाई हुई देखकर मधुर मुस्कान से हँस दिया।

दोहा—देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड ॥२०१॥

सरल अर्थ—फिर उन्होंने माता को अपना अखंड अद्भुत रूप दिखलाया, जिसके एक-एक रोम मे करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं।

चौ०-अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा॥
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसु रूप खरारी॥
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥

सरल अर्थ—अगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, बहुत से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण ज्ञान और स्वभाव देखे और वे पदार्थ भी देखे जो

सरल अर्थ—बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए जाने में देर नहीं लगी। सरयू जी के जल में स्नान करके वे राजा के दरवाजे पर पहुँचे।

चौ०-तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा ॥
असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥

सरल अर्थ—तब राजा ने मन में हर्षित होकर ये वचन कहे—हे मुनि! इस प्रकार कृपा तो आपने कभी नहीं की। आज किस कारण से आपका शुभागमन हुआ? कहिए, मैं उसे पूरा करने में देर नहीं लगाऊँगा। (मुनि ने कहा—) हे राजन्! राक्षसों के समूह मुझे बहुत सताते हैं। इसीलिए मैं तुमसे कुछ माँगने आया हूँ। छोटे भाई सहित श्री रघुनाथ जी को मुझे दो। राक्षसों के मारे जाने पर मैं सनाथ (सुरक्षित) हो जाऊँगा।

दोहा—देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान ॥१०४॥

सरल अर्थ—हे राजन्! प्रसन्न मन से इनको दो, मोह और अज्ञान को छोड़ दो। हे स्वामी! इससे तुमको धर्म और सुयश की प्राप्ति होगी और इनका परम कल्याण होगा।

चौ०-सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदयँ कंप मुख दुति कुमुलानी ॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी ॥
मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा ॥
सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी ॥
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा ॥
अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए ॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥

सरल अर्थ—इस अत्यन्त अप्रिय वाणी को सुनकर राजाओं का हृदय काँप उठा और उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गई। (उन्होंने कहा—) हे ब्राह्मण! मैंने चौथेपन में चार पुत्र पाये है, आपने विचार कर बात नहीं कही। हे मुनि! आप पृथ्वी, गौ, धन और खजाना माँग लीजिए, मैं आज बड़े हर्ष के साथ अपना सर्वस्व दे दूँगा। देह और प्राण से अधिक प्यारा कुछ भी नहीं होता। मैं उसे भी एक पल में दूँगा। सभी पुत्र मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं, उनमें भी हे प्रभो! राम को तो (किसी प्रकार भी) देते नहीं बनता। कहाँ

अत्यन्त डरावने और क्रूर राक्षस और कहाँ परम किशोर अवस्था के (बिल्कुल सुकुमार) मेरे सुन्दर पुत्र। प्रेमरस में सनी हुई राजा की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि विश्वामित्र जी ने हृदय मे बडा हर्ष माना। तब वसिष्ठ जी ने राजा को बहुत प्रकार से समझाया, जिससे राजा का सदेह नाश को प्राप्त हुआ। राजा ने बडे ही आदर से दोनो पुत्रो को बुलाया और हृदय से लगाकर बहुत प्रकार से उन्हे शिक्षा दी। (फिर कहा—) हे नाथ! ये दोनो पुत्र मेरे प्राण हैं। हे मुनि! (अब) आप ही इनके पिता हैं, दूसरा कोई नही।

दोहा—सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस ॥१०५॥

सरल अर्थ—राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर पुत्रो को ऋषि के हवाले कर दिया। फिर प्रभु माता के महल मे गये और उनके चरणों मे सिर नवा कर चले।

सो०—पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपा सिंधु मति धीर अखिल बिस्व कारन करन ॥१०६॥

सरल अर्थ - पुरुषों मे सिंह रूप दोनो भाई (राम-लक्ष्मण) मुनि का भय हरने के लिए प्रसन्न होकर चले। वे कृपा के समुद्र, धीर बुद्धि और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी कारण हैं।

चौ०-अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसें बर माथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥

सरल अर्थ—भगवान् के लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं, नील कमल और तमाल के वृक्ष की तरह श्याम शरीर है, कमर मे पीताम्बर (पहने) और सुन्दर तरकस कसे हुए है। दोनो हाथो मे (क्रमशः) सुन्दर धनुष और बाण हैं।

स्याम गौर सुदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥

सरल अर्थ—श्याम और गौर वर्ण के दोनो भाई परम सुन्दर हैं। विश्वामित्र जी को महान् निधि प्राप्त हो गयी। (वे सोचने लगे—) मैं जान गया कि प्रभु ब्राह्मण्यदेव (ब्राह्मण के भक्त) हैं। मेरे लिए भगवान् ने अपने पिता को भी छोड़ दिया।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करिधाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा॥

सरल अर्थ—मार्ग मे चले जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखलाया। शब्द सुनते ही वह क्रोध करके दौड़ी। श्री रामचन्द्र जी ने एक ही बाण से उसके प्राण हर लिए और दीन जानकर उसको निज पद (अपना दिव्य स्वरूप) दिया।

सरल अर्थ—(वहीं) आमों का एक अनुपम बाग देखकर, जहाँ सब प्रकार के सुभीते थे और जो सब तरह से सुहावना था, विश्वामित्र जी ने कहा—हे सुजान रघुवीर ! मेरा मन कहता है कि यहीं रहा जाय ।

भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता । उतरे तहँ मुनि बृंद समेता ॥
बिस्वामित्र महामुनि आए । समाचार मिथिलापति पाए ॥

सरल अर्थ—*कृपा के धाम श्री रामचन्द्र जी 'बहुत अच्छा, स्वामिन् !' कहकर* वहीं मुनियों के समूह के साथ ठहर गये । मिथिलापति जनक जी ने जब यह समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्र आये हैं ।

दोहा—संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बरगुर ग्याति ।
चले मिलन मुनि नायकहि मुदित राउ एहि भाँति ॥१०८॥

सरल अर्थ—तब उन्होंने पवित्र हृदय के (ईमानदार, स्वामिभक्त) मन्त्री, बहुत-से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु (शतानन्द जी) और अपनी जाति के श्रेष्ठ लोगों को साथ लिया और इस प्रकार प्रसन्नता के साथ राजा मुनियों के स्वामी विश्वामित्र जी से मिलने चले ।

चौ०-कीन्ह प्रनामु चरन धरिमाथा । दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे । जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ॥

सरल अर्थ—राजा ने मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया । मुनियों के स्वामी विश्वामित्र जी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया । फिर सारी ब्राह्मण मण्डली को आदर सहित प्रणाम किया और अपना बड़ा भाग्य जानकर राजा आनन्दित हुए ।

कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा । बिस्वामित्र नृपहि बैठारा ॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई । गए रहे देखन फुलवाई ॥

सरल अर्थ—बार-बार कुशल प्रश्न करके विश्वामित्र जी ने राजा को बैठाया । उसी समय दोनों भाई आ पहुँचे, जो फुलवाड़ी देखने गये थे ।

स्याम गौर मृदु बयस किसोरा । लोचन सुखद बिस्व चित चोरा ॥
उठे सकल जब रघुपति आए । बिस्वामित्र निकट बैठाए ॥

सरल अर्थ—सुकुमार किशोर अवस्था वाले, श्याम और गौर वर्ण के दोनों कुमार नेत्रों को सुख देने वाले और सारे विश्व के चित्त को चुराने वाले हैं । जब श्री रघुनाथ जी आए तब सभी (उनके रूप एवं तेज से प्रभावित होकर) उठकर खड़े हो गए । विश्वामित्र जी ने उनको अपने पास बैठा लिया ।

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता । बारि बिलोचन पुलकित गाता ॥
मूरति मधुर मनोहर देखी । भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी ॥

सरल अर्थ—दोनों भाइयों को देखकर सभी सुखी हुए । सबके नेत्रों में जल

भर आया (आनन्द और प्रेम के आँसू उमड पड़े) और शरीर रोमांचित हो उठे। श्री राम जी की मधुर मनोहर मूर्ति को देखकर विदेह (जनक) विशेष रूप से विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) हो गए।

दोहा—प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर ॥
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर ॥११०॥

सरल अर्थ—मन को प्रेम में मग्न जान राजा जनक ने विवेक का आश्रय लेकर धीरज धारण किया और मुनि के चरणो मे सिर नवाकर गद्गद (प्रेम भरी) गम्भीर वाणी से कहा—

चौ०-कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥

सरल अर्थ—हे नाथ! कहिए, ये दोनो सुन्दर बालक मुनिकुल के आभूषण हैं, या किसी राजवंश के पालक? अथवा जिसका वेदो ने 'नेति' कहकर गान किया है, कहीं वह ब्रह्म तो युगल रूप धरकर नहीं आया है?

सहज बिराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥

सरल अर्थ—मेरा मन जो स्वभाव से ही वैराग्य रूप (बना हुआ) है, (इन्हें देखकर) इस तरह मुग्ध हो रहा है जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर। हे प्रभो! इस लिए मैं आपसे सत्य (निश्छल) भाव से पूछता हूँ, हे नाथ! बताइए, छिपाव न कीजिए।

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥

सरल अर्थ—इनको देखते ही अत्यन्त प्रेम के वश होकर मेरे मन ने जबर्दस्ती ब्रह्म-सुख को त्याग दिया है। मुनि ने हँसकर कहा—हे राजन्! आपने ठीक (यथार्थ ही) कहा। आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता।

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी ॥
रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए ॥

सरल अर्थ—जगत् मे जहाँ तक (जितने भी) प्राणी है ये सभी को प्रिय हैं। मुनि की (रहस्यभरी) वाणी सुनकर श्री रामचन्द्र जी मन-ही-मन मुस्काते हैं (हँस कर मानो संकेत करते हैं कि रहस्य खोलिए नहीं)। (तब मुनि ने कहा—) ये रघुकुल-मणि महाराज दशरथ जी के पुत्र हैं। मेरे हित के लिए राजा ने इन्हे मेरे साथ भेजा है।

दोहा---रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम ॥१११॥

सरल अर्थ—ये राम और लक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील और बल के धाम हैं। सारा जगत् (इस बात का) साक्षी है कि इन्होंने युद्ध में असुरों को जीतकर मेरे यज्ञ की रक्षा की है।

चौ०-निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्या बंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥

सरल अर्थ—रात्रि का प्रवेश होते ही (सन्ध्या के समय) मुनि ने आज्ञा दी, तब सबने संध्या-वन्दन किया। फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास कहते-कहते सुन्दर रात्रि दो पहर बीत गई।

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥

सरल अर्थ—तब श्रेष्ठ मुनि ने जाकर शयन किया। दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे। जिनके चरण कमलों के (दर्शन एवं स्पर्श के) लिए वैराग्यवान् पुरुष भी भाँति-भाँति जप और योग करते हैं,

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

सरल अर्थ—वे ही दोनों भाई मानो प्रेम से जीते हुए प्रेम पूर्वक गुरु जी के चरण कमलों को दबा रहे हैं। मुनि ने बार-बार आज्ञा दी, तब श्री रघुनाथ जी ने जाकर शयन किया।

चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के चरणों को हृदय से लगाकर भय और प्रेम सहित परम सुख का अनुभव करते हुए श्री लक्ष्मण जी उनको दबा रहे हैं। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने बार-बार कहा—हे तात! (अब) सो जाओ। तब वे उन चरण कमलों को हृदय में धरकर लेट रहे।

दोहा---उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुरतें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥११२॥

सरल अर्थ—रात बीतने पर मुर्गे का शब्द कानों से सुनकर लक्ष्मण जी उठे। जगत् के स्वामी सुजान श्री रामचन्द्र जी भी गुरु से पहले ही जाग गये।

चौ०-सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

सरल अर्थ—सब शौच क्रिया करके वे जाकर नहाए। फिर (संध्या-अग्नि होत्रादि) नित्य कर्म समाप्त करके उन्होंने मुनि को मस्तक नवाया। (पूजा का) समय जानकर गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले।

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥

सरल अर्थ—उन्होंने जाकर राजा का सुन्दर बाग देखा जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर रह गई है। मन को लुभाने वाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगी उत्तम लताओं के मण्डप छाए हुए हैं।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥

सरल अर्थ—नए पत्तों, फलों और फूलों से युक्त सुन्दर वृक्ष अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को भी लजा रहे हैं। पपीहे, कोयल, तोते, चकोर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं और मोर सुन्दर नृत्य कर रहे हैं।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिजु बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

सरल अर्थ—बाग के बीचों-बीच सुहावना सरोवर सुशोभित है, जिसमें मणियों की सीढ़ियाँ विचित्र ढंग से बनी हैं, उसका जल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगों के कमल खिले हुए हैं, जल के पक्षी कलरव कर रहे हैं और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं।

दोहा—बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत॥११३॥

सरल अर्थ—बाग और सरोवर को देखकर प्रभु श्री रामचंद्र जी भाई श्री लक्ष्मण जी सहित हर्षित हुए। यह बाग (वास्तव में) परम रमणीय है, जो जगत् को सुख देने वाले श्री रामचंद्र जी को सुख दे रहा है।

चौ०-चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

सरल अर्थ—चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियों से पूछकर वे प्रसन्न मन से पत्र-पुष्प लेने लगे। उसी समय सीता जी वहाँ आईं। माता ने उन्हें गिरिजा (पार्वती) जी की पूजा करने के लिए भेजा था।

संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा॥

सरल अर्थ—साथ में सब सुन्दरी और सयानी सखियाँ हैं, जो मनोहर वाणी से गीत गा रही हैं। सरोवर के पास गिरिजा जी का मन्दिर सुशोभित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, देखकर मन मोहित हो जाता है।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥

सरल अर्थ—सखियों सहित सरोवर में स्नान करके सीता जी प्रसन्न मन से गिरिजा जी के मन्दिर में गयीं। उन्होंने बड़े प्रेम से पूजा की और अपने योग्य सुन्दर वर माँगा।

एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

सरल अर्थ—एक सखी सीता जी का साथ छोड़कर फुलवाड़ी देखने चली गई थी। उसने जाकर दोनों भाइयों को देखा और प्रेम में विह्वल होकर वह सीता जी के पास आई।

दोहा—तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारन निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन॥११४॥

सरल अर्थ—सखियों ने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर पुलकित है और नेत्रों में जल भरा है। सब कोमल वाणी से पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नता का कारण बता।

चौ०-देखन बाग कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

सरल अर्थ—(उसने कहा—) दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। किशोर अवस्था के हैं और सब प्रकार से सुन्दर हैं। वे सांवले और गोरे (रंग के) हैं, उनके सौंदर्य को मैं किस प्रकार बखान कर कहूँ। वाणी बिना नेत्र की है और नेत्रों के वाणी नहीं है।

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृप सुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आए काली॥

सरल अर्थ—यह सुनकर और सीता जी के हृदय में बड़ी उत्कण्ठा जानकर सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हुयीं। तब एक सखी कहने लगी—हे सखी! ये वही राज कुमार हैं जो सुना है कि कल विश्वामित्र मुनि के साथ आये हैं।

जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥

सरल अर्थ—और जिन्होंने अपने रूप की मोहिनी डालकर नगर के स्त्री-पुरुष को अपने वश में कर लिया है। जहाँ-तहाँ सब लोग उन्हीं की छबि का वर्णन कर रहे हैं। अवश्य (चलकर) उन्हें देखना चाहिये, वे देखने के ही योग्य हैं।

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

सरल अर्थ—उसके वचन सीताजी को अत्यन्त ही प्रिय लगे और दर्शन के लिए उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखी को आगे करके सीता जी चलीं। पुरानी प्रीति को कोई लख नहीं पाता।

दोहा—सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥११५॥

सरल अर्थ—नारद जी के वचनो का स्मरण करके सीता जी के मन मे पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। वे चकित होकर सब ओर इस तरह देख रही हैं मानो डरी हुई मृग छौनी इधर-उधर देख रही हो।

चौ०-कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥

सरल अर्थ—कंकण (हाथो के कडे), करधनी और पायजेब के शब्द सुनकर श्री रामचंद्र जी हृदय मे विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं— (यह ध्वनि ऐसी आ रही है) मानो कामदेव ने विश्व को जीतने का संकल्प करके डंके पर चोट मारी है।

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर श्री रामचंद्र जी ने फिरकर उस ओर देखा। श्री सीता जी के मुख रूपी चंद्रमा (को निहारने) के लिए उनके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये। (टकटकी लग गयी) मानो निमि (जनक जी के पूर्वज) ने (जिनका सबकी पलकों मे निवास माना गया है, लडकी-दामाद के मिलन-प्रसंग को देखना उचित नही, इस भाव मे) सकुचाकर पलके छोड़ दी (पलकों में रहना छोड़ दिया, जिससे पलको का गिरना रुक गया)।

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥

सरल अर्थ—सीता जी की शोभा देखकर श्री रामचंद्र जी ने बडा सुख पाया। हृदय में वे उसकी सराहना करते हैं, किन्तु मुख से वचन नही निकलते। (वह शोभा ऐसी अनुपम है) मानो ब्रह्मा ने अपनी सारी निपुणता को मूर्तिमान् कर ससार को प्रकट करके दिखा दिया हो।

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीप सिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी ॥

सरल अर्थ—वह (सीता जी की शोभा) सुन्दरता को भी सुन्दर करने वाली है। (वह ऐसी मालूम होती है) मानो सुन्दरता रूपी घर में दीपक की लौ जल रही हो। (अब तक सुन्दरता रूपी भवन मे अँधेरा था, वह भवन मानो सीता जी की सुन्दरता रूपी दीपशिखा को पाकर जगमगा उठा है, पहले से भी अधिक सुन्दर हो गया है।) सारी उपमाओं को तो कवियो ने जूठा कर रखा है। मैं जनकनन्दिनी श्री सीता जी की किससे उपमा दूँ।

दोहा—सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ॥११६॥

सरल अर्थ—(इस प्रकार) हृदय में सीता जी की शोभा का वर्णन करके और अपनी दशा को विचार कर प्रभु श्री रामचंद्र जी पवित्र मन से अपने छोटे भाई श्री लक्ष्मण जी से समयानुकूल वचन बोले—

चौ०-तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥

सरल अर्थ—हे तात! यह वही जनक जी की कन्या है जिसके लिए धनुष-यज्ञ हो रहा है। सखियाँ इसे गौरी पूजन के लिए ले आई हैं। यह फुलवाड़ी में प्रकाश करती हुई फिर रही है।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥

सरल अर्थ—जिसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर स्वभाव से ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है। वह सब कारण (अथवा उसका सब कारण) तो विधाता जानें। किन्तु हे भाई! सुनो, मेरे मङ्गलदायक (दाहिने) अंग फड़क रहे हैं।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

सरल अर्थ—रघुवंशियों का यह सहज (जन्मजात) स्वभाव है कि उनका मन कभी कुमार्ग पर पैर नहीं रखता। मुझे तो अपने मन का अत्यन्त ही विश्वास है कि जिसने (जाग्रत की कौन कहे) स्वप्न में भी पराई स्त्री पर दृष्टि नहीं डाली है।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं॥

सरल अर्थ—रण में शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते (अर्थात् जो लड़ाई के मैदान से भागते नहीं), परायी स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टि को नहीं खींच पातीं और भिखारी जिनके यहाँ से 'नाहीं' नहीं पाते (खाली हाथ नहीं लौटते) ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में थोड़े हैं।

दोहा—करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान॥११७॥

सरल अर्थ—यों श्रीरामचन्द्र जी छोटे भाई से बातें कर रहे हैं, पर मन सीता जी के रूप में लुभाया हुआ उनके मुख रूपी कमल के छवि रूप मकरन्द-रस को भौंरे की तरह पी रहा है।

चौ०-चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता॥
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी चकित होकर चारों ओर देख रही हैं। मन इस बात की चिन्ता कर रहा है कि राजकुमार कहाँ चले गए। बालमृगनयनी (मृग के

छौने-की सी आँख वाली) सीता जी जहाँ दृष्टि डालती हैं वहाँ मानों श्वेत कमलों की कतार बरस जाती है।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

सरल अर्थ—तब सखियों ने लता की ओट में सुन्दर श्याम और गौर कुमारों को दिखलाया। उनके रूप को देखकर नेत्र ललचा उठे, वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो उन्होंने अपना खजाना पहचान लिया।

थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी की छवि देखकर नेत्र थकित (निश्चल) हो गए। पलकों ने भी गिरना छोड़ दिया। अधिक स्नेह के कारण शरीर विह्वल (बेकाबू) हो गया। मानो शरद् ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी (बेसुध हुई) देख रही हो।

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥

सरल अर्थ—नेत्रों के रास्ते श्री रामचन्द्र जी को हृदय में लाकर चतुर शिरोमणि जानकी जी ने पलकों के किवाड़ लगा दिए (अर्थात् नेत्र मूँदकर उनका ध्यान करने लगीं)। जब सखियों ने सीता जी को प्रेम के वश जाना, तब वे मन में सकुचा गईं, कुछ कह नहीं सकती थीं।

दोहा—लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥११८॥

सरल अर्थ—उसी समय दोनों भाई लतामण्डप (कुन्ज) में से प्रकट हुए। मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलों के पर्दे को हटाकर निकले हों।

चौ०-धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू॥

सरल अर्थ—एक चतुर सखी धीरज रखकर, हाथ पकड़कर सीता जी से बोली—गिरिजा जी का ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजकुमार को क्यों नहीं देख लेतीं।

सकुचि सीयँ तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा॥

सरल अर्थ—तब सीता जी ने सकुचाकर नेत्र खोले और रघुकुल के दोनों सिंहों को अपने सामने (खड़े) देखा। नख से शिखा तक श्री रामचन्द्र जी की शोभा देखकर और फिर पिता का प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया।

परवस सखिन्ह लखी जब सीता । भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली । अस कहि मन बिहसी एक आली ॥

सरल अर्थ—जब सखियों ने सीता जी को परवश (प्रेम के वश) देखा, तब सब भयभीत होकर कहने लगीं—बड़ी देर हो गई (अब चलना चाहिए)। कल इसी समय फिर आएँगी, ऐसा कहकर एक सखी मन में हँसी।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी । भयउ बिलंबु मातु भय मानी ॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने । फिरी अपनपउ पितु बस जाने ॥

सरल अर्थ—सखी की यह रहस्यभरी वाणी सुनकर सीता जी सकुचा गईं। देर हो गई जान उन्हें माता का भय लगा। बहुत धीरज धरकर वे श्री रामचन्द्र जी को हृदय में ले आईं, और (उनका ध्यान करती हुई) अपने को पिता के अधीन जानकर लौट चलीं।

दोहा—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥११८॥

सरल अर्थ—मृग, पक्षी और वृक्षों के देखने के बहाने सीता जी बार-बार घूम जाती हैं और श्रीरामचन्द्र जी की छवि देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है (अर्थात् बहुत ही बढ़ता जाता है)।

चौ०-हृदयँ सराहत सीय लोनाई । गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं । सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥

सरल अर्थ—हृदय में सीता जी के सौंदर्य की सराहना करते हुए दोनों भाई गुरु जी के पास गए। श्री रामचन्द्र जी ने विश्वामित्र से सब कुछ कह दिया। क्योंकि उनका सरल स्वभाव है, छल तो उसे छूता भी नहीं है।

सुमन पाई मुनि पूजा कीन्हीं । पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्हीं ॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे । रामु लखनु सुनि भए सुखारे ॥

सरल अर्थ—फूल पाकर मुनि ने पूजा की। फिर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। यह सुनकर श्री रामचन्द्र-लक्ष्मण सुखी हुए।

करि भोजनु मुनिवर बिग्यानी । लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥
बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई । संध्या करन चले दोऊ भाई ॥

सरल अर्थ—श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्र जी भोजन करके कुछ प्राचीन कथाएँ कहने लगे। (इतने में) दिन बीत गया और गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई संध्या करने चले।

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा । सिय मुख सरिस देखि सुख पावा ॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥

सरल अर्थ—(उधर) पूर्व दिशा में चन्द्रमा उदय हुआ। श्री रामचन्द्र जी ने

उसे सीता के मुख के समान देखकर सुख पाया। फिर मन में विचार किया कि यह चन्द्रमा सीता जी के मुख के समान नहीं है।

दोहा—जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक ॥
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक ॥१२०॥

सरल अर्थ—खारे समुद्र में तो इसका जन्म, फिर (उसी समुद्र से उत्पन्न होने के कारण) विष इसका भाई, दिन में यह मलिन (शोभाहीन, निस्तेज) रहता है, और कलंकी (काले दाग से युक्त) है। बेचारा गरीब चन्द्रमा सीता जी के मुख की बराबरी कैसे पा सकता है?

चौ०-घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई ॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही ॥

सरल अर्थ—फिर यह घटता-बढ़ता है और विरहिणी स्त्रियों को दुःख देने वाला है, राहु अपनी संधि में पाकर इसे ग्रस लेता है। चकवे को (चकवी के वियोग का) शोक देने वाला और कमल का वैरी (उसे मुरझा देने वाला) है। हे चन्द्रमा! तुझमें बहुत से अवगुण हैं (जो सीता जी में नहीं हैं)।

बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे ॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी।

सरल अर्थ—अतः जानकी जी के मुख की तुझे उपमा देने में बड़ा अनुचित कर्म करने का दोष लगेगा। इस प्रकार चन्द्रमा के बहाने सीता जी के मुख की छवि का वर्णन करके बड़ी रात हो गई जान, वे गुरु जी के पास चले।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे ॥

सरल अर्थ—मुनि के चरण कमलों में प्रणाम करके, आज्ञा पाकर उन्होंने विश्राम किया। रात बीतने पर श्री रघुनाथ जी जागे और भाई को देखकर ऐसा कहने लगे—

उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता ॥
बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी ॥

सरल अर्थ—हे तात! देखो, कमल, चक्रवाक और समस्त संसार को सुख देने वाला अरुणोदय हुआ है। लक्ष्मण जी दोनों हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव को सूचित करने वाली कोमल वाणी बोले—

दोहा—अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ॥१२१॥

सरल अर्थ—अरुणोदय होने से कुमुदिनी सकुचा गई और तारागणों का

प्रकाश फीका पड़ गया, जिस प्रकार आपका आना सुनकर सब राजा बलहीन हो गए हैं।

चौ०-हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखमानी ॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमख साला ॥

सरल अर्थ—इस श्रेष्ठ वाणी को सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए। सभी ने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। फिर मुनियों के समूह सहित कृपालु श्री रामचन्द्र जी धनुष यज्ञशाला देखने चले।

रंगभूमि आए दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ॥
चले सकल गृहकाज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी ॥

सरल अर्थ—दोनों भाई रंगभूमि में आए हैं, ऐसी खबर जब नगर-निवासियों ने पायी तब बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी घर और काम-काज को भुलाकर चल दिए।

देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी ॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू ॥

सरल अर्थ—जब जनक जी ने देखा कि बड़ी भीड़ हो गई है, तब उन्होंने सब विश्वासपात्र सेवकों को बुलवा लिया और कहा—तुम लोग तुरन्त सब लोगों के पास जाओ और सब किसी को यथायोग्य आसन दो।

दोहा—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि ॥१२२॥

सरल अर्थ—उन सेवकों ने कोमल नम्र वचन कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणी के) स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठाया।

चौ०-राजकुँअर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥
गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा ॥

सरल अर्थ—उसी समय राजकुमार (राम और लक्ष्मण) वहाँ आए। (वे ऐसे सुन्दर हैं) मानों साक्षात् मनोहरता ही उनके शरीरों पर छा रही हो। सुन्दर साँवला और गोरा उनका शरीर है। वे गुणों के समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं।

राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्हि देखी तैसी ॥

सरल अर्थ—वे राजाओं के समाज में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो तारागणों के बीच दो पूर्ण चन्द्रमा हों। जिनकी जैसी भावना थी, प्रभु की मूर्ति उन्होंने वैसी ही देखी।

देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रस धरें सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥

सरल अर्थ—महान् रणधीर (राजा लोग) श्री रामचन्द्र जी के रूप को ऐसा देख रहे हैं मानो स्वयं वीर रस शरीर धारण किए हुए हो। कुटिल राजा प्रभु को देखकर डर गए, मानों बड़ी भयानक मूर्ति हो।

रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदायी॥

सरल अर्थ—छल से जो राक्षस वहाँ राजाओ के वेश मे (बैठे) थे, उन्होने प्रभु को प्रत्यक्ष काल के समान देखा। नगर-निवासियों ने दोनो भाइयो को मनुष्यों के भूषण रूप और नेत्रो को सुख देने वाला देखा।

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥

सरल अर्थ—विद्वानो को प्रभु विराट् रूप मे दिखाई दिए, जिसके बहुत से मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं। जनक जी के सजातीय (कुटुम्बी) प्रभु को किस तरह (कैसे प्रिय रूप मे) देख रहे हैं, जैसे सगे सजन (सम्बन्धी) प्रिय लगते हैं।

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥

सरल अर्थ—जनक समेत रानियां उन्हे अपने बच्चे के समान देख रही है—उनकी प्रीति का वर्णन नही किया जा सकता। योगियो को वे शांत, शुद्ध, सम और स्वतः प्रकाश परम तत्व के रूप मे दीखे।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्ट देव इव सब सुख दाता॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहिं कथनीया॥

सरल अर्थ – हरि-भक्तो ने दोनो भाइयो को सब सुख देने वाले इष्ट देव के समान देखा। सीता जी जिस भाव से श्री रामचन्द्र जी को देख रही है वह स्नेह और सुख तो कहने मे नही आता।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराउ॥

सरल अर्थ—उस (स्नेह और सुख) का वे हृदय मे अनुभव कर रही है, पर वे भी उसे कह नहीं सकती फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है। इस प्रकार जिसका जैसा भाव था, उसने कोसलाधीश श्रीरामचन्द्र जी को वैसा ही देखा।

दोहा—राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥१२३-क॥

सरल अर्थ—सुन्दर साँवले और गोरे शरीर वाले तथा विश्व भर के नेत्रों को चुराने वाले कोसलाधीश के कुमार, राज समाज मे (इस प्रकार) सुशोभित हो रहे हैं।

दोहा—सब मंचन्ह तें मंचु एक सुन्दर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल ॥१२३-ख॥

सरल अर्थ—सब मंचों से एक मंच अधिक सुन्दर, उज्ज्वल और विशाल था। (स्वयं) राजा ने मुनि सहित दोनों भाइयों को उस पर बैठाया।

दोहा—जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुन्दर सकल सादर चलीं लवाइ ॥१२३-ग॥

सरल अर्थ—तब सुअवसर जानकर जनकजी ने सीता जी को बुला भेजा। सब चतुर और सुन्दर सखियाँ आदरपूर्वक उन्हें लिवाने चलीं।

चौ०-सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥

सरल अर्थ—रूप और गुणों की खान जगज्जननी जानकी जी की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। उनके लिए मुझे (काव्य की) सब उपमाएँ तुच्छ लगती हैं, क्योंकि वे लौकिक स्त्रियों के अंगों से अनुराग रखने वाली हैं। (अर्थात् वे जगत् की स्त्रियों के अंगों को दी जाती हैं)। (काव्य की उपमाएँ सब त्रिगुणात्मक, मायिक जगत् से ली गई हैं, उन्हें भगवान् की स्वरूपाशक्ति श्री जानकी जी के अप्राकृत, चिन्मय अंगों के लिए प्रयुक्त करना उनका अपमान करना और अपने को उपहासास्पद बनाना है)।

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥

सरल अर्थ—सीता जी के वर्णन में उन्हीं उपमाओं को देकर कौन कुकवि कहलाए और अपयश का भागी बने (अर्थात् सीता जी के लिए उन उपमाओं का प्रयोग करना सुकवि के पद से च्युत होना और अपकीर्ति मोल लेना है, कोई भी सुकवि ऐसी नादानी एवं अनुचित कार्य न करेगा)। यदि किसी स्त्री के साथ सीता जी की तुलना की जाय, जो जगत् में ऐसी सुन्दर युवती है ही कहाँ (जिसकी उपमा उन्हें दी जाय)।

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥

सरल अर्थ—(पृथ्वी की स्त्रियों की तो बात ही क्या, देवताओं की स्त्रियों को यदि देखा जाय तो हमारी अपेक्षा कहीं अधिक दिव्य और सुन्दर हैं तो उनमें) सरस्वती जी बहुत बोलने वाली हैं, पार्वती अर्द्धांङ्गिनी हैं (अर्थात् अर्द्धनारी नटेश्वर के रूप में उनका आधा ही अंग स्त्री का है, शेष आधा अंग पुरुष—शिवजी का है), कामदेव की स्त्री रति पति को बिना शरीर का (अनंग) जानकर बहुत दुःखी रहती है, और जिनके विष और मद्य जैसे (समुद्र से उत्पन्न होने के नाते) प्रिय भाई हैं, उन लक्ष्मी के समान तो जानकी जी को कहा ही कैसे जाय—

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥४५॥

तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥४७॥

श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥४८॥

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥४९॥

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ।
स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥ ५१॥

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥५३॥

आप मोहित हो गये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार रातके घोर अन्धकारमें कुहरेके अन्धकारका और दिनके प्रकाशमें जुगनूके प्रकाशका पता नहीं चलता, वैसे ही जब क्षुद्र पुरुष महापुरुषोंपर अपनी मायाका प्रयोग करते हैं, तब वह उनका तो कुछ बिगाड़ नहीं सकती, अपना ही प्रभाव खो बैठती है ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी विचार कर ही रहे थे कि उनके देखते-देखते उसी क्षण सभी ग्वालबाल और बछड़े श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़ने लगे। सब-के-सब सजल जलधरके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे युक्त—चतुर्भुज। सबके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कण्ठोंमें मनोहर हार तथा वनमालाएँ शोभायमान हो रही थीं ॥ ४६-४७ ॥ उनके वक्षःस्थलपर सुवर्णकी सुनहली रेखा—श्रीवत्स, बाहुओंमें बाजूबंद, कलाइयोंमें शङ्खाकार रत्नोंसे जड़े कंगन, चरणोंमें नूपुर और कड़े, कमरमें करधनी तथा अँगुलियोंमें अँगूठियाँ जगमगा रही थीं ॥ ४८ ॥ वे नखसे शिखतक समस्त अङ्गोंमें कोमल और नूतन तुलसीकी मालाएँ, जो उन्हें बड़े भाग्यशाली भक्तोंने पहनायी थीं, धारण किये हुए थे ॥ ४९ ॥ उनकी मुसकान चाँदनीके समान उज्ज्वल थी और रतनारे नेत्रोंकी कटाक्षपूर्ण चितवन बड़ी ही मधुर थी। ऐसा जान पड़ता था मानो वे इन दोनोंके द्वारा सत्त्वगुण और रजोगुणको स्वीकार करके भक्तजनोंके हृदयमें शुद्ध लालसाएँ जमाकर उनको पूर्ण कर रहे हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने यह भी देखा कि उन्हींके-जैसे दूसरे ब्रह्मासे लेकर तृणतक सभी चराचर जीव मूर्तिमान् होकर नाचते-गाते अनेक प्रकारकी पूजासामग्रीसे अलग-अलग भगवान्‌के उन सब रूपोंकी उपासना कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ उन्हें अलग-अलग अणिमा-महिमा आदि सिद्धियाँ, माया-विद्या आदि विभूतियाँ और महत्तत्त्व आदि चौबीसों तत्त्व चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥ ५२ ॥ प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला काल, उसके परिणामका कारण स्वभाव, वासनाओंको जगानेवाला संस्कार, कामनाएँ, कर्म, विषय और फल सभी मूर्तिमान् होकर भगवान्‌के प्रत्येक रूपकी उपासना कर रहे हैं। भगवान्‌की सत्ता और महत्ताके सामने उन सभीकी सत्ता और महत्ता

भूषन सकल सुदेसु सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥

सरल अर्थ—सब आभूषण अपनी-अपनी जगह पर शोभित हैं, जिन्हें सखियों ने अंग-अंग में भली-भाँति सजाकर पहनाया है। जब सीता जी ने रंगभूमि में पैर रक्खा, तब उनका (दिव्य) रूप देखकर स्त्री, पुरुष सभी मोहित हो गए।

हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥

सरल अर्थ—देवताओं ने हर्षित होकर नगाड़े बजाए और पुष्प बरसा कर अप्सराएँ गाने लगी। सीता जी के कर कमलों में जयमाला सुशोभित है। सब राजा चकित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे।

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

सरल अर्थ—सीता जी चकित चित से श्री रामचन्द्र जी को देखने लगीं, तब सब राजा लोग मोह के वश हो गए। सीता जी ने मुनि के पास (बैठे हुए) दोनों भाइयों को देखा तो उनके नेत्र अपना खजाना पाकर ललचाकर वहीं (श्री रामचंद्र जी में) जा लगे (स्थिर हो गए)।

दोहा—गुरुजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उरि आनि॥१२५क॥

सरल अर्थ—परन्तु गुरुजनों की लाज से तथा बहुत बड़े समाज को देखकर सीता जी सकुचा गई। वे श्री रामचन्द्र जी को हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं।

दोहा—बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥१२५ख॥

सरल अर्थ—भाटों ने श्रेष्ठ वचन कहा—हे पृथ्वी की पालना करने वाले सब राजागण! सुनिए। हम अपनी विशाल भुजा उठाकर जनक जी का प्रण कहते हैं।

चौ०-नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावन बानु महाभट भारे। देखि सरासन गँवहिं सिधारे॥

सरल अर्थ—राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्रमा है, शिव जी का धनुष राहु है, वह भारी है, कठोर है, यह सबको विदित है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुष को देखकर गौंसे (चुपके से) चलते बने (उसे उठाना तो दूर रहा, छूने तक की हिम्मत नहीं हुई)।

सोई पुरारि को दंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचारि बरइ हठि तेही ॥

सरल अर्थ—उसी शिव जी के कठोर धनुष को आज इस राज समाज में जो भी तोड़ेगा, तीनों लोकों की विजय के साथ ही उसको जानकी जी बिना किसी विचार के हठपूर्वक वरण करेंगी।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥

सरल अर्थ—प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जो वीरता के अभिमानी थे, वे मन में बहुत ही तमतमाए। कमर कसकर, अकुलाकर उठे और अपने इष्टदेवों को सिर नवा कर चले।

तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं ॥

सरल अर्थ—वे तमककर (बड़े ताव से) शिव जी के धनुष की ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं, करोड़ों भाँति से जोर लगाते हैं, पर वह उठता ही नहीं। जिन राजाओं के मन में कुछ विवेक है, वे तो धनुष के पास नहीं जाते।

दोहा—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ ॥१२६॥

सरल अर्थ—वे मूर्ख राजा तमक कर (किटकिटाकर) धनुष को पकड़ते हैं, परन्तु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं। मानो वीरों की भुजाओं का बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक भारी होता जाता है।

चौ०-भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा ॥
डगइ न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें ॥

सरल अर्थ—तब दस हजार राजा एक ही बार धनुष को उठाने लगे, तो भी वह उनके टाले नहीं टलता। शिव जी का वह धनुष कैसे नहीं डिगता था, जैसे कामी पुरुष के वचनों से सती का मन (कभी) चलायमान नहीं होता।

सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग संन्यासी ॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी ॥

सरल अर्थ—सब राजा उपहास के योग्य हो गए। जैसे वैराग्य बिना सन्यासी उपहास के योग्य हो जाता है। कीर्ति, विजय, बड़ी वीरता—इन सबको वे धनुष के हाथों बरबस हारकर चले गए।

श्रीहत भए हारि हियँ राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोषु जनु साने ॥

सरल अर्थ—राजा लोग हृदय से हार कर श्रीहीन (हतप्रभ) हो गए और अपने-अपने समाज में जा बैठे। राजाओं को (असफल) देखकर जनक अकुला उठे और ऐसे वचन बोले जो मानों क्रोध में सने हुए थे।

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥

सरल अर्थ - मैंने जो प्रण ठाना था, उसे सुनकर द्वीप-द्वीप के अनेकों राजा आए। देवता और दैत्य भी मनुष्य का शरीर धारण करके आए तथा और भी बहुत से रणधीर-वीर आए।

दोहा—कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥१२७॥

सरल अर्थ—परन्तु धनुष को तोड़कर मनोहर कन्या, बड़ी विजय और अत्यन्त सुन्दर कीर्ति को पानेवाला मानो ब्रह्मा ने किसी को रचा ही नहीं।

चौ०-कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सके छड़ाई॥

सरल अर्थ—कहिए, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता? परन्तु किसी ने भी शंकर जी का धनुष नहीं चढ़ाया। अरे भाई! चढ़ाना और तोड़ना तो दूर रहा कोई तिलभर भूमि न छुड़ा सका।

जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥

सरल अर्थ—जनक जी के वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष जानकी जी की ओर देखकर दुखी हुए, परन्तु लक्ष्मण जी तमतमा उठे, उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं। ओंठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गए।

दोहा—कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ रामपद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान॥१२८॥

सरल अर्थ—श्री रघुवीर जी के डर से कुछ कह तो सकते नहीं पर जनक के वचन उन्हें बाण से लगे। (जब रह न सके तब) श्रीरामचन्द्र जी के चरण कमलों में सिर नवाकर वे यथार्थ वचन बोले—

चौ०-रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥

सरल अर्थ – रघुवंशियों में कोई भी जहाँ होता है, उस समाज में ऐसे वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्र जी को उपस्थित जानते हुए भी जनक जी ने कहे हैं।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥

सरल अर्थ—हे सूर्यकुलरूपी कमल के सूर्य! सुनिए! मैं स्वभाव से कहता हूँ कुछ अभिमान करके नहीं, यदि आपकी आज्ञा पाऊँ तो ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठा लूँ।

काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥

सरल अर्थ—और उसे कच्चे घड़े की तरह फोड़ डालूँ। मैं सुमेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ सकता हूँ। हे भगवान्! आपके प्रताप की महिमा से यह बेचारा धनुष तो कौन चीज है।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

सरल अर्थ—ऐसा जानकर हे नाथ! आज्ञा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिए। धनुष को कमल की डंडी की तरह चढ़ाकर उसे सौ योजन तक दौड़ा लिए चला जाऊँ।

दोहा—तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥१२८॥

सरल अर्थ—हे नाथ! आपके प्रताप के बल से धनुष को कुकुरमुत्ते की (बरसाती छत्ते) की तरह तोड़ दूँ। यदि ऐसा न करूँ तो प्रभु के चरणों की शपथ है, फिर मैं धनुष और तरकस को कभी हाथ में नहीं लूँगा।

चौ०-लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥

सरल अर्थ—ज्यों ही लक्ष्मण जी क्रोध भरे वचन बोले कि पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओं के हाथी कांप गए। सभी लोग और सब राजा डर गए। सीता जी के हृदय में हर्ष हुआ और जनक जी सकुचा गए।

गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

सरल अर्थ—गुरु विश्वामित्र जी, श्री रघुनाथ जी और सब मुनि मन में प्रसन्न हुए और बार-बार पुलकित होने लगे। श्रीरामचन्द्र जी ने इशारे से लक्ष्मण को मना किया और प्रेम सहित अपने पास बैठा लिया।

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

सरल अर्थ—विश्वामित्र जी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेम भरी वाणी

बोले—हे राम ! उठो, शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात ! जनक का सन्ताप मिटाओ ।

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा । हरषु बिषादु न कछु उर आवा ॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ । ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ ॥

सरल अर्थ—गुरु के वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने चरणों में सिर नवाया । उनके मन में न हर्ष हुआ, न विषाद, और वे अपनी ऐंड़ (खड़े होने की शान) से जवान सिंह को भी लजाते हुए सहज स्वभाव से ही उठ खड़े हुए ।

दोहा—उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥१३०॥

सरल अर्थ—मंचरूपी उदयाचल पर रघुनाथजी रूपी बाल सूर्य के उदय होते ही सब संतरूपी कमल खिल उठे और नेत्ररूपी भौंरे हर्षित हो गए ।

चौ०-नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । बचन नखत अवली न प्रकासी ॥
मानी महीप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ॥

सरल अर्थ—राजाओं की आशारूपी रात्रि नष्ट हो गई । उनके वचनरूपी तारों के समूह का चमकना बन्द हो गया (वे मौन हो गए) । अभिमानी राजारूपी कुमुद संकुचित हो गए और कपटी राजारूपी उल्लू छिप गए ।

भए बिसोक कोक मुनि देवा । बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयसु मागा ॥

सरल अर्थ—मुनि और देवतारूपी चकवे शोकरहित हो गए । वे फूल बरसा कर अपनी सेवा कर रहे हैं । प्रेम सहित गुरु के चरणों की वन्दना करके श्री रामचन्द्र जी ने मुनियों से आज्ञा माँगी ।

सहजहिं चले सकल जग स्वामी । मत्त मंजु बर कुंजरगामी ॥
चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी ॥

सरल अर्थ—समस्त जगत् के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी सुन्दर मतवाले श्रेष्ठ हाथी की सी चाल से स्वाभाविक ही चले । श्री रामचन्द्र जी के चलते ही नगर भर के सब स्त्री-पुरुष सुखी हो गए और उनके शरीर रोमांच से भर गए ।

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे । जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे ॥
तौ सिव धनु मृनाल की नाईं । तोरहुँ राम गनेस गोसाईं ॥

सरल अर्थ—उन्होंने पितर और देवताओं की वन्दना करके अपने पुण्यों का स्मरण किया । यदि हमारे पुण्यों का कुछ भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाईं ! श्री रामचन्द्र जी शिवजी के धनुष को कमल की डंडी की भाँति तोड़ डालें ।

दोहा—देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर ।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर ॥१३१-क॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी की ओर देखकर सीता जी धीरज धरकर देवताओं को मना रही हैं। उनके नेत्रों में प्रेम के आंसू भरे हैं और शरीर में रोमांच हो रहा है।

दोहा—प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ॥१३१-ख॥

सरल अर्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्र की ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखती हुई सीता जी के चंचल नेत्र इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो चन्द्र मण्डल रूपी डोल में कामदेव की दो मछलियाँ खेल रही हों।

दोहा—लखन लखेउ रघुबसमनि ताकेउ हरको दंडु।
पुलकि गात बोले वचन चरन चापि ब्रह्माण्डु ॥१३१-ग॥

सरल अर्थ—इधर जब श्री लक्ष्मण जी ने देखा कि रघुकुलमणि श्री रामचन्द्र जी ने शिव जी के धनुष की ओर ताका है, तो वे शरीर से पुलकित हो ब्रह्माण्ड को चरणों से दबाकर निम्नलिखित वचन बोले—

चौ॰-दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥

सरल अर्थ—हे दिग्गजो! हे कच्छप! हे शेष! हे वाराह! धीरज धरकर पृथ्वी को थामे रहो, जिसमें यह हिलने न पावे! श्रीरामचन्द्र जी शिवजी के धनुष को तोड़ना चाहते हैं। मेरी आज्ञा सुनकर सब सावधान हो जाओ।

चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसय अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी जब धनुष के पास आए तब सब स्त्री-पुरुषों ने देवताओं और पुण्यों को मनाया। सबका सन्देह और अज्ञान, नीच राजाओं का अभिमान।

भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुखदावा॥

सरल अर्थ—परशुराम जी के गर्व की गुरुता, देवता और श्रेष्ठ मुनियों की कातरता (भय) सीता जी का सोच, जनक का पश्चात्ताप और रानियों के दारुण दुख का दावानल,

संभु चाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥

सरल अर्थ—ये सब शिवजी के धनुषरूपी बड़े जहाज को पाकर, समाज बनाकर उस पर जा चढ़े। ये श्रीरामचन्द्र जी की भुजाओं के बलरूपी अपार समुद्र के पार जाना चाहते हैं परन्तु कोई केवट नहीं है।

दोहा—राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ॥१३२॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्रजी ने सब लोगों की ओर देखा और उन्हें चित्र में लिखे हुए से देखकर फिर कृपाधाम श्रीरामचन्द्र जी सीता जी ने की ओर देखा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना।

गुरहि प्रनामु मनहि मन कीना। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा ॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ॥

सरल अर्थ—मन ही मन उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और बड़ी फुर्ती से धनुष को उठा लिया। जब उसे (हाथ में) लिया, तब वह धनुष बिजली की तरह चमका और फिर आकाश में मण्डल जैसा (मण्डलाकार) हो गया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सबु ठाढ़े ॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

सरल अर्थ—लेते, चढ़ाते और जोर से खींचते हुए किसी ने नहीं लखा (अर्थात् ये तीनों काम इतनी फुर्ती से हुए कि धनुष को कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा इसका किसी को पता नहीं लगा) सबने श्रीरामचन्द्र जी को (धनुष खींचे) खड़े देखा। उसी क्षण श्री रामचन्द्र जी ने धनुष को बीच से तोड़ डाला। भयंकर कठोर ध्वनि से (सब) लोक भर गए।

सो०—संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु ॥
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस ॥१३३॥

सरल अर्थ—शिव जी का धनुष जहाज है और श्री रामचन्द्र जी की भुजाओं का बल समुद्र है। (धनुष टूटने से) वह सारा समाज डूब गया जो मोहवश पहले इस जहाज पर चढ़ा था (जिसका वर्णन ऊपर आया है)।

चौ०-प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे ॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन ॥

सरल अर्थ—प्रभु ने धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी पर डाल दिये। यह देखकर सब लोग सुखी हुए। विश्वामित्र रूपी पवित्र समुद्र में, जिसमें प्रेमरूपी सुन्दर अथाह जल भरा है।

रामरूप राकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देववधू नाचहिं करि गाना ॥

सरल अर्थ—रामरूपी पूर्ण चन्द्रमा को देखकर पुलकावली रूपी भारी लहरें बढ़ने लगी। आकाश में बड़े जोर से नगाड़े बजने लगे और देवांगनाएँ गान करके नाचने लगीं।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहि देहि असीसा ॥
बरसहिं सुमन रंग बहुमाला। गावहिं किन्नर गीत रसाला ॥

सरल अर्थ—ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वर लोग प्रभु की प्रशंसा कर रहे हैं और आशीर्वाद दे रहे हैं। वे रंग बिरंगे फूल और मालाएँ बरसा रहे हैं। किन्नर लोग रसीले गीत गा रहे हैं।

रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी॥

सरल अर्थ—सारे ब्रह्माण्ड में जय-जयकार की ध्वनि छा गयी, जिसमें धनुष टूटने की ध्वनि जान ही नहीं पड़ती। जहाँ तहाँ पुरुष-स्त्री प्रसन्न होकर कह रहे हैं कि श्रीरामचन्द्र जी ने शिव जी के भारी धनुष को तोड़ डाला।

दोहा—बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥१३४॥

सरल अर्थ—धीर बुद्धि वाले भाट, मागध और सूत लोग विरदावली (कीर्ति) का बखान कर रहे हैं। सब लोग घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं।

चौ०-सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥

सरल अर्थ—सखियों के बीच में सीता जी कैसे शोभित हो रही हैं, जैसे बहुत सी छवियों के बीच में महाछवि हो। कर कमल में सुन्दर जयमाला है, जिसमें विश्व विजय की शोभा छायी हुई है।

तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

सरल अर्थ—सीता जी के शरीर में सकोच है, पर मन में परम उत्साह है। उनका यह गुप्त प्रेम किसी को जान नहीं पड़ रहा है। समीप जाकर, श्री रामचन्द्रजी की शोभा देखकर राजकुमारी सीता जी चित्र में लिखी-सी रह गईं।

चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥

सरल अर्थ—चतुर सखी ने यह दशा देखकर समझाकर कहा—सुहावनी जयमाला पहनाओ। यह सुनकर सीता जी ने दोनों हाथों से माला उठाई, पर प्रेम के विवश होने से पहनायी नहीं जाती।

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥

सरल अर्थ—(उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं) मानो डंडियों सहित दो कमल चन्द्रमा को डरते हुए जयमाला दे रहे हों। इस छवि को देखकर सखियाँ गाने लगीं। तब सीता जी ने श्रीरामचन्द्र जी के गले में जयमाला पहना दी।

सो०—रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रवि कुमुदगन ॥१३०॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्रजी के हृदय पर जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे । समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गए मानों सूर्य को देखकर कुमुदों का समूह सिकुड़ गया हो ।

चौ०-तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा । आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ॥

सरल अर्थ—उसी मौके पर शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुल रूपी कमल के सूर्य परशुराम जी आए ।

देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥

सरल अर्थ – इन्हें देखकर सब राजा सकुचा गए, मानो बाज के झपटने पर बटेर लुक (छिप) गये हों । गोरे शरीर पर विभूति (भस्म) बड़ी फब रही है और विशाल ललाट पर त्रिपुण्ड विशेष शोभा दे रहा है ।

सीस जटा ससि बदनु सुहावा । रिस बस कछुक अरुन होइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥

सरल अर्थ—सिर पर जटा है, सुन्दर मुखचन्द्र क्रोध के कारण कुछ लाल हो आया है । भौंहें टेढ़ी और आँखें क्रोध से लाल हैं, सहज ही देखते हैं, तो भी ऐसा जान पड़ता है मानों क्रोध कर रहे हैं ।

वृषभ कंध उर बाहु बिसाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे । धनु सर कर कुठारु कल काँधे ॥

सरल अर्थ---बैल के समान (ऊँचे और पुष्ट) कंधे हैं, छाती और भुजाएँ विशाल हैं । सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किए, माला पहने और मृग चर्म लिए हैं । कमर में मुनियों का वस्त्र (वल्कल) और दो तरकस बाँधे हैं । हाथ में धनुष-बाण और सुन्दर कंधे पर फरसा धारण किए हैं ।

दोहा—सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप ।
धरि मुनि तनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप ॥१३६॥

सरल अर्थ – शान्त वेष है, परन्तु करनी बहुत कठोर है, स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता । मानो वीर रस ही मुनि का शरीर धारण करके, जहाँ सब राजा लोग हैं, वहाँ आ गया हो ।

चौ०-देखत भृगुपति बेषु कराला । उठे सकल भय बिकल भुआला ॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दंड प्रनामा ॥

सरल अर्थ—परशुराम जी का भयानक वेष देखकर सब राजा भय से व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पिता सहित अपना नाम कहकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे ।

जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी ॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलइ प्रनामु करावा ॥

सरल अर्थ—परशुराम जी हित समझकर सहज ही जिसकी ओर देख लेते हैं, वह समझता है मानो मेरी आयु पूरी हो गई। फिर जनक जी ने आकर सिर नवाया और सीता जी को बुलाकर प्रणाम कराया।

आसिष दीन्हि सखीं हरषानी। निज समाज लै गईं सयानी ॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई ॥

सरल अर्थ—परशुराम जी ने सीता जी को आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं और (वहाँ अब अधिक देर ठहरना ठीक न समझकर) वे सयानी सखियाँ उनको अपनी मण्डली में ले आईं। फिर विश्वामित्र जी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयों को उनके चरण कमलों पर गिराया।

रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन ॥

सरल अर्थ—(विश्वामित्र ने कहा—) ये राम और लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र हैं। उनकी सुन्दर जोड़ी देखकर परशुराम जी ने आशीर्वाद दिया। कामदेव के भी मद को छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्र जी के अपार रूप को देखकर उनके नेत्र थकित (स्तम्भित) हो रहे।

दोहा—बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर ॥२६७॥

सरल अर्थ—फिर सब देखकर जानते हुए भी अनजान की तरह जनक जी से पूछते हैं कि कहो, यह बड़ी भारी भीड़ कैसी है? उनके शरीर में क्रोध छा गया।

चौ०-समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखण्ड महि डारे ॥

सरल अर्थ—जिस कारण सब राजा आए थे, राजा जनक ने वे सब समाचार कह सुनाए। जनक के वचन सुनकर परशुराम जी ने फिर दूसरी ओर देखा तो धनुष के टुकड़े पृथ्वी पर पड़े हुए दिखाई दिए।

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू ॥

सरल अर्थ—अत्यन्त क्रोध में भरकर वे कठोर वचन बोले—रे मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा? उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़! आज मैं जहाँ तक तेरा राज्य है, वहाँ तक की पृथ्वी उलट दूँगा।

अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥

सरल अर्थ—राजा को अत्यन्त डर लगा, जिसके कारण वे उत्तर नहीं देते। यह देखकर कुटिल राजा मन में बड़े प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सभी सोच करने लगे, सबके हृदय में बड़ा भय है।

मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥

सरल अर्थ—सीता जी की माता मन में पछता रही हैं कि हाय! विधाता ने अब बनी बनाई बात बिगाड़ दी। परशुराम जी का स्वभाव सुनकर सीता को आधा क्षण भी कल्प के समान बीतने लगा।

दोहा—सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्री रघुबीरु॥१३८॥

सरल अर्थ - तब श्रीरामचन्द्र जी सब लोगों को भयभीत देखकर और सीता जी को डरी हुई जानकर बोले—उनके हृदय में न कुछ हर्ष था और न विषाद—

चौ०-नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा।
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥

सरल अर्थ—हे नाथ! शिव जी के धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई एक दास ही होगा। क्या आज्ञा है, मुझसे क्यों नहीं कहते? यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले।

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥

सरल अर्थ---सेवक वह है जो सेवा का काम करे। शत्रु का काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिये। हे राम! सुनो, जिसने शिव जी के धनुष को तोड़ा है, वह सहस्त्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥

सरल अर्थ---वह इस समाज को छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सभी राजा मारे जायेंगे। मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मण जी मुसकराए और परशुराम जी का अपमान करते हुए बोले---

बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥

सरल अर्थ---हे गोसाईं! लड़कपन में हमने बहुत सी धनुहियाँ तोड़ डालीं किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर इतनी ममता किस कारण से है? यह सुनकर भृगुवंश की ध्वजा स्वरूप परशुराम जी कुपित होकर कहने लगे।

दोहा—रे नृप बालक कालबस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल ससार ॥१३९॥

सरल अर्थ—अरे राजपुत्र ! काल के वश होने से तुझे बोलने मे कुछ भी होश नही है। सारे ससार मे विख्यात शिवजी का यह धनुष क्या धनु ही के समान है?

चौ०-लखन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें ॥

सरल अर्थ—श्री लक्ष्मण जी ने हँसकर कहा—हे देव ! सुनिये, हमारे जान मे तो सभी धनुष एक से ही है। पुराने धनुष तोड़ने मे क्या हानि-लाभ? श्री रामचन्द्र जी ने इसे नवीन के धोखे से देखा था।

छुअत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू ॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥

सरल अर्थ—फिर यह तो छूते ही टूट गया, इसमें श्री रघुनाथ जी का कोई भी दोष नही है। हे मुनि ! आप बिना ही कारण किसलिए क्रोध करते है? परशुराम जी अपने फरसे की ओर देखकर बोले—अरे दुष्ट ! तूने मेरा स्वभाव नही सुना।

बालकु बोलि बधउँ नहि तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही ॥

सरल अर्थ—मै तुझे बालक जानकर नही मारता हूँ। अरे मूर्ख ! क्या तू मुझे निरा मुनि ही जानता है। मैं बाल ब्रह्मचारी और अत्यन्त क्रोधी हूँ। क्षत्रियकुल का शत्रु तो विश्वभर मे विख्यात हूँ।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥

सरल अर्थ—अपनी भुजाओ के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओ से रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणो को दे डाला। हे राजकुमार। सहस्रबाहु की भुजाओ को काटने वाले मेरे इस फरसे को देख।

दोहा—मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीसकिसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥१४०-क॥

सरल अर्थ—अरे राजा के बालक ! तू अपने माता-पिता को सोच के वश न कर। मेरा फरसा बडा भयानक है, यह गर्भो के बच्चो का भी नाश करने वाला है।

दोहा—लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु ॥१४०-ख॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी के उत्तर से, जो आहुति के समान थे, परशुराम जी के क्रोध रूपी अग्नि को बढ़ते देखकर, रघुकुल के सूर्य श्री रामचन्द्र जी जल के समान (शान्त करने वाले) वचन बोले—

चौ०-नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिअ न कोहू ।।
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौकि बराबरि करत अयाना ।।

सरल अर्थ—हे नाथ ! बालक पर कृपा कीजिए। इस सीधे और दुधमुँहे बच्चे पर क्रोध न कीजिए। यदि यह प्रभु का (आपका) कुछ भी प्रभाव जानता, तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता ?

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ।।
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ।।

सरल अर्थ—बालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मन में आनन्द से भर जाते हैं। अतः इसे छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिए। आप तो समदर्शी, सुशील, धीर और ज्ञानी मुनि हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसकाने ।।
हँसत देखि नख सिखरिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी ।।

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के वचन सुनकर वे कुछ ठंडे पड़े। इतने में लक्ष्मण जी कुछ कहकर फिर मुस्करा दिए। उनको हँसते देखकर परशुराम जी के नख से शिखा तक (सारे शरीर में) क्रोध छा गया। उन्होंने कहा—हे राम ! तेरा भाई बड़ा पापी है।

गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूटमुख पयमुख नाहीं ।।
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही ।।

सरल अर्थ—यह शरीर से गोरा, पर हृदय का बड़ा काला है। यह विषमुख है, दुधमुँहा नहीं। स्वभाव से ही टेढ़ा है, तेरा अनुसरण नहीं करता। (तेरा जैसा शीलवान् नहीं है।) यह नीच मुझे काल के समान नहीं देखता।

दोहा—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ।।१४१-क।।

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी ने हँस कर कहा—हे मुनि ! सुनिए, क्रोध पाप का मूल है जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्व भर के प्रतिकुल चलते (सबका अहित करते) हैं।

दोहा—बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधु सम बाम ।।१४१-ख।।

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने परशुराम जी को बार-बार 'मुनि' और विप्रवर कहा। तब भृगुपति (परशुराम जी) कुपित होकर अथवा क्रोध की हँसी हँसकर बोले—तू भी अपने भाई के समान ही टेढ़ा है।

चौ०-राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू।
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परशुराम मन बिसमय भयऊ ।।

सरल अर्थ—(परशुराम जी ने कहा—) । हे राम ! हे लक्ष्मीपति ! धनुष को हाथ में (अथवा लक्ष्मीपति विष्णु का धनुष) लीजिए और इसे खींचिए जिससे मेरा संदेह मिट जाय । परशुराम जी धनुष देने लगे, तब वह आप ही चला गया । तब परशुराम जी के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ ।

दोहा—जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात ॥१४२॥

सरल अर्थ—तब उन्होंने श्री रामचन्द्र जी का प्रभाव जाना, (जिसके कारण) उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया । वे हाथ जोड़कर वचन बोले । प्रेम उनके हृदय में समाता न था—

चौ०-जय रघुबंस बनज बन भानू । गहन दनुज कुल दहन कृसानू ॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी । जय मद मोह कोह भ्रम हारी ॥

सरल अर्थ—हे रघुकुल रूपी कमलवन के सूर्य ! हे राक्षसों के कुलरूपी घने जंगल को जलाने वाले अग्नि ! आपकी जय हो । हे देवता, ब्राह्मण और गौ का हित करने वाले ! आपकी जय हो । हे मद, मोह, क्रोध और भ्रम के हरने वाले आपकी जय हो ।

करौं काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस मन मानस हंसा ॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता । छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ॥

सरल अर्थ—मैं एक मुख से आपकी क्या प्रशंसा करूँ ? हे महादेव जी के मनरूपी मानसरोवर के हंस ! आपकी जय हो । मैंने अनजाने में आपको बहुत से अनुचित वचन कहे । हे क्षमा के मन्दिर दोनों भाई ! मुझे क्षमा कीजिए ।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू । भृगुपति गए बनहि तप हेतू ॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने । जहँ तहँ कायर गवँहि पराने ॥

सरल अर्थ—हे रघुकुल के पताका स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी ! आपकी जय हो जय हो, जय हो । ऐसा कहकर परशुराम जी तप के लिए वन को चले गए । (यह देखकर) दुष्ट राजा लोग बिना ही कारण के (मनःकल्पित) डर से (श्री रामचन्द्र से तो परशुराम जी भी हार गए, हमने इनका अपमान किया था, अब कहीं ये उसका बदला न ले इस व्यर्थ के डर से) डर गए, वे कायर चुपके से जहाँ-तहाँ भाग गए ।

दोहा—देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं प्रभु पर बरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल ॥१४३॥

सरल अर्थ—देवताओं ने नगाड़े बजाए, वे प्रभु के ऊपर फूल बरसाने लगे । जनकपुर के स्त्री-पुरुष सब हर्षित हो गए । उनका मोहमय (अज्ञान से उत्पन्न) शूल मिट गया ।

चौ०-सुखु बिदेह कर बरनि न जाई । जन्म दरिद्र मनहुँ निधि पाई ॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी । जनु बिधु उदयँ चकोर कुमारी ॥

सरल अर्थ—जनक जी के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो जन्म का दरिद्री धन का खजाना पा गया हो। सीता जी का भय जाता रहा। वे ऐसी सुखी हुईं जैसे चन्द्रमा के उदय होने से चकोर की कन्या सुखी होती है।

जनक कीन्ह कौसकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा।।
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जौं उचित सो कहिअ गोसाईं।।

सरल अर्थ---जनक जी ने विश्वामित्र जी को प्रणाम किया (और कहा---) प्रभु ही की कृपा से श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ा है। दोनों भाइयों ने मुझे कृतार्थ कर दिया। हे स्वामी! अब जो उचित हो कहिये।

कह मुनि सुनु नर नाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना।।
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू।।

सरल अर्थ---मुनि ने कहा---हे चतुर नरेश! सुनो। यों तो विवाह धनुष के अधीन था---धनुष के टूटते ही विवाह हो गया। देवता, मनुष्य और नाग सब किसी को यह मालूम है।

दोहा—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु।।१४४।।

सरल अर्थ---तथापि तुम जाकर अपने कुल का जैसा व्यवहार हो, ब्राह्मणों, कुल के बूढ़ों और गुरुओं से पूछकर और वेदों में वर्णित जैसा आचार हो, वैसा करो।

चौ०-दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहि बोलाई।।
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला।।

सरल अर्थ---जाकर अयोध्या को दूत भेजो, जो राजा दशरथ को बुला लावें। राजा ने प्रसन्न होकर कहा--हे कृपालु! बहुत अच्छा और उसी समय दूतों को बुला कर भेज दिया।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए।।
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगरु सँवारहु चारिहुँ पासा।।

सरल अर्थ---फिर सब महाजनों को बुलाया और सबने आकर राजा को आदरपूर्वक सिर नवाया। (राजा ने कहा---) बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगर को चारों ओर से सजाओ।

हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए।।
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई।।

सरल अर्थ---महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आये। फिर राजा ने नौकरों को बुला भेजा (और उन्हें आज्ञा दी कि) विचित्र मण्डप सजाकर तैयार करो। यह सुनकर वे सब राजा के वचन सिर पर धर कर और सुख पाकर चले।

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना ॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा ॥

सरल अर्थ---उन्होंने अनेक कारीगरों को बुला भेजा, जो मण्डप बनाने में बड़े कुशल और चतुर थे। उन्होंने ब्रह्मा की वन्दना करके कार्य आरम्भ किया और पहले) सोने के केले के खंभे बनाए।

दोहा—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल ॥१४५॥

सरल अर्थ---हरी हरी मणियों (पन्ने) के पत्ते और फल बनाये तथा पद्म-राग मणियों (माणिक) के फूल बनाए। मण्डप की अत्यन्त विचित्र रचना देखकर ब्रह्मा का मन भी भूल गया।

चौ०-बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे ॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई ॥

सरल अर्थ---बाँस सब हरी-हरी मणियों (पन्ने) के सीधे और गाँठों से युक्त ऐसे बनाए जो पहचाने नहीं जाते थे (कि मणियों के हैं या साधारण) सोने की सुन्दर नागबेलि (पान की लता)बनायी, जो पत्तों सहित ऐसी भली मालूम होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी।

तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए ॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥

सरल अर्थ---उसी नागबेलि के रचकर और पच्चीकारी करके बन्धन (बाँधने की रस्सी) बनाए। बीच-बीच में मोतियों की सुन्दर झालरें हैं। माणिक, पन्ने, हीरे और फिरोजे इन रत्नों को चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके (लाल, हरे, सफेद और फिरोजी रंग के) कमल बनाए।

किए भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी। मंगल द्रव्य लिएँ सब ठाढ़ी ॥

सरल अर्थ---भौंरे और बहुत रंगों के पक्षी बनाए जो हवा के सहारे, गूँजते और कूजते थे। खम्भे पर देवताओं की मूर्तियाँ गढ़कर निकालीं, जो सब मंगल द्रव्य लिए खड़ी थीं।

चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं ॥

सरल अर्थ---गजमुक्ताओं के सहज ही सुहावने अनेकों तरह के चौक पुराए।

दोहा—सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि ॥१४६-ख॥

सरल अर्थ---नीलमणि को कोरकर अत्यन्त सुन्दर आम के पत्ते बनाए। सोने के बौर (आम के फूल) और रेशम की डोरी से बँधे हुए पन्ने के बने फलों के गुच्छे सुशोभित हैं।

दोहा—धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल ।।१४६-ख।।

सरल अर्थ---निर्मल और सभी सुन्दर मंगलों की मूल गोधूलि की पवित्र बेला आ गई और अनुकूल शकुन होने लगे, यह जानकर ब्राह्मणों ने जनक जी से कहा।

दोहा—भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि ।।१४६-ग।।

सरल अर्थ---अवधनरेश दशरथ जी का भाग्य और वैभव देखकर और अपना जन्म व्यर्थ समझकर ब्रह्मा जी आदि देवता हजारों मुख से उसकी सराहना करने लगे।

दोहा—रामरूप नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि ।।१४६-घ।।

सरल अर्थ---नख से शिखा तक श्रीरामचंद्र जी के सुन्दर रूप को बार-बार देखते हुए पार्वती जी सहित श्री शिवजी का शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्र (प्रेमाश्रुओं के) जल से भर गये।

दोहा—मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति ।।१४६-ङ।।

सरल अर्थ---नित्य ही मंगल, आनन्द और उत्सव होते हैं, इस तरह आनन्द में दिन बीतते जाते हैं। अयोध्या आनन्द से भरकर उमड़ पड़ी, आनन्द की अधिकता अधिक-अधिक बढ़ती ही जा रही है।

चौ०-आए ब्याहि रामु घर जबतें। बसइ अनन्द अवध सब तबतें ।।
प्रभु बिवाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू ।।

सरल अर्थ—जब से श्रीरामचन्द्र जी विवाह करके घर आये, तब से सब प्रकार का आनन्द अयोध्या में आकर बसने लगा। प्रभु के विवाह में जैसा आनन्द-उत्साह हुआ उसे सरस्वती और सर्पों के राजा शेष भी नहीं कह सकते।

कबिकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी ।।
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ।।

सरल अर्थ---श्री सीताराम जी के यश को कविकुल के जीवन को पवित्र करने वाला और मंगलों की खान जानकर इससे मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कुछ (थोड़ा-सा) बखान कर रहा हूँ।

सो०—सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतनु राम जसु ।।१४७।।

सरल अर्थ---श्री सीता जी और श्रीरघुनाथ जी के विवाह प्रसंगों को जो लोग प्रेमपूर्वक सुनेंगे, उनके लिए सदा उत्साह (आनन्द) ही उत्साह है, क्योंकि श्रीरामचंद्र जी का यश मंगल का धाम है।

□□

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

१०. श्री रामचरितमानस

द्वितीय सोपान

(अयोध्याकाण्ड)

श्लोक—प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुल मङ्गलप्रदा ॥

सरल अर्थ—रघुकुल को आनन्द देने वाले श्रीरामचन्द्र जी के मुखारविन्द की जो शोभा राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक की बात सुनकर) न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुख से मलिन ही हुई, वह (मुखकमल की छवि) मेरे लिए सदा सुन्दर मंगलो की देने वाली हो।

नीलाम्बुजश्यामल कोमलाङ्गं सीता समारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

सरल अर्थ—नीले कमल के समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, श्री सीताजी जिनके वाम भाग में विराजमान हैं और जिनके हाथो मे (क्रमशः) अमोघ बाण और सुन्दर धनुष है, उन रघुवंश के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

दोहा—श्री गुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ॥१॥

सरल अर्थ—श्री गुरु जी के चरण कमलो की रज से अपने मन रूपी दर्पण को साफ करके मैं श्रीरघुनाथ जी के उस निर्मल यश का वर्णन करता हूँ—जो चारों फलो को (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को) देने वाला है।

चौ०-जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए ॥
भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुखबारी ॥

सरल अर्थ—जब से श्री रामचन्द्र जी विवाह करके घर आए, तब से (अयोध्या मे) नित्य नये मगल हो रहे हैं और आनन्द के बधावे बज रहे हैं। चौदहो लोकरूपी बड़े भारी पर्वतो पर पुण्यरूपी मेघ सुखरूपी जल बरसा रहे हैं।

रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई ।।
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती ।।

सरल अर्थ---ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्या रूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री-पुरुष अच्छी जाति के मणियों के समूह हैं, जो सब प्रकार से पवित्र, अमूल्य और सुन्दर हैं।

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती ।।
सब बिधि सबपुर लोग सुखारी। रामचन्द मुख चंदु निहारी ।।

सरल अर्थ---नगर का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्मा जी की कारीगरी बस इतनी ही है। सब नगर-निवासी श्रीरामचन्द्र जी के मुखचन्द्र को देखकर सब प्रकार से सुखी हैं।

मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली।
राम रूप गुन सील सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ।।

सरल अर्थ--- सब माताएँ और सखी-सहेलियाँ अपनी मनोरथ रूपी बेल को फली हुई देखकर आनन्दित हैं। श्री रामचन्द्र जी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देख-सुनकर राजा दशरथ जी बहुत ही आनन्दित होते हैं।

दोहा - सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु ।।२।।

सरल अर्थ---सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब महादेव जी को मनाकर (प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते-जी श्रीरामचन्द्र जी को युवराज-पद दे दें।

चौ०-एक समय सब सहित समाजा। राज सभाँ रघुराजु बिराजा ।।
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू ।।

सरल अर्थ---एक समय रघुकुल के राजा दशरथ जी अपने सारे समाज सहित राजसभा में विराजमान थे। महाराज समस्त पुण्यों की मूर्ति हैं, उन्हें श्री रामचन्द्रजी का सुन्दर यश सुनकर अत्यन्त आनन्द हो रहा है।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें ।।
तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं ।।

सरल अर्थ---सब राजा उनकी कृपा चाहते है और लोकपालगण उनके रुख को रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं। (पृथ्वी, आकाश पाताल), तीनों भुवनों में और (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों में दशरथ जी के समान बड़भागी (और) कोई नहीं है।

मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कुछ कहिअ थोर सबु तासू ।।
रायँ सुभायँ मुकुरु करलीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुट समकीन्हा ।।

सरल अर्थ---मंगलो के मूल श्री राम जी जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है। राजा ने स्वाभाविक ही हाथ मे दर्पण ले लिया और उसमे अपना मुंह देखकर मुकुट को सीधा किया।

श्रवनसमीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपन अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

सरल अर्थ—(देखा कि) कानो के पास बाल सफेद हो गये हैं, मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि हे राजन्! श्री रामचन्द्र जी को युवराज पद देकर अपने जीवन और जन्म का लाभ क्यों नही लेते।

दोहा—यह बिचार उर आनि नृप सुदिन सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ॥३॥

सरल अर्थ—हृदय मे यह विचार लाकर (युवराज पद देने का निश्चय कर) राजा दशरथ जी ने शुभ दिन और सुन्दर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो आनन्दमग्न मन से उसे गुरु वशिष्ठ जी को जा सुनाया।

चौ०-कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये राम सब बिधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमारे अरि मित्र उदासी॥

सरल अर्थ—राजा ने कहा—हे मुनिराज! (कृपया यह निवेदन) सुनिये। श्री रामचन्द्र जी अब सब प्रकार से सब योग्य हो गये हैं। सेवक, मन्त्री, सब नगर निवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र भी उदासीन है—

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहुसब रौरिह नाईं॥

सरल अर्थ—सभी को श्री रामचन्द्र जी वैसे ही प्रिय हैं, जैसे वे मुझको हैं। (उनके रूप मे) आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारण करके शोभित हो रहा है। हे स्वामी! सारे ब्राह्मण परिवार सहित आपके ही समान उन पर स्नेह करते हैं।

जे गुरु चरन रेनु सिर धरही। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें॥

सरल अर्थ—जो लोग गुरु के चरणो की रज को मस्तक पर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्य को अपने वश मे कर लेते है। इसका अनुभव मेरे समान दूसरे किसी ने नही किया। आपकी पवित्र चरण रज की पूजा करके मैने सब कुछ पा लिया है।

अब अभिलाषु एक मनु मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥

सरल अर्थ—अब मेरे मन मे एक ही अभिलाषा है। हे नाथ! वह भी

आपके अनुग्रह से पूरी होगी। राजा का सहज प्रेम देखकर मुनि ने प्रसन्न होकर कहा—नरेश ! आज्ञा दीजिए (कहिए, क्या अभिलाषा है ?)।

दोहा—राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार ॥४॥

सरल अर्थ—हे राजन् ! आपका नाम और यश ही सम्पूर्ण मनचाही वस्तुओं को देने वाला है। हे राजाओं के मुकुट-मणि ! आपके मन की अभिलाषा फल का अनुगमन करती है (अर्थात् आपके इच्छा करने के पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है)।

चौ०-सब विधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥

सरल अर्थ—अपने जी में गुरु जी को सब प्रकार से प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा कोमल वाणी से बोले—हे नाथ ! श्री रामचन्द्र को युवराज कीजिए। कृपा करके कहिए (आज्ञा दीजिए) तो तैयारी की जाय।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥

सरल अर्थ—मेरे जीते-जी यह आनंद-उत्सव हो जाय, (जिससे) सब लोग अपने नेत्रों का लाभ प्राप्त करें। प्रभु (आप) के प्रसाद से शिव जी ने सब कुछ निबाह दिया (सब इच्छाएँ पूरी कर दीं), केवल यही एक लालसा मन में रह गई है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाउ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ।
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥

सरल अर्थ—(इस लालसा के पूर्ण हो जाने पर) फिर सोच नहीं, शरीर रहे या चला जाय, जिससे मुझे पीछे पछतावा न हो। दशरथ जी के मङ्गल और आनंद के मूल सुन्दर वचन सुनकर मुनि मन में बहुत प्रसन्न हुए।

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥

सरल अर्थ—(वसिष्ठ जी ने कहा—) हे राजन् ! सुनिये, जिनसे विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी (सर्वलोक महेश्वर) श्री रामजी आपके पुत्र हुए हैं, जो पवित्र प्रेम के अनुगामी हैं। (श्री राम जी पवित्र प्रेम के पीछे-पीछे चलने वाले हैं, इसी से तो प्रेमवश आपके पुत्र हुए हैं)।

दोहा—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु॥
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु ॥५॥

सरल अर्थ—हे राजन् ! अब देर न कीजिए, शीघ्र सब सामान सजाइए। शुभ दिन और सुन्दर मंगल तभी है—जब श्रीरामचन्द्र जी युवराज हो जायें (अर्थात् उनके अभिषेक के लिए सभी दिन शुभ और मंगलमय है)।

चौ०-मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥

सरल अर्थ—राजा आनंदित होकर महल में आए और उन्होंने सेवकों तथा मन्त्री सुमंत्र को बुलवाया। उन लोगों ने 'जय जीव' कहकर सिर नवाये। तब राजा ने सुन्दर मङ्गलमय वचन (श्री राम जी को युवराज पद देने का प्रस्ताव) सुनाये।

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥

सरल अर्थ—(और कहा—) यदि पंचों को—(आप सबको) यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्रीरामचन्द्र का राजतिलक कीजिए।

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥

सरल अर्थ—इस प्रिय वाणी को सुनते ही मन्त्री ऐसे आनंदित हुए मानो उनके मनोरथ रूपी पौधे पर पानी पड़ गया हो। मंत्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे जगत्पति ! आप करोड़ों वर्ष जियें।

जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥

सरल अर्थ—आपने जगत् भर का मङ्गल करने वाला भला काम सोचा है। हे नाथ ! शीघ्रता कीजिये, देर न लगाइये। मन्त्रियों की सुन्दर वाणी सुनकर राजा को ऐसा आनंद हुआ मानो बढ़ती हुई बेल सुन्दर डाली का सहारा पा गई हो।

दोहा—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥५॥

सरल अर्थ—राजा ने कहा—श्री रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक के लिए मुनिराज वशिष्ठ जी की जो-जो आज्ञा हो, आप लोग वही सब तुरन्त करें।

चौ०-हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥

सरल अर्थ—मुनिराज ने हर्षित होकर कोमल वाणी से कहा कि सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थों का जल ले आओ। फिर उन्होंने औषधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों माङ्गलिक वस्तुओं के नाम गिनकर बताये।

चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मङ्गल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका॥

सरल अर्थ—चँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकार के वस्त्र, असंख्यों जातियों के ऊनी और रेशमी कपड़े, (नाना प्रकार की) मणियाँ (रत्न) तथा और भी बहुत-सी मङ्गल वस्तुएँ, जो जगत् में राज्याभिषेक के योग्य होती हैं, (सबको मँगाने की उन्होंने आज्ञा दी)।

बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥

सरल अर्थ—मुनि ने वेदों में कहा हुआ सब विधान बताकर कहा—नगर में बहुत से मण्डप (चँदोवे) सजाओ। फलों समेत आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर की गलियों में चारों ओर रोप दो।

रचहु मञ्जु मनि चौकें चारू। कहहुँ बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमि सुर सेवा॥

सरल अर्थ—सुन्दर मणियों के मनोहर चौक पुरवाओ और बाजार को तुरन्त सजाने के लिए कह दो। श्री गणेश जी, गुरु और कुल देवता की पूजा करो और भूदेव ब्राम्हणों की सब प्रकार से सेवा करो।

दोहा—ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥७॥

सरल अर्थ—ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको सजाओ। मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ जी के वचनों को शिरोधार्य करके सब लोग अपने-अपने काम में लग गये।

चौ०-जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मङ्गल काजा॥

सरल अर्थ—मुनीश्वर ने जिसको जिस काम की आज्ञा दी, उसने वह काम (इतनी शीघ्रता से कर डाला कि) मानो पहले से ही कर रक्खा था। राजा, ब्राह्मण, साधु और देवताओं को पूज रहे हैं और श्री रामचन्द्र जी के लिए सब मङ्गलकार्य कर रहे हैं।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
सीय राम तनु सगुन जनाये। फरकहिं मङ्गल अंग सुहाए॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध भर में बड़ी धूम से बधावे बजने लगे। श्री रामचन्द्र जी और सीता जी के शरीर में भी शुभ शकुन सूचित हुए। उनके सुन्दर मंगल अंग फड़कने लगे।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भये बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥

सरल अर्थ—पुलकित होकर वे दोनों प्रेम-सहित एक दूसरे से कहते हैं कि ये सब शकुन भरत के आने की सूचना देने वाले हैं। (उनको मामा के घर गये बहुत दिन हो गये, बहुत ही अवसेर आ रही है (बार-बार उनसे मिलने को मन आती है), शकुनों से प्रिय (भरत) के मिलने का विश्वास होता है।

भरत सरिस प्रिय को जगमाहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥

सरल अर्थ—और भरत के समान जगत् मे (हमें) कौन प्यारा है। शकुन का बस, यही फल है, दूसरा नही। श्रीरामचन्द्र जी को (अपने) भाई भरत का दिन-रात ऐसा सोच रहता है जैसा कछुए का हृदय अंडो मे रहता है।

दोहा—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥७॥

सरल अर्थ—इसी समय यह परम मङ्गल समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। जैसे चन्द्रमा को बढते देखकर समुद्र मे लहरों का विलास (आनंद) सुशोभित होता है।

चौ०-तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आई पद नायउ माथा ॥

सरल अर्थ—तब राजा ने वसिष्ठ जी को बुलाया और शिक्षा (समयोचित उपदेश) देने के लिए श्रीरामचन्द्र जी के महल में भेजा। गुरु का आगमन सुनते ही श्री रघुनाथ जी ने दरवाजे पर आकर उनके चरणो मे मस्तक नवाया।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी ॥

सरल अर्थ—आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हे घर मे लाए और षोडशोपचार पूजा करके उनका सम्मान किया। फिर सीता जी सहित उनके चरण स्पर्श किये और कमल के समान दोनों हाथो को जोडकर श्रीराम जी बोले—

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मङ्गल मूल अमङ्गल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती ॥

सरल अर्थ—यद्यपि सेवक के घर स्वामी का पधारना मङ्गलो का मूल और अमंगलों का नाश करने वाला होता है, तथापि हे नाथ ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दास को ही कार्य के लिए बुला भेजते, ऐसी ही नीति है।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होई सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं ॥

सरल अर्थ—परन्तु प्रभु (आप ने प्रभुता छोडकर (स्वयं यहाँ पधारकर) जो स्नेह किया, इससे आज यह घर पवित्र हो गया। हे गोसाईं ! (अब) जो आज्ञा हो वही करूँ। स्वामी की सेवा में ही सेवक का काम है।

दोहा—सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस ॥९॥

सरल अर्थ—(श्रीरामचन्द्र जी के) प्रेम में सने हुए वचनों को सुनकर मुनि वसिष्ठ जी ने श्री रघुनाथ जी की प्रशंसा करते हुए कहा है कि हे राम ! भला, आप ऐसा क्यों न कहें। आप सूर्य वंश के भूषण जो हैं।

चौ०-बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के गुण, शील और स्वभाव का बखान सुनकर मुनिराज प्रेम से पुलकित होकर बोले—(हे श्री रामचन्द्र जी) राजा (दशरथ जी) ने राज्याभिषेक की तैयारी की है। वे आपको युवराज-पद देना चाहते हैं।

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदयँ अस बिसमउ भयऊ ॥

सरल अर्थ—(इसलिए) हे श्री राम जी ! आज आप (उपवास, हवन आदि विधिपूर्वक) सब संयम कीजिए, जिससे विधाता कुशलतापूर्वक इस काम को निबाह दें (सफल कर दें)। गुरु जी शिक्षा देकर राजा दशरथ के पास चले गये। श्रीरामचन्द्रजी के हृदय में (यह सुनकर) इस बात का खेद हुआ कि —

जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भये उछाहा ॥

सरल अर्थ—हम सब भाई एक ही साथ जन्मे, खाना, सोना, लड़कपन के खेल-कूद, कनछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथ-साथ ही हुए।

बिमल बंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥

सरल अर्थ—पर इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि और सब भाइयों को छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़े का ही (मेरा ही) होता है। (तुलसीदास जी कहते हैं कि) प्रभु श्रीरामचन्द्र जी का यह सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरण करे।

दोहा—तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद ॥१०॥

सरल अर्थ—उसी समय प्रेम और आनन्द में मग्न लक्ष्मण जी आए। रघुकुल रूपी कुमुद के खिलानेवाले चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी ने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया।

चौ०-हाट बाट घर गलीं अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥

सरल अर्थ—बाजार, रास्ते, घर, गली और चबूतरों पर (जहाँ-तहाँ) पुरुष और स्त्री आपस में यही कहते है कि कल वह शुभ लग्न (मुहूर्त) कितने समय है जब विधाता हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे।

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥

सरल अर्थ—जब सीता जी सहित श्रीरामचन्द्रजी सुवर्ण के सिंहासन पर विराजेंगे और हमारा मनचीता होगा (मनःकामना पूरी होगी)। इधर तो सब यह कह रहे हैं कि कल कब होगा, उधर कुचक्री देवता विघ्न मना रहे हैं।

तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चदिनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं ॥

सरल अर्थ—उन्हें (देवताओं को) अवध के बधावे नहीं सुहाते, जैसे चोर को चाँदनी रात नहीं भाती। सरस्वती जी को बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरों को पकड़कर उन पर गिरते हैं।

दोहा—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ॥
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥११॥

सरल अर्थ—(वे कहते हैं—) हे माता! हमारी बड़ी विपत्ति को देखकर आज वही कीजिए जिससे श्रीरामचन्द्र जी राज्य त्यागकर वन को चले जायें और देवताओं का सब कार्य सिद्ध हो!

चौ०-सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिमराती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥

सरल अर्थ—देवताओं की विनती सुनकर सरस्वती जी खड़ी-खड़ी पछता रही हैं कि (हाय!) मैं कमलवन के लिए हेमन्त ऋतु की रात हुई। उन्हें इस प्रकार पछताते देखकर देवता फिर विनय करके कहने लगे—हे माता! इसमें आपको जरा भी दोष न लगेगा।

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी ॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी विषाद और हर्ष से रहित हैं। आप तो श्री राम जी के सब प्रभाव को जानती ही हैं। जीव अपने कर्मवश ही सुख-दु:ख का भागी होता है। अतएव देवताओं के हित के लिए आप अयोध्या जाइये।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची ॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥

सरल अर्थ—बार-बार चरण पकड़ कर देवताओं ने सरस्वती को संकोच में डाल दिया। तब वह यह विचार कर चलीं कि देवताओं की बुद्धि ओछी है। इनका

निवास तो ऊँचा है, पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥

सरल अर्थ—परन्तु आगे का काम विचार करके (श्रीरामजी के वन जाने से राक्षसों का वध होगा, जिससे सारा जगत् सुखी हो जाएगा) चतुर कवि (श्री रामजी के वनवास के चरित्रों का वर्णन करने के लिए) मेरी चाह (कामना) करेंगे। ऐसा विचार कर सरस्वती हृदय में हर्षित होकर दशरथ जी की पुरी अयोध्या में आईं, मानों दुःसह दुःख देने वाली कोई ग्रहदशा आई हो।

दोहा—नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥१२॥

सरल अर्थ—मन्थरा नाम की कैकेयी की एक मन्द बुद्धि दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेरकर चली गईं।

चौ०-दीख मन्थरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू॥

सरल अर्थ—मन्थरा ने देखा कि नगर सजाया हुआ है। सुन्दर मङ्गलमय बधावे बज रहे हैं। उसने लोगों से पूछा कि कैसा उत्सव है? (उनसे) श्रीरामचन्द्र जी के राजतिलक की बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती॥

सरल अर्थ—वह दुर्बुद्धि नीच जाति वाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकार से यह काम रात-ही-रात में बिगड़ जाय, जैसे कोई कुटिल भीलनी शहद का छत्ता लगा देखकर घात लगाती है कि इसको किस तरह से उखाड़ लूँ।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥

सरल अर्थ—वह उदास होकर भरत जी की माता कैकेयी के पास गई। रानी कैकेयी ने हँसकर कहा—तू उदास क्यों है? मन्थरा कुछ उत्तर नहीं देती, केवल लम्बी साँस ले रही है और त्रिया चरित्र करके आँसू ढरका रही है।

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि॥

सरल अर्थ—रानी हँसकर कहने लगी कि तेरे बड़े गाल है (तू बहुत बढ़-बढ़कर बोलने वाली है) मेरा मन कहता है कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है (दण्ड दिया है)। तब भी वह महापापिनी दासी कुछ भी नहीं बोलती। ऐसी लम्बी साँस छोड़ रही है मानो काली नागिन (फुफकार छोड़ रही) हो।

कस सिख देइ हमहिं कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देइ जुबराजू ॥

सरल अर्थ—(वह कहने लगी—) हे माई! हमें कोई क्यों सीख देगा और मैं किसका बल पाकर गाल करूंगी—(बढ़-बढ़कर बोलूंगी)। रामचन्द्र जी को छोड़ कर आज और किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराजपद दे रहे हैं।

पूत बिदेस न सोच तुम्हारें । जानति हहु बस नाहु हमारें ॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥

सरल अर्थ—तुम्हारा पुत्र परदेश में है, तुम्हें कुछ सोच नहीं। जानती हो कि स्वामी हमारे वश में हैं। तुम्हें तो तोशक-पलंग पर पड़े-पड़े नींद लेना ही बहुत प्यारा लगता है, राजा की कपट भरी चतुराई तुम नहीं देखती।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥

सरल अर्थ—मन्थरा के प्रिय वचन सुनकर, किन्तु उसको मन की मैली जान कर रानी झुककर (डांटकर) बोली—बस, अब चुप रह घरफोड़ी कहीं की। जो फिर कभी ऐसा कहा तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा लूंगी।

दोहा—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥१३॥

सरल अर्थ—कानों, लंगड़ों और कुबड़ों को कुटिल और कुचाली जानना चाहिए, उनमें भी स्त्री और खासकर दासी। इतना कहकर भरत जी की माता कैकेयी मुस्करा दी।

चौ०-प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥

सरल अर्थ—(और फिर बोलीं—) हे प्रिय वचन कहने वाली मन्थरा! मैंने तुझको यह सीख दी है (शिक्षा के लिए इतनी बात कही है)। मुझे तुझ पर स्वप्न में भी क्रोध नहीं है। सुन्दर मङ्गलदायक शुभ दिन वही होगा जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (अर्थात् श्री राम का राज्यतिलक होगा)।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
रामतिलकु जौं साँचेहुँ काली । देउँ मागु मन भावत आली ॥

सरल अर्थ - बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यवंश की सुहावनी रीति है। यदि सचमुच ही श्री राम का तिलक है, तो हे सखी! तेरे मन को अच्छी लगे वही वस्तु मांग ले, मैं दूंगी।

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभायँ पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥

सरल अर्थ—राम को सहज स्वभाव से सब माताएँ कौसल्या के समान ही प्यारी हैं। मुझ पर तो वे विशेष प्रेम करते हैं। मैंने उनकी परीक्षा करके देख ली है।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें ॥

सरल अर्थ—जो विधाता कृपा करके जन्म दें तो (यह भी दें कि) श्री रामचन्द्र जी पुत्र और सीता बहू हों। श्री राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक से (उनके तिलक की बात सुनकर) तुझे क्षोभ कैसा?

दोहा—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥१४॥

सरल अर्थ—तुझे भरत की सौगन्ध है, छल-कपट छोड़कर सच-सच कह। तू हर्ष के समय विषाद कर रही है, मुझे इसका कारण सुना।

चौ०-सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी ॥

सरल अर्थ - बार-बार रानी उससे आदर के साथ पूछ रही हैं, मानो भीलनी के गान से हिरनी मोहित हो गई हो। जैसी भावी (होनहार) है, वैसी ही बुद्धि भी फिर गई। दासी अपना दाँव लगा जानकर हर्षित हुई।

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराउँ। धरेहु मोर घरफोरी नाउँ ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली ॥

सरल अर्थ—तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते डरती हूँ। क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी रख दिया है। बहुत तरह से गढ़-छोलकर, खूब विश्वास जमा कर, तब वह अयोध्या की साढ़साती (शनि की साढ़े सात वर्ष की दशा रूपी मन्थरा) बोली—

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते ॥

सरल अर्थ—हे रानी! तुमने जो कहा कि मुझे सीता-राम प्रिय हैं और राम को तुम प्रिय हो, सो यह बात सच्ची है। परन्तु यह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गये, समय फिर जाने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बरबारी ॥

सरल अर्थ—सूर्य कमल के कुल का पालन करने वाला है, पर बिना जल के वही सूर्य उनको (कमलों को) जलाकर भस्म कर देता है। सौत कौसल्या तुम्हारी

जड़ उखाड़ना चाहती हैं। अतः उपायरूपी श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) लगाकर उसे रूंध दो (सुरक्षित कर दो)।

दोहा—तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ ॥
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ ॥१५॥

सरल अर्थ—तुमको अपने सुहाग के (झूठे) बल पर कुछ भी सोच नहीं है, राजा को अपने वश में जानती हो। किन्तु राजा मन के मैले और मुँह के मीठे हैं। और आपका सीधा स्वभाव है (आप कपट-चतुराई जानती ही नहीं)।

चौ०-चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानव रउरें ॥

सरल अर्थ—राम की माता (कौसल्या) बड़ी चतुर और गम्भीर है (उसकी थाह कोई नहीं पाता)। उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेज दिया, उसमें आप, बस, राम की माता की ही सलाह समझिये।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥

सरल अर्थ—(कौसल्या समझती है कि) और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती है, एक भरत की माँ पति के बल पर गर्वित रहती है। इसी से हे माई! कौसल्या को तुम बहुत ही साल (खटक) रही हो। किन्तु वह कपट करने में चतुर है, अतः उसके हृदय का भाव जानने में नहीं आता। (वह उसे चतुरता से छिपाये रखती है)।

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई ॥

सरल अर्थ—राजा का तुम पर विशेष प्रेम है। कौसल्या सौत के स्वभाव से उसे देख नहीं सकती। इसीलिए उसने जाल रचकर, राजा को अपने वश में करके, (भरत की अनुपस्थिति में) राम के राजतिलक के लिए लग्न का निश्चय कर लिया।

यह कुल उचित रामकहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥

सरल अर्थ—राम को तिलक हो यह कुल (रघुकुल) के उचित ही है और यह बात सभी को सुहाती है, और मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है। परन्तु मुझे तो आगे की बात विचार कर डर लगता है, देव उलटकर इसका फल उसी (कौसल्या) को दें।

दोहा—रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥१६॥

सरल अर्थ—इस तरह करोड़ों कुटिलपन की बातें गढ़-छोलकर मन्थरा ने कैकेयी को उल्टा-सीधा समझा दिया और सेकड़ों सौतों की कहानियाँ इस प्रकार (बना-बनाकर) कही जिस प्रकार विरोध बढ़े।

चौ०-भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥

सरल अर्थ—होनहार वश कैकेयी के मन में विश्वास हो गया। रानी फिर सौगन्ध दिलाकर पूछने लगी। (मन्थरा बोली—) क्या पूछती हो? अरे, तुमने अब भी नहीं समझा? अपने भले-बुरे को (अथवा मित्र-शत्रु को) तो पशु भी पहचान लेते हैं।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ ॥

सरल अर्थ—यदि मैं कुछ बनाकर झूठ कहती होऊँगी तो विधाता मुझे दण्ड देगा। यदि कल राम को राजतिलक हो गया तो (समझ रखना कि) तुम्हारे लिये विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

सरल अर्थ—मैं यह बात लकीर खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ, हे भामिनी! तुम तो अब दूध की मक्खी हो गईं। (जैसे दूध में पड़ी हुई मक्खी को लोग निकालकर फेंक देते हैं, वैसे ही तुम्हें भी लोग घर से निकाल बाहर करेंगे।) जो पुत्र सहित (कौसल्या की) चाकरी बजाओगी, तो घर में रह सकोगी, (अन्यथा घर में रहने का) दूसरा उपाय नहीं।

कैकय सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी ॥

सरल अर्थ—कैकेयी मन्थरा की कड़वी वाणी सुनते ही डरकर सूख गई, कुछ बोल नहीं सकती। शरीर में पसीना हो आया और वह केले की तरह काँपने लगी। तब कुबरी (मन्थरा) ने अपनी जीभ दाँतों-तले दबाई (उसे भय हुआ कि कहीं भविष्य का अत्यन्त डरावना चित्र सुनकर कैकेयी के हृदय की गति न रुक जाय; जिससे उलटा सारा काम ही बिगड़ जाय)।

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी ॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने ॥

सरल अर्थ—कैकेयी ने कहा—मन्थरा! सुन, तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़का करती है। मैं प्रतिदिन रात को बुरे स्वप्न देखती हूँ, किन्तु अपने अज्ञानवश तुझसे कहती नहीं।

दोहा—अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह ॥१७॥

सरल अर्थ—अपनी चलते (जहाँ तक मेरा वश चला) मैंने आज तक किसी का बुरा नहीं किया। फिर न जाने किस पाप से देव ने मुझे एक ही साथ यह दुःसह दुःख दिया।

चौ०-कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखत न रानि निकट दुखु कैसें। चरई हरित तिन बलि पसु जैसें॥

सरल अर्थ—कुबरी ने कैकेयी को (सब तरह से) कबूल करवाकर (अर्थात् बलि-पशु बनाकर) कपट रूप छुरी को अपने (कठोर) हृदय रूपी पत्थर पर टेया (उसकी धार को तेज किया)। रानी कैकेयी अपने निकट के (शीघ्र आने वाले) दुख को कैसे नहीं देखती, जैसे बलि का पशु हरी-हरी घास चरता है (पर यह नहीं जानता की मौत सिर पर नाच रही है)।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥

सरल अर्थ—मन्थरा की बातें सुनने मे तो कोमल हैं, पर परिणाम मे कठोर (भयानक) हैं मानो वह शहद में घोलकर जहर पिला रही हो। दासी कहती है—हे स्वामिनी ! तुमने मुझको एक कथा कही थी, उसकी याद है कि नहीं ?

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥

सरल अर्थ—तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर हैं। आज उन्हे राजा से माँगकर अपनी छाती ठण्डी करो। पुत्र को राज्य और राम को वनवास दो और सौत का सारा आनन्द तुम ले लो।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥

सरल अर्थ—जब राजा राम की सौगन्ध खा लें, तब वर माँगना, जिससे वचन न टलने पावे। आज की रात बीत गई तो काम बिगड जायगा। मेरी बात को हृदय से प्रिय (या प्राणों से प्यारी) समझना।

दोहा—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोप गृहँ जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु ॥१८॥

सरल अर्थ—पापी मन्थरा ने बड़ी बुरी घात लगाकर कहा—कोप भवन मे जाओ। सब काम बड़ी सावधानी से बनाना, राजा पर सहसा विश्वास न कर लेना (उनकी बातों मे ना आ जाना)।

चौ०-कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा॥

सरल अर्थ—कुबरी को रानी ने प्राणों के समान प्रिय समझकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धि का बखान किया और बोली—संसार में मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझ बही जाती हुई के लिए सहारा हुई है।

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोप भवन गवनी कैकेई॥

सरल अर्थ—यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें, तो हे सखी! मैं तुझे आँखों की पुतली बना लूं। इस प्रकार दासी को बहुत तरह से आदर देकर कैकेयी कोपभवन में चली गई।

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

सरल अर्थ—विपत्ति (कलह) बीज है, दासी वर्षा-ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि (उस बीज को बोने के लिए) जमीन हो गई। उसमें कपट रूपी जल पाकर अंकुर फूट निकला। दोनों वरदान उस अंकुर के दो पत्ते हैं और अन्त में इसके दुख रूपी फल होगा।

कोप समाजु साजि सब सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई॥

सरल अर्थ—कैकेयी कोप का सब साज सजाकर (कोप भवन में) जा सोयी। राज्य करती हुई वह अपनी दुष्ट बुद्धि से नष्ट हो गई। राजमहल और नगर में धूमधाम मच रही है। इस कुचाल को कोई कुछ नहीं जानता।

दोहा—प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमङ्गलचार॥
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार॥१८॥

सरल अर्थ—बड़े ही आनन्दित होकर नगर के सब स्त्री-पुरुष शुभ मंगलाचार के साज सज रहे है। कोई भीतर जाता है; कोई बाहर निकलता है, राजद्वार में बड़ी भीड़ हो रही है।

दोहा—साँझ समय सानन्द नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ॥२०॥

सरल अर्थ—संध्या के समय राजा दशरथ आनन्द के साथ कैकेयी के महल में गये मानो साक्षात् स्नेह ही शरीर धारण कर निष्ठुरता के पास गया हो।

चौ०-कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाँहबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें॥

सरल अर्थ—कोप भवन का नाम सुनकर राजा सहम गये। डर के मारे उनका पाँव आगे को नहीं पड़ता। स्वयं-देवराज इन्द्र जिनकी भुजाओं के बल पर (राक्षसों से निर्भय होकर) बसता है और सम्पूर्ण राजा लोग जिनका रुख देखते रहते हैं।

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाइ। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनि हारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥

सरल अर्थ—वही राजा दशरथ स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। कामदेव का प्रताप और महिमा तो देखिये। जो त्रिशूल, वज्र और तलवार आदि की चोट अपने अंगो पर सहने वाले हैं, वे रतिनाथ कामदेव के पुष्प-बाण से मारे गये।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना॥

सरल अर्थ—राजा डरते-डरते अपनी प्यारी कैकेयी के पास गये। उसकी दशा देखकर उन्हे बड़ा ही दुख हुआ। कैकेयी जमीन पर पड़ी है। पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है। शरीर के नाना आभूषणो को उतार कर फेंक दिया है।

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी॥

सरल अर्थ—उस दुर्बुद्धि कैकेयी को यह कुवेषता (बुरा वेष) कैसी फब रही है, मानो भावी विधवापन की सूचना दे रही हो। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणी से बोले—हे प्राणप्रिये! किसलिए रिसाई (रूठी) हो?

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥२१॥

सरल अर्थ—राजा बार-बार कह रहे हैं—हे सुमुखी! हे सुलोचनी! हे कोकिलबयनी! हे गजगामिनी! मुझे अपने क्रोध का कारण तो सुना।

चौ०-अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू॥

सरल अर्थ—हे प्रिये! किसने तेरा अनिष्ट किया? किसके दो सिर हैं? यमराज किसको लेना (अपने लोक को ले जाना) चाहते हैं? कह, किस कंगाल को राजा कर दूँ? या किस राजा को देश से निकाल दूँ?

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू॥

सरल अर्थ—तेरा शत्रु अमर (देवता) भी हो, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ। बेचारे कीड़े-मकोड़े-सरीखे नर-नारी तो चीज ही क्या हैं। हे सुन्दरि! तू तो मेरा स्वभाव जानती ही है कि मेरा मन सदा तेरे मुख रूपी चन्द्रमा का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥

सरल अर्थ—हे प्रिये! मेरी प्रजा, कुटुम्बी, सर्वस्व (सम्पत्ति), पुत्र, यहाँ तक

कि मेरे प्राण भी, ये सब तेरे वश में (अधीन) हैं। यदि मैं तुमसे कुछ कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनी ! मुझे सौ बार राम की सौगन्ध है।

विहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुवेषू ॥

सरल अर्थ—तू हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी मनचाही बात माँग ले और अपने मनोहर अंगों को आभूषणों से सजा। मौका-बेमौका तो मन में विचार कर देख। हे प्रिये ! जल्दी इस बुरे वेष को त्याग दे।

दोहा—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि विहसि उठि मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद ॥२२॥

सरल अर्थ—यह सुनकर और मन में राम जी की बड़ी सौगन्ध को विचारकर मन्द बुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी, मानो कोई भीलनी मृग को देखकर फंदा तैयार कर रही हो।

चौ०-पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मञ्जुल बानी ॥
भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनंद बधावा ॥

सरल अर्थ—अपने जी में कैकेयी को सुहृद जानकर राजा दशरथ जी प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुन्दर वाणी से फिर बोले—हे भामिनि ! तेरा मनचीता हो गया। नगर में घर-घर आनन्द के बधावे बज रहे हैं।

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥

सरल अर्थ—मैं कल ही राम को युवराज पद दे रहा हूँ। इसलिये हे सुनयनी ! तू मंगल साज सज। यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा) मानो पका हुआ बालतोड़ (फोड़ा) छू गया हो।

ऐसिउ पीर विहसि तेहिं गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥

सरल अर्थ—ऐसी भारी पीड़ा को भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोर की स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती (जिसमें उसका भेद न खुल जाय)। राजा उसकी कपट-चतुराई को नहीं लख रहे हैं, क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि गुरु मन्थरा की पढ़ाई हुई है।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली विहसि नयन मुहु मोरी ॥

सरल अर्थ—यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं, परन्तु त्रिया चरित्र अथाह समुद्र है। फिर वह कपट युक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपर से प्रेम दिखाकर) नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली—

दोहा—मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥२३॥

सरल अर्थ—हे प्रियतम ! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देते-लेते कुछ भी नहीं। आपने दो वरदान देने को कहा था, उनके भी मिलने में सन्देह है।

चौ०-जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न मागिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥

सरल अर्थ—राजा ने हँसकर कहा कि अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब) समझा। मान करना तुम्हें परम प्रिय है। तुमने उन वरों को थाती (धरोहर) रख कर फिर कभी माँगा ही नहीं और मेरा भूलने का स्वभाव होने से मुझे भी वह प्रसग याद नहीं रहा।

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥

सरल अर्थ—मुझे झूठ-मूठ दोष मत दो। चाहे दो के बदले चार माँग लो। रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि प्राण भले ही चले जाँय, पर वचन नहीं जाता।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥

सरल अर्थ—असत्य के समान पापो का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुँघचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती हैं। 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यो) की जड़ है। यह बात वेद-पुराणो में प्रसिद्ध है और मनु जी ने भी यही कहा है।

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥

सरल अर्थ—उस पर मेरे द्वारा श्रीरामजी की शपथ करने में आ गई (मुँह से निकल पड़ी)। श्री रघुनाथ जी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेह की सीमा हैं। इस प्रकार बात पक्की कराके दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली, मानो उसने कुमत (बुरे विचार) रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) (को छोड़ने के लिए उस) की कुलही (आँखों पर की टोपी) खोल दी।

दोहा—भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु ॥२४॥

सरल अर्थ राजा का मनोरथ सुन्दर वन है, सुख सुन्दर पक्षियो का समुदाय है। उस पर भीलनी की तरह कैकेयी अपना वचन रूपी भयंकर बाज छोड़ना चाहती है।

चौ०-सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

सरल अर्थ—(वह बोली—) हे प्राण प्यारे! सुनिये। मेरे मन को भाने वाला एक वर तो दीजिए, भरत को राजतिलक; और हे नाथ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिए।

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥

सरल अर्थ—तपस्वियों के वेष में विशेष उदासीन भाव से (राज्य और कुटुम्ब आदि की ओर से भली भाँति उदासीन होकर विरक्त मुनियों की भाँति) राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें। कैकेयी के कोमल (विनय युक्त) वचन सुन कर राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है।

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥

सरल अर्थ—राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते न बना, मानो बाज वन में बटेर पर झपटा हो। राजा का रंग बिल्कुल उड़ गया मानो ताड़ के पेड़ को बिजली ने मारा हो (जैसे ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरने से वह झुलस कर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजा का हुआ)।

माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥

सरल अर्थ—माथे पर हाथ रखकर, दोनों नेत्र बन्द करके राजा ऐसे सोच करने लगे मानो साक्षात् सोच ही शरीर धारण कर सोच कर रहा हो। (वे सोचते हैं—हाय!) मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परन्तु फलते समय कैकेयी ने हथिनी की तरह उसे जड़ समेत उखाड़ कर नष्ट कर डाला।

अवध उजारि कीन्हि कैकेईं। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं॥

सरल अर्थ—कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और विपत्ति की अचल (सुदृढ़) नींव डाल दी।

दोहा—कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥२५॥

सरल अर्थ—किस अवसर पर क्या होगा। स्त्री का विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया जैसे योग की सिद्धि रूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है।

चौ०-एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमतिमन माखा॥
भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥

सरल अर्थ—इस प्रकार राजा मन-ही-मन झींख रहे हैं। राजा का ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मन में बुरी तरह से क्रोधित हुई। (और बोली—) क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लाए हैं? (क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ?)

जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें॥
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥

सरल अर्थ—जो मेरा वचन सुनते ही आपको बाण-सा लगा, तो आप सोच समझकर बात क्यों नहीं कहते? उत्तर दीजिए—हाँ कीजिए, नहीं तो नाहीं कर दीजिये। आप रघुवंश में सत्य प्रतिज्ञा वाले (प्रसिद्ध) हैं।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥

सरल अर्थ—आपने ही वर देने को कहा था, अब भले ही न दीजिए। सत्य को छोड़ दीजिए और जगत् में अपयश लीजिए। सत्य की बड़ी सराहना करके वर देने को कहा था। समझा था कि यह चबेना ही माँग लेगी।

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजे बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥

सरल अर्थ—राजा शिवि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचन की प्रतिज्ञा को निबाहा। कैकेयी बहुत ही कड़ुवे वचन कह रही है, मानो जले पर नमक छिड़क रही हो।

दोहा—धरम धुरन्धर धीर धरि नयन उघारे रायँ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ॥२६॥

सरल अर्थ—धर्म की धुरी को धारण करने वाले राजा दशरथ ने धीरज धर कर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी साँस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे बच निकलना कठिन हो गया)।

चौ०-आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई॥

सरल अर्थ—प्रचण्ड क्रोध से जलती हुई कैकेयी सामने इस प्रकार दिखाई पड़ी मानो क्रोध रूपी तलवार नंगी (म्यान से बाहर) खड़ी हो। कुबुद्धि उस तलवार की मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी (मन्थरा) रूपी सान पर धर कर तेज की हुई है।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सविनय तासु सोहाती॥

सरल अर्थ—राजा ने देखा कि यह (तलवार) बड़ी ही भयानक और कठोर है (और सोचा—) क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी? राजा अपनी छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रता के साथ उसे (कैकेयी को) प्रिय लगने वाली वाणी बोले—

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती।
मोरे भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साँखी॥

सरल अर्थ—हे प्रिये! हे भीरु! विश्वास और प्रेम को नष्ट करके ऐसे बुरी तरह से वचन कैसे कह रही हो। मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखें (अर्थात् एक-से) है। यह मैं शंकर जी की साक्षी देकर सत्य कहता हूँ।

अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता।
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देऊँ भरत कहुँ राजु बजाई॥

सरल अर्थ - मैं अवश्य सबेरे ही दूत भेजूंगा। दोनों भाई (भरत शत्रुघ्न) सुनते ही तुरन्त आ जाएँगे। अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधवा कर सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरत को राज्य दे दूँगा।

दोहा—लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति॥३१॥

सरल अर्थ—राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा प्रेम है। मैं ही अपने मन में बड़े-छोटे का विचार कर राजनीति का पालन कर रहा था (बड़े को राजतिलक देने जा रहा था)।

चौ०-राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ।
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछें। तेहितें परेउ मनोरथु छूछें।

सरल अर्थ—राम की सौ बार सौगंध खाकर मैं स्वभाव से ही कहता हूँ कि राम की माता (कौसल्या) ने (इस विषय में) मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया। इसी से मेरा मनोरथ खाली गया।

रिस परिहरु अब मङ्गल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस मागा॥

सरल अर्थ—अब क्रोध छोड़ दे और मंगल साज सज। कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जाएँगे। एक ही बात का मुझे दुख लगा कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अड़चन का माँगा।

अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥

सरल अर्थ—उसकी आँच से अब भी मेरा हृदय जल रहा है। यह दिल्लगी

में, क्रोध में अथवा सचमुच ही (वास्तव में) सच्चा है ? क्रोध को त्यागकर राम का अपराध तो बता। सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥

सरल अर्थ—तू स्वयं भी राम की सराहना करती और उन पर स्नेह किया करती थी। अब यह सुनकर मुझे सन्देह हो गया है (कि तुम्हारी प्रशंसा और स्नेह कहीं झूठे तो न थे) जिसका स्वभाव शत्रु को भी अनुकूल है, वह माता के प्रतिकूल आचरण क्यों करेगा ?

दोहा—प्रिया हास रिसि परिहरि मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ॥२८॥

सरल अर्थ—हे प्रिये ! हंसी और क्रोध छोड़ दे और विवेक (उचित-अनुचित) विचार कर वर मांग, जिससे अब मैं नेत्र भर कर भरत का राज्याभिषेक देख सकूं।

चौ०-जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना।
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाही ॥

सरल अर्थ—मछली चाहे बिना पानी के जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणि के दीन दुखी होकर जीता रहे। परन्तु मैं स्वभाव से ही कह सकता हूँ, मन में (जरा भी) छल रखकर नहीं, कि मेरा जीवन राम के बिना नहीं है।

समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु रामदरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥

सरल अर्थ—हे चतुर प्रिये ! जी मे समझ देख, मेरा जीवन श्रीराम के दर्शन के अधीन है। राजा के कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यन्त जल रही हैं मानो अग्नि मे घी की आहुतियां पड़ रही हैं।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउर माया।
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाही ॥

सरल अर्थ—(कैकेयी कहती है—) आप करोड़ो उपाय क्यो न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नही लगेगी। या तो मैंने जो मांगा है सो दीजिए, नही तो 'नाही' करके अपयश लीजिए। मुझे बहुत प्रपच (बखेड़े) नहीं सुहाते।

राम साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने।
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥

सरल अर्थ--राम साधु हैं, आप सयाने साधु हैं और राम की माता भी भली हैं, मैंने सबको पहचान लिया है। कौसल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है, मैं भी साका करके (याद रखने वाले) उन्हें वैसा ही फल दूंगी।

दो०—होत प्रातु मुनिवेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं ॥२९॥

सरल अर्थ—सवेरा होते ही मुनि का वेष धारण कर यदि राम वन को नहीं जाते, तो हे राजन् ! मन में (निश्चय) समझ लीजिए कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश !

चौ०-अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी।
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥

सरल अर्थ—ऐसा कह कर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई मानो क्रोध की नदी उमड़ी हो। वह नदी पाप रूपी पहाड़ से प्रकट हुई है और क्रोध रूपी जल से भरी है, (ऐसी भयानक है कि) देखी नहीं जाती।

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥

सरल अर्थ—दोनों वरदान उस नदी के दो किनारे हैं, कैकेयी का कठिन हठ ही उसकी (तीव्र) धारा है और कुबरी (मन्थरा) के वचनों की प्रेरणा ही भँवर है। (वह क्रोध रूपी नदी) राजा दशरथ रूपी वृक्ष को जड़मूल से ढहाती हुई विपत्ति रूपी समुद्र की ओर (सीधी) चली है।

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची।
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥

सरल अर्थ—राजा ने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तव में) सच्ची है, स्त्री के बहाने मेरी मृत्यु ही सिर पर नाच रही है (तदनन्तर राजा ने कैकेयी के) चरण पकड़ कर उसे बिठाकर विनती की कि तू सूर्य कुल (रूपी वृक्ष) के लिए कुल्हाड़ी मत बन।

मागु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरहँ जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ॥

सरल अर्थ—तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँ। पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी प्रकार से हो, तू राम को रख ले। नहीं तो जन्म भर तेरी छाती जलेगी।

दोहा—देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ ॥३०॥

सरल अर्थ—राजा ने देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्त वाणी से 'हा राम ! हा राम ! हा रघुनाथ !' कहते हुए सिर पीटकर जमीन पर गिर पड़े।

चौ०-ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता।
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी ॥

सरल अर्थ—राजा व्याकुल हो गए, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया मानों हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ फेका हो। कण्ठ सूख गया, मुख से बात नही निकलती मानो पानी के बिना पहिना नामक मछली तड़प रही हो।

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई।
जौं अन्तहुँ अस करतब रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥

सरल अर्थ—कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानो घाव मे जहर भर रही हो। (कहती है) जो अन्त मे ऐसा ही करना था तो आपने 'माँग, माँग' किस बल पर कहा था ?

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥

सरल अर्थ—हे राजा! ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना, क्या ये दोनो एक साथ हो सकते है? दानी भी कहाना और कजूसी भी करना? क्या राजपूती मे क्षेम-कुशल भी रह सकती है? लड़ाई मे बहादुरी भी दिखावें और कही चोट भी न लगे।) ॥

छाड़हु बचनु कि धीरज धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी॥

सरल अर्थ—या तो वचन (प्रतिज्ञा) ही छोड़ दीजिए या धैर्य धारण कीजिए। यो असहाय स्त्री की भाँति रोइये-पीटिये नही। सत्यव्रती के लिए तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन, और पृथ्वी सब तिनके के बराबर कहे गए हैं।

दोहा—मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोष न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥३१॥

सरल अर्थ—कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर राजा ने कहा कि तू जो चाहे कह, तेरा कुछ भी दोष नही है, मेरा काल तुझे मानो पिशाच होकर लग गया है, वही तुझसे यह सब कहला रहा है।

दोहा—परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु॥
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥३२॥

सरल अर्थ—राजा करोड़ो प्रकार से (बहुत तरह से) समझाकर (और यह कहकर) कि तू क्यो सर्वनाश कर रही है, पृथ्वी पर गिर पड़े। पर कपट करने मे चतुर कैकेयी कुछ बोलती नहीं मानो (मौन होकर) मसान जगा रही हो (श्मशान मे बैठ कर प्रेत मन्त्र सिद्ध कर रही हो)।

चौ०-राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई॥

सरल अर्थ—राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं जैसे कोई पक्षी

पंख के बिना बेहाल हो। वे अपने हृदय में मनाते हैं कि सबेरा न हो और कोई आकर श्रीरामचन्द्र जी से यह बात न कहे।

उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहिं उर॥
भूप प्रीति कैकेइ कठनाइ। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥

सरल अर्थ—हे रघुकुल के गुरु (बड़ेरे, मूल पुरुष) सूर्य भगवान्! आप अपना उदय न करें। अयोध्या को (बेहाल) देखकर आपके हृदय में बड़ी पीड़ा होगी। राजा की प्रीति और कैकेयी की निष्ठुरता दोनों को ब्रह्मा ने सीमा तक रचकर बनाया है। (अर्थात् राजा प्रेम की सीमा है और कैकेयी निष्ठुरता की)।

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक॥

सरल अर्थ—विलाप करते-करते ही राजा को सबेरा हो गया। राजद्वार पर वीणा, बाँसुरी, और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ रहे है और गवैये गुणों का गानकर रहे है। सुनने पर राजा को वे बाण जैसे लगते है।

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥

सरल अर्थ—राजा को ये सब मंगल-साज कैसे नहीं सुहा रहे हैं जैसे पति के साथ सती होने वाली स्त्री को आभूषण। श्री रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण उस रात्रि में किसी को भी नींद नहीं आयी।

दोहा—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि॥
जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि॥३३॥

सरल अर्थ—राजद्वार पर मन्त्रियों और सेवकों की भीड़ लगी है। वे सब सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते है कि ऐसा कौन-सा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथ जी अभी तक नहीं जागे।

चौ०-पछिले पहर भूप नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमन्त्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई॥

सरल अर्थ—राजा नित्य ही रात के पिछले पहर जाग जाया करते हैं, किन्तु आज हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमन्त्र! जाओ, जाकर राजा को जगाओ। उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें।

गये सुमन्त्र तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा॥

सरल अर्थ—तब सुमन्त्र रावले (राजमहल) में गये। पर महल को भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे है। (ऐसा लगता है) मानों दौड़कर काट खायगा, उसकी ओर देखा भी नहीं जाता, मानो विपत्ति और विषाद ने वहाँ डेरा डाल रखा हो।

पूछें कोउ न ऊतरु देई । गये जेहिं भवन भूप कैकेई ॥
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई । देखि भूप गति गयउ सुखाइ ॥

सरल अर्थ—पूछने पर कोई जवाब नही देता, वे उस महल मे गये जहाँ राजा और कैकेयी थे । 'जय-जीव' कहकर, सिर नवाकर (वन्दना करके) बैठे और राजा की दशा देखकर तो वे सूख ही गये ।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ । मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी । बोली असुभ भरी सुभ छूछी ॥

सरल अर्थ—(देखा कि—) राजा सोच से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उड़ गया है, जमीन पर ऐसे पड़े हैं मानो कमल जड़ छोड़कर (जड़ से उखड़कर) (मुर्झाया) पड़ा हो । मन्त्री मारे डर के कुछ पूछ नही सकते, तब अशुभ से भरी हुई और शुभ से विहीन कैकेयी बोली---

दोहा---परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु ॥
राम राम रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ॥३८॥

सरल अर्थ---राजा को रात भर नीद नही आई, इसका कारण जगदीश्वर ही जानें । इन्होने 'राम-राम' रटकर सवेरा कर दिया, परन्तु इसका भेद राजा कुछ भी नही बतलाते ।

चौ०-आनहु रामहि बेगि बोलाई । समाचार तब पूँछेहु आई ॥
चलेउ सुमन्त्रु राय रुख जानी । लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥

सरल अर्थ---तुम जल्दी राम को बुला लाओ । तब आकर समाचार पूछना । राजा का रुख जानकर सुमन्त्र जी चले, समझ गये कि रानी ने कुछ कुचाल की है ।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ । रामहि बोलि कहिहि का राऊ ।
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें । पूँछहिं सकल देखि मनु मारें ॥

सरल अर्थ—सुमन्त्र सोच से व्याकुल हैं, रास्ते पर पैर नही पड़ता (आगे बढा नहीं जाता) । (सोचते हैं---) रामजी को बुलाकर राजा क्या कहेंगे ? किसी तरह हृदय में धीरज धर कर वे द्वार पर गये । सब लोग उनको मन मारे (उदास) देखकर पूछने लगे ।

समाधानु करि सो सबही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमन्त्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ।

सरल अर्थ—सब लोगो का समाधान करके (किसी तरह समझा-बुझाकर) सुमन्त्र वहाँ गए जहाँ सूर्यकुल के तिलक श्री रामचन्द्र जी थे । श्री रामचन्द्र जी ने सुमन्त्र को आते देखा, तो पिता के समान समझकर उनका आदर किया ।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई । रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव संग जाहीं । देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥

श्री रामचन्द्र जी के मुख को देखकर और राजा की आज्ञा सुनाकर वे रघुकुल के दीपक श्री रामचन्द्र जी को (अपने साथ) लिवा चले। श्रीरामचन्द्र जी मन्त्री के साथ बुरी तरह से (बिना किसी लवाजमेके) जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ-तहाँ विषाद कर रहे हैं।

दोहा—जाइ दीख रघुबंस मनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३५॥

सरल अर्थ—रघुवंशमणि श्री रामचन्द्र जी ने जाकर देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालत में पड़े हैं, मानो सिंहनी को देखकर कोई बुड्ढा गजराज सहमकर गिर पड़ा हो।

चौ०-सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई ॥

सरल अर्थ—राजा के ओंठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है, मानो मणि के बिना साँप दुःखी हो रहा हो। पास ही क्रोध से भरी कैकेयी को देखा, मानो (साक्षात्) मृत्यु ही बैठी (राजा के जीवन की अंतिम) घड़ियाँ गिन रही हो।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी का स्वभाव कोमल और करुणामय है। उन्होंने (अपने जीवन में) पहली बार यह दुःख देखा, इससे पहले कभी उन्होंने दुःख सुना भी न था। तो भी समय का विचार करके, हृदय में धीरज धरकर उन्होंने मीठे वचनों से माता कैकेयी से पूछा।

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥

सरल अर्थ—हे माता! मुझे पिताजी के दुःख का कारण कहो, ताकि जिससे उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाय। (कैकेयी ने कहा—) हे राम! सुनो, सारा कारण यही है कि राजा का तुम पर बहुत स्नेह है।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना।
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू ॥

सरल अर्थ—इन्होंने मुझे दो वरदान देने को कहा था। मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंने माँगा। उसे सुनकर राजा के हृदय में सोच हो गया, क्योंकि ये तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते।

दोहा—सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥३६॥

सरल अर्थ—इधर तो पुत्र का स्नेह है और उधर (वचन) प्रतिज्ञा, राजा इसी धर्म संकट में पड़ गये हैं। यदि तुम कर सकते हो, तो राजा की आज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेश को मिटाओ।

चौ०-निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ।।
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ।।

सरल अर्थ—कैकेयी बेधड़क बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है, जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जीभ धनुष है, वचन बहुत से तीर हैं, और मानो राजा ही कोमल निशाने के समान हैं।

जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुष बिद्या बर बीरू ।।
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ।।

सरल अर्थ—(इस सारे साज-सामान के साथ) मानो स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण करके धनुष विद्या सीख रहा है। श्रीरघुनाथ जी को सब हाल सुनाकर वह ऐसे बैठी है मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हो।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू ।।
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ।।

सरल अर्थ—सूर्यकुल के सूर्य, स्वाभाविक ही आनन्द निधान श्री रामचन्द्र जी मन मे मुसकराकर सब दूषणो से रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोले जो मानो वाणी के भूषण ही थे।

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितुमातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।

सरल अर्थ—हे माता ! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है जो पिता-माता के वचनो का अनुरागी (पालन करने वाला) है। (आज्ञा पालन के द्वारा) माता-पिता को सन्तुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी ! सारे संसार मे दुर्लभ है।

दोहा—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ।।३७।।

सरल अर्थ—वन मे विशेष रूप से मुनियो का मिलाप होगा, जिसमे मेरा सभी प्रकार से कल्याण है। उसमे भी, फिर पिता जी की आज्ञा और हे जननी ! तुम्हारी सम्मति है।

चौ०-भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ।।

सरल अर्थ—और प्राण प्रिय भरत राज्य पावेंगे। (इन सभी बातो को देख कर यह प्रतीत होता है कि) आज विधाता सब प्रकार से मुझे सम्मुख हैं (मेरे अनुकूल हैं)। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज मे सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिए।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ।।
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मनमाहीं ।।

सरल अर्थ—जो कल्पवृक्ष को छोड़कर रेंड की सेवा करते हैं और अमृत त्याग कर विष माँग लेते हैं, हे माता! तुम मन में विचार देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे।

अँब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहिं बात पितहिं दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

सरल अर्थ—हे माता! मुझे एक ही दुःख विशेष रूप से हो रहा है, वह महाराज को अत्यन्त व्याकुल देख कर। इस थोड़ी-सी बात के लिए ही पिता जी को इतना भारी दुख हो, हे माता! मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता।

राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

सरल अर्थ—क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणों के अथाह समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगन्ध है, माता! तुम सच-सच कहो।

दोहा—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान॥३८॥

सरल अर्थ—रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी के स्वभाव से ही सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है, जैसे यद्यपि जल समान ही होता है, परन्तु जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है।

चौ०-रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥

सरल अर्थ—रानी कैकेयी श्रीरामचन्द्र जी का रुख पाकर हर्षित हो गई और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली—तुम्हारी शपथ और भरत की सौगन्ध है, मुझे राजा के दुख का दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है।

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥

सरल अर्थ—हे तात! तुम अपराध के योग्य नहीं हो, (तुमसे माता-पिता का अपराध बन पड़े, यह सम्भव नहीं)। तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो। हे राम! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। तुम माता-पिता के वचनों (के पालन) में तत्पर हो।

पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥

सरल अर्थ—मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, तुम पिता को समझाकर वही बात कहो जिससे चौथेपन (बुढ़ापे) में इनका अपयश न हो। जिस पुण्य ने इनको तुम जैसे पुत्र दिये है उसका निरादर करना उचित नहीं।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगहँ गयादिक तीरथ जैसे ।।
रामहि मातु बचन सब भाए । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ।।

सरल अर्थ—कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देश में गया आदिक तीर्थ। श्री रामचन्द्र जी को माता कैकेयी के सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गंगा जी में जाकर (अच्छे-बुरे सभी प्रकार के) जल शुभ, सुन्दर हो जाते हैं।

दोहा—गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह ।।
सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह ।।३९।।

सरल अर्थ—इतने में राजा की मूर्छा दूर हुई, उन्होंने राम का स्मरण करके ('राम ! राम !' कहकर) फिरकर करवट ली। मन्त्री ने श्री रामचन्द्र जी का आना कहकर समयानुकूल विनती की।

चौ०-अवनिप अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उघारे ।।
सचिवँ सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ।।

सरल अर्थ—जब राजा ने सुना कि श्री रामचन्द्र पधारे हैं तो उन्होंने धीरज धर के नेत्र खोले। मन्त्री ने सँभालकर राजा को बैठाया। राजा ने श्रीरामचन्द्र जी को अपने चरणों में पड़ते (प्रणाम करते) देखा।

लिए सनेह बिकल उर लाई । गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ।।
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू । चला बिलोचन बारि प्रबाहू ।।

सरल अर्थ—स्नेह से विकल राजा ने रामजी को हृदय से लगा लिया। मानो साँप ने अपनी खोई हुई मणि फिर से पा ली हो। राजा दशरथ जी श्रीरामजी को देखते ही रह गये। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।

सोक बिबस कछु कहै न पारा । हृदयँ लगावत बारहिं बारा ।।
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं ।।

सरल अर्थ—शोक के विशेष वश होने के कारण राजा कुछ कह नहीं सकते। वे बार-बार श्री रामचन्द्र जी को हृदय से लगाते हैं और मन में ब्रह्मा जी को मनाते हैं कि जिससे रघुनाथ जी वन को न जायें।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ।।

सरल अर्थ—फिर महादेव जी का स्मरण करके उनसे निहोरा करते हुए कहते हैं—हे सदाशिव ! आप मेरी विनती सुनिये। आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) और अवढरदानी (मुँह माँगा दे डालने वाले) हैं। अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःख को दूर कीजिए।

दोहा—तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ सो मति रामहि देहु ।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सील सनेहु ।।४०।।

सरल अर्थ—आप प्रेरक रूप से सबके हृदय में हैं। आप श्री रामचन्द्र जी को ऐसी बुद्धि दीजिए जिससे वे मेरे वचन को त्याग कर और शील-स्नेह को छोड़कर घर में ही रह जायें।

चौ०-अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ।
सब दुख दुसह सहावहि मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही॥

सरल अर्थ—जगत् में चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाय चाहे (नया पाप होने से) मैं नरक में गिरूँ, अथवा स्वर्ग चला जाय (पूर्व पुण्यों के फल-स्वरूप मिलने वाला स्वर्ग चाहे मुझे न मिले)। और भी सब प्रकार के दुःसह दुःख आप मुझसे सहन करा लें, पर श्रीरामचन्द्रजी मेरी आँखों की ओट न हों।

असमन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥

सरल अर्थ—राजा मन-ही-मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह डोल रहा है। श्री रघुनाथ जी ने पिता को प्रेम के वश जानकर और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी (तो पिता जी को दुःख होगा)।

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥

सरल अर्थ—देश, काल और अवसर के अनुकूल विचार कर विनीत वचन कहे—हे तात ! मैं कुछ कहता हूँ, यह ढिठाई करता हूँ। इस अनौचित्य को मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमा कीजिएगा।

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥

सरल अर्थ—इस अत्यन्त तुच्छ बात के लिए आपने इतना दुःख पाया। मुझे किसी ने पहले कहकर यह बात नहीं जनाई। स्वामी (आप) को इस दशा में देखकर मैंने माता से पूछा। उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अंग शीतल हो गये। (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई)।

दोहा—मङ्गल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥४१॥

सरल अर्थ—हे पिता जी ! इस मंगल के समय स्नेहवश होकर सोच करना छोड़ दीजिए और हृदय में प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहते हुए प्रभु श्री रामचन्द्र जी सर्वांग पुलकित हो गये।

चौ०-आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी॥

सरल अर्थ --(उन्होने फिर कहा) इस पृथ्वीतल पर उसका जन्म धन्य है जिसके चरित्र सुनकर पिता को परम आनन्द हो। जिसको माता-पिता प्राणो के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुट्ठी मे) रहते हैं।

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

सरल अर्थ---ऐसा कहकर तब श्री रामचन्द्र जी वहाँ से चल दिये। राजा ने शोक वश कोई उत्तर नही दिया। वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगर भर मे इतनी जल्दी फैल गई मानो डंक मारते ही बिच्छू का विष सारे शरीर मे चढ गया हो।

सुनि भये बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥

सरल अर्थ—इस बात को सुनकर सब स्त्री पुरुष ऐसे व्याकुल हो गये जैसे दावानल (वन मे आग लगी) देख कर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं। जो जहाँ सुनता है वह वही सिर धुनने (पीटने) लगता है। बडा विषाद है, किसी को धीरज नही बंधता।

दोहा—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥४२॥

सरल अर्थ—सबके मुख सूखे जाते हैं, आँखो से आँसू बहते हैं, शोक हृदय मे नही समाता। मानो करुण रस की सेना अवध पर डका बजाकर उतर आई हो।

चौ०-मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी।
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥

सरल अर्थ—सब मेल मिल गये थे (सब सयोग ठीक हो गये थे), इतने मे ही विधाता ने बात बिगाड़ दी। जहाँ-तहाँ लोग कैकेयी को गाली दे रहे हैं। इस पापिन को क्या सूझ पडा, जो इसने छाये घर मे आग रख दी।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥

सरल अर्थ—यह अपने हाथ से अपनी आँखो को निकाल कर (आँखों के बिना ही) देखना चाहती है और अमृत फेंककर विष चखना चाहती है। यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंश रूपी बाँस के वन के लिए अग्नि हो गई।

पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा।
सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥

सरल अर्थ—पत्ते पर बैठकर इसने पेड़ को काट डाला। सुख में शोक का ठाट ठटकर रख दिया। श्री रामचन्द्र जी इसे सदा प्राणों के समान प्रिय थे। फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता ठानी।

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिम्बु बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई।।

सरल अर्थ—कवि सत्य ही कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य, अथाह और भेद भरा होता है। अपनी परछाहीं भले ही पकड़ी जाय, पर भाई ! स्त्रियों की गति (चाल) नहीं जानी जाती।

दोहा—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ।।४३।।

सरल अर्थ—आग क्या नहीं जला सकती। समुद्र में क्या नहीं समा सकता। अबला कहाने वाली प्रबल स्त्री (जाति) क्या नहीं कर सकती। और जगत् में काल किसको नहीं खाता !

चौ०-एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं।
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ।।

सरल अर्थ—कोई एक विधाता को दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। नगर भर में खलबली मच गई, सब किसी को सोच हो गया। हृदय में दुःसह जलन हो गई, आनन्द-उत्साह मिट गया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी।।
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताही।।

सरल अर्थ—ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयी की परम प्रिय थीं; वे उसके शील की सराहना करके उसे सीख देने लगीं। पर उसको उनके वचन बाण के समान लगते हैं।

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना।
करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बनु देहू।।

सरल अर्थ—(वे कहती है—) तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्री रामचन्द्र जी के समान मुझको भरत भी प्यारे नहीं हैं, इस बात को सारा जगत् जानता है। श्रीरामचन्द्र जी पर तो तुम स्वाभाविक ही स्नेह करती रही हो। आज किस अपराध से उन्हें वन देती हो ?

कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू।।
कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा।।

सरल अर्थ—तुमने कभी सौतिया डाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है। अब कौसल्या ने तुम्हारा कौन-सा बिगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगर पर व्रज गिरा दिया।

दोहा—सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु की भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम ॥४४॥

सरल अर्थ—क्या सीता जी अपने पति (श्री रामचन्द्र जी) का साथ छोड देंगी ? क्या लक्ष्मण जी श्री रामचन्द्र जी के बिना घर रह सकेंगे ? क्या भरत जी श्री रामचन्द्र जी के बिना अयोध्यापुरी का राज्य भोग सकेंगे ? और क्या राजा श्री रामचन्द्र जी के बिना जीवित रह सकेंगे ? (अर्थात् न सीता जी यहाँ रहेगी, न लक्ष्मण जी रहेंगे, न भरत जी राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे, सब उजाड हो जाएगा) ।

चौ०-अस बिचारि उर छाड़हु कोहू । सोक कलंक कोठि जनि होहू ॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू । कानन काह राम कर काजू ॥

सरल अर्थ—हृदय मे ऐसा विचार कर क्रोध छोड दो, शोक और कलंक की कोठी मत बनो । भरत को अवश्य युवराज पद दो, पर श्री रामचन्द्र जी का वन मे क्या काम है ?

नाहिन रामु राज के भूखे । धरम धुरीन बिषय रस रूखे ॥
गुर गृह बसहुँ रामु तजि गेहू । नृप सन अस बरु दूसर लेहू ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी राज्य के भूखे नही हैं । वे धर्म की धुरी को धारण करने वाले और विषय रस से रूखे हैं (अर्थात् उनमें विषयासक्ति है हो नहीं) । (इसलिए तुम यह शंका न करो कि श्री राम जी वन न गये तो भरत के राज्य मे विघ्न करेंगे, इतने पर भी मन न माने तो) तुम राजा से दूसरा ऐसा (यह) वर ले लो कि श्रीराम घर छोडकर गुरु के घर रहें ।

जौं नहिं लगिहहु कहे हमारे । नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥

सरल अर्थ—जो तुम हमारे कहने पर न चलोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा । यदि तुमने कुछ हँसी की हो तो उसे प्रकट मे कहकर जना दो (कि मैंने दिल्लगी की है) ।

राम सरिस सुत कानन जोगू । काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू ॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई । जेहि बिधि सोकु कलंक नसाई ॥

सरल अर्थ—राम-सरीखा पुत्र क्या वन के योग्य है ? यह सुनकर लोग तुम्हे क्या कहेंगे । जल्दी उठो और वही उपाय करो जिस उपाय से इस शोक और कलंक का नाश हो ।

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित ।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥४५॥

सरल अर्थ—इस प्रकार सखियो ने ऐसी सीख दी जो सुनने मे मीठी और परिणाम मे हितकारी थी । पर कुटिला कुबरी की सिखायी-पढायी हुई कैकेयी ने इस पर जरा भी कान नही दिया ।

चौ०-उतरु न देइ दुसह रिस रूखी । मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ॥
व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी । चलीं कहत मति मन्द अभागी ॥

सरल अर्थ—कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोध के मारे रूखी (बे-मुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाघिन हरिनियों को देख रही हो। तब सखियों ने रोग को असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मन्द-बुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं।

राजु करत यह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई ॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालहि कोटिक गारी ॥

सरल अर्थ—राज्य करते हुए इस कैकेयी को दैव ने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा। नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयी को करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं।

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी ॥

सरल अर्थ—लोग विषम ज्वर (भयानक दुख की आग) से जल रहे हैं। लम्बी साँसें लेते हुए वे कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी के बिना जीने की कौन आशा है। महान् वियोग (की आशंका) से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गई है मानो पानी सूखने के समय जलचर जीवों का समुदाय व्याकुल हो।

अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गये मातु पहिं रामु गोसाईं ॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ ॥

सरल अर्थ—सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यन्त विषाद के वश हो रहे हैं। स्वामी रामचन्द्र जी माता कौसल्या के पास गये। उनका मुख प्रसन्न है और चित्त में चौगुना चाव (उत्साह) है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। (श्री रामचन्द्र जी को राजतिलक की बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयों को छोड़कर बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है। अब माता कैकेयी की आज्ञा और पिता की मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया)।

दोहा—नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनन्दु अधिकान ॥५१॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी का मन नये पकड़े हुए हाथी के समान और राजतिलक उस हाथी के बाँधने की काँटेदार लोहे की बेड़ी के समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर अपने को बंधन से छूटा जानकर उनके हृदय में आनन्द बढ़ गया है।

चौ०-रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा ॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥

सरल अर्थ—रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र जी दोनों हाथ जोड़कर आनन्द के

साथ माता के चरणों में सिर नवाया। माता ने आशीर्वाद दिया, अपने हृदय से लगा लिया और उन पर गहने तथा कपड़े न्यौछावर किए।

बार बार मुख चुम्बति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥

सरल अर्थ—माता बार-बार श्री रामचन्द्र जी का मुख चूम रही हैं। नेत्रों में प्रेम का रस भर आया है और सब अंग पुलकित हो गए हैं। श्री राम जी को अपनी गोद में बैठा कर फिर हृदय से लगा लिया। सुन्दर स्तन प्रेम रस (दूध) बहाने लगे।

प्रेम प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदवी जनु पाई।
सादर सुन्दर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥

सरल अर्थ—उनका प्रेम और महान् आनन्द कुछ कहा नहीं जाता। मानो कंगाल ने कुबेर का पद पा लिया हो। बड़े आदर के साथ सुन्दर मुख देखकर माता मधुर वचन बोली।

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मङ्गलकारी॥
सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥

सरल अर्थ—हे तात! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनन्द-मंगलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुख की सुन्दर सीमा है और जन्म लेने के लाभ की पूर्णतम अवधि है,

दोहा—जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित वृष्टि सरद रितु स्वाति॥४७॥

सरल अर्थ—तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त व्याकुलता से इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यास से चातक और चातकी शरद-ऋतु के स्वाति नक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं।

चौ०-तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जाएहु भैआ। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥

सरल अर्थ—हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो। भैया! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गई है, माता बलिहारी जाती है।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥

सरल अर्थ—माता के अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर—जो मानो स्नेह रूपी कल्पवृक्ष के फूल थे, जो सुखरूपी मकरन्द (पुष्प रस) से भरे थे और श्री (राजलक्ष्मी) के मूल थे ऐसे वचनरूपी फूलों को देखकर श्री राम जी का मन रूपी भौंरा उन पर नहीं भूला।

धरम धुरीन धरम गति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥

सरल अर्थ—धर्म धुरीण श्री रामचन्द्र जी ने धर्म की गति को जानकर माता से अत्यन्त कोमल वाणी से कहा—हे माता ! पिता जी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला है।

आयसु देहि मुदित मन माता । जेहिं मुद मङ्गल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें । आनन्दु अंब अनुग्रह तोरें ॥

सरल अर्थ—हे माता ! तू प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दे, जिससे मेरी वन-यात्रा में आनन्द-मंगल हो। मेरे स्नेह वश भूलकर भी डरना नहीं। हे माता ! तेरी कृपा से आनन्द ही होगा।

दोहा—बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान ॥४८॥

सरल अर्थ—चौदह वर्ष वन में रहकर, पिता जी के वचनों को प्रमाणित (सत्य) कर फिर लौटकर तेरे चरणों का दर्शन करूँगा, तू मन को म्लान (दुखी) न कर।

चौ०-बचन बिनीत मधुर रघुबर के । सर सम लगे मातु उर करके ॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी । जिमि जवास परें पावस पानी ॥

सरल अर्थ—रघुकुल में श्रेष्ठ श्री राम जी के बहुत ही नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे और कसकने लगे। उस शीतल वाणी को सुन कर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गई जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है।

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥
नयन सजल तन थर थर काँपी । माजहि खाइ मीन जनु मापी ॥

सरल अर्थ—हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गई हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा। मानो मछली माँजा (पहली वर्षा का फेन) खाकर बदहवास हो गई हो।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी । गदगद बचन कहत महतारी ॥
तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥

सरल अर्थ—धीरज धरकर, पुत्र का मुख देखकर माता गद्गद वचन कहने लगीं—हे तात ! तुम तो पिता को प्राणों के समान प्रिय हो। तुम्हारे चरित्रों को देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे।

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा । कहेउ जान बन केहिं अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू । को दिनकर कुल भयउ कृसानू ॥

सरल अर्थ—राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन सोधवाया था। फिर अब किस अपराध से वन जाने को कहा, हे तात ! मुझे इसका कारण सुनाओ। सूर्य वंश (रूपी वन) को जलाने के लिए अग्नि कौन हो गया ?

दोहा—निरखि राम रुख सचिवसुत कारन कहेउ बुझाइ ॥
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ ॥४६॥

सरल अर्थ—तब श्री रामचन्द्र जी का रुख देखकर मंत्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूँगी—जैसी (चुप) रह गईं, उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

चौ०-राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू ॥

सरल अर्थ—न रख ही सकती हैं, न यह कह सकती हैं कि वन चले जाओ। दोनों ही प्रकार से हृदय में बड़ा भारी संताप हो रहा है। (मन में सोचती हैं कि देखो—) विधाता की चाल सदा सबके लिए टेढ़ी होती है। लिखने लगे चन्द्रमा और लिख गया राहु।

धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप छछुन्दरि केरी ॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बन्धु बिरोधू ॥

सरल अर्थ—धर्म और स्नेह दोनों ने कौसल्या जी की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा साँप व छछून्दर की सी हो गई। वे सोचने लगी कि यदि मैं अनुरोध (हठ) करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है।

कहउँ जानि बन तौ बड़ हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥

सरल अर्थ—यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है। इस प्रकार के धर्म संकट में पड़कर रानी विशेष रूप से सोच के वश हो गई। फिर बुद्धिमती कौसल्या जी स्त्री-धर्म (पातिव्रत धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर—

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका ॥

सरल अर्थ—सरल स्वभाव वाली श्री रामचन्द्र जी की माता बड़ा धीरज धर कर वचन बोली—हे तात ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है।

दोहा—राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचण्ड कलेसु ॥५०॥

सरल अर्थ—राज्य देने को कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुख

नहीं है ।(दुख तो इस बात का है कि) तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा।

चौ०-जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥

सरल अर्थ—हे तात! यदि केवल पिता जी की ही आज्ञा हो, तो माता को (पिता जी से) बड़ी जानकर वन को मत जाओ। किन्तु यदि माता-पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है।

पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेवी ॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू ॥

सरल अर्थ—वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और वन देवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे चरण कमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अन्त में तो वनवास करना उचित ही है। केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर हृदय में दुख होता है।

बड़भागी बनु अवध अभागी । जो रघुबंश तिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू ॥

सरल अर्थ—हे रघुवंश के तिलक! वन बड़ा भाग्यवान् है और यह अवध अभागी है जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में सन्देह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं।)

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के । प्रान प्रान के जीवन जी के ।
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥

सरल अर्थ—हे पुत्र! तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो। वही (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता! मैं वन को जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ।

दोहा—यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५१॥

सरल अर्थ—यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना।

चौ०-देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं । राखहु पलक नयन की नाईं ॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना ॥

सरल अर्थ—हे गोसाईं! सब देव और पितर तुम्हारी वैसे ही रक्षा करें जैसे पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवास की अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो।

दोहा—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ॥५२॥

सरल अर्थ—उसी समय यह समाचार सुनकर सीता जी अकुला उठी और सास के पास जाकर उनके दोनो चरण कमलो की वन्दना कर सिर नीचा करके बैठ गई।

चौ०-दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूपरासि पति प्रेम पुनीता ॥

सरल अर्थ—सास ने कोमल वाणी से आशीर्वाद दिया। वे सीता जी को अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठी। रूप की राशि और पति के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीता जी नीचा मुख किए बैठी सोच रही हैं।

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना ॥

सरल अर्थ—जीवन नाथ (प्राणनाथ) वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान् से उनका साथ होगा—शरीर और प्राण दोनो साथ जायेंगे या केवल प्राण ही से इनका साथ होगा? विधाता की करनी कुछ जानी नही जाती।

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी ॥
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं ॥

सरल अर्थ—सीता जी अपने सुन्दर चरणों के नखो से धरती कुरेद रही हैं। ऐसा करते समय नूपुरो का जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेम के वश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि सीता जी के चरण कभी हमारा त्याग न करे।

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी ॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहि पिआरी ॥

सरल अर्थ—सीता जी सुन्दर नेत्रो से जल बहा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर श्री राम जी की माता—कौशल्या जी बोली—हे तात! सुनो, सीता अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी हैं।

दोहा—पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु ॥५३॥

सरल अर्थ—इनके पिता जनक जी राजाओ के शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्य कुल रूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा तथा गुण और रूप के भण्डार हैं।

चौ०-मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई ॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहि लाई ॥

सरल अर्थ—फिर मैंने रूप की राशि, सुन्दर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू पायी है। मैंने इन (जानकी) को आँखों की पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है, और अपने प्राण इनमें लगा रखे हैं।

कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥

सरल अर्थ—इन्हें कल्पलता के समान मैंने बहुत तरह से बड़े लाड़-चाव के साथ स्नेहरूपी जल से सींचकर पाला है। अब इस लता के फूलने-फलने के समय विधाता वाम हो गये। कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा।

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहउँ। दीप बाति नहिं टारन कहउँ॥

सरल अर्थ—सीता ने पर्यंक पृष्ठ (पलँग के ऊपर) गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रक्खा। मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान (सावधानी से) इनकी रखवाली करती रही हूँ। कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चँद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी॥

सरल अर्थ—वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे रघुनाथ! उसे क्या आज्ञा होती है? चन्द्रमा की किरणों का रस (अमृत) चाहने वाली चकोरी सूर्य की ओर आँख किस तरह मिला सकती है।

दोहा—करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जन्तु बन भूरि।
विष वाटिकाँ कि सोह सुनु सुभग सजीवनि मूरि॥५४॥

सरल अर्थ—हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वन में विचरते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विष की वाटिका में सुन्दर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है?

चौ०-बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि विषय सुख भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥

सरल अर्थ—वन के लिए तो ब्रह्मा जी ने विषय सुख को न जानने वाली कोल और भीलों की लड़कियों को रचा है, जिनका पत्थर के कीड़े जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वन में कभी क्लेश नहीं होता।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥

सरल अर्थ—अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिए सब भोग तज दिये हैं। हे पुत्र! जो तस्वीर के बन्दर को देखकर डर जाती है वे सीता वन में किस तरह रह सकेंगी।

सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोगु कि हंस कुमारी।
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥

सरल अर्थ—देव सरोवर के कमलवन मे विचरण करने वाली हंसिनी क्या गड़ैयों (तलैयो) मे रहने के योग्य है ? ऐसा विचार कर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूँ।

जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥

सरल अर्थ—माता कहती हैं—यदि सीता घर मे रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाय। श्रीरामचन्द्र जी ने माता की प्रिय वाणी सुनकर, जो मानों शील और स्नेहरूपी अमृत से सनी हुई थी—

दोहा—कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥५५॥

सरल अर्थ—विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को सन्तुष्ट किया। फिर वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकी जी को समझाने लगे।

चौ०-मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥

सरल अर्थ—माता के सामने सीता जी से कुछ कहने मे सकुचाते हैं, पर मन मे यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले—हे राजकुमारी ! मेरी सिखावन सुनो। मन में कुछ दूसरी तरह न समझ लेना।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥

सरल अर्थ—जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी ! मेरी आज्ञा का पालन होगा, सास की सेवा बन पड़ेगी। घर रहने में सभी प्रकार से भलाई है।

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥

सरल अर्थ—आदर पूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा (सेवा) करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी और प्रेम से व्याकुल होने के कारण उनकी बुद्धि भोली हो जायेगी (वे अपने को भूल जाएँगी)।

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समुझाएहु मृदु बानी॥
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही॥

सरल अर्थ—हे सुन्दरी। तब तुम कोमल वाणी से पुरानी कथाएँ कह-कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि ! मुझे सैकड़ों सौगन्ध है, मैं यह स्वभाव से ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माता के लिए ही घर पर रखता हूँ।

दोहा—गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥५६॥

सरल अर्थ—(मेरी आज्ञा मानकर घर पर रहने से) गुरु और वेद के द्वारा सम्मत धर्म (के आचरण) का फल तुम्हें बिना ही क्लेश के मिल जाता है। किन्तु हठ के वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सबने संकट ही सहे।

चौ०-मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥

सरल अर्थ—हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो, मैं भी पिता के वचन को सत्य करके शीघ्र ही लौटूंगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुन्दरी ! हमारी यह सीख सुनो।

जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम दुखु पाउब परिनामा ॥
काननु कठिन भयंकर भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी ॥

सरल अर्थ—हे वामा। यदि प्रेम वश हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुख पाओगी। वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं।

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पद त्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमि धर भारे ॥

सरल अर्थ—रास्ते में कुश, काँटे और बहुत से कंकड़ हैं। उन पर बिना जूते के पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं और रास्ते में बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं।

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥

सरल अर्थ—पर्वतों की गुफाएँ, खोह (दर्रे), नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िए, सिंह और हाथी ऐसे (भयानक) शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है।

दोहा—भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुई समय अनुकूल ॥५७॥

सरल अर्थ—जमीन पर सोना, पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनना और कन्द, मूल, फल का भोजन करना होगा और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे ? सब कुछ अपने-अपने समय के अनुकूल ही मिल सकेगा।

चौ०-नर अहार रजनी चर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥

सरल अर्थ—मनुष्यों को खाने वाले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकार के कपट रूप धारण कर लेते हैं। पहाड़ का पानी बहुत ही लगता है। वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती।

ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥

सरल अर्थ—वन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों के झुण्ड के झुण्ड रहते हैं। वन की (भयंकरता) याद आने मात्र से धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो।

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥

सरल अर्थ—हे हंसगमनी! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम्हारे वन जाने की बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे)। मानसरोवर के अमृत के समान जल से पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है?

नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चन्द बदनि दुखु कानन भारी॥

सरल अर्थ—नवीन आम के वन में विहार करने वाली कोयल क्या करील के जंगल में शोभा पाती है? हे चन्द्रमुखी! हृदय में ऐसा विचार कर तुम घर ही पर रहो। वन में बड़ा कष्ट है।

दोहा—सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि॥
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥६८॥

सरल अर्थ—स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भर पेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है।

चौ०-सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के।
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंदनिसि जैसे॥

सरल अर्थ—प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीता जी के सुन्दर नेत्र जल से भर गये। श्री राम जी की यह शीतल सीख उनको कैसी जलाने वाली हुई, जैसे चकवी को शरद ऋतु की चाँदनी रात होती है।

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी॥

सरल अर्थ—जानकी जी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रों के जल (आँसुओं) को जबर्दस्ती रोक कर वे पृथ्वी की कन्या सीता जी हृदय में धीरज धरकर,

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हितहोई ॥

सरल अर्थ—सास के पैर लगकर, हाथ जोड़कर कहने लगीं—हे देवि ! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिए। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी है जिससे मेरा परम हित हो।

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥

सरल अर्थ—परन्तु मैंने मन में समझ कर देख लिया कि पति के वियोग के समान जगत् में कोई दुःख नहीं है।

दोहा—प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥६४॥

सरल अर्थ—हे प्राणनाथ ! हे दया के धाम ! हे सुन्दर सुखों के देने वाले ! हे सुजान ! हे रघुकुल रूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा ! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है।

चौ-मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुर भजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥

सरल अर्थ—माता, पिता, बहन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बन्धु-बान्धव), सहायक और सुन्दर, सुशील और सुख देने वाला पुत्र—

जँह लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री के सभी सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य पति के बिना स्त्री के लिए यह शोक का समाज है।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जगमाहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥

सरल अर्थ—भोग रोग के समान है। गहने भार रूप हैं और संसार यम-यातना (नरक की पीड़ा) के समान है। हे प्राणनाथ ! आपके बिना जगत् में कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें ॥

सरल अर्थ—जैसे बिना जीव के देह और जल से नदी वैसे ही हे नाथ ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ ! आपके साथ रहकर आपका शरद (पूर्णिमा) के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे।

दोहा—खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल ॥६०॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे । वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी ।

चौ०-बनदेवीं बनदेव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥
कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥

सरल अर्थ—उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-सँभार करेंगे, और कुशा और पत्तों की सुन्दर साथरी (बिछौना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहर तोशक के समान होगी ।

कंदमूल फल अमिअ अहारू । अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥

सरल अर्थ—कन्द, मूल और फल अमृत के समान आहार होंगे और (वन के) पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे । क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों को देख-देखकर मैं ऐसी आनन्दित रहूँगी जैसी दिन में चकवी रहती है ।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! आपने वन के बहुत से घनेरे दुख और बहुत से भय, विषाद और सन्ताप कहे । परन्तु हे कृपानिधान ! वे सब मिलाकर भी प्रभु (आप) के वियोग (से होने वाले दुख) के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते ।

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अन्तरजामी ॥

सरल अर्थ—ऐसा जी में जानकर, हे सुजान शिरोमणि ! आप मुझे साथ ले लीजिये, यहाँ न छोड़िये । हे स्वामी ! मैं अधिक क्या विनती करूँ । आप करुणामय हैं और सबके हृदय के अन्दर की जानने वाले है ।

दोहा—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान ।
दीनबंधु सुंदर सुखदसील सनेह निधान ॥६१॥

सरल अर्थ—हे दीनबन्धु ! हे सुन्दर ! हे सुख देने वाले ! हे शील और प्रेम के भण्डार ! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्या में रखते हैं तो जान लीजिये कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे ।

चौ०-मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥

सरल अर्थ—क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी। हे प्रियतम ! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलने से होने वाली सारी थकावट को दूर कर दूँगी।

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥

सरल अर्थ—आपके पैर धोकर, पेड़ों की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झूलूँगी)। पसीने की बूंदों सहित श्याम शरीर को देखकर प्राणपति के दर्शन करते हुए दुख के लिए मुझे अवकाश ही कहाँ रहेगा।

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥

सरल अर्थ—समतल भूमि पर घास और पेड़ों के पत्ते बिछाकर यह दासी रात भर आपके चरण दबावेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी।

को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥

सरल अर्थ—प्रभु के साथ (रहते) मेरी ओर (आँख उठाकर) देखने वाला कौन है (अर्थात् कोई नहीं देख सकता) जैसे सिंह की स्त्री (सिंहनी) को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ बन के योग्य हैं न् आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय भोग॥

दोहा—ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥६२॥

सरल अर्थ—ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जब मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु। (मालूम होता है) ये पामर प्राण आपके वियोग का भीषण दुख सहेंगे।

चौ—अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर सीता जी बहुत ही व्याकुल हो गयी। वे वचन के वियोग को भी न सम्हाल सकी। (अर्थात् शरीर से वियोग की बात तो अलग रही वचन से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गयी।) उनकी यह दशा देखकर श्री रघुनाथ जी ने अपने जी में जान लिया कि हठपूर्वक इन्हें यहाँ रखने से ये प्राणों को न रखेंगी।

कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥

सरल अर्थ—तब कृपालु सूर्यकुल के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वन को चलो। आज विषाद करने का अवसर नहीं है। तुरन्त वन-गमन की तैयारी करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई।
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीता जी को समझाया। फिर माता के पैरों लगकर आशीर्वाद प्राप्त किया। (माता ने कहा—) बेटा! जल्दी लौटकर प्रजा के दुख को मिटाना और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाय।

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥

सरल अर्थ—हे विधाता! क्या मेरी दशा भी फिर पलटेगी? क्या अपने नेत्रों से मैं इस मनोहर जोड़ी को फिर देख सकूँगी? हे पुत्र! वह सुन्दर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते जी तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा फिर देखेगी।

दोहा—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात॥
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥६३॥

सरल अर्थ—हे तात! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदय से लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अंगों को देखूँगी।

चौ०-लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भई भारी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥

सरल अर्थ—यह देखकर कि माता स्नेह के मारे अधीर हो गई हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँह से वचन नहीं निकलता, श्रीरामचन्द्र जी ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी।
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥

सरल अर्थ—तब जानकी जी सास के पाँव लगीं और बोलीं—हे माता! सुनिये, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करने के समय दैव ने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया।

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥

सरल अर्थ—आप क्षोभ का त्याग कर दें, परन्तु कृपा न छोड़ियेगा। कर्म

की गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीता जी के वचन सुन कर सास व्याकुल हो गईं। उनकी दशा को मैं किस प्रकार बखान कर कहूँ।

बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्हीं।।
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जलधारा।।

सरल अर्थ—उन्होंने सीता जी को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगा जी और यमुना जी में जल की धारा बहे तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

दोहा—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार।।६४।।

सरल अर्थ—सीता जी को सास ने अनेकों प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दी और वे (सीता जी) बड़े ही प्रेम से बार-बार चरण कमलों में सिर नवाकर चलीं।

चौ०-समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।

सरल अर्थ—जब लक्ष्मण जी ने ये समाचार पाए, तब वे व्याकुल होकर उदास मुँह उठ दौड़े। शरीर काँप रहा है, रोमांच हो रहा है, नेत्र आँसुओं से भरे हैं। प्रेम से अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्रीराम जी के चरण पकड़ लिए।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े।
सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा।।

सरल अर्थ–वे कुछ नहीं कह सकते। खड़े-खड़े देख रहे हैं। (ऐसे दीन हो रहे हैं) मानो जल से निकाले जाने पर मछली दीन हो रही हो। हृदय में यह सोच है कि हे विधाता! क्या होने वाला है? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया?

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा।।
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें।।

सरल अर्थ—मुझको श्री रघुनाथ जी क्या कहेंगे? घर पर रखेंगे या साथ ले चलेंगे? श्री रामचन्द्र जी ने भाई लक्ष्मण को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाता तोड़े हुए खड़े देखा।

बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर।।
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू।।

सरल अर्थ—तब नीति में निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र श्री रामचन्द्र जी वचन बोले—हे तात! परिणाम में होने वाले आनन्द को हृदय में समझकर तुम प्रेमवश अधीर मत होओ।

दोहा—मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ ॥६५॥

सरल अर्थ—जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है, नहीं तो जगत् में जन्म व्यर्थ ही है।

चौ०-अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ वृद्ध मम दुखु मन माहीं ॥

सरल अर्थ—हे भाई! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा दुख है।

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू ॥

सरल अर्थ—इस अवस्था में मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो अयोध्या सब प्रकार से अनाथ हो जायेगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दुख का दुसह भार आ पड़ेगा।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥

सरल अर्थ—अतः तुम यहीं रहो और सबका सन्तोष करते रहो। नहीं तो हे तात्! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये ब्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरसु जैसे ॥

सरल अर्थ—हे तात्! ऐसी नीति विचार कर तुम घर रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मण जी बहुत ही व्याकुल हो गए। इन शीतल वचनों से वे कैसे सूख गए, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है।

दोहा—उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥६६॥

सरल अर्थ—प्रेमवश लक्ष्मण जी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्रीरामचन्द्र जी के चरण पकड़ लिए और कहा—हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं, अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है?

चौ०-दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नरबर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥

सरल अर्थ—हे स्वामी ! आपने मुझे सीख तो अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरता से वह मेरे लिए अगम (पहुँच के बाहर) लगी। शास्त्र और नीति के तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी है जो धीर हैं और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

सरल अर्थ—मैं तो प्रभु (आप) के स्नेह में पला हुआ छोटा बच्चा हूँ। कहीं हंस भी मन्दराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकते हैं ? हे नाथ ! स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसी को भी नहीं जानता।

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अन्तरजामी॥

सरल अर्थ—जगत् में जहाँ तक स्नेह का सम्बन्ध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है—हे स्वामी ! हे दीनबन्धु ! हे सबके हृदय के अन्दर की जानने वाले ! मेरे तो वे सब कुछ आप ही हैं।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

सरल अर्थ—धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिये जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो। किन्तु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिंधु ! क्या वह भी त्यागने के योग्य है ?

दोहा—करुना सिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत॥६७॥

सरल अर्थ—दया के समुद्र श्री रामचन्द्र जी ने भले भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर हृदय से लगाकर समझाया।

चौ०-मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गई बड़ि हानी॥

सरल अर्थ—(और कहा)—हे भाई ! जाकर माता से विदा माँग आओ और फिर जल्दी वन को चलो। रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम जी की वाणी सुनकर लक्ष्मण जी आनन्दित हो गये। बड़ी हानि दूर हो गई और बड़ा लाभ हुआ।

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए।
जाइ जननि पग नायउँ माथा। मनु रघुनन्दन जानकि साथा॥

सरल अर्थ—वे हर्षित हृदय से माता सुमित्रा जी के पास आए, मानो अन्धा फिर से नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया।

किन्तु उनका मन रघुकुल को आनन्द देने वाले श्रीरामजी और जानकी जी के साथ था।

पूंछे मातु मलिन मन देखी। लखन कहीं सब कथा बिसेषी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा॥

सरल अर्थ—माता ने उदास मन देखकर उनसे (कारण) पूछा। लक्ष्मण जी ने सब कथा विस्तार से कह सुनाई। सुमित्रा जी कठोर वचनों को सुनकर ऐसी सहम गईं जैसे हिरणी चारों ओर वन में आग लगी देखकर सहम जाती है।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू॥
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी ने देखा कि आज (अब) अनर्थ हुआ। ये स्नेहवश काम बिगाड़ देंगी। इसलिए वे विदा माँगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं (और मन ही मन सोचते हैं) कि हे विधाता! माता जाने को कहेगी या नहीं।

दोहा—समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥६८॥

सरल अर्थ—सुमित्रा जी ने श्रीराम जी और श्री सीता जी के रूप, सुन्दर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयी ने बुरी तरह घात लगाया।

चौ०-धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥

सरल अर्थ—परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्रा जी कोमल वाणी से बोली—हे तात! जानकी जी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे पिता हैं।

अवध तहाँ जहँ रामनिवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौ पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

सरल अर्थ—जहाँ श्रीराम जी का निवास हो वही अयोध्या है, जहाँ सूर्य का प्रकाश हो—वही दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वन को जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

सरल अर्थ—गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिये। फिर श्री रामचन्द्र जी तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें । सब मानिअहिं राम के नातें ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

सरल अर्थ—जगत् में जहाँ तक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं वे सब राम जी के नाते से ही (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं। हृदय में ऐसा जानकर, हे तात ! उनके साथ वन जाओ और जगत् में जीने का लाभ उठाओ।

दोहा—भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥६६॥

सरल अर्थ—मैं बलिहारी जाती हूँ, हे पुत्र ! मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुये, जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर श्री राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है।

चौ०-पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥

सरल अर्थ—संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्री रघुनाथ जी का भक्त हो। नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है।

तुम्हरेहिं भागु राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। रामसीय पद सहज सनेहू ॥

सरल अर्थ—तुम्हारे ही भाग्य से श्री रामजी वन को जा रहे हैं। हे तात ! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि श्री सीता-राम जी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥

सरल अर्थ—राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्री सीताराम जी की सेवा करना।

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू।
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥

सरल अर्थ—तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्री राम जी और सीता जी रूप पिता-माता है। हे पुत्र ! तुम वही करना जिससे श्री रामचंद्र जी वन में क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है।

सो०—मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस ॥७०॥

सरल अर्थ—माता के चरणों में सिर नवाकर, हृदय मे डरते हुए (कि अब भी कोई विघ्न न आ जाय) लक्ष्मण जी तुरन्त इस तरह चल दिये जैसे सौभाग्यवश कोई हिरण कठिन फँदे को तुड़ाकर भाग निकला हो।

चौ०-गये लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम सिय चरन सुहाये। चले संग नृप मन्दिर आए॥

. सरल अर्थ—लक्ष्मण जी वहाँ गये जहाँ श्री जानकी नाथ जी थे, और प्रिय का साथ पाकर मन मे बड़े ही प्रसन्न हुए। श्री राम जी और सीता जी के सुन्दर चरणो की वंदना करके वे उनके साथ चले और राजभवन मे आए।

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥

सरल अर्थ—नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कह रहे हैं कि विधाता ने खूब बनाकर बात बिगाड़ी। उनके शरीर दुबले, मन दुखी और मुख उदास हो रहे हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छीन लिए जाने पर शहद की मक्खियाँ व्याकुल हो।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताही। जनु बिनु पंखु बिहग अकुलाही॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा॥

सरल अर्थ—सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हो। राजद्वार पर बड़ी भीड़ हो रही है। अपार विषाद का वर्णन नही किया जा सकता।

सचिवँ उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन राम पग धारे।
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥

सरल अर्थ—'श्री रामचन्द्र जी पधारे हैं' ये प्रिय वचन कहकर मन्त्री ने राजा को उठाकर बैठाया। सीता सहित दोनो पुत्रो को (वन के लिए तैयार) देख कर राजा बहुत व्याकुल हुए।

दोहा—सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ॥७१॥

सरल अर्थ—सीता सहित दोनो सुन्दर पुत्रो को देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेहवश बारम्बार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं।

चौ-सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब मागा॥

सरल अर्थ—राजा व्याकुल हैं, बोल नही सकते। हृदय मे शोक से उत्पन्न हुआ भयानक सन्ताप है। तब रघुकुल के वीर श्रीरामचन्द्र जी ने अत्यन्त प्रेम से चरणो मे सिर नवाकर उठकर विदा माँगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै।
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥

सरल अर्थ—हे पिता जी! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिए। हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्त्तव्य कर्म में त्रुटि) करने से जगत् में यश जाता रहेगा और निन्दा होगी।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥

सरल अर्थ—यह सुनकर स्नेहवश राजा ने उठकर श्री रघुनाथ जी की बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा—हे तात! सुनो, तुम्हारे लिए मुनि लोग कहते हैं कि श्री रामजी चराचर के स्वामी हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥

सरल अर्थ—शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचार कर फल देता है। जो कर्म करता है वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं।

दोहा—और करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥७२॥

सरल अर्थ—(किन्तु इस अवसर पर तो इसके विपरीत हो रहा है) अपराध तो कोई और ही करे उसके फल का भोग कोई और ही पावे। भगवान् की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत् में कौन है?

चौ०-रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किये छलु त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥

सरल अर्थ—राजा ने इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत-से उपाय किये। पर जब उन्होंने धर्म धुरंधर, धीर और बुद्धिमान् श्रीरामजी का रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े—

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥

सरल अर्थ—तब राजा ने सीता जी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। वन के दुःसह दुःख कहकर सुनाए। फिर सास, ससुर तथा पिता के (पास रहने के) सुखों को समझाया।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा॥
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥

सरल अर्थ—परन्तु सीता जी का मन श्रीरामचन्द्र जी के चरणो मे अनुरक्त था इसलिए उन्हें घर अच्छा नही लगा और न वन भयानक लगा। फिर और सब लोगो ने भी वन मे विपत्तियो की अधिकता बता-बताकर सीता जी को समझाया।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू ॥

सरल अर्थ—मन्त्री सुमन्त्र जी की पत्नी और गुरु वसिष्ठ जी की स्त्री अरुन्धती जी तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहती हैं कि तुमको तो (राजा) ने वनवास दिया नही है। इसलिए जो ससुर, गुरु और सास कहे, तुम तो वही करो।

दोहा—सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि ॥
सरद चद चंदनि लगत जनु चकई अकुलानि ॥७३॥

सरल अर्थ—यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनने पर सीता जी को अच्छी नहीं लगी। (वे इस प्रकार व्याकुल हो गईं) मानो शरद् ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो।

चौ०-सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
मुनि पटभूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥

सरल अर्थ—सीता जी संकोचवश उत्तर नही देती। इन बातो को सुनकर कैकेयी तमककर उठी। उसने मुनियों के वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और बर्तन (कमण्डलु आदि) लाकर श्रीरामचन्द्र जी के आगे रख दिये और कोमल वाणी से कहा—

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोक नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥

सरल अर्थ—हे रघुवीर! राजा को तुम प्राणो के समान प्रिय हो। भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदय के) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे। पुण्य, सुन्दर यश और परलोक चाहे नष्ट हो जाय, पर तुम्हें वन जाने को वे कभी न कहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। रामजननि सिख सुनि सुखु पावा ॥
भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे ॥

सरल अर्थ—ऐसा विचार कर जो तुम्हे अच्छा लगे वही करो। माता की सीख सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने (बड़ा) सुख पाया। परन्तु राजा को ये वचन बाण के समान लगे। (वे सोचने लगे) अब भी अभागे प्राण (क्यो) नही निकलते?

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनि बेपु बनाई। चले जनक जननिहि सिरुनाई ॥

सरल अर्थ—राजा मूर्छित हो गये, लोग व्याकुल हैं। किसी को कुछ सूझ नही पड़ता कि क्या करें। श्री रामचन्द्र जी तुरन्त मुनि का वेप बनाकर और माता-पिता को सिर नवाकर चल दिये।

दोहा—सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत ।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ।।७४।।

सरल अर्थ—वन का साज-सामान सजकर (वन के लिए आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर) श्री रामचन्द्र जी स्त्री (श्री सीता जी) और भाई (लक्ष्मण जी) सहित ब्राह्मण और गुरु के चरणों की वन्दना करके सबको अचेत करके चले ।

चौ०-निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े । देखे लोग बिरह दव दाढ़े ।।
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए । बिप्र बृन्द रघुबीर बोलाए ।।

सरल अर्थ—राजमहल से निकलकर श्री रामचन्द्र जी वसिष्ठ जी के दरवाजे पर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की अग्नि में जल रहे हैं । उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया । फिर श्रीरामचन्द्र जी ने ब्राह्मणों की मण्डली को बुलाया ।

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे । आदर दान बिनय बस कीन्हें ।
जाचक दान मान सन्तोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ।।

सरल अर्थ—गुरु जी से कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्ष भर का भोजन) दिये और आदर, दान तथा विनय से उन्हें वश में कर लिया । फिर याचकों को दान और मान देकर संतुष्ट किया तथा मित्रों को पवित्र प्रेम से प्रसन्न किया ।

दासीं दास बोलाइ बहोरी । गुरहि सौंपि बोले कर जोरी ।।
सब कै सार सँभार गोसाईं । करबि जनक जननी की नाईं ।।

सरल अर्थ—फिर दास-दासियों को बुलाकर उन्हें गुरु जी को सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले—हे गुसाईं ! इन सबकी माता-पिता के समान सार-संभार (देख-रेख) करते रहियेगा ।

बारहिं बार जोरि जुग पानी । कहत रामु सब सन मृदु बानी ।।
सोई सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहै भुआल सुखारी ।।

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकार से हितकारी मित्र वही होगा, जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें ।

दोहा—मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन ।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन ।।७५।।

सरल अर्थ—हे परम चतुर पुरवासी सज्जनो ! आप लोग सब वही उपाय करियेगा जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरह के दुःख से दुःखी न हों ।

चौ०-एहि बिधि राम सबहि समुझावा । गुरुपद पदुम हरषि सिर नावा ।।
गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ।।

सरल अर्थ—इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजी के चरण कमलों में सिर नवाया। फिर गणेश जी, पार्वती जी और कैलासपति महादेव जी को मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्रीरघुनाथ जी चले।

राम चलत अति भयउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुस गुन लंक अवध अति सोकू। हरष विषाद-बिबस सुरलोकू॥

सरल अर्थ—श्री राम जी के चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगर का आर्तनाद (हाहाकार) सुना नहीं जाता। लङ्का मे बुरे शकुन होने लगे, अयोध्या में अत्यन्त शोक छा गया और देवलोक मे सब हर्ष और विषाद दोनों के वश मे हो गये (हर्ष इस बात का था कि अब राक्षसों का नाश होगा और विषाद अयोध्या-वासियों के शोक का कारण था।

गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे।
रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥

सरल अर्थ—मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमंत्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे—श्री राम वन को चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुख के लिए शरीर में टिक रहे हैं।

एहि ते कवन व्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥

सरल अर्थ—इससे अधिक बलवती और कौन सी व्यथा होगी जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे। फिर धीरज धरकर राजा ने कहा—हे सखा! तुम रथ लेकर श्री राम के साथ जाओ।

दोहा—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गयँ दिन चारि॥८१॥

सरल अर्थ—अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारों और सुकुमारी जानकी को रथ मे चढ़ाकर, वन दिखला कर चार दिन के बाद लौट आना।

चौ-तब सुमन्त्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरुनाई॥

सरल अर्थ—तब (वहाँ पहुँचकर) सुमन्त्र ने राजा के वचन श्री रामचन्द्र जी को सुनाए और विनती करके उनको रथ पर चढ़ाया। सीता जी सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर हृदय मे अयोध्या को सिर नवा कर चले।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। विकल लोग सब लागे साथा॥
कृपा सिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी को जाते हुए और अयोध्या को अनाथ (होते हुए) देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिये। कृपा के समुद्र

श्री राम जी उन्हें बहुत तरह से समझाते हैं, तो वे (अयोध्या की ओर) लौट जाते हैं, परन्तु प्रेम वश फिर लौट आते हैं।

लागति अवधि भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी।।
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी।।

सरल अर्थ—अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है, मानो अन्धकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जन्तुओं के समान एक-दूसरे को देख कर डर रहे हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं।।

सरल अर्थ—घर, श्मशान, कुटुम्बी, भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता।

दोहा—हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर।।७७।।

सरल अर्थ—करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के लिए पाले हुए हिरन, नगर के (गाय, बैल, बकरी आदि), पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर—

चौ०-राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।।
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी।।

सरल अर्थ—श्री रामजी के वियोग में सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ (ऐसे चुपचाप स्थिर होकर) खड़े हैं, मानों तस्वीरों में लिखकर बनाए हुए हैं। नगर मानो फलों से परिपूर्ण बड़ा भारी सघन वन था। नगर-निवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत से पशु-पक्षी थे। (अर्थात् अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलों को देने वाली नगरी थी और सब स्त्री पुरुष सुख से उन फलों को प्राप्त करते थे)।

बिधि कैकेयी किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही।।
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी।।

सरल अर्थ—विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओं में दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी। श्री रामचन्द्र जी के विरह की इस अग्नि को लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं।
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।।

सरल अर्थ—सब ने मन में विचार कर लिया कि श्री राम जी, लक्ष्मण जी और सीता जी के बिना सुख नहीं है। जहां राम जी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। श्रीरामचन्द्र जी के बिना अयोध्या में हम लोगों का कुछ काम नहीं है।

चले साथ अस मन्त्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
रामचरन पंकज प्रिय जिन्हही। विषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥

सरल अर्थ—ऐसा विचार दृढ करके देवताओं को भी दुर्लभ सुखों से पूर्ण घरों को छोड़कर सब श्रीरामचन्द्र जी के साथ चल पड़े। जिनको श्रीरामजी के चरण कमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषय भोग वश में कर सकते हैं।

दोहा—बालक वृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥७८॥

सरल अर्थ—बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर सब लोग साथ हो लिए। पहले दिन श्रीरघुनाथ जी ने तमसा नदी के तीर पर निवास किया।

चौ०-सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥

सरल अर्थ—सीता जी और मन्त्री सहित दोनों भाई श्रृङ्गवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ गंगा जी को देखकर श्रीरामजी रथ से उतर पड़े और बड़े हर्ष के साथ उन्होंने दण्डवत् की।

लखन सचिवँ सियँ किये प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा।
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी, सुमन्त्र और सीता जी ने भी प्रणाम किया। सबके साथ श्रीरामचन्द्र जी ने सुख पाया। गंगा जी समस्त आनन्द-मंगलों की मूल हैं। वे सब सुखों की करने वाली और सब पीड़ाओं को हरने वाली हैं।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥

सरल अर्थ—अनेक कथा-प्रसंग कहते हुए श्रीराम जी गंगा जी की तरङ्गों को देख रहे हैं। उन्होंने मन्त्री को, छोटे भाई लक्ष्मण जी को और प्रिया सीता जी को देवनदी गंगा जी की बड़ी महिमा सुनाई।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहिं श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥

सरल अर्थ—इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्ग का सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण मात्र से (बार-बार जन्मने और मरने का) महान् श्रम मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना—यह केवल लौकिक व्यवहार (नर-लीला) है।

दोहा—सुद्ध सच्चिदानन्दमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥७९॥

सरल अर्थ—शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत दिव्य मङ्गल

सरल अर्थ—पति के हृदय की जानने वाली सीता जी ने आनन्द भरे मन से अपनी रत्न जटित अँगूठी (अंगुली से) उतारी। कृपालु श्रीरामचन्द्र जी ने केवट से कहा, नाव की उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए।

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी ॥

सरल अर्थ—(उसने कहा—) हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया ! मेरे दोष, दुख और दरिद्रता की आग आज बुझ गई। मैंने बहुत समय तक मजदूरी की। विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा ॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! हे दीनदयाल ! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूंगा।

दोहा—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहि कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥८२॥

सरल अर्थ—श्री रामचंद्र जी, लक्ष्मण जी और सीता जी ने बहुत आग्रह (या यत्न) किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणा के धाम भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया।

चौ०-तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥

सरल अर्थ—उस दिन पेड़ के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मण जी और सखा गुह ने (विश्राम की) सब सुव्यवस्था कर दी। प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने सवेरे प्रातकाल की सब क्रियाएँ करके जाकर तीर्थों के राजा प्रयाग के दर्शन किये।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी।
चारि पदारथ भरा भण्डारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥

सरल अर्थ—उस राजा का सत्य मन्त्री है, श्रद्धा प्यारी स्त्री है और श्री वेणी माधव जी-सरीखे हितकारी मित्र हैं। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) से भण्डार भरा है, और वह पुण्यमय प्रांत ही उस राजा का सुन्दर देश है।

छेत्रु अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥

सरल अर्थ—प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुन्दर गढ़ (किला) है, जिसको स्वप्न में भी (पाप रूपी) शत्रु नहीं पा सके हैं। संपूर्ण तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पाप की सेना को कुचल डालने वाले और बड़े रणधीर हैं।

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा । छत्रु अखयबटु मुनि मन मोहा ।।
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा । देखि होहिं दुख दारिद भंगा ।।

सरल अर्थ—(गंगा, यमुना और सरस्वती का) संगम ही उसका अत्यन्त सुशोभित सिंहासन है । अक्षयवट छत्र है, जो मुनियों के भी मन को मोहित कर लेता है । यमुना जी और गंगा जी की तरंगें उसके (श्याम और श्वेत) चँवर हैं, जिनको देखकर ही दुख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है ।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए । करत दंडवत मुनि उर लाए ।।
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई । ब्रह्मानंद रासि जनु पाई ।।

सरल अर्थ—(स्नान, पूजन आदि सब करके) तब प्रभु श्री रामजी भरद्वाज जी के पास आये । उन्हे दण्डवत् करते हुए ही मुनि ने हृदय से लगा लिया । मुनि के मन का आनन्द कुछ कहा नही जाता । मानो उन्हें ब्रह्मानंद की राशि मिल गई हो ।

दोहा—दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि ।।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि ।।१०४।।

सरल अर्थ—मुनीश्वर भरद्वाज जी ने आशीर्वाद दिया । उनके हृदय मे ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द हुआ कि आज विधाता ने (श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन कराकर) मानो हमारे सम्पूर्ण पुण्यों के फल को लाकर आँखो के सामने कर दिया ।

चौ०-पुनि सियँ राम लखन कर जोरी । जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ।।
चले ससीय मुदित दोउ भाई । रबितनुजा कइ करत बड़ाई ।।

सरल अर्थ—फिर सीता जी, श्री राम जी और लक्ष्मण जी ने हाथ जोडकर यमुना जी को पुनः प्रणाम किया और सूर्य कन्या यमुना जी की बड़ाई करते हुए सीता जी सहित दोनो भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले ।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ।।
राजलखन सब अंग तुम्हारें । देखि सोचु अति हृदय हमारें ।।

सरल अर्थ—रास्ते मे जाते हुए उन्हे अनेको यात्री मिलते हैं । वे दोनो भाइयो को देखकर उनसे प्रेम पूर्वक कहते है कि तुम्हारे सब अंगो मे राजचिह्न देखकर हमारे हृदय मे बड़ा सोच होता है ।

मारग चलहु पयादेहि पाएँ । ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ ।।
अगमु पंथु गिरि कानन भारी । तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ।।

सरल अर्थ—(ऐसे राजचिह्नो के होते हुए भी) तुम लोग रास्ते मे पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझ मे आता है कि ज्योतिषशास्त्र झूठा ही है । भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ो का दुर्गम रास्ता है । तिस पर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है ।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरुनाई ॥

सरल अर्थ—हाथी और सिंहों से भरा यह भयानक वन देखा तक नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप जहाँ तक जाएँगे वहाँ तक पहुँचा कर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आवेंगे।

दोहा—एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन ॥८५॥

सरल अर्थ—इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का)जल भर कर पूछते हैं। किन्तु कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्र जी कोमल विनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं।

चौ०-गावँ गावँ अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू ॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं ॥

सरल अर्थ—सूर्यकुल रूपी कुमुदिनी के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा-स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन कर गाँव-गाँव में ऐसा ही आनन्द हो रहा है। जो लोग (वनवास दिये जाने का) कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी (दशरथ-कैकेयी) को दोष लगाते हैं।

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू ॥
कहहिं परसपर लोग लोगाईं। बातें सरल सनेह सुहाईं ॥

सरल अर्थ—कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रों का लाभ दिया। स्त्री-पुरुष सभी आपस में सीधी स्नेह भरी सुन्दर बातें कह रहे हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहाँ तें आए ॥
धन्य सो देसु सैल बन गाउँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ ॥

सरल अर्थ—(कहते हैं—) वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है, जहाँ से ये आये हैं। वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है और वही स्थान धन्य है, जहाँ-जहाँ ये जाते हैं।

सुखु पायउ बिरंचि रचि ते ही। ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई ॥

सरल अर्थ—ब्रह्मा ने उसी को रचकर सुख पाया है, जिसके ये (श्री रामचंद्र जी) सब प्रकार से स्नेही हैं। पथिक रूप श्री राम-लक्ष्मण की सुन्दर कथा सारे रास्ते और जंगल में छा गई हैं।

दोहा—एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ॥८६॥

सरल अर्थ—रघुकुल रूपी कमल के खिलाने वाले सूर्य श्री रामचन्द्र जी इस प्रकार मार्ग के लोगों को सुख देते हुए सीता जी और लक्ष्मण जी सहित वन को देखते हुए चले जा रहे हैं।

चौ०-रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने कहा—लक्ष्मण! बड़ा अच्छा घाट है। अब यहीं कहीं ठहरने की व्यवस्था करो। तब लक्ष्मण जी ने पयस्विनी नदी के उत्तर के ऊँचे किनारे को देखा (और कहा कि—) इसके चारों ओर धनुष के जैसा एक नाला फिरा हुआ है।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥

सरल अर्थ—नदी (मन्दाकिनी) उस धनुष की प्रत्यंचा (डोरी) है और शम, दम, दान बाण हैं। कलियुग के समस्त पाप उसके अनेकों हिंसक पशु (रूप निशाने) हैं। चित्रकूट ही मानो अचल शिकारी है, जिसका निशाना कभी चूकता नहीं और जो सामने से मारता है।

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर लक्ष्मण जी ने स्थान दिखलाया। स्थान को देख कर श्री रामचन्द्र जी ने सुख पाया। जब देवताओं ने जाना कि श्री रामचन्द्र जी का मन वहाँ रम गया, तब वे देवताओं के प्रधान थवई (मकान बनाने वाले) विश्वकर्मा को साथ लेकर चले।

कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

सरल अर्थ—सब देवता कोल-भीलों के वेष में आए और उन्होंने (दिव्य) पत्तों और घासों के सुन्दर घर बना दिये। दो ऐसी सुन्दर कुटियाँ बनायीं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उनमें एक बड़ी सुन्दर छोटी-सी थी और दूसरी बड़ी थी।

दोहा—लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥८७॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी और जानकी जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी सुन्दर घास-पत्तों के घर में शोभायमान हैं। मानो कामदेव मुनि का वेष धारण करके पत्नी रति और वसन्त ऋतु के साथ सुशोभित हों।

चौ०-जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगल दायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बरबेलि बिताना॥

सरल अर्थ—जब से श्री रघुनाथ जी वन में आकर रहे, तब से वन मंगल-दायक हो गया। अनेकों प्रकार के वृक्ष फूलते और फलते हैं और उन पर लिपटी हुई सुन्दर बेलों के मण्डप तने हैं।

सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाये। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आये॥
गुँज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी॥

सरल अर्थ—वे कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक ही सुन्दर हैं। मानो वे देवताओं के वन (नन्दनवन) को छोड़कर आए हों। भौंरों की पंक्तियाँ बहुत ही सुन्दर गुंजार करती हैं और सुख देने वाली शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चलती रहती है।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होंहि मुदित मृग बृंद बिसेषी॥

सरल अर्थ—हाथी, सिंह, बन्दर, सूअर और हिरन, ये सब वैर छोड़कर साथ-विचरते हैं। शिकार के लिए फिरते हुए श्री रामचन्द्र जी की छवि को देखकर पशुओं के समूह विशेष आनन्दित होते हैं।

दोहा—चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ॥८८॥

सरल अर्थ—चित्रकूट के पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण—अंकुरादि की सभी जातियाँ पुण्य की राशि हैं और धन्य हैं—देवता दिन-रात ऐसा कहते हैं।

चौ०—एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी॥
कहेउँ राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमन्त्र अवध जिमि आवा॥

सरल अर्थ—पक्षी, पशु, देवता और तपस्वियों के हितकारी प्रभु इस प्रकार सुखपूर्वक वन में निवास कर रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं—मैंने श्री रामचन्द्र जी का सुन्दर वनगमन कहा। अब जिस तरह सुमन्त्र अयोध्या में आये वह (कथा) सुनो।

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मन्त्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥

सरल अर्थ—प्रभु श्री रामचन्द्र जी को पहुँचाकर जब निषादराज लौटा, तब आकर उसने रथ को मन्त्री (सुमन्त्र) सहित देखा। मन्त्री को व्याकुल देखकर निषाद को जैसा दुख हुआ, वह कहा नहीं जाता।

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी।
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥

सरल अर्थ—(निषाद को अकेले आया देखकर) सुमन्त्र हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! पुकारते हुए, व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़े। (रथ के) घोड़े

दक्षिण दिशा की ओर (जिधर श्रीरामचन्द्र जी गये थे) देख-देखकर हिनहिनाते हैं, मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हों।

दोहा—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
व्याकुल भये निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ॥८८क॥

सरल अर्थ—वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। केवल आँखों से जल बहा रहे हैं। श्रीरामचन्द्र जी के घोड़ों को इस दशा में देखकर सब निषाद व्याकुल हो गये।

दोहा—हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु ॥८८ख॥

सरल अर्थ—प्रियतम (श्रीराम जी) रूप जल के बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़ की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूँ कि विधाता ने मुझे यह 'यातना शरीर' ही दिया है (जो पापी जीवों को नरक भोगने के लिए मिलता है)।

चौ०-मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरउँ लेइ राम सँदेसू ॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ ॥

सरल अर्थ—मैं अपने क्लेश को कैसे कहूँ, जो श्रीरामजी का यह सदेसा लेकर जीता ही लौट आया। ऐसा कहकर मन्त्री की वाणी रुक गई (वे चुप हो गए) और वे हानि की ग्लानि और सोच के वश हो गए।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा ॥

सरल अर्थ—सारथी सुमन्त्र के वचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े, उनके हृदय में भयानक जलन होने लगी। वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोह से व्याकुल हो गया मानो मछली को माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षा का जल लग गया हो)।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाई बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा ॥

सरल अर्थ—सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। (उस महान् विपत्ति का कैसे वर्णन किया जाये? उस समय के विलाप को सुनकर दुख को भी दुख लगा और धीरज का भी धीरज भाग गया।

दोहा—भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु ॥९०॥

सरल अर्थ—राजा के रावले (रनिवास) में (रोने का) शोर सुनकर अयोध्या में बड़ा भारी कुहराम मच गया (ऐसा जान पड़ता था) मानो पक्षियों के विशाल वन में रात के समय कठोर वज्र गिरा हो।

चौ०-प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥
इन्द्रीं सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी॥

सरल अर्थ—राजा के प्राण कण्ठ में आ गए। मानो मणि के बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इन्द्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गईं, मानो बिना जल के तालाब में कमलों का वन मुरझा गया हो।

कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥

सरल अर्थ—कौसल्या जी ने राजा को बहुत दुखी देखकर अपने हृदय में जान लिया कि अब सूर्य कुल का सूर्य अस्त हो चला। तब श्री रामचन्द्र जी की माता कौसल्या हृदय में धीरज धरकर समय के अनुकूल वचन बोलीं—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥

सरल अर्थ—हे नाथ! आप मन में समझकर विचार कीजिये कि श्री रामचन्द्र जी का वियोग अपार समुद्र है। अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्णधार (खेने वाले) हैं। सब प्रियजन (कुटुम्बी और प्रजा) ही यात्रियों का समाज है, जो इस जहाज पर चढ़ा हुआ है।

धीरज धरिअत पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥

सरल अर्थ—आप धीरज धरियेगा तो सब पार पहुँच जायेंगे, नहीं तो सारा परिवार डूब जायेगा। हे प्रिय स्वामी! यदि मेरी विनती हृदय में धारण कीजिएगा तो श्री राम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे।

दोहा—प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥९१॥

सरल अर्थ—प्रिय पत्नी कौसल्या के कोमल वचन सुनते हुए राजा ने आँखें खोलकर देखा, मानो तड़पती हुई दीन मछली पर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो।

चौ०-धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥

सरल अर्थ—धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले—सुमन्त्र! कहो, कृपालु श्रीराम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? स्नेही राम कहाँ हैं? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँ हैं?

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस अन्ध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥

सरल अर्थ—राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकार से विलाप कर रहे हैं। वह रात युग के समान बड़ी हो गई, बीतती ही नहीं। राजा को अन्धे तपस्वी (श्रवण कुमार के पिता) के शाप की याद आ गई। उन्होंने सब कथा कौसल्या को कह सुनाई।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

सरल अर्थ—उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गये और कहने लगे कि श्रीराम जी के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। मैं उस शरीर को रखकर क्या करूंगा जिसने मेरा प्रेम का प्रण नहीं निबाहा?

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥

सरल अर्थ—हा, रघुकुल को आनन्द देने वाले मेरे प्राण प्यारे राम! तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। हा जानकी! हा लक्ष्मण! हा रघुवर! हा पिता के चित्तरूपी चातक के हित करने वाले मेघ!

दोहा—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥८२क॥

सरल अर्थ—राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, फिर राम-राम कहकर और फिर राम कहकर राजा श्रीराम के विरह में शरीर त्यागकर सुरलोक को सिधार गये।

दोहा—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥८२ख॥

सरल अर्थ—तब वसिष्ठ मुनि ने समय के अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सबका शोक दूर किया।

चौ०-तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥

सरल अर्थ—वशिष्ठ जी ने नाव में तेल भरवाकर राजा के शरीर को उसमें रखवा दिया। फिर दूतों को बुलवा कर उनसे ऐसा कहा—तुम लोग जल्दी दौड़कर भरत के पास जाओ। राजा की मृत्यु का समाचार कहीं किसी से न कहना।

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए॥

सरल अर्थ—जाकर भरत से इतना ही कहना कि दोनों भाइयों को गुरु जी ने बुलवा भेजा है। मुनि की आज्ञा सुनकर धावन (दूत) दौड़े। वे अपने वेग से उत्तम घोड़ों को भी लजाते हुए चले।

अनरथ अवध अरंभेउ जबतें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तबतें ॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥

सरल अर्थ—जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारम्भ हुआ, तभी से भरत जी को अपशकुन होने लगे। वे रात को भयंकर स्वप्न देखते थे और जागने पर (उन स्वप्नों के कारण) करोड़ों (अनेकों) तरह की बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे।

बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधिनाना ॥
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥

सरल अर्थ—(अनिष्ट शांति के लिए) वे प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन करा कर दान देते थे। अनेकों विधियों से रुद्राभिषेक करते थे। महादेव जी को हृदय में मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयों का कुशल क्षेम माँगते थे।

दोहा- एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥८३॥

सरल अर्थ—भरत जी इस प्रकार मन में चिन्ता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरु जी की आज्ञा कानों से सुनते ही वे गणेश जी को मनाकर चल पड़े।

चौ०-चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके ॥
हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई ॥

सरल अर्थ—हवा के समान वेगवाले घोड़ों को हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलों को लाँघते हुए चले। उनके हृदय में बड़ा सोच था, कुछ सुहाता न था। मन में ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ।

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई ॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ॥

सरल अर्थ—एक-एक निमेष वर्ष के समान बीत रहा था। इस प्रकार भरत जी नगर के निकट पहुँचे। नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौवे बुरी जगह बैठकर बुरी तरह काँव-काँव कर रहे हैं।

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब सम्पति हारी ॥

सरल अर्थ—श्री राम जी के वियोग रूपी बुरे रोग से सताए हुए वहुपक्षी-पशु, घोड़े-हाथी (ऐसे दुखी हो रहे हैं कि) देखे नहीं जाते। नगर के स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हों।

दोहा—भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु ॥८४॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी का वन जाना सुनकर भरत जी को पिता का मरण भूल गया और हृदय में इस सारे अनर्थ का कारण—अपने को ही जानकर

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ।
कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥१७॥

उन्होंने देखा कि सारे वेद मूर्तिमान् होकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं । यह देखकर वे सब-के-सब परम विस्मित हो गये ॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

रासलीलाका आरम्भ

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! शरद् ऋतु थी । उसके कारण बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्प खिलकर महँ-महँ महँक रहे थे । भगवान्ने चीर-हरणके समय गोपियोंको जिन रात्रियोंका संकेत किया था, वे सब-की-सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रिके रूपमें उल्लसित हो रही थीं । भगवान्ने उन्हें देखा, देखकर दिव्य बनाया । गोपियाँ तो चाहती ही थीं । अब भगवान्ने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके सहारे उन्हें निमित्त बनाकर रसमयी रासक्रीडा करनेका संकल्प किया । अपना होनेपर भी उन्होंने अपने प्रेमियों-की इच्छा पूर्ण करनेके लिये मन स्वीकार किया ॥ १ ॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

भगवान्के संकल्प करते ही चन्द्रदेवने प्राची दिशाके मुखमण्डलपर अपने शीतल किरणरूपी करकमलोंसे लालिमाकी रोली केशर मल दी, जैसे बहुत दिनोंके बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नीके पास आकर उसके प्रियतम पतिने उसे आनन्दित करनेके लिये ऐसा किया हो । इसप्रकार चन्द्रदेवने उदय होकर न केवल पूर्वदिशाका, प्रत्युत संसारके समस्त चर-अचर प्राणियोंका संताप—जो दिनमें शरत्कालीन प्रखर सूर्यरश्मियोंके कारण बढ़ गया था—दूर कर दिया ॥२॥ उस दिन चन्द्रदेवका मण्डल अखण्ड था । पूर्णिमाकी रात्रि थी । वे नूतन केशरके समान लाल-लाल हो रहे थे, कुछ सकोचमिश्रित अभिलाषासे युक्त जान पड़ते थे । उनका मुखमण्डल लक्ष्मीजीके समान मालूम हो रहा था । उनकी कोमल किरणोंसे सारा वन अनुरागके रंगमें रँग गया था । वनके कोने

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।

१. कृष्ण समभिसंस्तूय मानयन्तः सुविस्मिताः । २. नन्दविमोक्षणमद्या० । ३. वादरायणिरुवाच । ४. मयोऽच्युतः ।

दोहा—पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर ।।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर ।।८८।।

सरल अर्थ—हे तात । पिता की आज्ञा से श्री रघुवीर ने भूषण-वस्त्र त्याग दिये और वल्कल-वस्त्र पहन लिए । उनके हृदय में न कुछ विषाद था न हर्ष ?

चौ-मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ।।
चले बिपिन सुनि सिय संग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ।।

सरल अर्थ—उनका मुख प्रसन्न था, मन में न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष) । सबको सब तरह से संतोष कराकर वन को चले । यह सुनकर सीता जी उनके साथ लग गयीं । श्री राम के चरणों की अनुरागिणी वे किसी तरह न रहीं ।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा । रहहिं न जतन किए रघुनाथा ।।
तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ।।

सरल अर्थ—सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले । श्री रघुनाथ ने उन्हें रोकने के बहुत यत्न किए, पर वे न रहे । तब श्री रघुनाथ जी सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले गये ।

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए । गइउँ न संग न प्रान पठाए ।।
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें । तउ न तजा तनु जीव अभागें ।।

सरल अर्थ—श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये । मैं न तो साथ ही गई और न मैंने अपने प्राण ही उनके साथ भेजे । यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ तो भी अभागे जीव ने शरीर नहीं छोड़ा ।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी । राम सरिस सुत मैं महतारी ।।
जिये मरै भल भूपति जाना । मोर हृदय सत कुलिस समाना ।।

सरल अर्थ—अपने स्नेह की ओर देखकर मुझे लाज भी नहीं आती, राम सरीखे पुत्र की मैं माता ! जीना और मरना तो राजा ने खूब जाना । मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रों के समान कठोर है ।

दोहा—कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु ।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु ।।८८क।।

सरल अर्थ – कौसल्या जी के वचनों को सुनकर भरत सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा ! राजमहल मानो शोक का निवास बन गया ।

दोहा—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।।
हानि लाभु जीवन मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ।।८८ख।।

सरल अर्थ—मुनि नाथ (वसिष्ठ जी) ने बिलखकर (दुखी होकर) कहा—हे भरत ! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान् है । हानि लाभ, जीवन-मरण और यश अपयश ये सब विधाता के हाथ हैं ।

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।

कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः ।

जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥

राजोवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।

गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।

कैसे ? विश्वविमोहन श्रीकृष्णने उनके प्राण, मन और आत्मा—सब कुछका अपहरण जो कर लिया था ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! उस समय कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर थीं। उन्हें बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्णके सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं ॥ ९ ॥ परीक्षित् ! अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके असह्य विरहकी तीव्र वेदनासे उनके हृदयमें इतनी व्यथा—इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारोंका लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यानमें उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन-ही-मन बड़े प्रेमसे, बड़े आवेगसे उनका आलिङ्गन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये ॥ १० ॥ परीक्षित् ! यद्यपि उनका उस समय श्रीकृष्णके प्रति जारभाव भी था; तथापि कहीं सत्य वस्तु भी भावकी अपेक्षा रखती है ? उन्होंने जिनका आलिङ्गन किया, चाहे किसी भी भावसे किया हो, वे स्वय परमात्मा ही तो थे। इसलिये उन्होंने पाप और पुण्यरूप कर्मके परिणामसे बने हुए गुणमय शरीरका परित्याग कर दिया। (भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होनेके योग्य दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया।) इस शरीरसे भोगे जानेवाले कर्मबन्धन तो ध्यानके समय ही छिन्न भिन्न हो चुके थे ॥ ११ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्णको केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्मभाव नहीं था। इस प्रकार उनकी दृष्टि प्राकृत गुणोंमें ही आसक्त दीखती है। ऐसी स्थितिमें उनके लिये गुणोंके प्रवाहरूप इस संसारकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई ? ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल भगवान्‌के प्रति द्वेष-भाव रखनेपर भी अपने प्राकृत शरीरको छोड़कर अप्राकृत शरीरसे उनका पार्षद हो गया। ऐसी

१. काश्चन ।

सरल अर्थ—राजा का वचन अवश्य सत्य करो। शोक त्याग दो और प्रजा का पालन करो। ऐसा करने से स्वर्ग में राजा सन्तोष पावेंगे और तुमको पुण्य और सुन्दर यश मिलेगा, दोष नहीं लगेगा।

बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥

सरल अर्थ—यह वेद में प्रसिद्ध है और (स्मृति पुराणादि) सभी शास्त्रों के द्वारा सम्मत है कि पिता जिसको दे, वही राजतिलक पाता है। इसलिए तुम राज्य करो, ग्लानि का त्याग कर दो। मेरे वचन को हित समझकर मानो।

सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं॥
कौसल्यादि सकल महतारीं। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारीं॥

सरल अर्थ—इस बात को सुनकर श्रीरामचन्द्र जी और जानकी जी सुख पावेंगे और कोई पंडित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्या जी आदि तुम्हारी सब माताएँ भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

परम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहुँ राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ॥

सरल अर्थ—जो तुम्हारे और श्री रामचंद्र जी के श्रेष्ठ सम्बन्ध को जान लेगा, वह सभी प्रकार से तुमसे भला मानेगा। श्री रामचन्द्र जी के लौट आने पर राज्य उन्हें सौंप देना और सुन्दर स्नेह से उनकी सेवा करना।

दोहा—कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि॥
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि॥१०१॥

सरल अर्थ—मन्त्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं---गुरु जी की आज्ञा का अवश्य ही पालन कीजिये। श्री रघुनाथ जी के लौट आने पर जैसा उचित हो तब फिर वैसा ही कीजिएगा।

सो०—भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि॥
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥१०२॥

सरल अर्थ—धैर्य की धुरी को धारण करने वाले भरत जी धीरज धरकर, कमल के समान हाथों को जोड़कर, वचनों को मानो अमृत में डुबाकर सबको उचित उत्तर देने लगे।

चौ०-मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥

सरल अर्थ—गुरु जी ने मुझे सुन्दर उपदेश दिया। (फिर) प्रजा, मन्त्री आदि सभी को यही सम्मत है। माता ने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको सिर चढ़ाकर वैसा ही करना चाहता हूँ।

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥

सरल अर्थ—(क्योंकि) गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद (मित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिये । उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ता है ।

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई । जो आचरत मोर भल होई ॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें । तदपि होत परितोषु न जी कें ॥

सरल अर्थ—आप तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करने में मेरा भला हो । यद्यपि मैं इस बात को भली-भाँति समझता हूँ, तथापि मेरे हृदय को संतोष नहीं होता ।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू । दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ॥

सरल अर्थ—अब आप लोग मेरी विनती सुन लीजिए और मेरी योग्यता के अनुसार मुझे शिक्षा दीजिए । मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिए । साधु पुरुष दुखी मनुष्य के दोष-गुणों को नहीं गिनते ।

दोहा—पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु ॥
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥१०३क॥

सरल अर्थ—पिता जी स्वर्ग में हैं, श्री सीता राम जी वन में हैं और मुझे आप राज्य करने के लिए कह रहे हैं । इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम (होने की आशा रखते हैं) ?

दोहा—कैकेई सुअ कुटिल मति राम बिमुख गतलाज ।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज ॥१०३ख॥

सरल अर्थ—कैकेयी के पुत्र, कुटिल बुद्धि, राम-विमुख और निर्लज्ज मुझसे अधम के राज्य से आप मोह के वश होकर ही सुख चाहते हैं ।

दोहा—ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।
तेहि पिआइहि बारुनी कहहु काह उपचार ॥१०३ग॥

सरल अर्थ - जिसे कुग्रह लगे हों (अथवा जो पिशाचग्रस्त हो), फिर जो वायु रोग से पीड़ित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलायी जाय तो कहिये यह कैसा इलाज है ।

चौ०-गुर बिबेक सागर जगु जाना । जिन्हहि बिस्वकर बदर समाना ॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ । भयें बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ ॥

सरल अर्थ—गुरु जी ज्ञान के समुद्र हैं, इस बात को सारा जगत जानता है, जिनके लिए विश्व हथेली पर रखे हुए बेर के समान है, वे भी मेरे लिए राजतिलक

का साज सज रहे हैं। सत्य है, विधाता के विपरीत होने पर सब कोई विपरीत हो जाते हैं।

परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं।।
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी।।

सरल अर्थ—श्री रामजी और सीता जी को छोड़कर जगत् में कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थ में मेरी सम्मति नहीं है। मैं उसे सुखपूर्वक सुनूँगा, क्योंकि जहाँ पानी होता है वहाँ अन्त में कीचड़ होता ही है।

डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू।।
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सियरामु दुखारी।।

सरल अर्थ—मुझे इसका डर नहीं है कि जगत् मुझे बुरा कहेगा और न मुझे परलोक का ही सोच है। मेरे हृदय में तो बस, एक ही दुःसह दावानल धधक रहा है कि मेरे कारण श्री सीताराम जी दुःखी हुए।

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि रामचरनु मनु लावा।।
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी।।

सरल अर्थ—जीवन का उत्तम लाभ तो लक्ष्मण ने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर श्रीरामजी के चरणों में मन लगाया। मेरा जन्म तो श्री राम जी के वनवास के लिए ही हुआ था। मैं अभागा झूठ-मूठ क्या पछताता हूँ!

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।।
एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभुपाहीं।।

सरल अर्थ—मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सूझता। श्री राम के बिना मेरे हृदय की बात कौन जान सकता है? मन में एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) यही है कि प्रातःकाल प्रभु श्री राम जी के पास चल दूँगा।

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी।।
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी।।

सरल अर्थ—आप पंच (सब) लोग भी इसी में मेरा कल्याण मानकर सुन्दर वाणी से आज्ञा लेकर आशीर्वाद दीजिए, जिसमे मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर श्री रामचन्द्र जी राजधानी को लौट आवें।

दोहा—अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह।।१०४।।

सरल अर्थ—हे भरत जी! वन को अवश्य चलिए, जहाँ श्री राम जी हैं, आपने बहुत अच्छी सलाह विचारी। शोक-समुद्र में डूबते हुए सब लोगों को आपने (बड़ा) सहारा दे दिया।

दोहा—सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ ॥१०५क॥

सरल अर्थ—विश्वासपात्र सेवकों को नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब श्री सीताराम जी के चरणों को स्मरण करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले।

दोहा—पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग ॥१०५ख॥

सरल अर्थ—कोई दूध ही पीते, कोई फलाहार करते और कुछ लोग रात को एक ही बार भोजन करते हैं। भूषण और भोग-विलास को छोड़कर सब लोग श्री रामचन्द्र जी के लिए नियम और व्रत करते हैं।

चौ०-कियउ निषाद नाथु अगुआईं। मातु पालकीं सकल चलाईं॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा॥

सरल अर्थ—निषाद राज को आगे करके पीछे सब माताओं की पालकियाँ चलायीं। छोटे भाई शत्रुघ्न जी को बुलाकर उनके साथ कर दिया। फिर ब्राह्मणों-सहित गुरु जी ने गमन किया।

आपु सुरसरिहि कीन्हि प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सियरामू॥
गवने भरत पयादेहिं पाये। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥

सरल अर्थ—तदनन्तर आप (भरतजी) ने गंगा जी को प्रणाम किया और लक्ष्मण सहित श्री सीताराम जी का स्मरण किया। भरत जी पैदल ही चले। उनके साथ कोतल (बिना सवार के) घोड़े बागडोर से बँधे हुए चले जा रहे हैं।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥

सरल अर्थ—उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं कि हे नाथ! आप घोड़ों पर सवार हो लीजिए। (भरत जी जवाब देते हैं कि) श्री रामचन्द्र जी तो पैदल ही गये और हमारे लिए रथ, हाथी और घोड़े बनाए गये हैं।

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सबतें सेवक धरमु कठोरा॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी॥

सरल अर्थ—मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं सिर के बल चलकर जाऊँ। सेवक का धर्म सबसे कठिन होता है। भरत जी की दशा देखकर और कोमल वाणी सुनकर सब सेवकगण ग्लानि के मारे गले जा रहे हैं।

दोहा—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥१०६॥

सरल अर्थ—प्रेम में उमँग-उमँग कर सीताराम-सीताराम कहते हुए भरत जी ने तीसरे पहर प्रयाग में प्रवेश किया।

चौ०-प्रमुदित तीरथराज निवासी। वैखानस बटु गृही उदासी ॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥

सरल अर्थ - तीर्थराज प्रयाग में रहने वाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (संन्यासी) सब बहुत ही आनंदित हैं और दस-पाँच मिलकर आपस में कहते हैं कि भरत जी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए ॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर गुण-समूहों को सुनते हुए वे मुनि-श्रेष्ठ भरद्वाज जी के पास आए। मुनि ने भरत जी को दण्डवत् प्रणाम करते देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान् सौभाग्य समझा।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ।
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे ॥

सरल अर्थ—उन्होंने दौड़कर भरत जी को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। मुनि ने उन्हें आसन दिया। वे सिर नवाकर इस तरह बैठे मानो भागकर संकोच के घर में घुस जाना चाहते हैं।

मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सील सँकोचू ॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई ॥

सरल अर्थ—उनके मन में यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे (तो मैं क्या उत्तर दूँगा)। भरत जी के शील और संकोच को देखकर ऋषि बोले—भरत ! सुनो, हम सब खबर पा चुके हैं। विधाता के कर्त्तव्य पर कुछ वश नहीं चलता।

दोहा---तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ॥१०७क॥

सरल अर्थ—माता की करतूत को समझ कर (याद करके) तुम हृदय में ग्लानि मत करो। हे तात ! कैकेयी का कोई दोष नहीं है, उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गयीं थीं।

दोहा---तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ॥१०७ख॥

सरल अर्थ—हे भरत ! तुम्हारे लिए (तुम्हारी समझ में) यह कलंक है, पर हम सबके लिए तो उपदेश है। श्री रामभक्तिरूपी रस की सिद्धि के लिए यह समय गणेश (बड़ा शुभ) हुआ है।

चौ०-नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥

सरल अर्थ—हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नवीन चन्द्रमा है और श्रीरामचन्द्र जी के दास कुमुद और चकोर हैं (वह चन्द्रमा तो प्रतिदिन अस्त होता और घटता है, जिससे कुमुद और चकोर को दुख होता है), परन्तु यह तुम्हारा यशरूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा, कभी अस्त होगा ही नहीं। जगतरूपी आकाश में यह घटेगा नहीं, वरन् दिन-दिन दूना होगा।

कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू ॥

सरल अर्थ—त्रैलोक्यरूपी चकवा इस यशरूपी चन्द्रमा पर अत्यन्त प्रेम करेगा और प्रभु श्री रामचन्द्र जी का प्रतापरूपी सूर्य इसकी छबि को हरण नहीं करेगा। यह चन्द्रमा रात-दिन सदा सब किसी को सुख देने वाला होगा। कैकेयी का कुकर्मरूपी राहु इसे ग्रास नहीं करेगा।

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा ॥
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ ॥

सरल अर्थ—यह चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत से पूर्ण है। यह गुरु के अपमान रूपी दोष से दूषित नहीं है। तुमने इस यशरूपी चन्द्रमा की सृष्टि करके पृथ्वी पर भी अमृत को सुलभ कर दिया। अब श्रीरामचन्द्र जी के भक्त इस अमृत से तृप्त हो लें।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी ॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं ॥

सरल अर्थ—राजा भगीरथ गंगा जी को लाये, जिन (गंगा जी) का स्मरण ही सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलों की खान है। दशरथ जी के गुण समूहों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, अधिक क्या, जिनकी बराबरी का जगत् में कोई नहीं है।

दोहा—जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भये आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ॥१०८क॥

सरल अर्थ—जिनके प्रेम और संकोच (शील) के वश में होकर स्वयं (सच्चिदानन्दघन) भगवान् श्री राम आकर प्रकट हुए, जिन्हें श्री महादेव जी अपने हृदय के नेत्रों से कभी अघाकर नहीं देख पाये (अर्थात् जिनका स्वरूप हृदय में देखते-देखते शिव जी कभी तृप्त नहीं हुए)।

दोहा—चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु ॥१०८ख॥

सरल अर्थ—(वह बोली—) देखो, ये भरत जी पिता के दिये हुए राज्य को

त्यागकर पैदल चलते और फलाहार करते हुए श्रीराम जी को मनाने के लिए जा रहे हैं। इनके समान आज कौन है ?

दोहा—तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ॥१०८ग॥

सरल अर्थ—उस दिन वहीं ठहरकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्री रघुनाथ जी का स्मरण करके चले। साथ के सब लोगों को भी भरत जी के समान ही श्रीरामजी के दर्शन की लालसा (लगी हुई) है।

दोहा—भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु ॥१०८घ॥

सरल अर्थ—भरत जी का उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेष जी भी नहीं कह सकते। कवि के लिए तो वह वैसा ही अगम है जैसा अहंता और ममता से मलिन मनुष्यों के लिये ब्रह्मानंद।

चौ०-सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गये कोस दुइ दिनकर ढरकें ॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें ॥

सरल अर्थ—सब लोग श्री रामचन्द्र जी के प्रेम के मारे शिथिल होने के कारण सूर्यास्त होने तक (दिन भर में) दो ही कोस चल पाये और जल-स्थल का सुपास देखकर रात को वहीं (बिना खाये-पीये ही) रह गये। रात बीतने पर श्री रघुनाथ जी के प्रेमी भरत जी ने आगे गमन किया।

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ॥

सरल अर्थ—उधर श्री रामचन्द्र जी रात शेष रहते ही जागे। रात को सीता जी ने ऐसा स्वप्न देखा (जिसे वे श्री राम जी को सुनाने लगीं), मानो समाज सहित भरत जी यहाँ आए हैं। प्रभु के वियोग की अग्नि से उनका शरीर संतप्त है।

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन ॥

सरल अर्थ—सभी लोग मन में उदास, दीन और दुखी हैं। सासुओं को दूसरी ही सूरत में देखा। सीता जी का स्वप्न सुनकर श्रीरामचन्द्र जी के नेत्रों में जल भर आया और सबको सोच से छुड़ा देने वाले प्रभु स्वयं (लीला से) सोच के वश हो गये।

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाहि सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥

सरल अर्थ—(और बोले—) लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण कुसमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनावेगा। ऐसा कहकर उन्होंने भाई सहित स्नान किया और त्रिपुरारि महादेव जी का पूजन करके साधुओं का सम्मान किया।

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सरल अर्थ—देवताओं का सम्मान (पूजन) और मुनियों की वन्दना करके श्री रामचन्द्र जी बैठ गये और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। आकाश में धूल छा रही है, बहुत-से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु के आश्रम को आ रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्र जी यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है ? वे चित्त में आश्चर्ययुक्त हो गये। उसी समय कोल-भीलों ने आकर सब समाचार कहे।

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥१०९॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि सुन्दर मङ्गल वचन सुनते ही श्री रामचन्द्र जी के मन में बड़ा आनंद हुआ। शरीर में पुलकावली छा गई और शरद-ऋतु के कमल के समान नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गये।

चौ०-बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥

सरल अर्थ—सीतापति श्री रामचन्द्र जी पुनः सोच के वश हो गये कि भरत के आने का क्या कारण है ? फिर एक ने आकर ऐसा कहा कि उनके साथ में बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना भी है।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥

सरल अर्थ—यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी को अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिता के वचन और उधर भाई भरत जी का संकोच ! भरत के स्वभाव को मन में समझकर तो प्रभु श्रीरामचन्द्र जी चित्त को ठहराने के लिए कोई स्थान ही नहीं पाते हैं।

समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥

सरल अर्थ—तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहने में (आज्ञाकारी) हैं। लक्ष्मण जी ने देखा कि प्रभु श्री राम जी के हृदय में चिन्ता है तो वे समय के अनुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे।

बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाईं॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

सरल अर्थ— हे स्वामी ! आपके बिना ही पूछे मैं कुछ कहता हूँ, सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात् आप पूछें तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है, इसलिए यह मेरा कहना ढिठाई नहीं होगा)। हे स्वामी ! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं (सब जानते ही हैं)। मैं सेवक तो अपनी समझ की बात कहता हूँ।

दोहा—नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान ।।११०।।

सरल अर्थ—हे नाथ ! आप परम सुहृद (बिना ही कारण परम हित करने वाले), सरल हृदय तथा शील और स्नेह के भण्डार हैं। आपका सभी पर प्रेम और विश्वास है और अपने हृदय में सबको अपने ही समान जानते हैं।

चौ०-बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई।।
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना।।

सरल अर्थ —परन्तु मूढ़ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणों में उनका प्रेम है, इस बात को सारा जगत् जानता है।

तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई।
कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनबास एकाकी।।

सरल अर्थ—वे भरत भी आज श्रीरामजी (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्म की मर्यादा को मिटाकर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर कि श्रीराम जी (आप) वनवास में अकेले (असहाय) हैं।

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू।।
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई।।

सरल अर्थ —अपने मन में बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्य को निष्कंटक करने के लिए यहाँ आए हैं। करोड़ों (अनेकों) प्रकार की कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आए हैं।

जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली।।
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राजपदु पाएँ।।

सरल अर्थ—यदि इनके हृदय में कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियों की कतार (ऐसे समय) किसे सुहाती ? परन्तु भरत को ही व्यर्थ कौन दोष दे ? राजपद पा जाने पर सारा जगत् ही पागल (मतवाला) हो जाता है।

दोहा—ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान ।।१११।।

सरल अर्थ—चन्द्रमा गुरुपत्नीगामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी पर चढ़ा और राजा वेन के समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हो गया।

चौ०-उठि कर जोरि रजायसु मागा । मनहुँ बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासनु सायकु हाथा ॥

सरल अर्थ—यों कहकर लक्ष्मण जी ने उठकर हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी, मानो वीर रस सोते से जाग उठा हो। सिर पर जटा बाँधकर कमर में तरकस कस लिया और धनुष को सजाकर तथा बाण को हाथ में लेकर कहा—

आजु राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई । सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥

सरल अर्थ—आज मैं श्री राम जी (आप) का सेवक होने का यश लूं और भरत को संग्राम में शिक्षा दूँ। श्री रामचन्द्र जी (आप) के निरादर का फल पाकर दोनो भाई (भरत-शत्रुघ्न) रणशय्या पर सोवें।

आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥

सरल अर्थ—अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूंगा! जैसे सिंह हाथियों के झुण्ड को कुचल डालता है और बाज जैसे लवे को लपेट में ले लेता है।

तैसेहिं भरतहि सेन समेता । सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
जौं सहाय कर संकरु आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥

सरल अर्थ—वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके मैदान में पछाड़ूँगा। यदि शंकर जी भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी मुझे श्रीराम जी की सौगन्ध है, मैं उन्हें युद्ध में (अवश्य) मार डालूंगा (छोड़ूँगा नहीं)।

दोहा—अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान ।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान ॥११२॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी को अत्यन्त क्रोध से तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) सौगंध सुनकर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल घबड़ाकर भागना चाहते हैं।

चौ०-जगु भय मगन गगन भई बानी । लखन बाहुबलु बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥

सरल अर्थ—सारा जगत् भय में डूब गया! तब लक्ष्मण जी के अपार बाहुबल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई—हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है?

अनुचित उचित काजु किछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥

सरल अर्थ—परन्तु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझ कर किया जाय तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान् कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन राजमदु भाई ॥

सरल अर्थ—देव वाणी सुनकर लक्ष्मण जी सकुचा गये। श्रीरामचन्द्र जी और सीता जी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया (और कहा—) हे तात ! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। हे भाई ! राज्य का मद सबसे कठिन मद है।

जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधु सभा जेहिं सेई ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

सरल अर्थ—जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग) नहीं किया वे ही राजमद-रूपी मदिरा का आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण ! सुनो, भरत सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है।

दोहा—भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ ॥११३॥

सरल अर्थ—(अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है) ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने का। क्या कभी काँजी की बूंदों से क्षीर समुद्र नष्ट हो सकता (फट सकता) है ?

चौ०-तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ॥

सरल अर्थ—अन्धकार चाहे तरुण (मध्याह्न के) सूर्य को निगल जाय। आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल जाय। गौ के खुर-इतने जल में अगस्त्य जी डूब जायें और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप मदु भरतहि भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥

सरल अर्थ—मच्छर की फूंक से चाहे सुमेरु उड़ जाय। परन्तु हे भाई ! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शपथ और पिता जी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥

सरल अर्थ—हे तात ! गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिलाकर विधाता इस दृश्य प्रपंच (जगत्) को रचता है। परन्तु भरत ने सूर्यवंश रूपी तालाब

से हंस रूप जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया (दोनों को अलग-अलग कर दिया)।

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजियारी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

सरल अर्थ—गुण रूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुण रूपी जल को त्याग कर भरत ने अपने यश से जगत् मे उजियाला कर दिया है। भरत जी के गुण, शील और स्वभाव को कहते-कहते श्री रघुनाथ जी प्रेम-समुद्र में मग्न हो गये।

दोहा—सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ॥११४॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी की वाणी सुनकर और भरत जी पर उनका प्रेम देखकर समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे। (और कहने लगे) कि श्रीराम जी के समान कृपा के धाम प्रभु और कौन है?

चौ०-जौ न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥

सरल अर्थ—यदि जगत् मे भरत का जन्म न होता, तो पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता? हे रघुनाथजी! कविकुल के लिए अगम (उनकी कल्पना से अतीत) भरत जी के गुणो की कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है?

लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए ॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी, श्री रामचन्द्र जी और सीता जी ने देवताओं की वाणी सुनकर अत्यन्त सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ भरत जी ने सारे समाज के साथ पवित्र मंदाकिनी में स्नान किया।

सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथ लघु भाई ॥

सरल अर्थ—फिर सबको नदी के समीप ठहराकर तथा माता, गुरु और मंत्री की आज्ञा माँगकर निषादराज और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत जी वहाँ को चले जहाँ श्री सीता जी और श्री रघुनाथ जी थे।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥

सरल अर्थ—भरत जी अपनी माता कैकेयी की करनी को समझकर (याद करके) सकुचाते हैं और मन मे करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं। (सोचते हैं—) श्रीराम जी, लक्ष्मण जी और सीता जी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जायँ।

दोहा—मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥११५॥

सरल अर्थ—मुझे माता के मत में मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है, पर वे अपनी ओर समझकर (अपने बिरद और सम्बन्ध को देखकर) मेरे पापों और अवगुणों को क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे।

चौ०-सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥

सरल अर्थ—भरत जी ने सेवक (गुह) के सब वचन सत्य जाने और वे आश्रम के समीप जा पहुँचे। वहाँ के वन और पर्वतों के समूह को देखा तो भरत जी इतने आनंदित हुए मानो कोई भूखा अच्छा अन्न (भोजन) पा गया हो।

राम वास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के निवास से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित हो रही है मानो अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी हो। सुहावना वन ही पवित्र देश है, विवेक उसका राजा है और वैराग्य मन्त्री है।

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥

सरल अर्थ—यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) योद्धा हैं। पर्वत राजधानी है, शांति तथा सुबुद्धि दो सुन्दर पवित्र रानियाँ हैं। वह श्रेष्ठ राजा राज्य के सब अंगों से पूर्ण है और श्रीरामचन्द्र जी के चरणों के आश्रित रहने से उसके चित्त में चाव (आनन्द का उत्साह) है।

(स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना—राज्य के ये सात अंग हैं।)

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥

सरल अर्थ—गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सुअर, भैंसे और बैलों को देखकर राजा के साज को सराहते ही बनता है। ये सब आपस का वैर छोड़कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं। यही मानो चतुरंगिणी सेना है।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहु ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला ॥

सरल अर्थ—भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं। मानो उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनन्द और मंगल का मूल बन रहा है।

दोहा—राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु ॥११६॥

सरल अर्थ—श्री राम जी के पर्वत की शोभा देखकर भरत जी के हृद
अत्यन्त प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियम की समाप्ति होने पर तपस्या का फल प
सुखी होता है।

चौ०-सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥

सरल अर्थ—सखा निषादराज सहित इस मनोहर जोड़ी को सघन वन
आड़ के कारण लक्ष्मण जी नहीं देख पाये। भरत जी ने प्रभु श्री रामचन्द्र ज
समस्त सुमंगलों के धाम और सुन्दर पवित्र आश्रम को देखा।

करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे॥

सरल अर्थ—आश्रम में प्रवेश करते ही भरत जी का दुख और दाह (ज
मिट गया, मानो योगी को परमार्थ (परमतत्व) की प्राप्ति हो गई हो। भरत ज
देखा कि लक्ष्मण जी प्रभु के आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेम पूर्वक कह र
(पूछी हुई बात का प्रेम पूर्वक उत्तर दे रहे हैं।)

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें। तून कसें कर सरु धनु काँधें॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥

सरल अर्थ—सिर पर जटा है, कमर में मुनियों का (वल्कल) वस्त्र बाँ
और उसी में तरकस कसे हैं। हाथ में बाण तथा कन्धे पर धनुष है, वेदी पर
तथा साधुओं का समुदाय बैठा है और सीता जी सहित श्री रघुनाथ जी विराज
हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति काम
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत

सरल अर्थ—श्री राम जी के वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किये हैं, श
शरीर है। (सीता राम जी ऐसे लगते हैं) मानो रति और कामदेव ने मुनि का
धारण किया हो। श्रीराम जी अपने कर कमलों से धनुष बाण फेर रहे हैं
हँसकर देखते ही जी की जलन हर लेते हैं (अर्थात् जिसकी ओर भी एकबार हँ
देख लेते हैं, उसी को परम आनन्द और शांति मिल जाती है।)

दोहा—लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु ॥११७॥

सरल अर्थ—सुन्दर मुनि-मण्डली के बीच में श्री सीता जी और रघुकुल
श्री रामचन्द्र जी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में साक्षात् भक्ति
सच्चिदानन्द शरीर धारण करके विराजमान हैं।

सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता ॥

सरल अर्थ—सीता जी ने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया, क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें देह की सुध-बुध नहीं है। सीता जी को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर भरत जी सोच रहित हो गये और उनके हृदय का कल्पित भय जाता रहा।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥

सरल अर्थ—उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है। मन प्रेम से परिपूर्ण है, वह अपनी गति से खाली है (अर्थात् संकल्प-विकल्प और चाञ्चल्य से शून्य है)। उस अवसर पर केवट (निषादराज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा।

दोहा—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आये बिकल वियोग ॥१२०॥

सरल अर्थ—हे नाथ! मुनिनाथ वसिष्ठ जी के साथ सब माताएँ, नगर-निवासी, सेवक, सेनापति, मन्त्री सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आए हैं।

चौ०-सील सिंधु सुनि गुरु आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू ॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला ॥

सरल अर्थ—गुरु का आगमन सुनकर शील के समुद्र श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी के पास शत्रुघ्न को रख दिया और वे परम धीर, धर्मधुरन्धर, दीनदयालु श्रीरामचन्द्र जी उसी समय वेग के साथ चल पड़े।

गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे ॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥

सरल अर्थ—गुरु जी के दर्शन करके लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्र जी प्रेम मे भर गये और दण्डवत् प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम में उमँगकर वे दोनों भाइयों से मिले।

बिकल सनेहँ सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं ॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा ॥

सरल अर्थ—सीता जी और सब रानियाँ स्नेह के मारे व्याकुल है। तब ज्ञानी गुरु ने सबको बैठ जाने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ वसिष्ठ जी ने जगत् की गति को मायिक कहकर (अर्थात् जगत् माया है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थ की कथाएँ (बातें) कही।

नृप कर सुर पुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी ॥

सरल अर्थ—तदनन्तर वसिष्ठ जी ने राजा दशरथजी के स्वर्ग गमन की बात सुनाई। जिसे सुनकर रघुनाथ जी ने दुःसह दुख पाया और अपने प्रति उनके स्नेह को उनके मरने का कारण विचार कर धीर-धुरन्धर श्री रामचन्द्र जी अत्यन्त व्याकुल हो गये।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू॥

सरल अर्थ—वज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मण जी, सीता जी और सब रानियाँ विलाप करने लगी। सारा समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गया। मानो राजा आज ही मरे हों।

मुनिवर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहुँ न लीन्हा॥

सरल अर्थ—फिर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने श्रीरामचन्द्र जी को समझाया। तब उन्होने समाज सहित श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनी जी मे स्नान किया। उस दिन प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने निर्जल व्रत किया। मुनि वसिष्ठ जी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नही किया।

दोहा—भोरु भयें रघुनन्दनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह॥१२१॥

सरल अर्थ—दूसरे दिन सवेरा होने पर मुनि वसिष्ठ जी ने श्री रघुनाथ को जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने श्रद्धा-भक्ति सहित आदर के साथ किया।

चौ०-करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥

सरल अर्थ—वेदो मे जैसा कहा गया है, उसी के अनुसार पिता की क्रिया करके, पापरूपी अन्धकार के नष्ट करने वाले सूर्यरूप श्रीरामचन्द्र जी शुद्ध हुए। जिनका नाम पापरूपी रुई के (तुरन्त जला डालने के) लिए अग्नि है और जिनका स्मरण मात्र समस्त शुभ मगलो का मूल है।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते॥

सरल अर्थ—वे (नित्य शुद्ध-बुद्ध) भगवान् श्रीरामचन्द्र जी शुद्ध हुए। साधुओ की ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसा ही है जैसा तीर्थों के आवाहन से गगा जी शुद्ध होती हैं। (गंगा जी तो स्वभाव से ही शुद्ध हैं, उनमे जिन तीर्थों का आह्वान किया जाता है उलटे वे ही गंगा जी के सम्पर्क में आने से शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार सच्चिदानन्द रूपी श्रीराम तो नित्य शुद्ध हैं, उनके संसर्ग से कर्म ही शुद्ध हो

गए।) जब युद्ध हुए दो दिन बीत गये तब श्री रामचन्द्र जी प्रीति के साथ गुरु जी से बोले—

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी।।
सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता।।

सरल अर्थ—हे नाथ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। कन्द, मूल, फल और जल का ही आहार करते हैं। भाई शत्रुघ्न सहित भरत को, मंत्रियों को और सब माताओं को देखकर मुझे एक-एक पल युग के समान बीत रहा है।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ।।
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाँई।।

सरल अर्थ—अतः सबके साथ आप अयोध्या पुरी को पधारिये (लौट जाइये)। आप यहाँ हैं और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूनी है)। मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। हे गोसाईं। जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये।

दोहा—धर्म सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ विश्राम।।१२२क।।

सरल अर्थ—(वसिष्ठ जी ने कहा—) हे राम! तुम धर्म के सेतु और दया के धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो? लोग दुखी हैं, दो दिन तुम्हारा दर्शन कर शान्ति लाभ कर लें।

दोहा—सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृङ्ग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग।।१२२ख।।

सरल अर्थ—तालाबों में कमल खिल रहे हैं, और जल के पक्षी कूज रहे हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगों के पक्षी और पशु वन में वैर रहित होकर विहार कर रहे हैं।

चौ०-कोल किरात भिल्ल बनवासी। मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी।।
भरि भरि परनपुटीं रचिरुरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी।।

सरल अर्थ—कोल, किरात और भील आदि वन के रहने वाले लोग पवित्र, सुन्दर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुन्दर दोने बनाकर और उनमें भर-भर कर तथा कंद, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अँटियों) को

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा।।
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं।।

सरल अर्थ—सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजों के अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार), गुण और नाम बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देने में श्रीरामचन्द्र जी की दुहाई देते हैं।

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई॥

सरल अर्थ—आप प्रिय पाहुने बन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे? भीलो की मित्रता तो बस, ईंधन (लकड़ी) और पत्तो ही तक है।

यह हमार अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥

सरल अर्थ—हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़ जीव हैं, जीवो की हिंसा करने वाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनन्दन दरस प्रभाऊ॥

सरल अर्थ—हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं, तो भी न तो हमारी कमर मे कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममे स्वप्न मे कभी भी धर्मबुद्धि कैसी? यह सब तो श्री रघुनाथ जी के दर्शन का प्रभाव है।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

सरल अर्थ—जब से प्रभु के चरन कमल देखे, तब से हमारे दुःसह दुख और दोष मिट गये। वनवासियो के वचन सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गये और उनके भाग्य की सराहना करने लगे।

सो०—बिहरहिं बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम॥१२३॥

सरल अर्थ—सब लोग दिनो-दिन परम आनंदित होते हुए वन में चारो ओर विचरते हैं, जैसे पहली वर्षा के जल से मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)।

दोहा—निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥१२४॥

सरल अर्थ—भरत जी को न तो रात को नींद आती है, न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच मे ऐसे विकल हैं जैसे नीचे (तल) के कीचड में डूबी हुई मछली को जल की कमी से व्याकुलता होती है।

चौ०-कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥

सरल अर्थ—(भरत जी सोचते हैं कि) माता के मिस से काल ने कुचाल की है, जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता।

अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥

सरल अर्थ—गुरु जी की आज्ञा मानकर तो श्री रामचन्द्र जी अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे। परन्तु मुनि वसिष्ठ जी तो श्रीरामचन्द्र जी की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे (अर्थात् वे श्रीरामचन्द्र जी की रुचि देखे बिना जाने को नहीं कहेंगे)। माता कौसल्या जी के कहने से भी श्री रघुनाथ जी लौट सकते हैं, पर भला, श्रीराम जी को जन्म देने वाली माता क्या कभी हठ करेगी।

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हर गिरि तें गुरु सेवक धरमू॥

सरल अर्थ—मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है? उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा; क्योंकि सेवक का धर्म शिव जी के पर्वत कैलाश से भी भारी (निबाहने में कठिन) है।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥

सरल अर्थ—एक भी युक्ति भरत जी के मन में न ठहरी। सोचते ही सोचते रात बीत गई। भरत जी प्रातः काल स्नान करके और प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वसिष्ठ जी ने उनको बुलवा भेजा।

दोहा—गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥१२५॥

सरल अर्थ—भरत जी गुरु के चरण कमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गये। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभी सभासद आकर जुट गये।

चौ०-बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥

सरल अर्थ—श्रेष्ठ मुनि वसिष्ठ जी समयोचित वचन बोले—हे सभासदों! हे सुजान भरत! सुनो सूर्यकुल के सूर्य महाराज श्रीरामचन्द्र जी के धर्मधुरन्धर और स्वतन्त्र भगवान् हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसि पाला। माया जीव करम कुलिकाला॥

सरल अर्थ—नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को श्रीराम जी के समान यथार्थ (तत्त्व से) कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव सभी कर्म और काल,

विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।

कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो

मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।

स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै-

रचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥१३॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो

योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।

चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चित-

स्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं

सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।

लेकर बड़ी ही शीतल और सुगन्धित मन्द-मन्द वायु चल रही थी और उसकी महँकसे मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर मँडरा रहे थे ॥ ११ ॥ शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनी अपनी निराली ही छटा दिखला रही थी। उसके कारण रात्रिके अन्धकारका तो कहीं पता ही न था, सर्वत्र आनन्द-मङ्गलका ही साम्राज्य छाया था। वह पुलिन क्या था, यमुनाजीने स्वयं अपनी लहरोंके हाथों भगवान्‌की लीलाके लिये सुकोमल बालुकाका रंगमञ्च बना रखा था ॥ १२ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंके हृदयमें इतने आनन्द और इतने रसका उल्लास हुआ कि उनके हृदयकी सारी आधि-व्याधि मिट गयी। जैसे कर्मकाण्डकी श्रुतियाँ उसका वर्णन करते-करते अन्तमें ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करने लगती हैं और फिर वे समस्त मनोरथोंसे ऊपर उठ जाती हैं, कृतकृत्य हो जाती हैं—वैसे ही गोपियाँ भी पूर्णकाम हो गयीं। अब उन्होंने अपने वक्षःस्थलपर लगी हुई रोली-केसरसे चिह्नित ओढ़नीको अपने परम प्यारे सुहृद् श्रीकृष्णके विराजनेके लिये बिछा दिया ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े योगेश्वर अपने योग-साधनसे पवित्र किये हुए हृदयमें जिनके लिये आसनकी कल्पना करते रहते हैं, किंतु फिर भी अपने हृदय-सिंहासनपर बिठा नहीं पाते, वही सर्वशक्तिमान् भगवान् यमुनाजीकी रेतीमें गोपियोंकी ओढ़नीपर बैठ गये। सहस्र-सहस्र गोपियोंके बीचमें उनसे पूजित होकर भगवान् बड़े ही शोभायमान हो रहे थे। परीक्षित्! तीनों लोकोंमें—तीनों कालोंमें जितना भी सौन्दर्य प्रकाशित होता है, वह सब तो भगवान्‌के बिन्दुमात्र सौन्दर्यका आभासभर है। वे उसके एकमात्र आश्रय हैं ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपने इस अलौकिक सौन्दर्यके द्वारा उनके प्रेम और आकाङ्क्षाको और भी उभाड़ रहे थे। गोपियोंने अपनी मन्द-मन्द मुसकान, विलासपूर्ण चितवन और तिरछी भौंहोंसे उनका सम्मान किया। किसीने उनके चरणकमलोंको अपनी गोदमें रख लिया, तो किसीने उनके करकमलोंको। वे उनके

१. लक्षित०।

चौ०-तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥

सरल अर्थ—(वे बोले—) हे तात। बात सत्य है, पर है श्री राम जी की कृपा से ही। राम विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिए) आधा छोड़ दिया करते हैं।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

सरल अर्थ—अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन को जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्रीरामचन्द्र जी को लौटा दिया जाय। ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गये। उनके सारे अंग परमानन्द से परिपूर्ण हो गये।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥

सरल अर्थ—उनके मन प्रसन्न हो गये। शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथ जी उठे हों और श्रीरामचंद्र जी राजा हो गये हों। अन्य लोगों को तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई। परन्तु रानियों को दुख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

सरल अर्थ—भरत जी कहने लगे—मुनि ने जो कहा, वह करने से जगत् भर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं) मैं जन्म भर वन में वास करूँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

दोहा—अन्तरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान॥१२७॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी और सीता जी हृदय को जानने वाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ! अपने वचनों को प्रमाण कीजिये (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिये)।

चौ०-भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भये बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥

सरल अर्थ—भरत जी के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वसिष्ठ जी विदेह हो गये (किसी को अपने देह की सुधि न रही)। भरत

जी की महान् महिमा समुद्र है, मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि की सिंधु समाई॥

सरल अर्थ—वह (उस समुद्र के) पार जाना चाहती है, इसके लिए उसने हृदय में उपाय भी ढूंढे ! पर (उसे पार करने का साधन) नाव, जहाज या बेडा कुछ भी नहीं पाती। भरत जी की बड़ाई और कौन करेगा ? तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है ?

भरत मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥

सरल अर्थ—मुनि वसिष्ठजी के अन्तरात्मा को भरत जी बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित श्री राम जी के पास आए। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गये।

बोले मुनिवरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥

सरल अर्थ—श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले—हे सर्वज्ञ ! हे सुजान ! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार राम ! सुनिये—

दोहा—सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥१२८॥

सरल अर्थ—आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं। जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो वही उपाय बतलाइये।

चौ०-आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥

सरल अर्थ—आर्त (दुखी) लोग कभी विचार नहीं करते। जुआरी को अपना ही दांव सूझता है। मुनि के वचन सुनकर श्री रघुनाथ जी कहने लगे—हे नाथ ! उपाय तो आप ही के हाथ है।

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु कियें मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥

सरल अर्थ—आपका रुख रखने मे और आपकी आज्ञा को सत्य कह कर प्रसन्नतापूर्वक पालन करने मे ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँ।

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं । सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा । भरत सनेहँ विचारु न राखा ॥

सरल अर्थ—फिर हे गोसाईं ! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरह से सेवा में लग जायेगा। (आज्ञा पालन करेगा)। मुनि वसिष्ठ जी कहने लगे—हे राम ! तुमने सच कहा; पर भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया।

तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरें जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥

सरल अर्थ—इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि को रखकर जो कुछ किया जायेगा, शिव जी साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा।

दोहा—भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥१२९॥

सरल अर्थ—पहले भरत की विनती आदरपूर्वक सुन लीजिए, फिर उस पर विचार कीजिये। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसी के अनुसार) कीजिए।

चौ०-गुर अनुरागु भरत पर देखीं । राम हृदयँ आनन्दु बिसेषीं ॥
भरतहि धरम धुरंधर जानीं । निजसेवक तन मानस बानीं ॥

सरल अर्थ—भरत जी पर गुरु जी का स्नेह देखकर श्रीरामचन्द्र जी के हृदय में विशेष आनन्द हुआ। भरत जी को धर्म धुरंधर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जानकर।

बोले गुर आयस अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगल मूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत समभाई ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी गुरु की आज्ञा के अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याण के मूल वचन बोले—हे नाथ ! आपकी सौगन्ध और पिता जी के चरणों की दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्व भर में भरत के समान भाई कोई हुआ ही नहीं।

जे गुर पद अंबुज अनुरागीं । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागीं ॥
राउर जा पर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ॥

सरल अर्थ—जो लोग गुरु के चरण-कमलों के अनुरागी हैं, वे लोक में (लौकिक दृष्टि से) भी और वेद में (पारमार्थिक दृष्टि से) भी बड़भागी होते हैं। (फिर) जिस पर आप (गुरु) का स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है ?

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई । करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई । अस कहि राम रहे अरगाई ॥

सरल अर्थ—छोटा भाई जानकर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने मे मेरी बुद्धि सकुचाती है। (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहे, वही करने मे भलाई है। ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्र जी चुप हो रहे।

दोहा—तब मुनि बोले भरतसन सब संकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात ॥१३०॥

सरल अर्थ—तब मुनि भरत जी से बोले—हे तात ! सब संकोच त्यागकर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो।

चौ०-सुनि मुनि बचन राम रुखपाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥

सरल अर्थ—मुनि के वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्र जी का रुख पाकर गुरु तथा स्वामी को भरपेट अपने अनुकूल जानकर सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरत जी कुछ कह नही सकते। वे विचार करने लगे।

पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहितें अधिक कहौं मैं काहा॥

सरल अर्थ—शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हो गये। कमल के समान नेत्रों मे प्रेमाश्रुओं की बाढ आ गई। (वे बोले—) मेरा कहना तो मुनिनाथ ने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥

सरल अर्थ—अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नही करते। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल मे भी कभी उनकी रीस (अप्रसन्नता) नही देखी।

सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥

सरल अर्थ—बचपन से ही मैंने उनका साथ नही छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नही तोड़ा। (मेरे मन के प्रतिकूल कोई काम नही किया)। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय मे भली-भाँति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे है।

दोहा—महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन ॥१३१॥

सरल अर्थ—मैंने भी प्रेम और सकोचवश कभी सामने मुँह नही खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नही हुए।

चौ०-बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा।
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा॥

सरल अर्थ—परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माता के बहाने (मेरे और स्वामी के बीच) अन्तर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता; क्योंकि अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें वही साधु है)।

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥

सरल अर्थ—माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ों दुराचारों के समान है। क्या कोदों की बाली उत्तम धान फल सकती है? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है?

सपनेहुँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥

सरल अर्थ—स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैंने अपने पापों का परिणाम समझे बिना ही माता को कटु वचन कहकर व्यर्थ ही जलाया।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

सरल अर्थ—मैं अपने हृदय में सब ओर खोजकर हार गया (मेरी भलाई का कोई साधन नहीं सूझता)। एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्रीसीताराम जी मेरे स्वामी हैं। इसी से परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है।

दोहा—साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥१३२॥

सरल अर्थ—साधुओं की सभा में गुरु जी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ-स्थान में मैं सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ है या सच? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वसिष्ठ जी और (अन्तर्यामी) श्री रघुनाथ जी जानते हैं।

चौ०-भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नरनारीं॥

सरल अर्थ--प्रेम के प्रण को निबाहकर महाराज (पिता जी) का मरना और माता की कुबुद्धि दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरी के नर-नारी दुःसहताप से जल रहे हैं।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखनसिय साथा॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहिं पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥

सरल अर्थ—मैं इन सारे अनर्थों का मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दुख सहा है। श्रीरघुनाथ जी लक्ष्मण जी और सीता जी के साथ मुनियों का सा वेष धारण कर बिना जूते ही पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वन को चले गये, यह सुनकर, शंकर जी साक्षी हैं मैं इस घाव से भी, जीता रह गया। (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गये)। फिर निषादराज का प्रेम देखकर भी इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)।

अब सबु आँखिन्हं देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई।
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥

सरल अर्थ—अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रहकर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्ते की साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोध को त्याग देती हैं—

दोहा—तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥१३३॥

सरल अर्थ—वे ही श्री रघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर देव दुःसह दुख और किसे सहावेगा।

चौ०-सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू॥

सरल अर्थ—अत्यन्त व्याकुल तथा दुख, प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई भरत जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गये; सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन पर पाला पड़ गया हो।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥

सरल अर्थ—तब ज्ञानी मुनि वसिष्ठ जी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरत जी का समाधान किया। फिर सूर्य कुल रूपी कुमुद वन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनन्दन उचित वचन बोले—

तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥

सरल अर्थ—हे तात! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मत में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों

कालों और (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥

सरल अर्थ—हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करने से यह लोक (यहाँ के सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरने के बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है।

दोहा—मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार॥
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥१३४॥

सरल अर्थ—हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों से समूह मिट जाएँगे तथा इस लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख प्राप्त होगा।

चौ०-कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ॥

सरल अर्थ—हे भरत! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिव जी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी रह रही है। हे तात! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥

सरल अर्थ—पक्षी और पशु मुनियों के पास (बेधड़क) चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले वधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं, फिर मनुष्य-शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार ही है।

तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥

सरल अर्थ—हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ? जी में बड़ा असमञ्जस (दुविधा) है। राजा ने मुझे त्यागकर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण के लिए शरीर छोड़ दिया।

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥

सरल अर्थ—उनके वचन को मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरु जी ने मुझे आज्ञा दी है। इसलिए अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ।

दोहा—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥१३५॥

सरल अर्थ—तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच त्यागकर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्यप्रतिज्ञ रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामजी का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया।

चौ०-कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अन्तरजामी॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला॥

सरल अर्थ—हे स्वामी! हे कृपा के समुद्र! हे अन्तर्यामी! अब मैं (अधिक) क्या कहूँ और क्या कहाऊँ? गुरु महाराज को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जान कर मेरे मलिन मन की कल्पित पीड़ा मिट गई।

अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई॥

सरल अर्थ—मैं मिथ्या डर से ही डर गया था, मेरे सोच की जड़ ही न थी। दिशा भूल जाने पर हे देव! सूर्य का दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की टेढ़ी चाल और काल की कठिनता,

पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥

सरल अर्थ—इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके) मुझे नष्ट कर दिया था। परन्तु शरणागत के रक्षक आपने अपना (शरणागत की रक्षा का) प्रण निबाहा (मुझे बचा लिया)। यह आपकी कोई नई रीति नहीं है। यह लोक और वेदों में प्रकट है, छिपी नहीं है।

जगु अनभल भलएकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥

सरल अर्थ—सारा जगत् बुरा (करने वाला) हो, किन्तु हे स्वामी! केवल एक आप ही भले (अनुकूल) हों, तो फिर कहिए, किसकी भलाई से भला हो सकता है? हे देव! आपके स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, वह न कभी किसी के सम्मुख (अनुकूल) है न विमुख (प्रतिकूल)।

दोहा—जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥१३६॥

सरल अर्थ—उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) को पहचानकर जो उसके पास जाय, तो उसकी छाया ही सारी चिन्ताओं का नाश करने वाली है। राजा-रंक, भले-बुरे जगत् में सभी उससे माँगते ही मन चाही वस्तु पाते हैं।

चौ०-लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू ॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई ॥

सरल अर्थ—गुरु और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मन में कुछ भी सन्देह नहीं रहा। हे दया के खान! अब वही कीजिये जिससे दास के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ (किसी प्रकार का विचार) न हो।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निजहित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥

सरल अर्थ—जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि वह समस्त सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा ही करे।

स्वारथु नाथ फिरें सबही का। कियें रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥

सरल अर्थ—हे नाथ! आपके लौटने में सभी का स्वार्थ है और आपकी आज्ञा पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार (निचोड़) है, समस्त पुण्यों का फल और सम्पूर्ण शुभ गतियों का श्रृङ्गार है।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी ॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥

सरल अर्थ—हे देव! आप मेरी एक विनती सुनकर फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये। राजतिलक की सब सामग्री सजाकर लाई गई है, जो प्रभु का मन माने तो उसे सफल कीजिए (उसका उपयोग कीजिए)।

दोहा—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥१३७॥

सरल अर्थ—छोटे भाई शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेज दीजिए और (अयोध्या लौटकर) सबको सनाथ कीजिये। नहीं तो किसी तरह भी (यदि आप अयोध्या जाने को तैयार न हों) हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ।

चौ०-नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई ॥

सरल अर्थ—अथवा हम तीनों भाई वन चले जायँ और हे श्री रघुनाथ जी! आप श्री सीता जी सहित (अयोध्या को) लौट जाइये! हे दयासागर! जिस प्रकार से प्रभु का मन प्रसन्न हो वही कीजिए।

देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू ॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू ॥

सरल अर्थ—हे देव ! आपने सारा भार (जिम्मेवारी) मुझ पर रख दिया। पर मुझमें न तो नीति का विचार है, न धर्म का। मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ। आर्त (दुखी) मनुष्य के चित्त में चेत (विवेक) नहीं रहता।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥

सरल अर्थ—स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ (कि प्रभु को उत्तर दे रहा हूँ)। किन्तु स्वामी (आप) स्नेहवश साधु कहकर मुझे सराहते हैं।

अब कृपालु मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥

सरल अर्थ—हे कृपालु ! अब तो वही मत मुझे भाता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे। प्रभु के चरणों की शपथ है, मैं सत्य भाव से कहता हूँ, जगत् के कल्याण के लिए एक यही उपाय है।

दोहा—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥१३८॥

सरल अर्थ—प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब सिर चढ़ा-चढ़ाकर (पालन) करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जायेंगी।

चौ०-भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥

सरल अर्थ—भरत जी के पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाये। अयोध्यानिवासी असमंजस के वश हो गये (कि देखें अब श्रीरामजी क्या कहते हैं)। तपस्वी तथा वनवासी लोग (श्रीरामचन्द्र जी के वन में बने रहने की आशा से) मन में परम आनंदित हुए।

चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥

सरल अर्थ—किन्तु संकोची श्री रघुनाथ जी चुप ही रह गये। प्रभु की यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोच में पड़ गई। उसी समय जनक जी के दूत आये। यह सुनकर मुनि वशिष्ठ जी ने उन्हें तुरन्त बुलवा लिया।

करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भये निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥

सरल अर्थ—उन्होंने (आकर) प्रणाम करके श्रीरामचन्द्र जी को देखा।

उनका (मुनियों का-सा) वेष देखकर वे बहुत ही दुखी हुए। मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने दूतों से बात पूछी कि राजा जनक का कुशल-समाचार कहो।

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर बर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥

सरल अर्थ—यह (मुनि का कुशल-प्रश्न) सुनकर, सकुचाकर, पृथ्वी पर मस्तक नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़ कर बोले—हे स्वामी! आपका आदर के साथ पूछना, यही हे गोसाईं! कुशल का कारण हो गया।

दोहा—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥१२७॥

सरल अर्थ—उस समय सब लोग प्रेम में मग्न हैं। इतने में ही मिथिलापति जनक जी को आते हुए सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्र जी सभा-सहित आदर पूर्वक जल्दी से उठ खड़े हुए।

चौ०-भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥

सरल अर्थ—भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियों को साथ लेकर श्री रघुनाथ जी आगे (जनक जी की अगवानी में) चले। जनक जी ने ज्यों ही पर्वत श्रेष्ठ कामदनाथ को देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया (पैदल चलना शुरू कर दिया)।

राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥

सरल अर्थ—श्री रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को रास्ते की थकावट और क्लेश जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है, जहाँ श्रीराम जी एवं जानकी जी है। बिना मन के शरीर के सुख-दुख की सुध किसको हो?

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥

सरल अर्थ—जनक जी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाज सहित उनकी बुद्धि प्रेम में मतवाली हो रही है। निकट आये देखकर सब प्रेम में भर गये और आदरपूर्वक आपस में मिलने लगे।

लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥

सरल अर्थ—जनक जी (वसिष्ठ जी आदि अयोध्यावासी), मुनियों के चरणों की वन्दना करने लगे और श्री रामचन्द्र जी ने (शतानन्द आदि जनकपुरवासी)

स्थूलतामें—या यों कहिये कि जडराज्यमें रहनेवाला मस्तिष्क जब भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंके सम्बन्धमें विचार करने लगता है, तब वह अपनी पूर्व वासनाओंके अनुसार जडराज्यकी धारणाओं, कल्पनाओं और क्रियाओंका ही आरोप उस दिव्य राज्यके विषयमें भी करता है, इसलिये दिव्यलीलाके रहस्यको समझनेमें असमर्थ हो जाता है। यह रास वस्तुतः परम उज्ज्वल रसका एक दिव्य प्रकाश है। जड जगत्‌की बात तो दूर रही, ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत्‌में भी यह प्रकट नहीं होता। अधिक क्या, साक्षात् चिन्मय तत्त्वमें भी इस परम दिव्य उज्ज्वल रसका लेशाभास नहीं देखा जाता। इस परम रसकी स्फूर्ति तो परम भावमयी श्रीकृष्णप्रेमस्वरूपा गोपीजनोंके मधुर हृदयमें ही होती है। इस रासलीलाके यथार्थस्वरूप और परम माधुर्यका आस्वाद उन्हींको मिलता है, दूसरे लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

भगवान्‌के समान ही गोपियाँ भी परमरसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं। साधनाकी दृष्टिसे भी उन्होंने न केवल जड शरीरका ही त्याग कर दिया है, बल्कि सूक्ष्म शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग, कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—और तो क्या, जडताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया है। उनकी दृष्टिमें केवल चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदयमें श्रीकृष्णको तृप्त करनेवाला प्रेमामृत है। उनकी इस अलौकिक स्थितिमें स्थूलशरीर, उसकी स्मृति और उसके सम्बन्धसे होनेवाले अङ्ग-सङ्गकी कल्पना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। ऐसी कल्पना तो केवल देहात्मबुद्धिसे जकड़े हुए जीवोंकी ही होती है। जिन्होंने गोपियोंको पहचाना है, उन्होंने गोपियोंकी चरणधूलिका स्पर्श प्राप्त करके अपनी कृतकृत्यता चाही है। ब्रह्मा, शंकर, उद्धव और अर्जुनने गोपियोंकी उपासना करके भगवान्‌के चरणोंमें वैसे प्रेमका वरदान प्राप्त किया है या प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है। उन गोपियोंके दिव्य भावको साधारण स्त्री-पुरुषके भाव-जैसा मानना गोपियोंके प्रति, भगवान्‌के प्रति और वास्तवमें सत्यके प्रति महान् अन्याय एवं अपराध है। इस अपराधसे बचनेके लिये भगवान्‌की दिव्य लीलाओंपर विचार करते समय उनकी अप्राकृत दिव्यताका स्मरण रखना परमावश्यक है।

भगवान्‌का चिदानन्दघन शरीर दिव्य है। वह अजन्मा और अविनाशी है, हानोपादानरहित है। वह नित्य सनातन शुद्ध भगवत्स्वरूप ही है। इसी प्रकार गोपियाँ दिव्य जगत्‌की—भगवान्‌की स्वरूपभूता अन्तरङ्गशक्तियाँ हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध भी दिव्य ही है। यह उच्चतम भावराज्यकी लीला स्थूल शरीर और स्थूल मनसे परे है। आवरण-भङ्गके अनन्तर अर्थात् चीरहरण करके जब भगवान् स्वीकृति देते हैं, तब इसमें प्रवेश होता है।

प्राकृत देहका निर्माण होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन देहोंके संयोगसे। जबतक 'कारण-शरीर' रहता है, तबतक इस प्राकृत देहसे जीवको छुटकारा नहीं मिलता। 'कारण-शरीर' कहते हैं पूर्वकृत कर्मोंके उन संस्कारोंको, जो देह-निर्माणमें कारण होते हैं। इस 'कारण-शरीर'के आधारपर जीवको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ना होता है और यह चक्र जीवकी मुक्ति न होनेतक अथवा 'कारण' का सर्वथा अभाव न होनेतक चलता ही रहता है। इसी कर्मबन्धनके कारण पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर मिलता है—जो रक्त, मांस, अस्थि आदिसे भरा और चमड़ेसे ढका होता है। प्रकृतिके राज्यमें जितने शरीर होते हैं, सभी वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं; फिर चाहे कोई कामजनित निकृष्ट मैथुनसे उत्पन्न हो या ऊर्ध्वरेता महापुरुषके सङ्कल्पसे, बिन्दुके अधोगामी होनेपर कर्तव्यरूप श्रेष्ठ मैथुनसे हो, अथवा बिना ही मैथुनके नाभि, हृदय, कण्ठ, कर्ण, नेत्र, सिर, मस्तक आदिके स्पर्शसे, बिना ही स्पर्शके केवल दृष्टिमात्रसे अथवा बिना देखे केवल सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हो। ये मैथुनी-अमैथुनी (अथवा कभी-कभी स्त्री या पुरुष-शरीरके बिना भी उत्पन्न होनेवाले) सभी शरीर हैं योनि और बिन्दुके संयोगजनित ही। ये सभी प्राकृत शरीर हैं। इसी प्रकार योगियोंके द्वारा निर्मित 'निर्माणकाय' यद्यपि अपेक्षाकृत शुद्ध हैं, परंतु वे भी हैं प्राकृत ही। पितर या देवोंके दिव्य कहलानेवाले शरीर

चौ०-तापस वेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोषु बिसेषी ॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ॥

सरल अर्थ—सीता जी को तपस्विनी-वेष में देखकर जनक जी को विशेष प्रेम और संतोष हुआ। (उन्होंने कहा—) बेटी! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिये। तेरे निर्मल यश से सारा जगत् उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कोई कहते है।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किये साधु समाज घनेरे ॥

सरल अर्थ—तेरी कीर्तिरूपी नदी देव नदी गंगा जी को भी जीतकर (जो एक ही ब्रह्माण्ड में बहती है) करोड़ों ब्रह्माण्डों में बह चली है। गंगा जी ने तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और गंगासागर) को बड़ा (तीर्थ) बनाया है। पर तेरी इस कीर्ति-नदी ने तो अनेकों संत-समाजरूपी तीर्थ स्थान बना दिये हैं।

पितु कहँ सत्य सनेहँ सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी ॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई ॥

सरल अर्थ—पिता जनक जी ने तो स्नेह से सच्ची सुन्दर वाणी कही। परन्तु अपनी बड़ाई सुनकर सीता जी मानों संकोच में समा गयीं। पिता-माता ने उन्हें फिर हृदय से लगा लिया और हितभरी सुन्दर सीख और आशिष दी।

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं ॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ॥

सरल अर्थ—सीता जी कुछ कहती नहीं हैं, परन्तु मन में सकुचा रही हैं कि रात में (सासुओं की सेवा छोड़कर) यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयना जी ने जानकी जी का रुख देखकर (उनके मन की बात समझकर) राजा जनक जी को जना दिया। तब दोनों अपने हृदयों में सीता जी के शील और स्वभाव की सराहना करने लगे।

दोहा—बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि ॥१४२क॥

सरल अर्थ—राजा-रानी ने बार-बार मिलकर और हृदय से लगाकर तथा सम्मान करके सीता जी को विदा किया। चतुर रानी ने समय पाकर राजा से सुन्दर वाणी में भरत जी की दशा का वर्णन किया।

दोहा—निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि ॥
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि ॥१४२ख॥

सरल अर्थ—भरत जी असीम गुण सम्पन्न और उपमा रहित पुरुष हैं। भरत जी के समान बस, भरत जी ही है, ऐसा जानो। सुमेरु पर्वत को क्या सेर के बराबर कह सकते हैं? इसलिए (उन्हें किसी पुरुष के साथ उपमा देने में) कवि समाज की बुद्धि भी सकुचा गई।

चौ०-अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

सरल अर्थ—हे श्रेष्ठ वर्णवाली! भरत जी की महिमा का वर्णन करना सभी के लिये वैसे ही अगम है जैसे जल रहित पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी! सुनो, भरत जी की अपरिमित महिमा को एक श्री रामचन्द्र जी ही जानते हैं, किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सबकर भल सबके मन माहीं॥

सरल अर्थ—इस प्रकार प्रेम पूर्वक भरत जी के प्रभाव का वर्णन करके फिर पत्नी के मन की रुचि जानकर राजा ने कहा—लक्ष्मण जी लौट जायें और भरत जी वन को जायें, इसमें सभी का भला है और यही सबके मन में है।

देबि परतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥

सरल अर्थ—परन्तु हे देवी! भरत जी और श्री रामचन्द्र जी का प्रेम और एक दूसरे पर विश्वास बुद्धि और विचार की सीमा में नहीं आ सकता। यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी समता की सीमा हैं तथापि भरत जी प्रेम और ममता की सीमा हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

सरल अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी के प्रति अनन्य प्रेम को छोड़कर) भरत जी ने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखों की ओर स्वप्न में भी मन से भी नहीं ताका है। श्री रामचन्द्र जी के चरणों का प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है। मुझे तो भरत जी का बस यही एक मात्र सिद्धान्त जान पड़ता है।

दोहा—भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥१४३क॥

सरल अर्थ—राजा ने बिलखकर (प्रेम से गद्‌गद होकर) कहा—भरत जी भूलकर भी श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा को मन से भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेह के वश होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

दोहा—राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सबके संमत सर्ब हित करिअ पेमु पहिचानि॥१४३ख॥

सरल अर्थ—अतएव मुझे पराधीन जानकर (मुझसे न पूछकर) श्री रामचन्द्र जी के रुख (रुचि), धर्म और (सत्य के) व्रत को रखते हुए, जो सबके सम्मत और सबके लिये हितकारी हो आप सबका प्रेम पहचानकर वही कीजिए।

चौ०-भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे ॥

सरल अर्थ—भरत जी के वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक उनकी सराहना करने लगे। भरत जी के वचन सुगम और अगम, सुन्दर, कोमल और कठोर हैं। उनमें अक्षर थोड़े हैं, परन्तु अर्थ अत्यन्त अपार भरा हुआ है।

ज्यों मुखु मुकुर मुकरु निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी ॥
भूप भरतु मुनि सहित समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू ॥

सरल अर्थ—जैसे मुख (का प्रतिबिम्ब) दर्पण में दीखता है और दर्पण अपने हाथ में है; फिर भी वह (मुख का प्रतिबिम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरत जी की यह अद्भुत वाणी भी पकड़ में नहीं आती। (शब्दों से उसका आशय समझ में नहीं आता। (किसी से कुछ उत्तर देते नहीं बना) तब राजा जनक जी, भरत जी तथा मुनि वसिष्ठ जी समाज के साथ वहाँ गये जहाँ देवतारूपी कुमुदों के खिलाने वाले (सुख देने वाले) चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी थे।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा ॥
देवँ प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेषी ॥

सरल अर्थ—यह समाचार सुनकर सब लोग सोच से व्याकुल हो गये, जैसे नये (पहली वर्षा के) जल के संयोग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु वसिष्ठ जी की (प्रेम विह्वल) दशा देखी, फिर विदेह जी के विशेष स्नेह को देखा;

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे ॥
सब कोउ राम पेममय पेखा। भये अलेख सोच बस लेखा ॥

सरल अर्थ—और तब श्री राम भक्ति से ओत-प्रोत भरत जी को देखा। इन सबको देखकर स्वार्थी देवता घबड़ा कर हृदय में हार मान गये (निराश हो गये)। उन्होंने सब किसी को श्रीराम प्रेम में सराबोर देखा। इससे देवता इतने सोच के वश हो गये कि जिसका कोई हिसाब नहीं।

दोहा—भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहि जथा जोगु जनु पाइ ॥१४४॥

सरल अर्थ—भरत जी, जनक जी, मुनिजन, मन्त्री और ज्ञानी साधु-संतों को छोड़कर अन्य सभी पर जिस मनुष्य को जिस योग्य (जिस प्रकृति और जिस स्थिति का) पाया, उस पर वैसे ही देवमाया लग गयी।

चौ०-कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेहँ सुरपति छल भारे ॥
सभा राउ गुर महिसुर मन्त्री। भरत भगति सबकै मति जंत्री ॥

सरल अर्थ—कृपा सिन्धु श्रीरामचन्द्र जी ने लोगों को अपने स्नेह और देवराज इन्द्र के भारी छल से दुखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मन्त्री आदि सभी की बुद्धि को भरत जी की भक्ति ने कील दिया।

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति विनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥

सरल अर्थ—सब लोग चित्र लिखे-से श्रीरामचन्द्र जी की ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए सिखाए हुए-से वचन बोलते हैं। भरत जी की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने मे सुख देने वाली है, पर उसके वर्णन करने में कठिनता है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी॥

सरल अर्थ—जिनकी भक्ति का लवलेश देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनक जी प्रेम में मग्न हो गये, उन भरत जी की महिमा तुलसीदास कैसे कहे? उनकी भक्ति और सुन्दर भाव से (कवि के) हृदय मे सुबुद्धि हुलस रही है (विकसित हो रही है)।

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥

सरल अर्थ—परन्तु वह बुद्धि अपने को छोटी और भरत जी की महिमा को बड़ी जानकर कवि परम्परा की मर्यादा को मानकर सकुचा गई (उसका वर्णन करने का साहस न कर सकी)। उसकी गुणो मे रुचि तो बहुत है, पर उन्हे कह नही सकती। बुद्धि की गति बालक के वचनो की तरह हो गई (वह कुण्ठित हो गई!)।

दोहा—भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥१४५क॥

सरल अर्थ—भरत जी का निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है और कवि की सुबुद्धि चकोरी है, जो भक्तो के हृदय रूपी निर्मल आकाश मे उस चन्द्रमा को उदित देख कर उसकी ओर टकटकी लगाए देखती ही रह गई है (तब उसका वर्णन कौन करे?)

दोहा—देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ॥१४५ख॥

सरल अर्थ—हे देव! स्वामी (आप) के अभिषेक के लिए गुरु जी की आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थों का जल लेता आया हूँ, उसके लिये क्या आज्ञा होती है?

चौ०-एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभयँ सकोच जात कहि नाहीं॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥

सरल अर्थ—मेरे मन मे एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोच के कारण कहा नहीं जाता। (श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—) हे भाई! कहो। तब प्रभु की आज्ञा पाकर भरत जी स्नेहपूर्ण सुन्दर वाणी बोले—

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवौं देखी ॥

सरल अर्थ—आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थान, तीर्थ, वन, पक्षी-पशु, तालाब-नदी, झरने और पर्वतों के समूह तथा विशेषकर प्रभु (आप) के चरण-चिह्नों से अंकित भूमि को देख आऊँ।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू ॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता ॥

सरल अर्थ—(श्रीरघुनाथ जी बोले—) अवश्य ही अत्रि ऋषि की आज्ञा को सिर पर धारण करो (उनसे पूछकर वे जैसा कहें वैसा करो) और निर्भय होकर वन में विचरो। हे भाई! अत्रि मुनि के प्रसाद से वन मंगलों को देने वाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है—।

रिषि नायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं ॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा ॥

सरल अर्थ और ऋषियों के प्रमुख अत्रि जी जहाँ आज्ञा दें, वहीं (लाया हुआ) तीर्थों का जल स्थापित कर देना। प्रभु के वचन सुनकर भरत जी ने सुख पाया और आनंदित होकर मुनि अत्रि जी के चरण कमलों में सिर नवाया।

दोहा---भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल ॥१९६क॥

सरल अर्थ—समस्त सुन्दर मंगलों का मूल भरत जी और श्रीरामचन्द्र जी का संवाद सुनकर स्वार्थी देवता रघुकुल की सराहना करके कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।

दोहा---दीनबन्धु सुनि बन्धु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन ॥१९६ख॥

सरल अर्थ—दीनबन्धु और परम चतुर श्रीरामजी भाई भरत के दीन और छल रहित वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल वचन बोले—

चौ०-तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिन्ता गुरहि नृपहि घर बन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ॥

सरल अर्थ—हे तात! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिन्ता गुरु वसिष्ठ जी और महाराज जनक जी को है। हमारे सिर पर जब गुरु जी, मुनि विश्वामित्र जी और मिथिलापति जनक जी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न में भी क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई ॥

सरल अर्थ—मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिता जी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहि न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

सरल अर्थ—गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने से पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधि पर उसका पालन करो।

देसु कोस परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरु भारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानो। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

सरल अर्थ—देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरु जी की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठ जी, माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना।

दोहा—मुखिआ मुखु सो चाहिये खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक॥१४७॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं—(श्रीरामजी ने कहा—) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

चौ०-राजधरम सरबसु एत नोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई॥
बन्धु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥

सरल अर्थ—राजधर्म का सर्वस्व (सार) भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्रीरघुनाथ जी ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया। परन्तु कोई अवलम्ब पाये बिना उनके मन में न तो संतोष हुआ, न शांति।

भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥

सरल अर्थ—इधर तो भरत जी का शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति! यह देखकर श्रीरघुनाथ जी संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत हो गये। (अर्थात् भरत जी के प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किन्तु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है।) आखिर (भरत जी के प्रेमवश) प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने कृपाकर खड़ाऊँ दे दीं और भरत जी ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण कर लिया।

चरन पीठ करुना निधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥

सरल अर्थ—करुणानिधान श्रीरामचन्द्र जी के दोनों खड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरत जी के प्रेम रूपी रत्न के लिये मानो डिब्बा है और जीव के साधन के लिये मानो रामनाम के दो अक्षर हैं।

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के ।।
भरत मुदित अवलम्ब लहे तें। अस,सुख जस सिय रामु रहे तें ।।

सरल अर्थ—रघुकुल (की रक्षा) के लिये दो किवाड़ हैं। कुशल (श्रेष्ठ) कर्म करने के लिये दो हाथ की भाँति (सहायक) हैं। और सेवारूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिए निर्मल नेत्र हैं। भरत जी इस अवलम्ब के मिल जाने से परम आनंदित है। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसे श्री सीताराम जी के रहने से होता।

दोहा—मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ।।१४८क।।

सरल अर्थ—भरत जी ने प्रणाम करके विदा माँगी। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इधर कुटिल इन्द्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया।

दोहा—सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर ।।१४८ख।।

सरल अर्थ—छोटे भाई लक्ष्मण जी और सीता जी समेत प्रभु श्री रामचन्द्र जी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण करके शोभित हो रहे हैं।

दोहा—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासनु प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ।।१४८ग।।

सरल अर्थ—भरत जी ने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) साधकर प्रभु की चरण पादुकाओं को निर्विघ्नता पूर्वक सिंहासन पर विराजित कराया।

चौ०-राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ।।
नंदि गाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ।।

सरल अर्थ—फिर श्रीरामजी माता कौशल्या जी और गुरु जी के चरणों में सिर नवाकर और प्रभु की चरण पादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्म की धुरी धारण करने में धीर भरत जी ने नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर उसी में निवास किया।

जटाजूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी ।।
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ।।

सरल अर्थ—सिर पर जटा जूट और शरीर में मुनियों के (वल्कल) वस्त्र धारण कर, पृथ्वी को खोदकर उसके अंदर कुश की आसनी बिछाई। भोजन, वस्त्र,

बरतन, व्रत, नियम—सभी बातों में वे ऋषियों के कठिन धर्म प्रेम सहित आचरण करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई ॥

सरल अर्थ—गहने-कपड़े और अनेकों प्रकार के भोग-सुखों को मन, तन और वचन से तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज्य को देवराज इन्द्र सिहाते थे और (जहाँ के राजा) दशरथ जी की सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे,

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥

सरल अर्थ—उसी अयोध्यापुरी में भरत जी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं जैसे चम्पा के बाग में भौंरा। श्रीरामचन्द्र जी के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास (भोगैश्वर्य) को वमन की भाँति त्याग देते हैं (फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं)।

दोहा—राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति ॥१४८॥

सरल अर्थ—फिर भरत जी तो (स्वयं) श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम के पात्र हैं। वे इस (भोगैश्वर्य त्याग रूप) करनी से बड़े नहीं हुए (अर्थात् उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है)। (पृथ्वी पर का जल न पीने की) टेक से चातक की और नीर-क्षीर-विवेक की विभूति (शक्ति) से हंस की भी सराहना होती है।

चौ०-देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुख छबि सोई ॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना ॥

सरल अर्थ—भरत जी का शरीर दिनों-दिन दुबला होता जाता है। तेज (अन्न, घृत आदि से उत्पन्न होने वाला मेद)[1] घट रहा है। बल और मुख छवि (मुख की कान्ति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है। राम-प्रेम का प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्म का दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात् प्रसन्न है)।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥

सरल अर्थ—जैसे शरद ऋतु के प्रकाश (विकास) से जल घटता है, किन्तु बेंत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं। शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि भरतजी के हृदयरूपी निर्मल आकाश नक्षत्र (तारागण) हैं।

---

१. संस्कृत कोश में 'तेज' का अर्थ मेद मिलता है और यह अर्थ लेने से 'घटइ' के अर्थ में भी किसी प्रकार की खींच-तान नहीं करनी पड़ती।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी । स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी ॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा । सहित समाज सोह नित चोखा ॥

सरल अर्थ—विश्वास ही (उस आकाश में) ध्रुवतारा है, चौदह वर्ष की अवधि (का ध्यान) पूर्णिमा के समान है और स्वामी श्रीरामचन्द्र जी की सुरति (स्मृति) आकाश-गङ्गा-सरीखी प्रकाशित है। राम प्रेम ही अचल (सदा रहने वाला) और कलङ्क रहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (नक्षत्रों) सहित नित्य सुन्दर सुशोभित है।

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥

सरल अर्थ—भरत जी की रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल गुण और ऐश्वर्य का वर्णन करने में सभी सुकवि सकुचाते हैं, क्योंकि वहाँ (औरों की तो बात ही क्या) स्वयं शेष, गणेश और सरस्वती की भी पहुँच नहीं है।

दोहा—नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत राजकाज बहु भाँति ॥१५०॥

सरल अर्थ—वे नित्य प्रति प्रभु की पादुकाओं का पूजन करते हैं, हृदय में प्रेम समाता नहीं है। पादुकाओं से आज्ञा माँग-माँग कर वे बहुत प्रकार (सब प्रकार) के राज-काज करते हैं।

सो०-भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम-पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति ॥१५१॥

सरल अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं—जो कोई भरतजी के चरित्र को नियम से आदर पूर्वक सुनेंगे उनको अवश्य ही श्रीसीताराम जी के चरणों में प्रेम होगा और सांसारिक विषय रस से वैराग्य होगा।

□□

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

१०. श्री रामचरितमानस

तृतीय सोपान

(अरण्यकाण्ड)

सो०-उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥१॥

सरल अर्थ—हे पार्वती जी ! श्रीराम जी के गुण गूढ़ हैं; पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो भगवान् से विमुख हैं और जिनका धर्म में प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ (उन्हें सुनकर) मोह को प्राप्त होते हैं।

चौ०-पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नरमुनि भावन ॥

सरल अर्थ—पुरवासियों के और भरत जी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियों के मन को भाने वाले प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वन में कर रहे हैं।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुन्दर ॥

सरल अर्थ—एक बार सुन्दर फूल चुनकर श्रीराम जी ने अपने हाथों से भाँति-भाँति के गहने बनाए और सुन्दर स्फटिक शिला पर बैठे हुए प्रभु ने आदर के साथ वे गहने श्री सीता जी को पहनाए।

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा ॥

सरल अर्थ—देवराज इन्द्र का मूर्ख पुत्र जयन्त कौए का रूप धर कर श्री रघुनाथ जी का बल देखना चाहता है। जैसे मन्द बुद्धि चींटी समुद्र का थाह पाना चाहती हो।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना ॥

सरल अर्थ—वह मूढ़, मन्दबुद्धि कारण से (भगवान् के बल की परीक्षा करने के लिए) बना हुआ कौवा सीता जी के चरणों में चोंच मारकर भागा। जब रक्त

वह चला, तब श्री रघुनाथ जी ने जाना और धनुष पर सींक (सरकंडे) का बाण संन्धान किया।

दोहा—अति कृपालु रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह ॥२॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी, जो अत्यन्त कृपालु हैं और जिनका दीनों पर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणों के घर मूर्ख जयन्त ने आकर छल किया।

चौ०-प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥

सरल अर्थ—मंत्र से प्रेरित वह ब्रह्म बाण दौड़ा। कौवा भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्र के पास गया, पर श्री राम जी का विरोधी जानकर इन्द्र ने उसको नहीं रखा।

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥

सरल अर्थ—तब वह निराश हो गया, उसके मन में भय उत्पन्न हो गया; जैसे दुर्वासा ऋषि को चक्र से भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकों में थका हुआ और भय-शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा।

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरि जाना॥

सरल अर्थ—(पर रखना तो दूर रहा) किसी ने उसे बैठने तक के लिए नहीं कहा। श्री राम जी के द्रोही को कौन रख सकता है? (काक भुशुण्डि जी कहते हैं–) हे गरुड़! सुनिये, उसके लिए माता मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान और अमृत विष के समान हो जाता है।

मित्र करइ सत रिपु के करनी। ता कहँ बिबुध नदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥

सरल अर्थ—मित्र सैकड़ों शत्रुओं की सी करने लगता है। देव नदी गंगा जी उसके लिए वैतरणी (यमपुरी की नदी) हो जाती है। हे भाई! सुनिये, जो श्री रघुनाथ जी के विमुख होता है, समस्त जगत् उसके लिए अग्नि से भी अधिक गरम (जलाने वाला) हो जाता है।

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥

सरल अर्थ—नारद जी ने जयंत को व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गई; क्योंकि संतों का चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे (समझाकर) तुरन्त श्रीराम जी के पास भेज दिया। उसने (जाकर) पुकार कर कहा—हे शरणागत के हितकारी! मेरी रक्षा कीजिये।

आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥२८॥

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ।

विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥२९॥

तमन्वधावद् गोविन्दो यत्र यत्र स धावति ।

जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥३०॥

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ।

जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ॥३१॥

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ।

अग्रजायाददात्[1] प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥३२॥

वेगसे क्षणभरमें ही उस नीच यक्षके पास पहुँच गये ॥२८॥ यक्षने देखा कि काल और मृत्युके समान ये दोनों भाई मेरे पास आ पहुँचे। तब वह मूढ़ घबड़ा गया। उसने गोपियोंको वहीं छोड़ दिया, स्वयं प्राण बचानेके लिये भागा ॥ २९ ॥ तब स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये बलरामजी तो वहीं खड़े रह गये, परंतु भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ-जहाँ वह भागकर गया, उसके पीछे-पीछे दौड़ते गये। वे चाहते थे कि उसके सिरकी चूड़ामणि निकाल लें ॥३०॥ कुछ ही दूर जानेपर भगवान्‌ने उसे पकड़ लिया और उस दुष्टके सिरपर कसकर एक घूँसा जमाया और चूड़ामणिके साथ उसका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने शङ्खचूडको मारकर और वह चमकीली मणि लेकर लौट आये तथा सब गोपियोंके सामने ही उन्होंने बड़े प्रेमसे यह मणि बड़े भाई बलरामजीको दे दी ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे[1] शङ्खचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

युगलगीत

श्रीशुक उवाच

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।

कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके गौओंको चरानेके लिये प्रतिदिन वनमें चले जानेपर उनके साथ गोपियोंका चित्त भी चला जाता था। उनका मन श्रीकृष्णका चिन्तन करता रहता और वे वाणीसे उनकी लीलाओंका गान करती रहतीं। इस प्रकार वे बड़ी कठिनाईसे अपना दिन बितातीं ॥ १ ॥

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रूरधरार्पितवेणुम् ।

कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः[2]

गोपियाँ आपसमें कहतीं—अरी सखी ! अपने प्रेमीजनोंको प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालोंतकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोलको बायीं बाँहकी ओर लटका देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंको उनके छेदोंपर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपत्नियाँ आकाशमें अपने

१. प्राचीन प्रतिमें 'पूर्वार्धे' यह पाठ नहीं है। २. वादयामिरवान्।

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिये मूल फल प्रभु मन भाए॥

सरल अर्थ—श्री राम जी की छवि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदर-पूर्वक अपने आश्रम में ले आए। पूजन करके, सुन्दर वचन कहकर मुनि ने मूल और फल दिये, जो प्रभु के मन को बहुत रुचे।

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि॥
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥४॥

सरल अर्थ—प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देख कर प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—

चौ०-अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥

सरल अर्थ—फिर परम शीलवती और विनम्र श्री सीता जी (अत्रि जी की पत्नी) अनुसूया जी के चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषि पत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशिष देकर सीता जी को पास बैठा लिया।

दिव्य बसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सुहाए॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी॥

सरल अर्थ—और उन्होंने ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये, जो नित्य नये, निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषि पत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से स्त्रियों के कुछ धर्म बखानकर कहने लगीं—

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

सरल अर्थ—हे राजकुमारी! सुनिये—माता, पिता, भाई सभी हित करने वाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमा तक ही (सुख) देने वाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो (मोक्षरूप) असीम (सुख) देने वाला है। वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखि अहिं चारी॥
बृद्ध रोगबश जड़ धनहीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥

सरल अर्थ—धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री—इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन—

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

सरल अर्थ—ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भांति-भांति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

सरल अर्थ—जगत् मे चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन मे ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत् में (मेरे पति को छोड़कर) दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है।

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहइ॥

सरल अर्थ—मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई हो, पिता या पुत्र हो। (अर्थात् समान अवस्था वाले को वह भाई के रूप मे देखती है बडे को पिता के रूप मे और छोटे को पुत्र के रूप मे देखती है।) जो धर्म को विचार कर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट (निम्न श्रेणी की) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं।

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥

सरल अर्थ—और जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत् मे उसे अधम स्त्री जानना। पति को धोखा देने वाली जो स्त्री पराये पति से रति करती है, वह तो सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥

सरल अर्थ – क्षण भर के सुख के लिए जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मो के दुख को नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी? जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

सरल अर्थ—किन्तु जो पति के प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी मे) विधवा हो जाती है।

सो०—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥५क॥

सरल अर्थ – स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पातिव्रत-धर्म के कारण ही) आज भी 'तुलसी जी' भगवान् को प्रिय हैं और चारो वेद उनका यश गाते हैं।

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा ससार हित॥५ख॥

सरल अर्थ—हे सीता ! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत-धर्म का पालन करेंगी। तुम्हें तो श्रीराम जी प्राणों के समान प्रिय हैं; यह (पातिव्रत-धर्म की) कथा तो मैंने संसार के हित के लिए कही है।

चौ०-मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
आगे राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें ॥

सरल अर्थ—मुनि के चरण कमलों में सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी वन को चले। आगे श्रीराम जी हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मण जी हैं। दोनों ही मुनियों का सुन्दर वेष बनाए अत्यन्त सुशोभित हैं।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥

सरल अर्थ—दोनों के बीच में श्री जानकी जी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो। नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ सभी अपने स्वामी को पहचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥

सरल अर्थ--जहाँ-जहाँ देव श्री रघुनाथ जी जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाश में छाया करते हैं।

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥

सरल अर्थ—हड्डियों का ढेर देखकर श्रीरघुनाथ जी को बड़ी दया आयी, उन्होंने मुनियों से पूछा।

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सब दरसी तुम्ह अन्तरजामी ॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥

सरल अर्थ—(मुनियों ने कहा –) हे स्वामी ! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अन्तर्यामी (सबके हृदय की जानने वाले) हैं। जानते हुए भी (अनजान की तरह) हमसे कैसे पूछ रहे हैं ? राक्षसों के दलों ने सब मुनियों को खा डाला है (ये सब उन्हीं की हड्डियों के ढेर हैं)। यह सुनते ही श्री रघुबीर के नेत्रों में जल छा गया (उनकी आँखों में करुणा के आँसू भर आए)।

दोहा—निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥९क॥

सरल अर्थ—श्रीराम जी ने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूंगा। फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनको (दर्शन एवं सम्भाषण का) सुख दिया।

दोहा—मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर ॥१२॥

सरल अर्थ—मुनियो के समूह मे श्रीरामचन्द्र जी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात् प्रत्येक मुनि को श्रीराम जी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखाई देते हैं और सब मुनि टकटकी लगाये उनके मुख को देख रहे हैं)। ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरों का समुदाय शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की ओर देख रहा हो।

चौ०-तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ॥

सरल अर्थ—तब श्रीराम जी ने मुनि से कहा—हे प्रभु! आपसे तो कुछ छिपाव है नहीं। मैं जिस कारण से आया हूँ, वह आप जानते ही हैं। इसी से हे तात! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा।

अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही॥
मुनि मुसकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥

सरल अर्थ—हे प्रभो! अब आप मुझे वही मंत्र (सलाह) दीजिये, जिस प्रकार मैं मुनियो के द्रोही राक्षसो को मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनि मुस्कराये और बोले—हे नाथ! आपने क्या समझकर मुझसे यह प्रश्न किया है?

तुम्हरेहँ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया॥

सरल अर्थ—हे पापो का नाश करने वाले! मैं तो आप ही के भजन के प्रभाव से आपकी कुछ थोड़ी-सी माया जानता हूँ। आपकी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है। अनेको ब्रह्माण्डों के समूह ही जिसके फल हैं—

जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला॥

सरल अर्थ—चर और अचर जीव (गूलर के फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे) जन्तुओ के समान उन (ब्रह्माण्ड रूपी फलो) के भीतर बसते हैं और वे (अपने उस छोटे से जगत् के सिवा) दूसरा कुछ नहीं जानते। उन फलो का भक्षण करने वाला कठिन और कराल काल है। वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है।

है प्रभु परम मनोहर ठाउँ। पावन पंचवटी तेहि नाउँ॥
दण्डक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥

सरल अर्थ—हे प्रभो! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है; उसका नाम पंचवटी है। हे प्रभो! आप दण्डक वन को (जहाँ पंचवटी है) पवित्र कीजिए और श्रेष्ठ मुनि गौतम जी के कठोर शाप को हर लीजिये।

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचवटी निअराई॥

सरल अर्थ—हे रघुकुल के स्वामी! आप सब मुनियों पर दया करके वहीं निवास कीजिये। मुनि की आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्र जी वहाँ से चल दिये और शीघ्र ही पंचवटी के निकट पहुँच गये।

दोहा—गीधराज सें भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ ॥७॥

सरल अर्थ—वहाँ गृध्रराज जटायु से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्रीरामचन्द्र जी गोदावरी के समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे।

चौ०-जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाये। दिन दिनप्रति अति होहिं सुहाए॥

सरल अर्थ—जब से श्री रामचन्द्र जी ने वहाँ निवास किया तब से मुनि सुखी हो गये, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभा से छा गये। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने (मालूम) होने लगे।

खग मृग बृंद अनन्दित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥

सरल अर्थ—पक्षी और पशुओं के समूह आनंदित रहते हैं और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष श्रीरामचन्द्र जी विराजमान हैं, उस वन का वर्णन सर्पराज शेष जी भी नहीं कर सकते।

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥

सरल अर्थ—एक बार श्रीरामचन्द्र जी सुख से बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मण जी ने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे—हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचर के स्वामी! मैं अपने प्रभु की तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥

सरल अर्थ—हे देव! मुझे समझाकर वही कहिये, जिससे सब छोड़कर मैं आप की चरण रज की ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिये, और उस भक्ति को कहिए जिसके कारण आप दया करते हैं।

दोहा—ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥८॥

सरल अर्थ—हे प्रभो! ईश्वर और जीव का भेद भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायँ।

चौ०-थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तें माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥

सरल अर्थ—(श्रीराम जी ने कहा—) हे तात ! मैं थोड़े ही में सब समझा कर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो। मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश मे कर रखा है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥

सरल अर्थ—इन्द्रियो के विषयों को और जहाँ तक मन जाता है, हे भाई ! उस सब को माया जानना। उसके भी—एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनो भेदो को तुम सुनो—

एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥

सरल अर्थ—एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यन्त दुखरूप है और जिसके वश होकर जीव संसार रूपी कुएँ मे पड़ा हुआ है। और एक (विद्या) जिसके वश मे गुण है और जो जगत् की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है; उसके अपना बल कुछ भी नही है।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥

सरल अर्थ—ज्ञान वह है जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी (दोष) नही है और जो सबमे समान रूप से ब्रह्म को देखता है। हे तात ! उसी को परम वैराग्यवान् कहना चाहिए जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणो को तिनके के समान त्याग चुका हो।

(जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्य सेवा का अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मन का निग्रहीत न होना, इन्द्रियो के विषय मे आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत् मे सुख बुद्धि, स्त्री-पुत्र, घर आदि मे आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति मे हर्ष-शोक, भक्ति का अभाव, एकान्त मे मन न लगना, विषयी मनुष्यो के संग मे प्रेम—ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) मे स्थिति तथा तत्त्व ज्ञान के अर्थ (तत्त्व ज्ञान के द्वारा जानने योग्य) परमात्मा का नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है। (देखिए गीता अ० १३।७ से ११).

दोहा—माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव ॥१५॥

सरल अर्थ—जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नही जानता, उसे जीव कहना चाहिए। जो (कर्मानुसार) बन्धन और मोक्ष देने वाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है वह ईश्वर है।

चौ०-भगति जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ।।
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती । कहत बिराग ग्यान गुन नीती ।।

सरल अर्थ--इस भक्ति योग को सुनकर लक्ष्मण जी ने अत्यन्त सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाया । इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये ।

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ।।
पंचबटी सो गइ एक बारा । देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ।।

सरल अर्थ—शूर्पणखा नामक रावण की एक बहिन थी, जो नागिन के समान भयानक और दुष्ट हृदय की थी । वह एक बार पंचवटी में गई और दोनों राजकुमारों को देखकर विकल (काम से पीड़ित) हो गई ।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।।
होइ बिकल सक मनहि न रोकी ।जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ।।

सरल अर्थ—(काक भुशुण्डि जी कहते हैं—) हे गरुड़ जी ! (शूर्पणखा—जैसी राक्षसी, धर्म ज्ञान-शून्य-कामान्ध) स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मन को रोक नहीं सकती । जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वाला से पिघल जाती है) ।

रुचिर रूप धरि प्रभुपहिं जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ।।
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह संजोग बिधि रचा बिचारी ।।

सरल अर्थ—वह सुन्दर रूप धरकर प्रभु के पास जाकर और बहुत मुसकराकर वचन बोली—न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री । विधाता ने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचार कर रचा है ।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ।।
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।।

सरल अर्थ—मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत् भर में नहीं है, मैंने तीनों लोकों को खोज देखा । इसी से मैं अब तक कुमारी (अविवाहित) रही । अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है ।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ।।
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ।।

सरल अर्थ—सीता जी की ओर देखकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है । तब वह लक्ष्मण जी के पास गई । लक्ष्मण जी उसे शत्रु की बहिन समझकर और प्रभु की ओर देखकर कोमल वाणी से बोले—

सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ।
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा । जो कछु करहि उनहि सब छाजा ।।

सरल अर्थ—हे सुन्दरी ! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ; अतः तुम्हें सुभीता (सुख) न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुर के राजा हैं, वे जो कुछ करें उन्हें सब फबता है।

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी ।।
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ।।

सरल अर्थ—सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, शराब आदि का व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, और अभिमानी चारों फल अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाश को दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असम्भव बात को सम्भव करना चाहते हैं)।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ।।
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई ।।

सरल अर्थ—वह लौटकर फिर श्रीरामचन्द्र जी के पास आई। प्रभु ने उसे फिर लक्ष्मण जी के पास भेज दिया। लक्ष्मण जी ने कहा—तुम्हे वही वरेगा जो लज्जा को तृण तोड़कर (अर्थात् प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा (अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा)।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई ।।
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई ।।

सरल अर्थ—तब वह खिसियाई हुई (क्रुद्ध होकर) श्रीराम जी के पास गई और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। सीता जी को भयभीत देखकर श्री रघुनाथ जी ने लक्ष्मण जी को इशारा देकर कहा—

दोहा—लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि ।।१०।।

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी ने बड़ी फुर्ती से उसको बिना नाक-कान की कर दिया। मानो उसके हाथ रावण को चुनौती दी हो।

चौ०-नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ।।
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ।।

सरल अर्थ—बिना नाक-कान के वह विकराल हो गई। (उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा) मानो काले पर्वत से गेरू की धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषण के पास गयी (और बोली—) हे भाई ! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बल को धिक्कार है।

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई ।।
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ।।

सरल अर्थ—उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखा ने सब समझाकर कहा। सब सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की। राक्षस समूह झुण्ड-के-झुण्ड दौड़े। मानो पक्षधारी काजल के पर्वतों का झुण्ड हो।

नाना वाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा ।।
सूपनखा आगे करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ।।

सरल अर्थ—वे अनेकों प्रकार की सवारियों पर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं, वे अपार हैं और अनेकों प्रकार के असंख्य भयानक हथियार धारण किये हुए है। उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमंगलरूपणि शूर्पणखा को आगे कर लिया।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी ।।
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं ।।

सरल अर्थ – अनगिनत भयंकर अशकुन हो रहे हैं। परन्तु मृत्यु के वश होने के कारण वे सब-के-सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाश में उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं।

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई ।।
धूरि पूरि नभ मण्डल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा ।।

सरल अर्थ—कोई कहता है दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो, पकड़ कर मार डालो और स्त्री को छीन लो। आकाश मण्डल धूल से भर गया। तब श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी को बुलाकर उनसे कहा—

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर ।।
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी ।।

सरल अर्थ—राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकी जी को लेकर तुम पर्वत की कन्दरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचन्द्र जी के वचन सुनकर लक्ष्मण जी हाथ में धनुष-बाण लिये श्री सीता जी सहित चले।

देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन को दण्ड चढ़ावा ।।

सरल अर्थ—शत्रुओं की सेना (समीप) चली आई है, यह देखकर श्री राम जी ने हँसकर कठिन धनुष को चढ़ाया।

सो०-आइ गये बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट ।।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज ।।११।।

सरल अर्थ—'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेजी से) दौड़े हुए आए (और उन्होंने श्री राम जी को चारों ओर से घेर लिया), जैसे बाल सूर्य (उदयकालीन सूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं।

चौ०-प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ।।
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन ।।

सरल अर्थ—(सौन्दर्य-माधुर्य-निधि) प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को देखकर राक्षसों की सेना चकित रह गई। वे उन पर बाण नहीं छोड़ सके। मन्त्री को बुलाकर खर-दूषण ने कहा—यह राजकुमार कोई मनुष्यों का भूषण है।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई॥

सरल अर्थ—जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमे से हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयो! सुनो, हमने जन्म भर मे ऐसी सुन्दरता कहीं नही देखी।

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥

सरल अर्थ—यद्यपि इन्होंने हमारी बहिन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष बध करने योग्य नहीं हैं। छिपाई हुई अपनी स्त्री हमें तुरन्त दे दो और दोनों भाई जीते-जी घर लौट जाओ।

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥

सरल अर्थ—मेरा यह कथन तुम लोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतो ने जाकर यह सन्देश श्री रामचन्द्र जी से कहा। उसे सुनते ही श्री रामचन्द्र जी मुस्कराकर बोले—

हम छत्री मृगया बन करही। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरही॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरही। एक बार कालहु सन लरही॥

सरल अर्थ—हम क्षत्रिय हैं, वन मे शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट पशुओं को तो ढूंढते ही फिरते हैं। हम बलवान शत्रु को देखकर नहीं डरते। (लड़ने को आवें तो) एक बार तो हम काल से भी लड सकते हैं।

जद्यपि मनुज दनुज-कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥

सरल अर्थ—यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्य कुल का नाश करने वाले मुनियों की रक्षा करने वाले हैं। हम बालक हैं, परन्तु हैं दुष्टों को दण्ड देने वाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राम में पीठ दिखाने वाले किसी को मैं नहीं मारता।

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषण उर अति दहेऊ॥

सरल अर्थ—रण मे चढ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रु पर कृपा (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतों ने लौटकर तुरन्त सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषण का हृदय अत्यन्त जल उठा।

दोहा—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति॥१९ क॥

सरल अर्थ—फिर वे शत्रु को बलवान जानकर सावधान होकर दौड़े और श्री रामचन्द्र जी के ऊपर बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे।

दोहा—तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर ।।१२ख ।।

सरल अर्थ—श्री रघुवीर जी ने उनके हथियारों को तिल के समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला। फिर धनुष को कान तक तानकर अपने तीर छोड़े।

छन्द—कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं।।
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा।।

सरल अर्थ—सियार कटकटाते हैं, भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं (अथवा खप्पर भर रहे हैं), वीर बैताल खोपड़ियों पर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। श्री रघुवीर के प्रचण्ड बाण योद्धाओं के वक्षःस्थल, भुजा और सिरों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं। फिर उठते हैं और लड़ते हैं और पकड़ो-पकड़ो का भयंकर शब्द करते हैं।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं।।
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।।
दस दस बिसिख उर माझ मारें सकल निसिचर नायका।।

सरल अर्थ—अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बार में श्री रघुवीर पर छोड़ने लगे। प्रभु ने पल भर में शत्रुओं के बाणों को काटकर ललकार कर उन पर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस-सेनापतियों के हृदय में दस-दस बाण मारे।

दोहा—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान ।।१३।।

सरल अर्थ—सब (यही राम है, इसे मारो इस प्रकार) राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान श्रीराम जी ने यह उपाय करके क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला।

चौ०-धुआँ देखि खर दूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा।।
बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी।।

सरल अर्थ—खर-दूषण का विध्वंस देखकर शूर्पणखा ने जाकर रावण को भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली—तूने देश और खजाने की सुधि ही भुला दी है।

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।।
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।।

विद्या बिनु बिवेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥

सरल अर्थ—शराब पी लेता है और दिन रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है? नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान् को समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किए बिना विद्या पढ़ने से परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है। विषयों के संग से सन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरापान से लज्जा,

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

सरल अर्थ—नम्रता के बिना (नम्रता न होने से) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान् शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है।

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥१४॥

सरल अर्थ—शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिए। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी।

दोहा—सभा माँझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥१५॥

सरल अर्थ—(रावण की) सभा के बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकार से रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते जी मेरी क्या दशा ऐसी होनी चाहिए?

चौ०-सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तव नासा कान निपाता॥

सरल अर्थ—शूर्पणखा के वचन सुनते ही सभासद् अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखा की बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया। लंकापति रावण ने कहा—अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिए?

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये बिचरत मुनि कानन॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥

सरल अर्थ—जिनकी भुजाओं का बल पाकर हे दशमुख! मुनि लोग वन में निर्भय होकर विचरने लगे हैं। वे देखने में तो बालक हैं, पर हैं काल के समान। वे परम वीर, श्रेष्ठ धनुर्धर और अनेकों गुणों से युक्त हैं।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥

सरल अर्थ—दोनों भाइयों का बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टों के वध करने में लगे हैं और देवता तथा मुनियों को सुख देने वाले हैं। वे शोभा के धाम हैं, राम ऐसा उनका नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुन्दरी स्त्री है।

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥

सरल अर्थ—विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेव की स्त्री) उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक-कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे।

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता ॥

सरल अर्थ—मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आए पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खर-दूषण और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे।

दोहा—सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहुभाँति।
गयउ भवन अति सोच बस नीद परइ नहिं राति ॥१६॥

सरल अर्थ—उसने शूर्पणखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया, किन्तु (मन में) वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महल में गया, उसे रात भर नींद नहीं पड़ी।

चौ०-सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥

सरल अर्थ—(वह मन ही मन विचार करने लगा—) देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में ऐसा कोई नहीं जो मेरे सेवक को भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान थे। उन्हें भगवान् के सिवाय और कौन मार सकता है।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥

सरल अर्थ—देवताओं को आनन्द देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान् ने ही यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु से बाण (के आघात) से प्राण छोड़कर भव सागर से तर जाऊँगा।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूप सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥

सरल अर्थ—इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं, अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्यरूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीत कर उनकी स्त्री को हर लूँगा।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥

सरल अर्थ—(यों विचार कर) रावण रथ पर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला—जहाँ समुद्र के तट पर मारीच रहता था। (शिव जी कहते हैं कि—) हे पार्वती ! यहाँ श्री रामचन्द्र जी ने जैसी युक्ति रची, वह सुन्दर कथा सुनो।

दोहा—लछिमन गये बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनक सुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृन्द ॥१७॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी जब कन्द-मूल-फल लेने के लिए वन में गये तब (अकेले में) कृपा और सुख के समूह श्री रामचन्द्र जी हँसकर जानकी जी से बोले—

चौ०-सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥

सरल अर्थ – हे प्रिये ! हे सुन्दर पातिव्रत-धर्म का पालन करने वाली सुशीले ! सुनो ! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो।

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥

सरल अर्थ—श्री राम जी ने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्री सीता जी प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गईं। सीता जी ने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके जैसे ही शील स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी।

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥

सरल अर्थ—भगवान् ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्य को लक्ष्मण जी ने भी नहीं जाना। स्वार्थ-परायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया।

नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

सरल अर्थ—नीच का झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुखदायी होता है। जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी ! दुष्ट की मीठी वाणी भी (उसी प्रकार) भय देने वाली होती है, जैसे बिना ऋतु के फूल।

दोहा—करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात ॥१८॥

सरल अर्थ—तब मारीच ने उनकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी—हे तात ! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले ही आए हैं ?

चौ०-दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥

सरल अर्थ—भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही (और फिर कहा—) तुम छल करने वाले कपट मृग बनो, जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ।

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नर रूप चराचर ईसा ।।
तासों तात बयरु नहिं कीजै । मारें मरिअ जिआएँ जीजै ।।

सरल अर्थ—तब उसने (मारीच ने) कहा—हे दशशीश ! सुनिये । वे मनुष्य के रूप में चराचर के ईश्वर हैं । हे तात ! उनसे वैर न कीजिये । उन्हीं के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है (सबका जीवन-मरण उन्हीं के अधीन है) ।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ।।
सत जोजन आयउँ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं ।।

सरल अर्थ—यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे । उस समय श्री रघुनाथ जी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षण भर में सौ योजन पर आ गिरा । उनसे वैर करने में भलाई नहीं है ।

भइ मम कीट भृङ्ग की नाईं । जहँ तहँ मैं देखेउँ दोउ भाई ।।
जौं नर तात तदपि अति सूरा । तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ।।

सरल अर्थ—मेरी दशा तो भृङ्गी के कीड़े की सी हो गई है । अब मैं जहाँ-तहाँ श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखता हूँ । और हे तात ! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं । उनसे विरोध करने में पूरा न पड़ेगा (सफलता न मिलेगी) ।

दोहा—जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर को दण्ड ।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड ।।१९।।

सरल अर्थ—जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिव जी का धनुष तोड़ दिया और खर-दूषण और त्रिशिरा का बध कर डाला ऐसा प्रचण्ड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है ?

चौ०-जाहु भवन कुल कुसल बिचारी । सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ।।
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा । कहु जग मोहि समान को जोधा ।।

सरल अर्थ—अतः अपने कुल की कुशल विचार कर आप घर लौट जाइये । यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे) । (कहा—) अरे मूर्ख ! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है ? बता तो, संसार में मेरे समान योद्धा कौन है ?

तब मारीच हृदयँ अनुमाना । नवहि बिरोधे नहिं कल्याना ।।
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि भानस गुनी ।।

सरल अर्थ—तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जानने वाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया इन नौ व्यक्तियों से विरोध (वैर) करने में कल्याण (कुशल) नहीं होता ।

उभय भाँति देखा निज मरना । तब ताकिसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें । कस न मरौं रघुपति सर लागें ॥

सरल अर्थ—जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा, तब उसने श्री रघुनाथ जी की शरण तकी (अर्थात् उनकी शरण जाने में ही कल्याण समझा)। (सोचा कि) उत्तर देते ही (नाहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्री रघुनाथ जी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ?

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला रामपद प्रेम अभंगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही ॥

सरल अर्थ—हृदय में ऐसा समझकर वह रावण के साथ चला। श्री राम जी के चरणों में उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मन में इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही श्रीरामचन्द्र जी को देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया।

दोहा—मम पाछें धर धावत धरें सरासन-बान ।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन ॥२०॥

सरल अर्थ—धनुष-बाण धारण किये मेरे पीछे-पीछे पृथ्वी पर (पकड़ने के लिए) दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर-फिर कर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है।

चौ०—तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥

सरल अर्थ—जब रावण उस वन (जिस वन में श्री रघुनाथ जी रहते थे) के निकट पहुँचा, तब मारीच कपट मृग बन गया। वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों से जड़कर बनाया था।

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुन्दर छाला ॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी ने उस परम सुन्दर हिरन को देखा, जिसके अंग-अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। (वे कहने लगीं—) हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिये। इस मृग की छाल बहुत ही सुन्दर है।

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन ॥

सरल अर्थ—जानकी जी ने कहा—हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये। तब श्रीरघुनाथ जी ने (मारीच के कपट मृग बनने का) सब कारण जानते हुए भी, देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे।

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥

सरल अर्थ—हिरन को देखकर श्रीराम जी ने कमर में फेंटा बाँधा और हाथ में धनुष लेकर उस पर सुन्दर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मण जी को समझाकर कहा—हे भाई! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं।

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥

सरल अर्थ—तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीता जी की रखवाली करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्री रामचन्द्र जी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥

सरल अर्थ—वेद जिनके विषय में 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिव जी भी उन्हें ध्यान में नहीं पाते (अर्थात् जो मन और वाणी से नितांत परे हैं) वे ही श्री रामचन्द्र जी की माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥

सरल अर्थ—इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्री रामचन्द्र जी ने तककर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, (जिसके लगते ही) वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥

सरल अर्थ—पहले लक्ष्मण जी का नाम लेकर उसके पीछे मन में श्रीराम जी का स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्रीराम जी का स्मरण किया।

अन्तर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

सरल अर्थ—सुजान (सर्वज्ञ) श्रीरामचन्द्र जी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति (परमपद) दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

दोहा—बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबन्धु रघुनाथ॥२१॥

सरल अर्थ—देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं (कि) श्रीरघुनाथ जी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को भी अपना परम पद दे दिया।

चौ०-खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता ॥

सरल अर्थ—दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरन्त लौट पड़े। हाथ में धनुष और कमर में तरकश शोभा दे रहा है। इधर जब सीता जी ने दुखभरी वाणी (मरते समय मारीच की 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मण जी से कहने लगी—

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥

सरल अर्थ—तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकट में हैं। लक्ष्मण जी ने हँसकर कहा—हे माता! सुनो, जिनके भृकुटिविलास (भौं के इशारे) मात्र से सारी सृष्टि का लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्रीरामचन्द्र जी क्या कभी स्वप्न में भी संकट में पड़ सकते हैं?

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू ॥

सरल अर्थ—इस पर सीता जी कुछ मर्म वचन (हृदय में चुभने वाले वचन) कहने लगी, तब भगवान् की प्रेरणा से लक्ष्मण जी का मन भी चंचल हो उठा। वे श्री सीता जी को वन और दिशाओं के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावण रूपी चन्द्रमा के लिए राहुरूपी श्रीराम जी थे।

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं ॥

सरल अर्थ—रावण सूना मौका देखकर यति (सन्यासी) के वेष में श्री सीता जी के समीप आया। जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में (भरपेट) अन्न नहीं खाते।

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥

सरल अर्थ—वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई (चोरी) के लिए चला। (काक भुशुण्डि जी कहते हैं—) हे गरुड़ जी! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता।

नोट :—भड़िहाई—सूना पाकर कुत्ता चुपके से बर्तन भाँड़ों में मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है, उसे भड़िहाई कहते हैं।

नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥

सरल अर्थ—रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सीता जी को राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया। सीता जी ने कहा—हे यति गोसाईं ! सुनो। तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे।

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥

सरल अर्थ—तब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीता जी भयभीत हो गईं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा—अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह, प्रभु आ गये।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि काल बस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥

सरल अर्थ—जैसे सिंह की स्त्री को तुच्छ खरगोश चाहें, वैसे ही अरे राक्षस-राज ! तू (मेरी चाह करके) काल के वश में हुआ है। ये वचन सुनते ही रावण को क्रोध आ गया। परन्तु मन में उसने सीता जी के चरणों की वन्दना करके सुख माना।

दोहा—क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाई।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥२२॥

सरल अर्थ—फिर क्रोध में भरकर रावण ने सीता जी को रथ पर बैठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला; किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था।

चौ०-हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया ॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥

सरल अर्थ—(सीता जी विलाप कर रही थीं—) हा जगत् के अद्वितीय वीर श्री रघुवीर जी ! आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दुःखों के हरने वाले, हे शरणागत को सुख देने वाले, हा रघुकुल रूपी कमल के सूर्य !

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउ रोसा ॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥

सरल अर्थ—हा लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। श्री जानकी जी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं—(हाय) प्रभु की कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं।

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी ॥

सरल अर्थ—प्रभु को यह मेरी विपत्ति कौन सुनावे ? यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है। सीता जी का भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुखी हो गये।

गीधराज सुनि आरत बानी । रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई । जिमि मलेछ बस कपिला गाई ॥

सरल अर्थ—गृध्रराज जटायु ने सीता जी की दुखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि वे रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र जी की पत्नी हैं। (उसने देखा कि) नीच राक्षस इनको (बुरी तरह) लिये जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गई हो।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहउँ जातुधान कर नासा ॥
धावा क्रोधवंत खग कैसे । छूटइ पबि परबत कहुँ जैसे ॥

सरल अर्थ—(वह बोला—) हे सीते ! हे पुत्री ! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। (यह कहकर) वह पक्षी क्रोध मे भरकर कैसे दौड़ा, जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही । निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतांत समाना । फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥

सरल अर्थ—(उसने ललकार कर कहा—) रे-रे दुष्ट ! खड़ा क्यो नही होता ? निडर होकर चल दिया। मुझे तूने नही जाना ? उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन मे अनुमान करने लगा—

की मैनाक कि खगपति होई । मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा । मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥

सरल अर्थ—यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियो का स्वामी गरुड़ ! पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है। (कुछ पास आने पर) रावण ने उसे पहचान लिया (और बोला—) यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथ रूपी तीर्थ मे शरीर छोड़ेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू । नाहि त अस होइहि बहुबाहू ॥

सरल अर्थ—यह सुनते ही गीध क्रोध मे भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला—रावण ! मेरी सिखावन सुन। जानकी जी को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नही तो हे बहुत भुजाओ वाले ! ऐसा होगा कि—

राम रोष पावक अति घोरा । होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा । तबहि गीध धावा करि क्रोधा ॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी के क्रोध रूपी अत्यन्त भयानक अग्नि मे तेरा सारा वंश पतिंगा (होकर भस्म) हो जाएगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा।

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही॥

सरल अर्थ - उसने (रावण के) बाल पकड़कर उसे रथ के नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीता जी को एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचों से मार-मार कर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गई।

तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी॥

सरल अर्थ—तब खिसियाये हुए रावण ने क्रोध युक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायु के पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) श्री रामचन्द्र जी की अद्भुत लीला का स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥
करति विलाप जाति नभ सीता। व्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥

सरल अर्थ—सीता जी को फिर रथ पर चढ़ा कर रावण बड़ी उतावली के साथ चला, उसे भय कम न था। सीता जी आकाश में विलाप करती जा रही हैं। मानो व्याध के वश में पड़ी हुई (जाल में फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हों।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। वन असोक महँ राखत भयऊ॥

सरल अर्थ—पर्वत पर बैठे हुए बन्दरों को देखकर श्री सीता जी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीता जी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रक्खा।

दोहा—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराई॥२३क॥

सरल अर्थ—सीता जी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न करके (यह व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया।

दोहा—जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम॥२३ख॥

सरल अर्थ—जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्रीरामचन्द्र जी दौड़ चले थे, उसी छवि को हृदय में रखकर वे हरिनाम (राम-राम) रटती रही हैं।

चौ०-रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिन्ता कीन्हि बिसेषी॥
जनक सुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥

सरल अर्थ—(इधर) श्री रघुनाथ जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को आते देख कर बाह्यरूप में बहुत चिंता की (और कहा—) हे भाई! तुमने जानकी जी को अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ चले आए।

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं । मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी । कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥

सरल अर्थ—राक्षसों के झुण्ड वन मे फिरते रहते हैं। मेरे मन मे ऐसा आता है कि सीता जी आश्रम मे नहीं हैं। छोटे भाई लक्ष्मण जी ने श्रीरामचन्द्र जी के चरणकमलों को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥
आश्रम देखि जानकी हीना । भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी सहित श्रीरामचन्द्र जी वहाँ गये जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकी जी से रहित देखकर श्रीरामचन्द्र जी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दीन (दुखी) हो गये।

हा गुन खानि जानकी सीता । रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाये बहु भांती । पूछत चले लता तरु पांती ॥

सरल अर्थ—(वे विलाप करने लगे—) हा, गुणों की खानि जानकी ! हा, रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते ! लक्ष्मण जी ने बहुत प्रकार से समझाया तब श्रीरामचन्द्र जी लताओं और वृक्षों की पत्तियों से पूछते हुए चले—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैयनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥

सरल अर्थ—हे पक्षियो ! हे पशुओ ! हे भौंरो की पंक्तियो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है ? खजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरो का समूह, प्रवीण कोयल,

कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रससा ॥

सरल अर्थ—कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा और नागिनी, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह—ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं।

श्रीफल कनक कदलि हरषाही । नेकु न संक सकुच मन माही ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥

सरल अर्थ—बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मन मे जरा भी शंका और संकोच नहीं है। हे जानकी ! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानो राज पा गये हो। (अर्थात् तुम्हारे अंगों के सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे। आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभा के अभिमान में फूल रहे हैं।)

पूरन काम राम सुखरासी । मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥
आगें परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

सरल अर्थ—पूर्णकाम, आनन्द की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्री राम जी मनुष्यों के-से चरित्र कर रहे हैं। आगे (जाने पर) उन्होंने गृध्रपति जटायु को पड़ा देखा। वह श्री राम जी के चरणों का स्मरण कर रहा था, जिनमें (ध्वजा, कुलिश आदि की) रेखाएँ (चिह्न) हैं।

दोहा—कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ॥२४॥

सरल अर्थ—कृपासागर श्री रघुवीर ने अपने कर कमल से उसके सिर का स्पर्श किया (उसके सिर पर करकमल फेर दिया)। शोभा धाम श्री रामचन्द्र जी का (परम सुन्दर) मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही।

चौ०-तब कह गीध बचन धरि धीरा । सुनहु राम भंजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही । तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥

सरल अर्थ—तब धीरज धरकर गीध ने यह वचन कहा—हे भव (जन्म-मृत्यु) के भय का नाश करने वाले श्री रामचन्द्र जी ! सुनिये। हे नाथ ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकी जी को हर लिया है।

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं । बिलपति अति कुररी की नाईं ॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना । चलन चहत अब कृपा निधाना ॥

सरल अर्थ—हे गोसाईं। वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीता जी कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थीं। हे प्रभो ! मैंने आपके दर्शनों के लिए ही प्राण रोक रक्खे थे। हे कृपानिधान ! अब ये चलना ही चाहते हैं।

राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाई कही तेहिं बाता ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने कहा—हे तात ! शरीर को बनाए रखिये। तब उसने मुसकराते हुए मुँह से यह बात कही—मरते समय जिनका नाम मुख में आ जाने से अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं।

सो मम लोचन गोचर आगें । राखौं देह नाथ केहि खाँगें ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई । तात कर्म निज तें गति पाई ॥

सरल अर्थ—वही (आप) मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ ! अब मैं किस कमी (की पूर्ति) के लिए देह को रक्खूं ? नेत्रों में जल भर कर श्री रघुनाथ जी कहने लगे—हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से (दुर्लभ) गति पाई है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ काह तुम्ह पूरन कामा ॥

सरल अर्थ—जिनके मन में दूसरे का हित बसता है (समाया रहता है) उनके लिए जगत् में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाइये । मैं आपको क्या दूँ ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं)।

दोहा—सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥२५क॥

सरल अर्थ—हे तात ! सीता-हरण की बात आप जाकर पिता जी से न कहिएगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा।

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ॥२५ख॥

सरल अर्थ—अखण्ड भक्ति का वर माँग कर गृध्रराज जटायु श्री हरि के परम धाम को चला गया। श्री रामचन्द्र जी ने उसकी (दाह कर्म आदि) सारी क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से की।

ताहि देइ गति राम उदारा । सबरी के आश्रम पगु धारा ॥
सबरी देखि राम गृहँ आए । मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ॥

सरल अर्थ—उदार श्री राम जी उसे गति देकर शबरी जी के आश्रम में पधारे। शबरी जी ने श्री रामचन्द्र जी को घर में आये देखा, तब मुनि मतंग जी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला । जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई । सबरी परी चरन लपटाई ॥

सरल अर्थ—कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरी जी लिपट पड़ीं।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुन्दर आसन बैठारे ॥

सरल अर्थ—वे प्रेम में मग्न हो गईं, मुख से वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण कमलों में सिर नवा रही हैं। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनों पर बैठाया।

दोहा—कंद मूल फल सुरस अति दिये राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥२६॥

सरल अर्थ—उन्होंने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्री रामचन्द्र जी को दिये। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

चौ०-पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥

सरल अर्थ—फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गईं। प्रभु को देखकर उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। (उन्होंने कहा—) मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ।

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मति मन्द अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥

सरल अर्थ—जो अधम से भी अधम हैं स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन! मैं मन्द बुद्धि हूँ। श्री रघुनाथ जी ने कहा—हे भामिनी! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्ति ही का सम्बन्ध मानता हूँ।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

सरल अर्थ—जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता—इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जल-हीन बादल (शोभाहीन) दिखाई पड़ता है।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबर गामिनी॥

सरल अर्थ—मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनी! अब यदि तू गजगामिनी जानकी की कुछ खबर जानती हो, तो बता।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मति धीरा॥

सरल अर्थ—(शबरी ने कहा—) हे रघुनाथ जी! आप पंपा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझ से पूछ रहे हैं।

बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥

सरल अर्थ—बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर, प्रेम सहित उसने सब कथा सुनाई।

दोहा—जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥२७॥

सरल अर्थ—जो नीच जाति की और पापों की जन्म भूमि थी, ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है ।

चौ०-चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने उस वन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलनीय बलवान् और मनुष्यों में सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं।

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥
नारि सहित सब खग मृग बृन्दा। मानहुँ मोरि करतहहिं निंदा ॥

सरल अर्थ—हे लक्ष्मण ! जरा वन की शोभा तो देखो; इसे देखकर किसका मन मुग्ध नहीं होगा ? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानो वे मेरी निन्दा कर रहे हैं।

हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए ॥

सरल अर्थ—हमें देखकर (जब डरके मारे) हिरनों के झुण्ड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती है—तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनों से पैदा हुए हो, अतः तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आए हैं।

संग लाइ करिनी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं ॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ॥

सरल अर्थ—हाथी हथिनियों के साथ लगा लेते हैं, वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं (कि स्त्री को कभी अकेला नहीं छोड़ना चाहिए)। भली-भांति चिन्तन किए हुए शास्त्र को भी बार-बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा करते हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिए।

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ॥

सरल अर्थ—और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रखा जाय, परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते। हे तात ! इस सुन्दर वसन्त को तो देखो, प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

दोहा—बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बग- मेल ॥२८॥

सरल अर्थ—मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिल्कुल अकेला-अकेला जानकर कामदेव ने वन, भौंरो और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया।

चौ०-उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गये सरोबर तीरा । पंपा नाम सुभग गम्भीरा ॥

सरल अर्थ—हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ—हरि का भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न (की भाँति झूठा) है, फिर प्रभु श्रीरामचन्द्र जी पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये ।

संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहिं विविध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

सरल अर्थ—उसका जल संतों के हृदय जैसा निर्मल है । मन को हरने वाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं । भाँति-भाँति के पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं । मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी हो ।

बिकसे सरसिज नानारंगा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जलकुक्कुट कल हंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥

सरल अर्थ—उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं । बहुत से भौंरे मधुर स्वर से गुंजार कर रहे हैं । जल के मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं । मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों ।

चक्रवाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥

सरल अर्थ—चक्रवाक बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता । सुन्दर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है मानो (रास्ते में) जाते हुए पथिक को बुलाए लेती हो ।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ॥

सरल अर्थ—उस झील (पंपा सरोवर) के समीप मुनियों ने आश्रम बना रखे हैं । उसके चारों ओर बन के सुन्दर वृक्ष हैं । चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि ।

नव पलल्व कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥

सरल अर्थ—बहुत प्रकार के वृक्ष नए-नए पत्तों और (सुगंधित) पुष्पों से युक्त हैं, (जिन पर) भौरों के समूह गुंजार कर रहे है । स्वभाव से ही शीतल, मन्द, सुगंधित एवं मन को हरने वाली हवा सदा बहती रहती है ।

दोहा—फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराई ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ॥२९क॥

सरल अर्थ—फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं । जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर (विनय से) झुक जाते हैं ।

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ॥२८ख॥

सरल अर्थ—जो लोग रावण के शत्रु श्री रामचन्द्र जी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे वे वैराग्य, जप और योग के बिना ही श्री रामचन्द्र जी की दृढ़ भक्ति पावेंगे।

दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग ॥
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सत संग ॥२८ग॥

सरल अर्थ—युवती स्त्रियों का शरीर दीपक के लौ के समान है, हे मन! तू उसका पतंगा न बन। काम और मद को छोड़कर श्रीरामचन्द्र जी का भजन कर और सदा सत्संग कर।

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

१०. श्री रामचरितमानस

चतुर्थ सोपान

(किष्किन्धा काण्ड)

सो०—मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥१॥

सरल अर्थ—जहाँ श्री शिव-पार्वती बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्म भूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करने वाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय?

जरत सकल सुर बृन्द विषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मन्द को कृपाल संकर सरिस ॥२॥

सरल अर्थ—जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे, उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, हे मन्द मन! तू उन शंकर जी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु (और) कौन है?

चौ०-आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत निअराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बलसींवा॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया। वहाँ (ऋष्यमूक पर्वत पर) मंत्रियों सहित सुग्रीव रहते थे। अतुलनीय बल की सीमा श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को आते देखकर—

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥

सरल अर्थ—सुग्रीव अत्यन्त भयभीत होकर बोले—हे हनुमान्! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदय में उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारे से समझाकर कह देना।

पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

सरल अर्थ—यदि वे मन के मलिन बालि के भेजे हुए हों तो मैं तुरन्त ही इस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ। (यह सुनकर) हनुमान् जी ब्राह्मण का रूप धर कर वहाँ गये और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे।

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥

सरल अर्थ—हे वीर! साँवले और गोरे शरीर वाले आप कौन हैं, जो क्षत्रिय के रूप में वन में फिर रहे हैं! हे स्वामी! कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलने वाले आप किस कारण वन में विचर रहे हैं?

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥

सरल अर्थ—मन को हरण करने वाले आपके सुन्दर, कोमल अंग हैं और आप वन के दुःसह धूप और वायु को सह रहे हैं। क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं में से कोई हैं, या आप दोनों नर और नारायण हैं?

दोहा—जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥१॥

सरल अर्थ—अथवा आप जगत् के मूल कारण और सम्पूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान् हैं, जिन्होंने लोगों को भव सागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिये मनुष्य रूप में अवतार लिया है।

चौ०-कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥

सरल अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी ने कहा) हम कोसलराज दशरथ जी के पुत्र हैं और पिता का वचन मानकर वन आए हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी।

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

सरल अर्थ—यहाँ (वन में) राक्षस ने (मेरी पत्नी) जानकी को हर लिया है। हे ब्राह्मण! हम उसे ही खोजते-फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया, अब हे ब्राह्मण! अपनी कथा समझाकर कहिये।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥

सरल अर्थ—प्रभु को पहचान कर हनुमान् जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े (उन्होंने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया)। (शिवजी कहते हैं—) हे पार्वती! यह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुख से वचन नहीं निकलता। वे प्रभु के सुन्दर वेष की रचना देख रहे हैं।

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

सरल अर्थ—फिर धीरज धरकर स्तुति की। अपने नाथ को पहचान लेने से हृदय में हर्ष हो रहा है। (फिर हनुमान् जी ने कहा—) हे स्वामी! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था, (वर्षों के बाद आपको देखा, वह भी तपस्वी के वेष में और मेरी वानरी बुद्धि, इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थिति के अनुसार मैंने आपसे पूछा।) परन्तु आप मनुष्य की तरह कैसे पूछ रहे हैं?

तब माया बस फिरउँ भुलाना। ता तें मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

सरल अर्थ—मैं तो आपकी माया के वश भूला फिरता हूँ, इसी से मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना।

दोहा—एकु मैं मन्द मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबन्धु भगवान॥४॥

सरल अर्थ—एक तो मैं यों ही मन्द हूँ, दूसरे मोह के वश में हूँ, तीसरे हृदय का कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबन्धु भगवान्! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुला दिया।

चौ०-जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥

सरल अर्थ—हे नाथ! यद्यपि मुझमें बहुत से अवगुण है, तथापि सेवक स्वामी की विस्मृति में न पड़े (आप उसे न भूल जायँ) हे नाथ! जीव आपकी माया से मोहित है। वह आप ही की कृपा से निस्तार पा सकता है।

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

सरल अर्थ—उस पर हे रघुवीर! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामी के और पुत्र माता के भरोसे निश्चिन्त रहता है। प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है)।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर हनुमान् जी अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदय में प्रेम छा गया। तब श्री रघुनाथ जी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया।

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

सरल अर्थ—(फिर कहा—) हे कपि ! सुनो, मन में ग्लानि मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय)। पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)।

दोहा—सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥५॥

सरल अर्थ—और हे हनुमान् ! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान् का रूप है।

चौ०-देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥

सरल अर्थ—स्वामी को अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवनकुमार हनुमान् जी के हृदय में हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे। (उन्होंने कहा—) हे नाथ ! इस पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहता है, वह आपका दास है।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! उससे मित्रता कीजिये और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिये। वह सीता जी की खोज करावेगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरों को भेजेगा।

एहि विधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढाई ॥
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥

सरल अर्थ—इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान् जी ने (श्रीराम-लक्ष्मण) दोनों जनों को पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने श्रीरामचन्द्र जी को देखा तो अपने जन्म को अत्यन्त धन्य समझा।

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन विचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती ॥

सरल अर्थ—सुग्रीव चरणों में मस्तक नवाकर आदर सहित मिले। श्री रघुनाथ जी भी छोटे भाई-सहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मन में इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता ! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे ?

दोहा—तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥६॥

सरल अर्थ—तब हनुमान् जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात् अग्नि को साक्षी देकर प्रतिज्ञा-पूर्वक उनकी मैत्री करवा दी)।

चौ०-कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन रामचरित सब भाषा॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी॥

सरल अर्थ—दोनों ने (हृदय से) प्रीति की, कुछ भी अन्तर नहीं रक्खा। तब लक्ष्मण जी ने श्री रामचन्द्र जी का सारा इतिहास कहा ! सुग्रीव ने नेत्रों में जल भरकर कहा—हे नाथ ! मिथिलेश कुमारी जानकी जी मिल जायँगी।

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥

सरल अर्थ—मैं एक बार यहाँ मन्त्रियों के साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने पराये (शत्रु) के वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीता जी को आकाश मार्ग से जाते देखा था।

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥
मागा राम तुरत तेहि दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥

सरल अर्थ—हमें देखकर उन्होंने राम ! राम ! हा राम ! पुकारकर वस्त्र गिरा दिया था। श्रीरामजी ने उसे माँगा, तब सुग्रीव ने तुरन्त ही दे दिया। वस्त्र को हृदय से लगाकर रामचन्द्र जी ने बहुत ही सोच किया।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥

सरल अर्थ—सुग्रीव ने कहा—हे रघुवीर ! सुनिये। सोच छोड़ दीजिये और मन में धीरज लाइये। मै सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा, जिस उपाय से जानकी जी आकर आपको मिलें।

दोहा—सखा वचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ॥७॥

सरल अर्थ—कृपा के समुद्र और बल की सीमा श्रीराम जी सखा सुग्रीव के वचन सुनकर हर्षित हुए। (और बोले—) हे सुग्रीव ! मुझे बताओ, तुम वन में किस कारण रहते हो ?

चौ०-नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ॥

सरल अर्थ—(सुग्रीव ने कहा) हे नाथ ! बालि और मै दो भाई है। हम दोनों में ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नही की जा सकती। हे प्रभो ! मय दानव का एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँव में आया।

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥

सरल अर्थ—उसने आधी रात को नगर के फाटक पर आकर पुकारा (ललकारा)। बालि शत्रु के बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाई के संग लगा चला गया।

गिरिवर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥

सरल अर्थ—वह मायावी एक पर्वत की गुफा मे जा घुसा। तब बालि ने मुझे समझाकर कहा—तुम एक पखवाड़े (पन्द्रह दिन) तक मेरी बाट देखना यदि मैं उतने दिनो में न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया।

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥

सरल अर्थ—हे खरारि! मैं वहाँ महीने भर तक रहा। वहाँ (उस गुफा मे से) रक्त की बड़ी भारी धारा निकली। तब (मैंने समझा कि) उसने बालि को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। इसलिए मैं वहाँ (गुफा के द्वार पर) एक शिला लगा कर भाग आया।

मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥

सरल अर्थ—मन्त्रियो ने नगर को बिना स्वामी (राजा) को देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर आ गया। मुझे (राजसिंहासन पर) देखकर उसने जी मे भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना)। (उसने समझा कि यह राज्य के लोभ से ही गुफा के द्वार पर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ, और यहाँ आकर राजा बन बैठा)।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥

सरल अर्थ—उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे कृपालु रघुवीर! मैं उसके भय से समस्त लोको मे बेहाल होकर फिरता रहा।

इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥

सरल अर्थ—वह शाप के कारण यहाँ नहीं आता, तो भी मैं मन मे भयभीत रहता हूँ। सेवक का दुःख सुनकर दीनो पर दया करने वाले श्री रघुनाथ जी की दोनो विशाल भुजाएँ फड़क उठीं।

दोहा—सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥६॥

सरल अर्थ—(उन्होंने कहा—) हे सुग्रीव ! सुनो, मैं एक ही बाण से बालि को मार डालूंगा। ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी उसके प्राण न बचेंगे।

चौ०-जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

सरल अर्थ—जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने।

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

सरल अर्थ—जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुण को छिपावे।

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।

सरल अर्थ—देने-लेने में मन में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में तो सदा सौ गुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्र के गुण (लक्षण) ये हैं।

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जा कर चित्त अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

सरल अर्थ—जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है—हे भाई ! (इस तरह) जिसका मन सांप के चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है।

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

सरल अर्थ—मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र—ये चारों शूल के समान (पीड़ा देने वाले) है। हे सखा ! मेरे बल पर अब तुम चिन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊंगा (तुम्हारी सहायता करूंगा)।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुन्दुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

सरल अर्थ—सुग्रीव ने कहा—हे रघुवीर ! सुनिये, बालि महान् बलवान् और अत्यन्त रणधीर है। फिर सुग्रीव ने श्री रामचन्द्र जी को दुन्दुभि राक्षस की हड्डियां और ताल के वृक्ष दिखलाये। श्री रघुनाथ जी ने उन्हें बिना ही परिश्रम के (आसानी से) ढहा दिया।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ॥
बार बार नावइ पद सीसा । प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी का अपरिमित बल देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़ गयी और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालि का वध अवश्य करेंगे । ये बार-बार चरणों में सिर नवाने लगे । प्रभु को पहचानकर सुग्रीव मन में हर्षित हो रहे थे ।

लै सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥

सरल अर्थ—तदनन्तर सुग्रीव को साथ लेकर और हाथों में धनुष बाण धारण करके श्री रघुनाथ जी चले । तब श्री रघुनाथ जी ने सुग्रीव को बालि के पास भेजा । वह श्रीरामचन्द्र जी का बल पाकर बालि के निकट जाकर गरजा ।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा । ते द्वौ बन्धु तेज बल सींवा ॥

सरल अर्थ—बालि सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा । उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे नाथ ! सुनिये सुग्रीव जिनसे मिले हैं—वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं ।

कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥

सरल अर्थ—वे कोसलाधीश दशरथ जी के पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण संग्राम में काल को भी जीत सकते हैं ।

दोहा—कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ ॥८॥

सरल अर्थ – बालि ने कहा—हे भीरु (डरपोक) प्रिये ! सुनो, श्री रघुनाथ जी समदर्शी हैं । जो कदाचित् वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा) ।

चौ०-अस कहि चला महा अभिमानी । तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा । मुठिका मारि महाधुनि गर्जा ॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर वह महान् अभिमानी बालि सुग्रीव को तिनके के समान जानकर चला । दोनों भिड़ गये । बालि ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोर से गरजा ।

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा । मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा ॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला । बन्धु न होइ मोर यह काला ॥

सरल अर्थ—तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा । घूँसे की चोट उसे बज्र के समान लगी (सुग्रीव ने आकर कहा—) हे कृपालु ! रघुवीर ! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है ।

एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥

सरल अर्थ—(श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—) तुम दोनों भाइयों का एक सा-ही रूप है। उसी भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा। फिर श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव के शरीर को हाथ से स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्र के समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही।

मेली कण्ठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना विधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

सरल अर्थ—तब श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनों में पुनः अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। श्री रघुनाथ जी वृक्ष की आड़ से देख रहे थे।

दोहा—बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि॥
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥१०॥

सरल अर्थ—सुग्रीव ने बहुत से छल-बल किये, किन्तु (अंत में) भय मानकर हृदय से हार गया। तब श्रीरामचन्द्र जी ने तानकर बालि के हृदय में बाण मारा।

चौ०-परा बिकल महि सरके लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥

सरल अर्थ—बाण लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। किन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान् का श्याम शरीर है, सिर पर जटा बनाए हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिये हैं और धनुष चढ़ाए हैं।

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥

सरल अर्थ—बालि ने बार-बार भगवान् की ओर देखकर चित्त को उनके चरणों में लगा दिया। प्रभु को पहचान कर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदय में प्रीति थी, पर मुख मे कठोर वचन थे। वह श्रीरामचन्द्र जी की ओर देखकर बोला—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

सरल अर्थ—हे गोसाईं! आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह (छिपकर) मारा। मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोष से आपने मुझे मारा?

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ॥

सरल अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी ने कहा—) हे मूर्ख ! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या—ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना । नारि सिखावन करसि न काना ॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी । मारा चहसि अधम अभिमानी ॥

सरल अर्थ—हे मूढ़ ! तुझे अत्यन्त अभिमान है। तूने अपनी स्त्री की सीख पर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल का आश्रित जान कर भी अरे अधम अभिमानी ! तूने उसको मारना चाहा।

दोहा—सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि ॥११॥

सरल अर्थ—(बालि ने कहा—) हे श्रीरामचन्द्र जी ! सुनिए, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकती। हे प्रभो ! अन्तकाल में आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा।

चौ०-सुनत राम अति कोमल बानी । बालि सीस परसेउ निज पानी ॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना । बालि कहा सुनु कृपानिधाना ॥

सरल अर्थ—बालि की अत्यन्त कोमल वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने उसके सिर को अपने हाथ से स्पर्श किया (और कहा—) मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ, तुम प्राणों को रखो। बालि ने कहा—हे कृपानिधान ! सुनिये—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम बल संकर कासी । देत सबहि सम गति अबिनासी ॥

सरल अर्थ—मुनिगण जन्म-जन्म में (प्रत्येक जन्म में) (अनेकों प्रकार का) साधन करते रहते हैं। फिर भी अन्तकाल में उन्हें 'राम' नहीं कह आता (उनके मुख से 'राम' नाम नहीं निकलता)। जिनके नाम के बल से शंकर जी काशी में सबको समान रूप से अविनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं।

मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ॥

सरल अर्थ—वह श्रीराम जी स्वयं मेरे नेत्रों के सामने आ गये हैं। हे प्रभो ! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा ?

दोहा—राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ॥१२॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके बालि ने शरीर को वैसे ही (आसानी से) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना न जाने।

चौ०-राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥
नाना विधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने बालि को अपने परमधाम भेज दिया। नगर के सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। बालि की स्त्री तारा अनेकों प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की सँभाल नहीं है।

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

सरल अर्थ—तारा को व्याकुल देखकर श्रीरघुनाथ जी ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। (उन्होंने कहा—) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँचों तत्वों से यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है।

प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

सरल अर्थ—वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिये रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान् के चरणों लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया।

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा॥

सरल अर्थ—(शिवजी कहते हैं—) हे उमा! स्वामी श्रीराम जी सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्री राम जी ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधिपूर्वक बालि का सब मृतक-कर्म किया।

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥

सरल अर्थ—तब श्री रामचन्द्र जी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्रीरघुनाथ जी की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्रीरघुनाथ जी के चरणों में मस्तक नवाकर चले।

दोहा—लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥१३क॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी ने तुरन्त ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया।

दोहा—प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ ॥१३ख॥

सरल अर्थ—देवताओ ने पहले से ही उस पर्वत की एक गुफा को सुन्दर बना (सजा) रक्खा था। उन्होंने सोच रक्खा था कि कृपा की खान श्रीरामचन्द्र जी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे।

चौ०-सुन्दर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा ॥
कन्द मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए ॥

सरल अर्थ—सुन्दर वन फूला हुआ अत्यन्त सुशोभित है। मधु के लोभ से भौंरो के समूह गुंजार कर रहे हैं। जब से प्रभु आये, तब से वन मे सुन्दर कन्द, मूल, फल और पत्तो की बहुतायत हो गयी।

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा ॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा ॥

सरल अर्थ—मनोहर और अनुपम पर्वत को देखकर देवताओ के सम्राट् श्रीरामचन्द्र जी छोटे भाई सहित वहाँ रह गये। देवता, सिद्ध और मुनि—भौंरों, पक्षियो और पशुओ के शरीर धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे।

मंगल रूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते ॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई ॥

सरल अर्थ—जब से रमापति श्री रामचन्द्र जी ने वहाँ निवास किया तब से वन मङ्गलस्वरूप हो गया। सुन्दर स्फटिकमणि की एक अत्यन्त उज्ज्वल शिला है, उस पर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं।

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए ॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी छोटे भाई लक्ष्मण जी से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेको कथाएँ कहते हैं। वर्षाकाल में आकाश मे छाये हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं।

दोहा—लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि ॥१४॥

सरल अर्थ—(श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे—) हे लक्ष्मण! देखो, मोरो के झुण्ड बादलो को देखकर नाच रहे हैं। जैसे वैराग्य मे अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णु-भक्त को देखकर हर्षित होते हैं।

चौ०-घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥

सरल अर्थ—आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीता जी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादल में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती।

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें।।

सरल अर्थ—बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते है। बूँदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते है।

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई।।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।।

सरल अर्थ—छोटी नदियाँ भरकर (किनारों को) तुड़ाती हुई चलीं जैसे थोड़े धन से भी दुष्ट इतरा जाते हैं (मर्यादा का त्याग कर देते हैं)। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी गँदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीव के माया लिपट गई हो।

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा।।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।

सरल अर्थ—जल एकत्र हो-हो कर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्गुण (एक-एककर) सज्जन के पास चले जाते है। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्रीहरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है।

दोहा—हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहि पंथ।
जिमि पाखण्ड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रन्थ ।।१५।।

सरल अर्थ—पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गयी है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखण्ड मत के प्रचार से सद्ग्रन्थ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं।

चौ०-दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।।
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका।।

सरल अर्थ—चारों दिशाओं में मेढकों की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियों के समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नये पत्ते आ गये हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गये हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी।।

सरल अर्थ—मदार और जवासा बिना पत्ते के हो गये (उनके पत्ते झड़ गये)। जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं

चलती)। धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है (अर्थात् क्रोध का आवेश होने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह जाता)।

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥

सरल अर्थ—अन्न से युक्त (लहलहाती हुई खेती से हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुष की सम्पत्ति। रात के घने अन्धकार मे जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियों का समाज आ जुटा हो।

महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

सरल अर्थ—भारी वर्षा से खेतो की क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमे से घास आदि को निकालकर फेंक रहे हैं) जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं।

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊपर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥

सरल अर्थ—चक्रवात पक्षी दिखायी नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुग को पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर मे वर्षा होती है, पर वहाँ घास तक नही उगती, जैसे हरिभक्त के हृदय मे काम नही उत्पन्न होता।

बिबिध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना॥

सरल अर्थ—पृथ्वी अनेक तरह के जीवो से भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ (शिथिल होकर विषयो की ओर जाना छोड़ देती हैं)।

दोहा—कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥१६क॥

सरल अर्थ—कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥१६ख॥

सरल अर्थ—कभी (बादलो के कारण) दिन में घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है।

चौ०-बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाइ॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥

सरल अर्थ—हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीत गयी और परम सुन्दर शरद् ऋतु आ गयी। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गयी। मानो वर्षा ऋतु ने (कासरूपी सफेद बालों के रूप में) अपना बुढ़ापा प्रकट किया है।

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

सरल अर्थ—अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे सन्तोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालावों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय।

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥

सरल अर्थ—नदी और तालावों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद् ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गये। जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य) प्रकट हो जाते हैं।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भईं मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥

सरल अर्थ—न कीचड़ है न धूल, इससे धरती (निर्मल होकर) ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीति निपुण राजा की करनी! जल के कम हो जाने से मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेकशून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

सरल अर्थ—बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (विरले ही स्थानों में) शरद् ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं।

दोहा—चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाई श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥१७॥

सरल अर्थ—(शरद् ऋतु पाकर) राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी (क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षा के लिये) हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्रीहरि की भक्ति पाकर चारों आश्रमवाले (नाना प्रकार के साधन रूपी) श्रमों को त्याग देते हैं।

चौ०-सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥

सरल अर्थ—जो मछलियाँ अथाह जल मे हैं, वे सुखी हैं, जैसे श्री हरि के शरण मे चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलो के फूलने से तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने से शोभित होता है।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥

सरल अर्थ—भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूंज रहे हैं तथा पक्षियो के नाना प्रकार के सुन्दर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवे के मन मे वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुष्ट को होता है।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई ॥

सरल अर्थ—पपीहा रट लगाए है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्री शंकर जी का द्रोही सुख नही पाता (सुख के लिए झीखता रहता है)। शरद् ऋतु के ताप को रात के समय चन्द्रमा हर लेता है, जैसे सतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं।

देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ॥

सरल अर्थ—चकोरो के समुदाय चन्द्रमा को देखकर इस प्रकार टकटकी लगाए हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान् को पाकर उनके (निर्निमेष नेत्रो से) दर्शन करते हैं। मच्छर और डांस जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गये जैसे ब्राह्मण के साथ बैर करने से कुल का नाश हो जाता है।

दोहा—भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥१८॥

सरल अर्थ—(वर्षा ऋतु के कारण) पृथ्वी पर जो जीव भर गये थे, वे शरद् ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गये जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर सन्देह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं।

चौ०-बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई ॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ॥

सरल अर्थ—वर्षा बीत गई, निर्मल शरद् ऋतु आ गई। परन्तु हे तात! सीता की कोई खबर नही मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो काल को भी जीतकर पल भर मे जानकी को ले आऊँ।

कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई ॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी ॥

सरल अर्थ—कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात ! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिए सुग्रीव ने भी मेरी सुधि भुला दी।

जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥

सरल अर्थ—जिस बाण से मैंने बाली को मारा था, उसी बाण से—कल उस मूढ़ को मारूँ। (शिव जी कहते हैं—) हे उमा ! जिनकी कृपा से मद और मोह छूट जाते हैं, उनको कहीं स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है ? (यह तो लीला-मात्र है।)

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

सरल अर्थ—ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रीति मान ली है (जोड़ ली है), वे ही इस चरित्र (लीला रहस्य) को जानते हैं। लक्ष्मण जी ने जब प्रभु को क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथ में ले लिये।

दोहा—तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥१६॥

सरल अर्थ—तब दया की सीमा श्री रघुनाथ जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को समझाया कि हे तात ! सखा सुग्रीव को केवल भय दिखलाकर ले आओ (उसे मारने की बात नहीं है)।

चौ०-इहाँ पवन सुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

सरल अर्थ—यहाँ (किष्किन्धा नगरी मे) पवन कुमार श्री हनुमान् जी ने विचार किया कि सुग्रीव ने श्री रामचन्द्र जी के कार्य को भुला दिया। उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर चरणों में सिर नवाया। (साम, दान, दण्ड, भेद) चारों प्रकार की नीति कहकर उन्हें समझाया।

दोहा—धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालि कुमार॥२०॥

सरल अर्थ—तदनन्तर लक्ष्मण जी ने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगर को जला कर अभी राख कर दूँगा। तब नगर भर को व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगद जी उनके पास आए।

चौ०-चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयँ अकुलाना॥

सरल अर्थ—अंगद ने उनके चरणों में सिर नवाकर विनती की (क्षमा-याचना की)। तब लक्ष्मण जी ने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि

डरो मत)। सुग्रीव ने अपने कानों से लक्ष्मण जी को क्रोध युक्त सुनकर भय से अत्यन्त व्याकुल होकर कहा—

सुनु हनुमन्त संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना ॥

सरल अर्थ—हे हनुमान् ! सुनो, तुम तारा को साथ ले जाकर विनती करके राजकुमार को समझाओ (समझा-बुझाकर शान्त करो)। हनुमान् जी ने तारा सहित जाकर लक्ष्मण जी के चरणों की वन्दना की और प्रभु के सुन्दर यश का बखान किया।

करि बिनती मन्दिर लै आए। चरन पखारि पलंग बैठाए ॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥

सरल अर्थ—वे विनती करके उन्हें महल में ले आए तथा चरणों को धोकर उन्हें पलंग पर बैठाया। तब वानर राज सुग्रीव ने उनके चरणों में सिर नवाया और लक्ष्मण जी ने हाथ पकड़कर उनको गले से लगा लिया।

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा ॥

सरल अर्थ—(सुग्रीव ने कहा—) हे नाथ ! विषय के समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियों के मन में भी क्षणमात्र में मोह उत्पन्न कर देता है। (फिर मैं तो विषयी जीव ठहरा)। सुग्रीव के विनय युक्त वचन सुनकर लक्ष्मण जी ने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार से समझाया।

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गये दूत समुदाई ॥

सरल अर्थ—तब पवनसुत हनुमान् जी ने जिस प्रकार सब दिशाओं में दूतों के समूह गये थे वह सब हाल सुनाया।

दोहा—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ ॥२१॥

सरल अर्थ—तब अंगद आदि वानरों को साथ लेकर और श्रीरामचन्द्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण जी को आगे करके (अर्थात् उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले और जहाँ रघुनाथ जी थे वहाँ आए।

चौ०—नाइ चरन सिरु कहकर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ॥
अतिसय प्रबल देव तब माया। छूटइ राम करहु जौं दाया ॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी के चरणों में सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीव ने कहा—हे नाथ ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है। हे देव ! आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम ! तभी यह छूटती है।

विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥

सरल अर्थ—हे स्वामी! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयों के वश में हैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अत्यन्त कामी बन्दर हूँ। स्त्री का नयन-बाण जिसको नहीं लगा, जो भयंकर क्रोध रूपी अँधेरी रात में भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता)।

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई॥

सरल अर्थ—और लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथ जी! वह मनुष्य आपही के समान है। ये गुण साधन से नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपा से ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं।

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥

सरल अर्थ—तब श्री रघुनाथ जी मुसकराकर बोले—हे भाई! तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपाय से सीता की खबर मिले।

दोहा—एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥२२॥

सरल अर्थ—इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि बानरों के यूथ (झुण्ड) आ गए। अनेक रंगों के वानरों के दल सब दिशाओं में दिखाई देने लगे।

चौ०-बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा॥
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा॥

सरल अर्थ—(शिवजी कहते हैं—) हे उमा! वानरों की वह सेना मैंने देखी थी। उसकी जो गिनती करना चाहे, वह महान् मूर्ख है। सब वानर आ-आकर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में मस्तक नवाते है और (सौन्दर्य-माधुर्य निधि) श्री मुख के दर्शन करके कृतार्थ होते हैं।

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप व्यापक रघुराई॥

सरल अर्थ—सेना में एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्री रामचन्द्र जी ने कुशल न पूछी हो। प्रभु के लिए यह कोई बड़ी बात नही है, क्योंकि श्री रघुनाथ जी विश्वरूप तथा सर्व व्यापक है (सारे रूपों और सब स्थानों में हैं)।

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥

सरल अर्थ—आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गये। तब सुग्रीव ने सबको समझा कर कहा कि हे वानरो के समूहो ! यह श्रीरामचन्द्र जी का कार्य है और मेरा निहोरा (अनुरोध) है, तुम चारों ओर जाओ।

जनक सुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥

सरल अर्थ—और जाकर श्री जानकी जी को खोजो। हे भाई ! महीने भर में वापस आ जाना। जो (महीने भर की) अवधि बिताकर बिना पता लगाए ही लौट आएगा उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात् मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा)।

दोहा—बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरन्त।
तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमन्त॥२३॥

सरल अर्थ—सुग्रीव के वचन सुनते ही सब वानर तुरन्त जहाँ-तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओं में) चल दिए। तब सुग्रीव ने अंगद, नल, हनुमान् आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओं को बुलाया (और कहा—)

चौ०-सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥

सरल अर्थ—हे धीर बुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान् ! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सब किसी से सीता जी का पता पूछना।

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचन्द्र कर काजु सँवारेहु॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥

सरल अर्थ—मन, वचन तथा कर्म से उसी का (सीता जी का पता लगाने का) उपाय सोचना। श्रीरामचन्द्र जी का कार्य सम्पन्न (सफल) करना। सूर्य को पीठ से और अग्नि को हृदय से (सामने से) सेवन करना चाहिए। परन्तु स्वामी की सेवा तो छल छोड़कर सर्वभाव से (मन, वचन, कर्म से) करनी चाहिए।

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भव संभव सोका॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

सरल अर्थ—माया (विषयों की ममता—आसक्ति) को छोड़कर परलोक का सेवन (भगवान् के दिव्य धाम की प्राप्ति के लिए भगवत्सेवा रूप साधन) करना चाहिए, जिससे भव (जन्म-मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जायँ। हे भाई ! देह धारण करने का यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़कर श्री रामचन्द्र जी का भजन ही किया जाय।

सोइ गुनग्य सोई बड़ भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥
आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥

सरल अर्थ—सद्‌गुणों को पहचानने वाला (गुणवान्) तथा बड़ भागी वही है जो श्री रघुनाथ जी के चरणों का प्रेमी है। आज्ञा माँगकर और चरणों में सिर नवा कर श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले।

पाछें पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी॥

सरल अर्थ—सबके पीछे पवनसुत श्री हनुमान् जी ने सिर नवाया। कार्य का विचार करके प्रभु ने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने कर-कमल से उनके सिर का स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथ की अँगूठी उतार कर दी।

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना॥

सरल अर्थ—(और कहा—) बहुत प्रकार से सीता को समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना। श्री हनुमान् जी ने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभु को हृदय में धारण करके वे चले।

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥

सरल अर्थ—यद्यपि देवताओं की रक्षा करने वाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीति की रक्षा कर रहे हैं। (नीति की मर्यादा रखने के लिए सीता जी का पता लगाने को जहाँ-तहाँ वानरों को भेज रहे हैं।)

दोहा—चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥२४॥

सरल अर्थ—सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतों की कन्दराओं में खोजते हुए चले जा रहे हैं। मन श्रीरामचन्द्र जी के कार्य में लवलीन है। शरीर तक का प्रेम (ममत्व) भूल गया है।

चौ०-इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लिएँ करब का भ्राता॥

सरल अर्थ—यहाँ वानरगण मन में विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गई, पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपस में बात करने लगे कि हे भाई! अब तो श्री सीता जी की खबर लिए बिना लौटकर भी क्या करेंगे?

कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गए मारिहि कपिराई॥

सरल अर्थ—अंगद ने नेत्रों में जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकार से हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो सीता जी की सुध नहीं मिली और वहाँ जाने पर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे।

नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥
प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः।
मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥३३॥
नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम्।
वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥३४॥
तस्माद् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे।
भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥३५॥
तन्निशम्याब्रवीत् कृष्णो देशकालोचितं वचः।
नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च॥३६॥
प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः।
करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥३७॥
बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम्।
भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥३८॥

चाणूर उवाच

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥३९॥
तस्माद् भवद्‌भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै।
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥४०॥

हमारे महाराजने यह सुनकर कि तुमलोग कुश्ती लड़नेमें बड़े निपुण हो, तुम्हारा कौशल देखनेके लिये तुम्हें यहाँ बुलवाया है ॥ ३२ ॥ देखो भाई! जो प्रजा मन, वचन और कर्मसे राजाका प्रिय कार्य करती है, उसका भला होता है और जो राजाकी इच्छाके विपरीत काम करती है, उसे हानि उठानी पड़ती है ॥ ३३ ॥ यह सभी जानते हैं कि गाय और बछड़े चरानेवाले ग्वालिये प्रतिदिन आनन्दसे जंगलोंमें कुश्ती लड़-लड़कर खेलते रहते हैं और गायें चराते रहते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये आओ, हम और तुम मिलकर महाराजको प्रसन्न करनेके लिये कुश्ती लड़ें। ऐसा करनेसे हमपर सभी प्राणी प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा सारी प्रजाका प्रतीक है' ॥ ३५ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण तो चाहते ही थे कि इनसे दो-दो हाथ करें, इसलिये उन्होंने चाणूरकी बात सुनकर उसका अनुमोदन किया और देश-कालके अनुसार यह बात कही—॥ ३६ ॥ 'चाणूर! हम भी इन भोजराज कंसकी वनवासी प्रजा हैं। हमें इनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ किंतु चाणूर! हमलोग अभी बालक हैं। इसलिये हम अपने समान बलवाले बालकोंके साथ ही कुश्ती लड़नेका खेल करेंगे। कुश्ती समान बलवालोंके साथ ही होनी चाहिये, जिससे देखनेवाले सभासदोंको अन्यायके समर्थक होनेका पाप न लगे' ॥ ३८ ॥

चाणूरने कहा—अजी! तुम और बलराम न बालक हो और न तो किशोर। तुम दोनों बलवानोंमें श्रेष्ठ हो, तुमने अभी-अभी हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कुवलयापीडको खेल-ही-खेलमें मार डाला ॥ ३९ ॥ इसलिये तुम दोनोंको हम-जैसे बलवानोंके साथ ही लड़ना चाहिये। इसमें अन्यायकी कोई बात नहीं है। इसलिये श्रीकृष्ण! तुम मुझपर अपना जोर आजमाओ और बलरामके साथ मुष्टिक लड़ेगा ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे

देखे। (तब वह बोला—) जगदीश्वर ने मुझको घर बैठे बहुत-सा आहार भेज दिया।

आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा॥

सरल अर्थ—आज इन सबको खा जाऊँगा। बहुत दिन बीत गए, भोजन के बिना मर रहा था। पेट भर भोजन कभी नहीं मिलता। आज विधाता ने एक ही बार में बहुत-सा भोजन दे दिया।

डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवन्त मन सोच बिसेषी॥

सरल अर्थ—गीध के वचन कानों से सुनते ही सब डर गए कि अब सचमुच ही मरना हो गया, यह हमने जान लिया। फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब वानर उठ खड़े हुए। जाम्बवान् के मन में विशेष सोच हुआ।

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी॥

सरल अर्थ—अंगद ने मन में विचार कर कहा—अहा! जटायु के समान धन्य कोई नहीं है। श्री रामचन्द्र जी के कार्य के लिए शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान् के परमधाम को चला गया।

सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥
तिन्हहि अभय करि पूछसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥

सरल अर्थ—हर्ष और शोक से युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरों के पास आया, वानर डर गए। उनको अभय करके (अभय वचन देकर) उसने पास जाकर जटायु का वृत्तांत पूछा। तब उन्होंने सारी कथा उसे कह सुनाई।

सुनि सम्पाति बन्धु कै करनी। रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी॥

सरल अर्थ—भाई जटायु की करनी सुनकर सम्पाती ने बहुत प्रकार से श्री रघुनाथ जी की महिमा वर्णन की।

दोहा—मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥२६॥

सरल अर्थ—(उसने कहा—)मुझे समुद्र के किनारे ले चलो, मैं जटायु को तिलांजलि दे दूं। इस सेवा के बदले मैं तुम्हारी वचन से सहायता करूँगा (अर्थात् श्री सीता जी कहाँ हैं सो बतला दूंगा)। जिसे तुम खोज रहे हो—उसे पा जाओगे।

चौ०-अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा ॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई ॥

सरल अर्थ—समुद्र के तीर पर छोटे भाई जटायु की क्रिया (श्राद्ध आदि) करके सम्पाती अपनी कथा कहने लगा—हे वीर वानरों ! सुनो, हम दोनों भाई उठती जवानी में एक बार आकाश में उड़कर सूर्य के निकट चले गए।

तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा ॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा ॥

सरल अर्थ—वह (जटायु) तेज न सह सका, इससे लौट आया (किन्तु) मैं अभिमानी था, इसलिए सूर्य के पास चला गया। अत्यन्त अपार तेज से मेरे पंख जल गये। मैं बड़े जोर से चीख मारकर जमीन पर गिर पड़ा।

मुनि एक नाम चन्द्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही ॥
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान छुड़ावा ॥

सरल अर्थ—वहाँ चन्द्रमा नाम के एक मुनि थे, मुझे देखकर उन्हें बड़ी दया लगी। उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देह जनित (देह सम्बन्धी) अभिमान को छुड़ा दिया।

त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचरपति हरिही ॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तें होब पुनीता ॥

सरल अर्थ—(उन्होंने कहा—) त्रेतायुग में साक्षात् परब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को राक्षसों का राजा हर ले जाएगा। उसकी खोज में प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलने पर तू पवित्र हो जाएगा।

जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता ॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ॥

सरल अर्थ—और तेरे पंख उग आएँगे, चिन्ता न कर। उन्हें तू सीता जी को दिखा देना। मुनि की वह वाणी आज सत्य हुई। अब मेरे वचन सुनकर तुम प्रभु का कार्य करो।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई ॥

सरल अर्थ—त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। वहाँ स्वभाव ही से निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नाम का उपवन (बगीचा) है, जहाँ श्री सीता जी रहती हैं, (इस समय भी) वे सोच में मग्न बैठी हैं।

दोहा—मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ॥२७॥

सरल अर्थ—मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते, क्योंकि गीध की दृष्टि अपार होती है (बहुत दूर तक जाती है)। क्या करूँ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता।

चौ०-जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर ॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपाँ कस भयउ सरीरा ॥

सरल अर्थ—जो सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धि-निधान होगा वही श्री रामचन्द्र जी का कार्य कर सकेगा। (निराश होकर घबड़ाओ मत) मुझे देखकर मन में धीरज धरो। देखो, श्रीराम जी की कृपा से (देखते-ही-देखते) मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पांख का बेहाल था, पांख उगने से सुन्दर हो गया)।

पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं ॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयँ धरि करहु उपाई ॥

सरल अर्थ—पापी भी जिनका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागर से तर जाते हैं, तुम उनके दूत हो, अतः कायरता छोड़कर श्रीरामचन्द्र को हृदय में धारण करके उपाय करो।

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ ॥
निज निज बल सब काहूँ भाषा। पार जाइ कर संसय राखा ॥

सरल अर्थ—(काक भुशुण्डि जी कहते हैं—)हे गरुड़ जी! इस प्रकार कहकर जब गीध चला गया, तब उन (वानरों) के मन में—अत्यन्त विस्मय हुआ! सब किसी ने अपना-अपना बल कहा। पर समुद्र के पार जाने में सभी ने सन्देह प्रकट किया।

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी ॥

सरल अर्थ—ऋक्षराज जाम्बवान् कहने लगे—मैं अब बूढ़ा हो गया। शरीर में पहले वाले बल का लेश भी नहीं रहा। जब खरारि (खर के शत्रु श्रीरामचन्द्र जी) वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझमें बड़ा बल था।

दोहा—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ ॥२८॥

सरल अर्थ—बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता। किन्तु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर (उस शरीर की) सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं।

चौ०-अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा ॥
जामवन्त कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक ॥

सरल अर्थ—अंगद ने कहा—मैं पार तो चला जाऊँगा। परन्तु लौटते समय के लिए हृदय में कुछ सन्देह है। जाम्बवान् ने कहा—तुम सब प्रकार से योग्य हो। परन्तु तुम सबके नेता हो, तुम्हे कैसे भेजा जाय?

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥

सरल अर्थ—ऋक्षराज जाम्बवान् ने श्री हनुमान् जी से कहा—हे हनुमान्! हे बलवान्! सुनो, तुमने यह क्या चुप साध रक्खी है। तुम पवन के पुत्र हो और बल मे पवन के समान हो। तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान की खान हो।

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

सरल अर्थ—जगत् मे कौन-सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुमसे न हो सके। श्रीरामचन्द्र जी के कार्य के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही श्री हनुमान् जी पर्वत के आकार के (अत्यन्त विशालकाय) हो गये।

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥

सरल अर्थ—उनका सोने का-सा रंग है, शरीर पर तेज सुशोभित है, मानो दूसरा पर्वतो का राजा सुमेरु हो। श्री हनुमान् जी ने बार-बार सिंहनाद करके कहा—मैं इस खारे समुद्र को खेल मे ही लाँघ सकता हूँ।

सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवन्त मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

सरल अर्थ—और सहायको सहित रावण को मारकर, त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान्! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना (कि मुझे क्या करना चाहिये)।

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुजबल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

सरल अर्थ—(जाम्बवान् ने कहा—) हे तात! तुम जाकर इतना ही करो कि श्री सीता जी को देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो। फिर कमल-नयन श्रीरामचन्द्र जी अपने बाहुबल से (ही राक्षसो का संहार कर श्री सीता जी को ले आएँगे, केवल) खेल के लिए ही वे वानरों की सेना साथ लेंगे।

दोहा—भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥२८॥

सरल अर्थ—श्रीरघुवीर का यश भव (जन्म-मरण) रूपी रोग की (अचूक) दवा है। जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिरा के शत्रु श्री रामचन्द्र जी उनके सब मनोरथों को सिद्ध करेंगे। □□

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

१०. श्रीरामचरितमानस

पंचम सोपान

(सुन्दरकाण्ड)

अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रिय भक्तं वातजातं नमामि ।।

सरल अर्थ—अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्यरूपी वन (को ध्वंस करने) के लिए अग्निरूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी श्री रघुनाथ जी के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमान् जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

चौ०-जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमन्त हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूलफल खाई।।

सरल अर्थ—जाम्बवान् के सुन्दर वचन सुनकर श्री हनुमान् जी के हृदय को बहुत ही भाए। (वे बोले—) हे भाई ! तुम लोग दुख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तब तक मेरी राह देखना।

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी।।
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा।।

सरल अर्थ – जब तक मैं सीता जी को देखकर (लौट) न आऊँ। काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है। यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदय में श्री रघुनाथ जी को धारण करके श्री हनुमान् जी हर्षित होकर चले।

सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर।।
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी।।

सरल अर्थ—समुद्र के तीर पर एक सुन्दर पर्वत था। हनुमान् जी खेल से ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्री रघुनाथ जी का स्मरण करके अत्यन्त बलवान् हनुमान् जी उस पर से बड़े वेग से उछले।

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता । चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता ॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । एही भाँति चलेउ हनुमाना ॥

सरल अर्थ—जिस पर्वत पर श्री हनुमान् जी पैर रखकर चले (जिस पर से वे उछले) वह तुरन्त ही पाताल में धँस गया । जैसे श्री रघुनाथ जी का अमोघ बाण चलता है, उसी तरह श्री हनुमान् जी चले ।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी । तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥

सरल अर्थ—समुद्र ने उन्हें श्री रघुनाथ जी का दूत समझकर मैनाक पर्वत से कहा कि हे मैनाक ! तू इनकी थकावट दूर करने वाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे ।

दोहा—हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम काज कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ॥१॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान जी ने उसे हाथ से छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा—भाई ! श्री रामचन्द्र जी का कार्य किए बिना मुझे विश्राम कहाँ ?

चौ०-जात पवनसुत देवन्ह देखा । जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा ॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता । पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता ॥

सरल अर्थ—देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान् जी को जाते हुए देखा । उनकी विशेष बल-बुद्धि को जानने के लिए (परीक्षार्थ) उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा, उसने आकर हनुमान् जी से यह बात कही—

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनत बचन कह पवन कुमारा ॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं । सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं ॥

सरल अर्थ—आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है । यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान् जी ने कहा—श्री रामचन्द्र जी का कार्य करके लौट आऊँ और श्री सीता जी की खबर प्रभु को सुना दूँ ।

तब तव बदन पैठि हउँ आई । सत्य कहउँ मोहि जान दे माई ॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना । ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥

सरल अर्थ—तब मैं आकर तुम्हारे मुँह में घुस जाऊँगा (तुम मुझे खा लेना) । हे माता ! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे । जब किसी भी उपाय से उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान् जी ने कहा—तो फिर मुझे खा न ले ।

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा । कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ । तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥

सरल अर्थ—उसने योजन भर (चार कोस में) मुँह फैलाया । तब हनुमान् जी ने अपने शरीर को उससे दूना बढ़ा लिया । उसने सोलह योजन का मुख किया । हनुमान् जी तुरन्त ही बत्तीस योजन के हो गए ।

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा ॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघुरूप पवनसुत लीन्हा ॥

सरल अर्थ---जैसे जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी,---श्री हनुमान् जी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोस) का मुख किया। तब हनुमान् जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा ॥
मोहि सुरसन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ॥

सरल अर्थ---और वे उसके मुंह में घुसकर (तुरन्त) फिर बाहर निकल आये और उसे सिर नवाकर विदा मांगने लगे। (उसने कहा---मैंने तुम्हारे बुद्धिबल का भेद पा लिया, जिसके लिए देवताओं ने मुझे भेजा था।

दोहा---राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ॥२॥

सरल अर्थ---तुम श्री रामचंद्र जी का सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धि के भण्डार हो। यह आशीर्वाद देकर वह चली गई, तब हनुमान् जी हर्षित होकर चले।

चौ०-निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई ॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परछाहीं ॥

सरल अर्थ--समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो जीव-जन्तु उड़ा करते थे, वह जल में उनकी परछाईं देखकर---

गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा ॥

सरल अर्थ---उस परछाईं को पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे (और जल में गिर पड़ते थे)। इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़ने वाले जीवों को खाया करती थी। उसने वही छल श्री हनुमान् जी से भी किया। हनुमान् जी ने तुरन्त ही उसका कपट पहचान लिया।

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा ॥

सरल अर्थ---पवनपुत्र धीर-बुद्धि वीर श्री हनुमान् जी उसको मारकर समुद्र के पार गए। वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी। मधु (पुष्परस) के लोभ से भौरे गुंजार कर रहे थे।

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृन्द देखि मन भाए ॥
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें ॥

सरल अर्थ---अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित हैं। पक्षी और पशुओं के समूह को देखकर तो वे मन में (बहुत ही) प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान् जी भय त्याग कर उस पर दौड़कर जा चढे।

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी ॥

सरल अर्थ---(शिव जी कहते हैं)---हे उमा! इसमें वानर हनुमान् की कुछ भी बडाई नहीं है। यह प्रभु का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बडा किला है, कुछ कहा नही जाता।

अति उतंग जलनिधि चहुपासा। कनक कोट कर परम प्रकासा ॥

सरल अर्थ—वह अत्यन्त ऊँचा है, उसके चारो ओर समुद्र है। सोने के परकोटे (चहारदीवारी) का परम प्रकाश हो रहा है।

छन्द—बन बाग उपबन वाटिका सर कूप बापी सोहहीं॥
नर नाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥

सरल अर्थ—वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गन्धर्वों की कन्याएँ अपने सौन्दर्य से मुनियों के भी मनों को मोह लेती हैं।

दोहा—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ॥३॥

सरल अर्थ—नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर श्री हनुमान् जी ने मन में विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ।

चौ०-मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान् जी मच्छड़ के समान (छोटा-सा) रूप धारण कर नर-रूप से लीला करने वाले भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करके लंका को चले। (लंका के द्वार पर) लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी। वह बोली—मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे) कहाँ चला जा रहा है?

जानेहि नहीं मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी ॥

सरल अर्थ—रे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना? जहाँ तक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान् जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खून की उलटी करती हुई पृथ्वी पर लुढक पड़ी।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥

सरल अर्थ—वह लंकिनी फिर अपने को सँभालकर उठी और डरके मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। (वह बोली—) रावण को जब ब्रह्मा जी ने वर दिया था तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसों के विनाश की यह पहचान बता दी थी कि—

बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

सरल अर्थ—जब तू बन्दर के मारने से व्याकुल हो जाय, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं जो मैं श्री रामचन्द्र जी के दूत (आप) को नेत्रों से देख पायी।

दोहा—तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥४॥

सरल अर्थ—हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रखा जाय, तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़े पर रखे हुए) उस सुख के बराबर नहीं हो सकते जो लव (क्षण) मात्र के सत्संग से होता है।

चौ०-प्रबिसि नगर कीजै सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

सरल अर्थ—अयोध्यापुरी के राजा श्री रघुनाथ जी को हृदय में रखे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिये। उसके लिए विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है,—

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

सरल अर्थ—और हे गरुड़ जी! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है, जिसे श्रीरामचन्द्र जी ने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान् जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान् का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखें जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मन्दिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥

सरल अर्थ—उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महल की खोज की, जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावण के महल में गए। वह अत्यन्त विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान् जी ने उस (रावण) को शयन किए देखा। परन्तु महल मे जानकी जी नही दिखाई दीं। फिर एक सुन्दर महल दिखाई दिया। वहाँ (उसमे) भगवान् का एक अलग मंदिर बना हुआ था।

दोहा—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ॥५॥

सरल अर्थ—वह महल श्री रामचन्द्र जी के आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नो से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष समूहो को देखकर कपिराज हनुमान् जी हर्षित हुए।

चौ०-लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेही समय विभीषनु जागा॥

सरल अर्थ—लंका तो राक्षसों के समूह का निवास स्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष) का निवास कहाँ? हनुमान् जी मन मे इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषण जी जागे।

राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

सरल अर्थ—उन्होने (विभीषण ने) राम नाम का स्मरण (उच्चारण) किया। हनुमान् जी ने उन्हे सज्जन जाना और हृदय मे हर्षित हुए (हनुमान् जी ने विचार किया कि) इनसे हठ करके (अपनी ओर से ही) परिचय करूँगा क्योकि साधु से कार्य की हानि नही होती। प्रत्युत लाभ ही होता है।

विप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत विभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

सरल अर्थ—ब्राह्मण का रूप धारण कर श्री हनुमान् जी ने उन्हे वचन सुनाए (पुकारा)। सुनते ही विभीषण जी उठकर वहां आए। प्रणाम करके कुशल पूछी (और कहा कि) हे ब्राह्मण देव! अपनी कथा समझाकर कहिये।

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

सरल अर्थ—क्या आप हरि भक्तो मे से कोई हैं? क्योकि आपको देखकर मेरे हृदय मे अत्यन्त प्रेम उमड रहा है। अथवा क्या आप दीनो से प्रेम करने वाले स्वयं श्री रामचन्द्र जी हैं जो मुझे बड़भागी बनाने (घर बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आये हैं?

दोहा—तब हनुमन्त कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥६॥

सरल अर्थ—तब हनुमान् जी ने श्री रामचन्द्र जी की सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनो के शरीर पुलकित हो गए और श्रीरामचन्द्र जी के गुण समूहो का स्मरण करके दोनो के मन (प्रेम और आनन्द मे) मग्न हो गए।

चौ०-सुनहु पवनसुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ।।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ।।

सरल अर्थ—(विभीषण जी ने कहा—) हे पवनपुत्र ! मेरी रहनी सुनो । मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ, जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ । हे तात ! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुल के नाथ श्री रामचन्द्र जी क्या कभी मुझ पर कृपा करेंगे ?

तामस तनु कछु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मन माहीं ।।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता । बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ।।

सरल अर्थ—मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होने से साधन तो कुछ बनता नहीं और न मन में श्रीरामचन्द्र जी के चरण कमलों में प्रेम ही है । परन्तु हे हनुमान् ! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामचन्द्र जी की मुझ पर कृपा है, क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिलते ।

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा । तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ।।
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती ।।

सरल अर्थ—जब श्री रघुवीर ने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओर से) दर्शन दिये हैं । (हनुमान् जी ने कहा—) हे विभीषण जी ! सुनिए, प्रभु की यही रीति है कि वे सेवक पर सदा ही प्रेम किया करते हैं ।

कहहु कवन मैं परम कुलीना । कपि चंचल सबही बिधि हीना ।।
प्रात लेइ जो नाम हमारा । तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ।।

सरल अर्थ—भला कहिए, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ । (जाति का) चंचल वानर हूँ और सब प्रकार से नीच हूँ । प्रातःकाल जो हम लोगों (बन्दरों) का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले ।

दोहा—अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर ।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ।।७।।

सरल अर्थ—हे सखा ! सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ, पर श्रीरामचन्द्र जी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है । भगवान् के गुणों का स्मरण करके हनुमान् जी के दोनों नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया ।

चौ०-जानतहूँ अस स्वामि बिसारी । फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ।।
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा । पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा ।

सरल अर्थ—जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्री रघुनाथ जी) को भुलाकर (विषयों के पीछे) भटकते फिरते हैं, वे दुखी क्यों न हों ? इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के गुण समूहों को कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शान्ति प्राप्त की ।

पुनि सब कथा बिभीषन कही । जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ।।
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता । देखी चहउँ जानकी माता ।।

सरल अर्थ—फिर विभीषण जी ने, श्री जानकी जी जिस प्रकार वहाँ (लंका में) रहती थीं, वह सब कथा कही । तब हनुमान् जी ने कहा—हे भाई ! सुनो, मैं जानकी माता को देखना चाहता हूँ ।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोई रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

सरल अर्थ—विभीषण जी ने (माता के दर्शन की) सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनाईं। तब हनुमान् जी विदा लेकर चले। फिर वही (पहले का मसक-सरीखा) रूप धर कर वहाँ गए जहाँ अशोक वन में (वन के जिस भाग में) थी सीता जी रहती थी।

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी को देखकर हनुमान् जी ने उन्हें मन ही में प्रणाम किया। उन्हें बैठे-ही-बैठे रात्रि के चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है, सिर पर जटाओं की एक वेणी (लट) है। हृदय में श्री रघुनाथ जी के गुण समूहों का जाप (स्मरण) करती रहती हैं।

दोहा—निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥८॥

सरल अर्थ—श्री जानकी जी नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुए हैं (नीचे की ओर देख रही हैं) और मन श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों में लीन है। जानकी जी को दीन (दुखी) देखकर पवनसुत हनुमान् जी बहुत ही दुखी हुए।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥

सरल अर्थ—हनुमान् जी वृक्ष के पत्तों में छिप रहे और विचार करने लगे कि हे भाई! क्या करूँ? (इनका दुख कैसे दूर करूँ)। उसी समय बहुत सी स्त्रियों को साथ लिए सजधज कर रावण वहाँ आया।

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥

सरल अर्थ—उस दुष्ट ने श्री सीता जी को बहुत प्रकार से समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावण ने कहा—हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो। मन्दोदरी आदि सब रानियों को—

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

सरल अर्थ—मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही। अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करके जानकी जी तिनके की आड़ (परदा) करके कहने लगी—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ विकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुवीर बानकी॥

सरल अर्थ—हे दशमुख! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलिनी खिल सकती है? जानकी जी फिर कहती हैं—तू (अपने लिए भी) ऐसा ही मन में समझ ले। रे दुष्ट! तुझे रघुवीर के बाण की खबर नहीं है।

सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

सरल अर्थ—रे पापी! तू मुझे सूने में हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती।

दोहा—आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥९॥

सरल अर्थ—अपने को जुगनू के समान और श्रीरामचन्द्र जी को सूर्य के समान सुनकर और सीता जी के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्से में आकर बोला—

चौ०-सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥

सरल अर्थ—सीता! तूने मेरा अपमान किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूँगा। नहीं तो (अब भी) जल्दी मेरी बात मान ले। हे सुमुखि! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥

सरल अर्थ—(सीता जी ने कहा—) हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूँड के समान (पुष्ट और विशाल) है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यह मेरा सच्चा प्रण है।

चन्द्रहास हरु मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी कहती हैं—हे चन्द्रहास (तलवार)! श्री रघुनाथ जी के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलन को तू हर ले। हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात् तेरी धार ठण्डी और तेज है), तू मेरे दुख के बोझ को हर ले।

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मय तनयाँ कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसि चरन्हि बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥

सरल अर्थ—सीता जी के ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। तब रावण ने सब राक्षसियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखाओ।

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

सरल अर्थ—यदि महीने भर में यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकाल कर मार डालूंगा।

दोहा—भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृन्द।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥१०॥

सरल अर्थ—(यों कहकर) रावण घर चला गया। यहाँ राक्षसियों के समूह बहुत से बुरे रूप धरकर श्री सीता जी को भय दिखाने लगे।

चौ०-त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥

सरल अर्थ—उनमे एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी श्रीरामचन्द्र जी के चरणो मे प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) मे निपुण थी। उसने सबो को बुला कर अपना स्वप्न सुनाया और कहा—सीता जी की सेवा करके अपना कल्याण कर लो।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥

सरल अर्थ—स्वप्न मे (मैंने देखा कि) एक बन्दर ने लका जला दी। राक्षसों की सारी सेना मार डाली गयी। रावण नंगा है और गदहे पर सवार है। उसके सिर मुड़े हुए हैं, बीसो भुजाएँ कटी हुई हैं।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥

सरल अर्थ—इस प्रकार से वह दक्षिण (यमपुरी की) दिशा को जा रहा है और मानों लका विभीषण ने पाई है। नगर मे श्री रामचन्द्र जी की दुहाई फिर गई। तब प्रभु ने श्री सीता जी को बुला भेजा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरी। जनकसुता के चरनन्हि परी॥

सरल अर्थ—मैं पुकार कर (निश्चय के साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनो बाद सत्य होकर रहेगा। उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गयीं और श्री जानकी जी के चरणो पर गिर पड़ीं।

दोहा—जहँ तहँ गई सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥११॥

सरल अर्थ—तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गईं। सीता जी मन में सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा।

चौ०-त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं—हे माता! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूं। विरह असह्य हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥

सरल अर्थ—काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी! तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। रावण की शूल के समान दुःख देने वाली वाणी कानों से कौन सुने?

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजस जनाएसि॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया। (उसने कहा—) हे सुकुमारी! सुनो, रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गई।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी (मन ही मन) कहने लगीं—(क्या करूँ) विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिलेगी और न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अंगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

सरल अर्थ—चन्द्रमा अग्निमय है, किन्तु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुन। मेरा शोक हर ले और अपना (अशोक) नाम सत्य कर।

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

सरल अर्थ—तेरे नए-नए कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं। अग्नि दे, विरह-रोग का अन्त मत कर (अर्थात् विरह-रोग को बढ़ाकर सीमा तक न पहुँचा)। सीता जी को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान् जी को कल्प के समान बीता।

सो०—कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥१२॥

सरल अर्थ—तब हनुमान् जी ने हृदय में विचार कर (सीता जी के सामने) अंगूठी डाल दी, मानो अशोक ने अंगारा दे दिया। (यह समझकर) सीता जी ने हर्षित होकर उठकर उसे हाथ मे ले लिया।

चौ०-तब देखी मुंद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर ॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदयँ अकुलानी ॥

सरल अर्थ—तब उन्होंने राम नाम से अंकित अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर अंगूठी देखी। अंगूठी को पहचानकर श्री सीता जी आश्चर्य चकित होकर उसे देखने लगी और हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठी।

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई ॥
सीता मन विचार कर नाना। मधुर वचन बोलेउ हनुमाना ॥

सरल अर्थ—(वे सोचने लगी—) श्री रघुनाथ जी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? और माया से ऐसी (माया के उपादान से सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अंगूठी बनाई नही जा सकती। श्री सीता जी मन मे अनेक प्रकार के विचार कर रही थी। इस समय श्री हनुमान् जी मधुर वचन बोले—

रामचन्द्र गुन बरनें लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहि तें सब कथा सुनाई ॥

सरल अर्थ—वे श्री रामचन्द्र जी के गुणो का वर्णन करने लगे (जिनके) सुनते ही श्री सीता जी का दुख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगी। श्री हनुमान् जी ने आदि से लेकर सारी कथा कह सुनाई।

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई ॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ ॥

सरल अर्थ—(सीता जी बोलीं—) जिसके कानो के लिए अमृत रूप यह सुन्दर कथा कही, वह हे भाई! प्रकट क्यों नही होता? तब श्री हनुमान् जी पास चले गए। उन्हें देखकर सीता जी फिर कर (मुख फेरकर) बैठ गयी, उनके मन मे आश्चर्य हुआ।

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥

सरल अर्थ—(श्री हनुमान् जी ने कहा—) हे माता जानकी! मैं श्री रामचन्द्र जी का दूत हूँ। करुणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ। हे माता! यह अंगूठी मैं ही लाया हूँ। श्री रामचन्द्र जी ने मुझे आपके लिए यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है।

नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगत जैसे ॥

सरल अर्थ—(श्री सीता जी ने पूछा—) नर और वानर का संग कहो कैसे हुआ ? तब हनुमान् जी ने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही।

दोहा—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपा सिंधु कर दास ॥१३॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान् जी के प्रेमयुक्त वचन सुनकर श्री सीता जी के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया। उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्म से कृपासागर श्री रघुनाथ जी का दास है।

चौ०-हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी ॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहुँ तात मो कहुँ जल जाना ॥

सरल अर्थ—भगवान् का जन (सेवक) जानकर अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गई। नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। (सीता जी ने कहा—) हे तात हनुमान्! विरह सागर में डूबती हुई मुझको तुम जहाज हुए।

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमल चित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी-निठुराई ॥

सरल अर्थ—मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित खरके शत्रु सुखधाम प्रभु का कुशल-मंगल कहो। श्री रघुनाथ जी तो कोमल हृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान्! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है ?

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥

सरल अर्थ—सेवक को सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे श्री रघुनाथ जी क्या कभी मेरी भी याद करते हैं ? हे तात! क्या कभी उनके साँवले अंगों को देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ?

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥

सरल अर्थ—(मुँह से) वचन नहीं निकलता, नेत्रों में (विरह के आँसुओं का) जल भर आया। (बड़े दुख से बोलीं-) हा नाथ! आपने मुझे बिल्कुल ही भुला दिया। सीता जी को विरह से परम व्याकुल देखकर हनुमान् जी कोमल और विनीत वचन बोले—

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता ॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना ॥

सरल अर्थ—हे माता ! सुन्दर कृपा के धाम प्रभु भाई लक्ष्मण जी के सहित (शरीर से) कुशल हैं, परन्तु आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता ! मन में ग्लानि न मानिए (मन छोटा करके दुःख न कीजिये), श्री रामचन्द्र जी के हृदय में आपसे दूना प्रेम है।

दोहा—रघुपति कर सन्देसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर ॥१४॥

सरल अर्थ—हे माता ! अब धीरज धरकर रघुनाथ जी का सन्देश सुनिए। ऐसा कहकर हनुमान् जी प्रेम से गद्गद हो गए। उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया।

चौ०-कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानु। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

सरल अर्थ—(हनुमान् जी बोले—) श्री रामचन्द्र जी ने कहा है कि हे सीते ! तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गए हैं। वृक्षों के नए-नए कोमल पत्ते मानो अग्नि के समान, रात्रि कालरात्रि के समान, चन्द्रमा सूर्य के समान,

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥

सरल अर्थ—और कमलों के वन भालों के वन के समान हो गए हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करने वाले थे वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) वायु साँप के श्वास के समान (जहरीली और गरम) हो गई है।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

सरल अर्थ—मन का दुख कह डालने से भी कुछ घट जाता है। पर कहूँ किससे ? यह दुख कोई जानता नहीं। हे प्रिये ! मेरे और तेरे प्रेम का तत्व (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु सदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहीं तेही॥

सरल अर्थ—और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ ले। प्रभु का सन्देश सुनते ही श्री जानकी जी प्रेम में मग्न हो गईं। उन्हें शरीर की सुध न रही।

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान जी ने कहा---हे माता ! हृदय में धैर्य धारण करो और सेवकों को सुख देने वाले श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करो । श्री रघुनाथ जी की प्रभुता को हृदय में लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो ।

दोहा—निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु ।।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु ।।१५।।

सरल अर्थ—राक्षसों के समूह पतंगों के समान और श्री रघुनाथ जी के बाण अग्नि के समान हैं । हे माता ! हृदय में धैर्य धारण करो और राक्षसों को जला ही समझो ।

चौ०-जौं रघुबीर होति सुधि पाई । करते नहिं बिलंबु रघुराई ।।
रामबान रबि उएँ जानकी । तम बरूथ कहँ जातुधान की ।।

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने यदि खबर पायी होती तो वे विलम्ब न करते । हे जानकी जी ! राम-बाण रूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेना रूपी अन्धकार कहाँ रह सकता है.?

अबहि मातु मैं जाउँ लवाई । प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ।।

सरल अर्थ—हे माता ! मैं आपको अभी यहाँ से लिवा जाऊँ, पर श्री रामचन्द्र जी की शपथ है, मुझे प्रभु (उनकी) की आज्ञा नहीं है । अतः हे माता ! कुछ दिन और धीरज धरो । श्रीरामचन्द्र जी वानरों सहित यहाँ आवेंगे ।

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं । तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं ।।
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना । जातुधान अति भट बलवाना ।।

सरल अर्थ—और राक्षसों को मारकर आपको ले जाएँगे । नारद आदि (ऋषि-मुनि) तीनों लोकों में उनका यश गावेंगे (सीता जी ने कहा---) हे पुत्र ! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हे-नन्हे से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान् योद्धा हैं ।

मोरे हृदय परम सन्देहा । सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ।।
कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अतिबल बीरा ।।

सरल अर्थ—अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी सन्देह होता है (कि तुम जैसे बन्दर राक्षसों को कैसे जीतेंगे) । यह सुनकर हनुमान् जी ने अपना शरीर प्रकट किया । सोने के पर्वत (सुमेरु) के आकार का (अत्यन्त विशाल) शरीर था, जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाला, अत्यन्त बलवान् और वीर था ।

सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ ।।

सरल अर्थ—तब (उसे देखकर) सीता जी के मन में विश्वास हुआ । हनुमान् जी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया ।

दोहा—सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल ।।१६।।

सरल अर्थ—हे माता ! सुनो, वानरों में बहुत बल-बुद्धि नहीं होती। परन्तु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है। (अत्यन्त निर्बल भी महान् बलवान् को मार सकता है।)

चौ०-मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी ।।
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ।।

सरल अर्थ—भक्ति, प्रताप, तेज और बल से सनी हुई श्री हनुमान् जी की वाणी सुनकर सीता जी के मन में संतोष हुआ। उन्होंने श्री रामचन्द्र जी के प्रिय जानकर हनुमान् जी को आशीर्वाद दिया कि हे तात ! तुम बल और शील के निधान होओ।

अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।।
करहुँ कृपा प्रभु असि सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।।

सरल अर्थ—हे पुत्र ! तुम अजर (बुढापे से रहित), अमर और गुणों के खजाने होओ। श्री रघुनाथ जी तुम पर बहुत कृपा करें। 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानों से सुनते ही हनुमान् जी पूर्ण प्रेम में मग्न हो गए।

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा ।।
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता ।।

सरल अर्थ—हनुमान् जी ने बार-बार श्री सीता जी के चरणों में सिर नवाया। और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे माता ! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है।

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा ।।
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी ।।

सरल अर्थ—हे माता ! सुनो, सुन्दर फलवाले वृक्षों को देखकर मुझे बड़ी ही भूख लग आई है। (सीता जी ने कहा—) हे बेटा ! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वन की रखवाली करते हैं।

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ।।

सरल अर्थ—(श्री हनुमान् जी ने कहा-) हे माता ! यदि आप मन में सुख मानें (प्रसन्न होकर आज्ञा दें) तो मुझे उनका भय तो बिलकुल नहीं है।

दोहा—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु ।।१७।।

सरल अर्थ—हनुमान् जी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जानकी जी ने कहा—जाओ। हे तात! श्री रघुनाथ जी के चरणों को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ।

चौ०-चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाई पुकारे॥

सरल अर्थ—वे सीता जी को सिर नवाकर चले और बाग में घुस गये। फल खाए और वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ बहुत से योद्धा रखवाले थे। उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से पुकार की।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

सरल अर्थ—(और कहा—) हे नाथ! एक बड़ा भारी बन्दर आया है। उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली, फल खाए, वृक्षों को उखाड़ डाला और रखवालों को मसल-मसल कर जमीन पर डाल दिया।

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥

सरल अर्थ—यह सुनकर रावण ने बहुत से योद्धा भेजे। उन्हें देखकर श्री हनुमान् जी ने गर्जना की। हनुमान् जी ने सब राक्षसों को मार डाला, कुछ जो अधमरे थे, चिल्लाते हुए गए।

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

सरल अर्थ—फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा। वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओं को साथ लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमान् जी ने एक वृक्ष (हाथ में) लेकर ललकारा और उसे मारकर महाध्वनि (बड़े जोर) से गर्जना की।

दोहा—कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥१८॥

सरल अर्थ—उन्होंने सेना में से कुछ को मार डाला और कुछ को मसल डाला और कुछ को पकड़-पकड़ कर धूल में मिला दिया। कुछ ने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु! बन्दर बहुत ही बलवान् है।

चौ०-सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारसि जनि सुत बाँधेसि ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥

सरल अर्थ—पुत्र का वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने (अपने जेठे पुत्र) बलवान मेघनाद को भेजा। (उसने कहा कि—) हे पुत्र! मारना नहीं, उसे बाँध लाना। उस बन्दर को देखा जाय कि कहाँ का है।

चला इन्द्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥

सरल अर्थ—इन्द्र को जीतने वाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। भाई का मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया। हनुमान् जी ने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है। तब वे कटकटाकर गर्जे और दौड़े।

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥

सरल अर्थ—उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और (उसके प्रहार से) लंकेश्वर रावण के पुत्र मेघनाद को बिना रथ का कर दिया (रथ को तोड़कर उसे नीचे पटक दिया।) उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़ कर हनुमान् जी अपने शरीर से मसलने लगे।

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई॥

सरल अर्थ—उन सबको मारकर फिर मेघनाद से लड़ने लगे (लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे) मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गए हों। हनुमान् जी उसे एक घूँसा मारकर वृक्ष पर जा चढ़े। उसको क्षण भर के लिए मूर्छा आ गई।

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥

सरल अर्थ—फिर उठकर उसने बहुत माया रची; परन्तु पवन के पुत्र उससे जीते नहीं जाते।

दोहा—ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥१९॥

सरल अर्थ—अंत में उसने ब्रह्मास्त्र का सन्धान (प्रयोग) किया। तब हनुमान् जी ने मन में विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्र को नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जाएगी।

चौ०-ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहि देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥

सरल अर्थ—उसने हनुमान् जी को ब्रह्मबाण मारा, (जिसके लगते ही वे वृक्ष से नीचे गिर पड़े) परन्तु गिरते समय भी उन्होंने बहुत सी सेना मार डाली। जब उसने देखा कि हनुमान् जी मूर्छित हो गए हैं तब वह उनको नागपाश से बाँधकर ले गया।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे भवानी! सुनो, जिनका नाम जपकर

ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बंधन को काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बन्धन में आ सकता है ? किन्तु प्रभु के कार्य के लिए श्री हनुमान् जी ने स्वयं अपने को बँधा लिया।

कपि बन्धन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥

सरल अर्थ—बन्दर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुक के लिए (तमाशा देखने के लिए) सब सभा में आए। हनुमान् जी ने जाकर रावण की सभा देखी। उसकी अत्यन्त प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ नहीं कही जाती।

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

सरल अर्थ—देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रता के साथ भयभीत हुए। सब रावण की भौं ताक रहे हैं (उसका रुख देख रहे हैं)। उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान् जी के मन में जरा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशंक खड़े रहे जैसे सर्पों के समूह में गरुड़ निःशंक (निर्भय) रहते हैं।

दोहा—कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥२०॥

सरल अर्थ—हनुमान् जी को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा। फिर पुत्र-वध का स्मरण किया तो उसके हृदय में विषाद उत्पन्न हो गया।

चौ०-कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥

सरल अर्थ—लंकापति रावण ने कहा—रे वानर! तू कौन है? किसके बल पर तूने वन को उजाड़ कर नष्ट कर डाला? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानों से नहीं सुना? रे शठ! मैं तुझे अत्यन्त निःशंक देख रहा हूँ।

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥

सरल अर्थ—तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जाने का भय नहीं है? (हनुमान् जी ने कहा—) हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के समूहों की रचना करती है;

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥

सरल अर्थ—जिनके बल से हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश (क्रमशः) सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं; जिनके बल से सहस्त्र मुख (फणों) वाले शेष जी पर्वत और वन सहित समस्त ब्रह्माण्ड को सिर पर धारण करते हैं;

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता ॥
हर को दण्ड कठिन जेहि भंजा । तेहि समेत नृप दल मद गंजा ॥

सरल अर्थ—जो देवताओं की रक्षा के लिए नाना प्रकार की देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले है, जिन्होंने शिव जी के कठोर धनुष को तोड़ डाला और उसी के साथ राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण कर दिया।

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली । बधे सकल अतुलित बलसाली ॥

सरल अर्थ—जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बाली को मार डाला, जो सबके सब अतुलनीय बलवान् थे।

दोहा—जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि ॥
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥२१॥

सरल अर्थ—जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत् को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम (चोरी से) हर लाए हो, मैं उन्ही का दूत हूँ।

चौ०-जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहसबाहु सन परी लराई ॥
समर बालि सन करि जसु पावा । सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा ॥

सरल अर्थ—मैं तुम्हारी प्रभुताई को खूब जानता हूँ। सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालि से युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था। हनुमान् जी के (मार्मिक) वचन सुनकर रावण ने हँसकर बात टाल दी।

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा । कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा ॥
सबकें देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहि कुमारग गामी ॥

सरल अर्थ—हे (राक्षसों के) स्वामी! मुझे भूख लगी थी, (इसलिए) मैंने फल खाए और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े। हे (निशाचरों के) मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्ग पर चलने वाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे,

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे । तेहि पर बाँधिउँ तनयँ तुम्हारे ॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा । कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा ॥

सरल अर्थ—तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया! (किन्तु) मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य किया चाहता हूँ।

बिनती करउँ जोरि कर रावन । सुनहु मान तजि मोर सिखावन ।
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी । भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी ॥

सरल अर्थ—हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम

अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुल का विचार करके देखो और भ्रम को छोड़कर भक्तभयहारी भगवान् को भजो।

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै॥

सरल अर्थ—जो देवता, राक्षस और समस्त चराचर को खा जाता है वह काल भी जिनके डर से अत्यन्त डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहने से जानकी जी को दे दो।

दोहा—प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि॥
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥२२॥

सरल अर्थ—खर के शत्रु श्री रामचन्द्र जी शरणागतों के रक्षक और दया के समुद्र हैं। शरण जाने पर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में रख लेंगे।

चौ०-जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ग्यानी॥

सरल अर्थ—यद्यपि हनुमान् जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की वाणी कही, तो भी वह महान् अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंग से) बोला कि हमें यह बन्दर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला।

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मति भ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥

सरल अर्थ—रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गई है। अधम! मुझे शिक्षा देने चला है। हनुमान् जी ने कहा—इससे उल्टा ही होगा (अर्थात् मृत्यु तेरी निकट आयी है, मेरी नहीं) यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धि का फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है।

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान् जी के वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया (और बोला—) अरे! इस मूर्ख का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते। सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े। उसी समय मंत्रियों के साथ विभीषण जी वहाँ आ पहुँचे।

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दण्ड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

सरल अर्थ—उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिए, यह नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा—भाई! यह सलाह उत्तम है।

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥

सरल अर्थ—यह सुनते ही रावण हँसकर बोला—अच्छा तो बन्दर को अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाय।

दोहा—कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥२४॥

सरल अर्थ—मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बन्दर की ममता पूँछ पर होती है। अतः तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ में बाँध कर फिर आग लगा दो।

चौ०-पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह के प्रभुताई॥

सरल अर्थ—जब बिना पूँछ का यह बन्दर वहाँ (अपने स्वामी के पास) जाएगा, तब यह मूर्ख अपने मालिक को साथ ले आएगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ।

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचै मूढ़ सोई रचना॥

सरल अर्थ—यह वचन सुनते ही हनुमान् जी मन में मुसकराये (और मन ही मन बोले कि) मैं जान गया, सरस्वती जी (इसे ऐसी बुद्धि देने में) सहायक हुई हैं। रावण के वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वहीं (पूँछ में आग लगाने की) तैयारी करने लगे।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥

सरल अर्थ—(पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा और घी तेल लगा कि) नगर में कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान् जी ने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गई (लम्बी हो गई)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आए। वे हनुमान् जी को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी बहुत हँसी करते हैं।

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमन्ता। भयउ परम लघु रूप तुरन्ता॥

सरल अर्थ—ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान् जी को नगर में फिराकर फिर पूँछ में आग लगा दी। अग्नि को जलते देखकर हनुमान् जी तुरन्त ही बहुत छोटे रूप में हो गए।

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भई सभीत निसाचर नारी ॥

सरल अर्थ—बन्धन से निकलकर वे सोने की अटारियों पर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गईं।

दोहा—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥२४॥

सरल अर्थ—उस समय भगवान् की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान् जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाश से जा लगे।

चौ०-देह बिसाल परम हरुआई। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ धाई ॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहुकोटि कराला ॥

सरल अर्थ—देह बहुत ही विशाल, परन्तु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है। वे दौड़कर एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गए हैं। आग की करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा ॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई ॥

सरल अर्थ—हाय बप्पा ! हाय मैया ! इस अवसर पर हमें कौन बचावेगा ? (चारों ओर) यही पुकार सुनाई पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानर का रूप धरे कोई देवता है।

साधु अवज्ञा कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥

सरल अर्थ—साधु के अपमान का यह फल है कि नगर अनाथ के नगर की तरह जल रहा है। हनुमान् जी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण का घर नहीं जलाया।

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे पार्वती ! जिन्होंने अग्नि को बनाया, श्री हनुमान् जी उन्हीं के दूत हैं। इसी कारण वे अग्नि से नहीं जले। हनुमान् जी ने उलट-पलट कर (एक ओर से दूसरी ओर तक) सारी लंका जला दी। फिर वे समुद्र में कूद पड़े।

दोहा—पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥२५॥

सरल अर्थ—पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा-सा रूप धारण कर श्री हनुमान् जी श्री जानकी जी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए।

चौ०-मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥

सरल अर्थ—(हनुमान् जी ने कहा—) हे माता ! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिये, जैसे रघुनाथ जी ने मुझे दिया था। तब सीता जी ने चूड़ामणि उतार कर दी। हनुमान् जी ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा ॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

सरल अर्थ—(जानकी जी ने कहा—) हे तात ! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना—हे प्रभु ! यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्ण काम हैं (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुखियों) पर दया करना आपका विरद है (और मैं दीन हूँ) अतः उस विरद को याद करके हे नाथ ! मेरे भारी संकट को दूर कीजिए।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा ॥

सरल अर्थ—हे तात ! इन्द्र पुत्र जयंत की कथा (घटना) सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना (स्मरण कराना)। यदि महीने भर में नाथ न आए तो फिर मुझे जीती न पायेंगे।

कहु कपि केहि बिधि राखौ प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना ॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती ॥

सरल अर्थ—हे हनुमान् ! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रखूं। हे तात ! तुम भी जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। फिर मुझे वही दिन और वही रात।

दोहा—जनकसुतहि समुझाइ करि बहुबिधि धीरजु दीन्ह ॥
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥२६॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान जी ने जानकी जी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरण कमलों में सिर नवाकर श्री रामचन्द्र जी के पास गमन किया।

चौ०-चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी ॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा ॥

सरल अर्थ—चलते समय उन्होंने महाध्वनि से भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघकर वे इस पार आए और उन्होंने वानरों को किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया।

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान् जी को देखकर सब हर्षित हो गए और तब वानरों ने अपना नया जन्म समझा। हनुमान् जी का मुख प्रसन्न है और शरीर में तेज विराजमान है, (जिससे उन्होंने समझ लिया कि) वे श्री रामचन्द्र जी का कार्य कर आए हैं।

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

सरल अर्थ—सब हनुमान् जी से मिले और बहुत ही सुखी हुए, जैसे तड़फती हुई मछली को जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नए-नए इतिहास (वृत्तांत) पूछते-कहते हुए श्री रघुनाथ जी के पास चले।

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥

सरल अर्थ—तब सब लोग मधुवन के भीतर आए और अंगद की सम्मति से सबने मधुर फल (या मधु और फल) खाए। जब रखवाले बरजने लगे तब घूँसों की मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे।

दोहा—जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज॥
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥२७॥

सरल अर्थ—उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभु का कार्य कर आए हैं।

चौ०-जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥

सरल अर्थ—यदि श्री सीता जी की खबर न पाई होती तो क्या वे मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर ही रहे थे कि समाज सहित वानर आ गए।

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥

सरल अर्थ—सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया। कपिराज सुग्रीव सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले। उन्होंने कुशल पूछी, (तब वानरों ने उत्तर दिया—) आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है। श्री रामचन्द्र जी की कृपा से विशेष कार्य हुआ (कार्य में विशेष सफलता हुई है।)

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! हनुमान्‌जी ने ही सब कार्य किया और सब वानरों के प्राण बचा लिए। यह सुनकर सुग्रीव जी हनुमान् जी से फिर मिले और सब वानरो समेत श्री रघुनाथ जी के पास चले।

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने जब वानरों को कार्य किये हुए आते देखा तब उनके मन में विशेष हर्ष हुआ। दोनो भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे। सब वानर जाकर उनके चरणो पर गिर पड़े।

दोहा—प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥२८॥

सरल अर्थ—दया की राशि श्री रघुनाथ जी सबसे प्रेम सहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी (वानरो ने कहा—) हे नाथ ! आप के चरण कमलो के दर्शन पाने से अब कुशल है।

चौ०-जामवन्त कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरन्तर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥

सरल अर्थ—जाम्बवान् ने कहा—हे रघुनाथ जी ! सुनिए। हे नाथ ! जिस पर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरन्तर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं।

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥

सरल अर्थ—वही विजयी है, वही विनयी और वही गुणो का समुद्र बन जाता है। उसी का सुन्दर यश तीनो लोको मे प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवन्त रघुपतिहि सुनाए॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! पवनपुत्र हनुमान् ने जो करनी की उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान् ने हनुमान् जी के सुन्दर चरित्र (कार्य) श्री रघुनाथ जी को सुनाए।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

सरल अर्थ—(वे चरित्र) सुनने पर कृपानिधि श्री रामचन्द्र जी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर श्री हनुमान् जी को हृदय से लगा लिया और कहा—हे तात्। कहो—सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणो की रक्षा करती हैं ?

दोहा—नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिंबाट ॥२८॥

सरल अर्थ—(हनुमान् जी ने कहा—) आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही किवाड़ है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाए रहती हैं, यही ताला लगा है; फिर प्राण जायँ तो किस मार्ग से ?

चौ०-चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥

सरल अर्थ—चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि (उतारकर) दी। श्री रघुनाथ जी ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। (हनुमान् जी ने फिर कहा—) हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भर कर श्री जानकी जी ने मुझसे कुछ वचन कहे—

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बन्धु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥

सरल अर्थ—छोटे भाई समेत प्रभु के चरण पकड़ना (और कहना कि) आप दीनबन्धु हैं, शरणागत के दुखों को हरने वाले हैं। और मैं मन, वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराध से त्याग दिया।

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥

सरल अर्थ—(हाँ) एक दोष मैं अपना (अवश्य) मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गए, किन्तु हे नाथ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥

सरल अर्थ—विरह अग्नि है, शरीर रुई है और श्वास पवन है, इस प्रकार (अग्नि और पवन का संयोग होने से) यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है, परन्तु नेत्र अपने हित के लिए (प्रभु का स्वरूप देखकर सुखी होने के लिए) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे विरह की आग से भी देह जलने नहीं पाती।

सीता के अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥

सरल अर्थ—सीता जी की विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है, (कहने से आपको बड़ा क्लेश होगा।)

दोहा—निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥३०॥

सरल अर्थ—हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है। अतः हे प्रभु! तुरन्त चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीत कर सीता जी को ले आइए।

चौ०-पुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना ॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही ॥

सरल अर्थ—सीता जी का दुख सुनकर सुख के धाम प्रभु के कमल नेत्रों में जल भर आया (और वे बोले—) मन, वचन और शरीर से जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है उसे क्या स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है ?

कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई ॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी ॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान् जी ने कहा—हे प्रभु ! विपत्ति तो वही (तभी) है जब आपका भजन स्मरण न हो। हे प्रभो ! राक्षसों की बात ही कितनी है ? आप शत्रु को जीतकर जानकी जी को ले आवेंगे।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

सरल अर्थ—(भगवान् ने कहा—) हे हनुमान् ! सुन; तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदले में उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता ॥

सरल अर्थ—हे पुत्र। सुन, मैंने मन मे (खूब) विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान् जी को देख रहे हैं। नेत्रों मे प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यन्त पुलकित है।

दोहा—सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवन्त ॥३१॥

सरल अर्थ—प्रभु के वचन सुनकर और उनके (प्रसन्न) मुख तथा (पुलकित) अंगों को देखकर हनुमान् जी हर्षित हो गए। और प्रेम मे विकल होकर 'हे भगवान् ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्री रामजी के चरणो मे गिर पड़े।

चौ०-उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥

सरल अर्थ—हे उमा ! जिसने श्रीरामचन्द्र जी का स्वभाव जान लिया उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती। यह स्वामी-सेवक का संवाद जिसके हृदय मे आ गया, वही श्री रघुनाथ जी के चरणों की भक्ति पा गया।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृन्दा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा ॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलै कर करहु बनावा ॥

सरल अर्थ—प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे—कृपालु आनन्द कंद श्री रामचन्द्र जी की जय हो, जय हो, जय हो। तब श्री रघुनाथ जी ने कपिराज सुग्रीव को बुलाया और कहा—चलने की तैयारी करो।

अब बिलम्बु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजै ॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी ॥

सरल अर्थ—अब विलम्ब किस कारण किया जाय। वानरों को तुरन्त आज्ञा दो। (भगवान् की) यह लीला (रावण वध की तैयारी) देखकर बहुत से फूल बरसा कर और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने-अपने लोक को चले।

दोहा—कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ॥३२॥

सरल अर्थ—वानरराज सुग्रीव ने शीघ्र ही वानरों को बुलाया, सेनापतियों के समूह आ गए। वानर-भालुओं के झुण्ड अनेक रंगों के हैं और उनमें अतुलनीय बल है।

चौ०-प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा ॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना ॥

सरल अर्थ—वे प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाते हैं। महान् बलवान् रीछ और वानर गरज रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी ने वानरों की सारी सेना देखी। तब कमल नेत्रों से कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली।

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा ॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुन्दर सुभ नाना ॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी की कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानों पंख वाले बड़े पर्वत हो गए। तब श्रीरामचन्द्र जी ने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती ॥
प्रभु पयान जाना बैदेही। फरकि बाम अंग जनु कहि देहीं ॥

सरल अर्थ—जिनकी कीर्ति सब मंगलों से पूर्ण है, उनके प्रस्थान के समय शकुन होना, यह नीति है (लीला की मर्यादा है)। प्रभु का प्रस्थान जानकी जी ने भी जान लिया। उनके बाएँ अंग फड़क-फड़क कर मानो कहे देते थे (कि श्रीरामचन्द्र जी आ रहे हैं)।

जाइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई ॥
चला कटकु को बरनै पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥

सरल अर्थ—श्री जानकी जी को जो-जो शकुन होते थे, वही-वही रावण के लिए अपशकुन हुए। सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं।

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी ॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं ॥

सरल अर्थ—नख ही जिनके शस्त्र है, वे इच्छानुसार (सर्वत्र बेरोक-टोक) चलने वाले रीछ-वानर पर्वतो और वृक्षो को धारण किए कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे हैं। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। (उनके चलने और गर्जन से) दिशाओं के हाथी विचलित होकर चिग्घाड़ रहे है।

छन्द-चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खर भरे।
मन हरष सभ गन्धर्व सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे ॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं ॥
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं ॥

सरल अर्थ—दिशाओं के हाथी चिग्घाडने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चंचल हो गए (कांपने लगे) और समुद्र खलबला उठे। गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर, सबके सब मन में हर्षित हुए कि (अब) हमारे दुख टल गये। अनेको करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे है और करोडों ही दौड रहे हैं। 'प्रबल प्रताप कोसलनाथ श्री रामचन्द्र जी की जय हो', ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुण समूहो को गा रहे हैं।

दोहा– एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥३३॥

सरल अर्थ—इस प्रकार कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी समुद्र तट पर जा उतरे। अनेको रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे।

चौ०-उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जबतें जारि गयउ कपि लंका ॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा ॥

सरल अर्थ—वहाँ (लका मे) जब से श्री हनुमान् जी लका को जलाकर गये, तब से राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरो मे सब विचार करते हैं कि अब राक्षस कुल की रक्षा (का कोई उपाय) नही है।

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई ॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥

सरल अर्थ—जिसके दूत का बल वर्णन नही किया जा सकता, उसके स्वयं नगर में आने पर कौन भलाई है (हम लोगो की बड़ी बुरी दशा होगी)? दूतियों से नगर निवासियो के वचन सुनकर मन्दोदरी बहुत ही व्याकुल हो गई।

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी ॥
कन्त करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू ॥

सरल अर्थ—वह एकान्त में हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीति रस में पगी हुई वाणी बोली—हे प्रियतम। श्री हरि से विरोध छोड़ दीजिये। मेरे कहने को अत्यन्त ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिए।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

सरल अर्थ—जिनके दूत की करनी का विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी। यदि भला चाहते हैं, तो अपने मन्त्री को बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिये।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीतासीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार सम्भु अज कीन्हे॥

सरल अर्थ—सीता आपके कुलरूपी कमलों के वन को दुख देने वाली जाड़े की रात्रि के समान आयी है। हे नाथ! सुनिए, सीता को दिए (लौटाए) बिना शम्भु और ब्रह्मा के किए भी आपका भला नहीं हो सकता।

दोहा—राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥३४॥

सरल अर्थ—श्री राम जी के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और राक्षसों के समूह मेढक के समान। जब तक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तब तक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिए।

चौ०-श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥

मूर्ख और जगत् प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानों से उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा (और बोला—) स्त्रियों का स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मंगल में भी भय करती हो। तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है।

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहि लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥

सरल अर्थ—यदि बानरों की सेना आवेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डर से काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसी की बात है।

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
मन्दोदरी हृदयँ कर चिन्ता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

सरल अर्थ—रावण ने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और ममता बढ़ा कर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभा में चला गया। मन्दोदरी हृदय में चिन्ता करने लगी कि पति पर विधाता प्रतिकूल हो गए।

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधुपार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥

सरल अर्थ -- ज्यों ही वह सभा मे जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पाई कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गई है। उसने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह कहिये (अब क्या करना चाहिये)। तब वे सब हँसे और बोले, कि चुप किए रहिये (इसमे सलाह की कौन सी बात है ?)

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

सरल अर्थ—आपने देवताओं और राक्षसो को जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नही हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती मे हैं ?

दोहा—सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिही नास॥३७॥

सरल अर्थ—मन्त्री, वैद्य और गुरु—ये तीन यदि (अप्रसन्नता के) भय या (लाभ की) आशा से (हित की बात न कहकर) प्रिय बोलते हैं (ठकुरसोहाती कहने लगते हैं), तो (क्रमशः) राज्य, शरीर और धर्म इन तीन का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

चौ-०माल्यवत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥

सरल अर्थ—माल्यवान् नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान् मन्त्री था। उसने उन (विभीषण) के वचन सुनकर बहुत सुख माना (और कहा—) हे तात ! आपके छोटे भाई नीतिविभूषण (नीति को भूषण रूप में धारण करने वाले अर्थात् नीतिमान्) हैं। विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदय मे धारण कर लीजिए।

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥

सरल अर्थ—(रावण ने कहा—) ये दोनो मूर्ख शत्रु की महिमा बखान रहे हैं। यहाँ कोई है ? इन्हें दूर करो न। तब माल्यवान् तो घर लौट गया और विभीषण जी हाथ जोडकर फिर कहने लगे—

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदय मे रहती हैं। जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की सम्पदाएँ (सुख की स्थिति) रहती है और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम मे विपत्ति (दुख) रहती है।

तव उर कुमति बसी विपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

सरल अर्थ—आपके हृदय में उल्टी बुद्धि बसी है। इसी से आप हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हैं। जो राक्षस कुल के लिए कालरात्रि (के समान) हैं, उन सीता पर आपकी बड़ी प्रीति है।

दोहा—तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥३६॥

सरल अर्थ—हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार रखिए (मुझ बालक के आग्रह को स्नेह पूर्वक स्वीकार कीजिये।) श्री रामचन्द्र जी को सीता जी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो।

चौ०-बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥

सरल अर्थ—विभीषण ने पण्डितों, पुराणों और वेदों द्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणी से नीति बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गई है।

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं॥

सरल अर्थ—अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे ही अन्न से पल रहा है), पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है! अरे दुष्ट! बता न, जगत् में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥

सरल अर्थ—मेरे नगर में रहकर प्रेम करता है तपस्वियों पर! मूर्ख! उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति बता! ऐसा कहकर रावण ने उन्हें लात मारी। परन्तु छोटे भाई विभीषण ने (मारने पर भी) बार-बार उसके चरण ही पकड़े।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मन्द करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे उमा! संत की यही बड़ाई (महिमा) है कि वे बुराई करने पर भी (बुराई करने वाले की) भलाई ही करते हैं। (विभीषण जी ने कहा—) आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा तो अच्छा किया, परन्तु हे नाथ! आपका भला श्रीरामचन्द्र जी को भजने में ही है।

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥

सरल अर्थ—(इतना कहकर) विभीषण अपने मंत्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में गए और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे।

दोहा—रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥३७॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी सत्य संकल्प एवं (सर्वसमर्थ) प्रभु हैं और (हे रावण) तुम्हारी सभा काल के वश है। अतः अब मैं श्री रघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना।

चौ०-असि कहि चला बिभीषनु जबही। आयूहीन भए सब तबही ॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी ॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर विभीषण जी ज्यों ही चले त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गये (उनकी मृत्यु निश्चित हो गई)। (शिव जी कहते हैं—) हे भवानी! साधु का अपमान तुरन्त ही सम्पूर्ण कल्याण की हानि (नाश) कर देता है।

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥

सरल अर्थ--रावण ने जिस क्षण विभीषण को त्यागा उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया। विभीषण जी हर्षित होकर मन में अनेकों मनोरथ करते हुए श्री रघुनाथ जी के पास चले।

देखिहउँ जाइ चरन जल जाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता ॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी ॥

सरल अर्थ—(वे सोचते जाते थे—) मैं जाकर भगवान् के कोमल और लाल वर्ण के सुन्दर चरण कमलों के दर्शन करूँगा, जो सेवकों को सुख देने वाले हैं, जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषि-पत्नी अहिल्या तर गई और जो दण्डक वन को पवित्र करने वाले हैं।

जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए।
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई ॥

सरल अर्थ—जिन चरणों को जानकी जी ने हृदय में धारण कर रखा है, जो कपट मृग के साथ पृथ्वी पर (उसे पकड़ने को) दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिव जी के हृदय रूपी सरोवर में विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा।

दोहा—जिन्ह पायन के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ ॥
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाई ॥३८॥

सरल अर्थ—जिन चरणों की पादुकाओं में भरत जी ने अपना मन लगा रखा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणों को अभी जाकर इन नेत्रों से देखूँगा।

चौ०--एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा ॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा ॥

सरल अर्थ—इस प्रकार प्रेम सहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्र के इस पार (जिधर श्री रामचन्द्र जी की सेना थी) आ गए। वानरों ने विभीषण को आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रु का कोई खास दूत है।

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥

सरल अर्थ—उन्हें (पहरे पर) ठहराकर वे सुग्रीव के पास आए और उनको सब समाचार कह सुनाए। सुग्रीव ने (श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर) कहा—हे रघुनाथ जी! सुनिए, रावण का भाई (आप से) मिलने आया है।

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥

सरल अर्थ—प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने कहा—हे मित्र! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है)? वानरराज सुग्रीव ने कहा—हे महाराज! सुनिये, राक्षसों की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला (छली) न जाने किस कारण आया है।

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥

सरल अर्थ—(जान पड़ता है) यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है। इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रक्खा जाय। (श्री रामचन्द्र जी ने कहा—) हे मित्र! तुमने नीति तो अच्छी विचारी, परन्तु मेरा प्रण तो है शरणागत के भय को हर लेना।

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

सरल अर्थ—प्रभु के वचन सुनकर श्री हनुमान् जी हर्षित हुए (और मन ही मन कहने लगे कि) भगवान् कैसे शरणागत वत्सल (शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करने वाले) हैं।

दोहा—सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥४३॥

सरल अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी फिर बोले—) जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आए हुए का त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं। उन्हें देखने में भी हानि है (पाप लगता है)।

चौ०-सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥

सरल अर्थ—विभीषण जी को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले जहाँ करुणा की खान श्री रघुनाथ जी थे। नेत्रों को आनन्द का दान देने वाले (अत्यन्त सुखद) दोनों भाइयों को विभीषण जी ने दूर से ही देखा।

बहुरि राम छबि धाम बिलोकी । रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ।।
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन । स्यामल गात प्रनत भय मोचन ।।

सरल अर्थ—फिर शोभा के धाम श्री रामचन्द्र जी को देखकर वे पलक (मारना) रोककर टिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गए। भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं, लाल कमल के समान नेत्र है और शरणागत के भय का नाश करने वाला साँवला शरीर है।

सिंह कंध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन मन मोहा ।।
नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ।।

सरल अर्थ—सिंह के से कन्धे है, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यन्त शोभा दे रहा है। असख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला मुख है। भगवान् के स्वरूप को देखकर विभीषण जी के नेत्रो मे (प्रेमाश्रुओ का) जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। फिर मन मे धीरज धरकर उन्होने कोमल वचन कहे—

नाथ दसानन कर मैं भ्राता । निसिचर बस जनम सुरत्राता ।।
सहज पाप प्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ।।

सरल अर्थ—हे नाथ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ। हे देवताओ के रक्षक! मेरा जन्म राक्षसकुल मे हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय है, जैसे उल्लू को अन्धकार पर सहज स्नेह होता है।

दोहा—श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ।।४०।।

सरल अर्थ—मैं कानो से आप का सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भय का नाश करने वाले हैं। हे दुखियो के दुख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिये।

चौ०-अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ।।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ।।

सरल अर्थ—प्रभु ने उन्हे ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो वे अत्यन्त हर्षित होकर तुरन्त उठे। विभीषण जी के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को बहुत ही भाए। उन्होने अपनी विशाल भुजाओ से पकडकर उनको हृदय से लगा लिया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत भयहारी ।।
कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ।।

सरल अर्थ—छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्री रामचन्द्र जी भक्तो के भय को हरने वाले वचन बोले—हे लंकेश! परिवार सहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगह पर है।

खल मण्डली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती ।।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती ।।

सरल अर्थ—दिन-रात दुष्टों की मण्डली में बसते हो। (ऐसी दशा में) हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ। तुम अत्यन्त नीति निपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ।।
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया ।।

सरल अर्थ—हे तात! नरक में रहना वरं अच्छा है, परन्तु विधाता दुष्ट का संग (कभी) न दे। (विभीषण जी ने कहा—) हे रघुनाथ जी! अब आप के चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है।

दोहा—तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ।।४१।।

सरल अर्थ—तब तक जीव की कुशल नहीं और न स्वप्न में भी उसके मन को शान्ति है, जब तक वह शोक के घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्री रामचन्द्र जी को नहीं भजता।

चौ०- सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ।।
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा ।।

सरल अर्थ—हे लंकापति! सुनो, तुम्हारे अन्दर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। श्री रामचन्द्र जी के वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे—कृपा के समूह श्री राम जी की जय हो।

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी ।।
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा ।।

सरल अर्थ—प्रभु की वाणी सुनते हैं और उसे कानों के लिए अमृत जानकर विभीषण जी अघाते नहीं हैं। वे बार-बार श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों को पकड़ते हैं। अपार प्रेम है, हृदय में समाता नहीं है।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी ।।
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ।।

सरल अर्थ—(विभीषण जी ने कहा—) हे देव! हे चराचर जगत् के स्वामी! हे शरणागत के रक्षक! हे सबके हृदय के भीतर की जानने वाले! सुनिये, मेरे हृदय में पहले कुछ वासना थी, वह प्रभु के चरणों की प्रीति रूपी नदी में बह गई।

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी ।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा ।।

सरल अर्थ—अब तो हे कृपालु ! शिव जी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये। 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने तुरन्त ही समुद्र का जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माही॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा॥

सरल अर्थ—(और कहा—) हे सखा ! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत् मे मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नही जाता)। ऐसा कहकर श्री रामचन्द्र जी ने उनका राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पो की अपार वृष्टि हुई।

दोहा—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरतु विभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥४२क॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने रावण के क्रोध रूपी अग्नि मे, जो अपनी (विभीषण की) श्वास (वचन) रूपी पवन मे प्रचण्ड हो रही थी, जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अखण्ड राज्य दिया।

जो सम्पति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ॥
सोइ सम्पदा बिभीपनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥४२ख॥

सरल अर्थ—शिव जी ने जो सम्पत्ति रावण को दसो सिरो की बलि देने पर दी थी, वही सम्पत्ति श्री रघुनाथ जी ने विभीषण को बहुत सकुचाते हुए दी।

जबहि बिभीषन प्रभु पहि आए। पाछें रावन दूत पठाए॥

सरल अर्थ—इधर ज्यो ही विभीषण जी प्रभु के पास आए थे, त्यों ही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे।

प्रगट बखानहि राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहि आने॥

सरल अर्थ—फिर वे प्रकट रूप मे भी अत्यन्त प्रेम के साथ श्री रामचन्द्र जी के स्वभाव की बड़ाई करने लगे, उन्हे दुराव (कपट वेष) भूल गया। तब वानरो ने जाना कि ये शत्रु के दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीव के पास ले आए।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥

सरल अर्थ—सुग्रीव ने कहा—सब वानरो ! सुनो, राक्षसो के अंग-भंग कर भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतो को बाँधकर उन्होंने सेना के चारों ओर घुमाया।

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीश कै आना॥

सरल अर्थ—वानर उन्हें बहुत तरह से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा। (तब दूतों ने पुकार कर कहा—) जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोसलाधीश श्री रामचन्द्र जी की सौगन्ध है।

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥

सरल अर्थ—यह सुनकर लक्ष्मण जी ने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसों को तुरन्त ही छुड़ा दिया। (और उनसे कहा—) रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना (और कहना) हे कुलघातक! लक्ष्मण के शब्दों (सँदेसे) को बाँचो।

दोहा—कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥४३॥

सरल अर्थ—फिर उस मूर्ख से जबानी यह मेरा उदार (कृपा से भरा हुआ) संदेश कहना कि सीता जी को देकर उनसे (श्रीरामचन्द्र जी से) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया। (समझो)।

चौ०-तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी के चरणों में मस्तक नवाकर श्रीरामचन्द्र जी के गुणों की कथा वर्णन करते हुए दूत तुरन्त ही चल दिए। श्रीरामचन्द्र जी का यश कहते हुए वे लंका में आए और उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाए।

बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥

सरल अर्थ—दशमुख रावण ने हँसकर बात पूछी—अरे शुक! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर उस विभीषण का समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यन्त निकट आ गई है।

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥

सरल अर्थ—मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका त्याग दिया। अभागा अब जौ का कीड़ा (घुन) बनेगा। (जौ के साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर-वानरों के साथ वह भी मारा जाएगा)। फिर भालु और वानरों की सेना का हाल कह, जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आई है।

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥

सरल अर्थ—और जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्तवाला बेचारा समुद्र

बन गया है, (अर्थात् उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गये होते)। फिर उन तपस्वियों की बात बता, जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है।

दोहा—की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ।।४४।।

सरल अर्थ—उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानों से मेरा सुयश सुनकर ही लौट गए? शत्रु सेना का तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का सा) हो रहा है।

चौ०-नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें ।।
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं रामतिलक तेहि सारा ।।

सरल अर्थ—(दूत ने कहा—) हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये (मेरी बात पर विश्वास कीजिए)। जब आपका छोटा भाई श्रीरामचन्द्र जी से जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्रीरामचन्द्र जी ने उसको राजतिलक कर दिया।

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना ।।
श्रवन नासिका काटै लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे ।।

सरल अर्थ—हम रावण के दूत हैं, यह कानों से सुनकर वानरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिए, यहाँ तक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे। श्रीरामचन्द्र जी की शपथ दिलाने पर कहीं उन्होंने हमें छोड़ा।

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई ।।
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी ।।

सरल अर्थ—हे नाथ! आपने श्रीरामचन्द्र जी की सेना पूछी सो वह तो सौ करोड़ मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। अनेकों रंगों के भालु और वानरों की सेना है, जो भयंकर मुखवाले, विशाल शरीर वाले और भयानक हैं।

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा ।।
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला ।।

सरल अर्थ—जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र अक्षयकुमार को मारा उसका बल तो सब वानरों में थोड़ा है। असंख्य नामों वाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा है। उनमें असंख्य हाथियों का बल है और बड़े ही विशाल हैं।

दोहा—द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवन्त बलरासि ।।४५।।

सरल अर्थ—द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान् ये सभी बल की राशि हैं।

चौ०-ए कपि सब सुग्रीव समाना । इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ।।
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं । तृन समान त्रैलोकहि गनहीं ।।

सरल अर्थ—ये सब वानर बल में सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे (एक-दो नहीं) करोड़ों हैं, उन बहुत-सों को गिन कौन सकता है ? श्री रामचन्द्र जी की कृपा से उनमें अतुलनीय बल है ! वे तीनों लोकों को तृण के समान (तुच्छ) समझते हैं ।

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर । पदुम अठारह जूथप बंदर ।।
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं ।।

सरल अर्थ—हे दशग्रीव ! मैंने कानों से ऐसा सुना है कि अट्ठारह पद्म तो अकेले वानरों के सेनापति हैं । हे नाथ ! उस सेना में ऐसा कोई वानर नहीं है जो आपको रण में जीत न सके ।

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा । आयसु पै न देहिं रघुनाथा ।।
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला । पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला ।।

सरल अर्थ—सबके सब अत्यन्त क्रोध से हाथ मीजते हैं, पर श्रीरघुनाथ जी उन्हें आज्ञा नही देते । हम मछलियों और साँपों सहित समुद्र को सोखलेंगे । नहीं तो, बड़े-बड़े पर्वतों से उसे भरकर पूर (पाट) देंगे ।

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा । ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा ।।
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका । मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका ।।

सरल अर्थ—और रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे । सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं । सब सहज ही निडर हैं; इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लंका को निगल ही जाना चाहते हैं ।

दोहा—सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम ।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम ।।४६।।

सरल अर्थ—सब वानर-भालू सहज ही शूर वीर हैं, फिर उनके सिर पर प्रभु (सर्वेश्वर) श्री रामचन्द्र जी हैं । हे रावण ! वे संग्राम में करोड़ों कालों को जीत सकते हैं ।

चौ०-राम तेज बल बुधि बिपुलाई । सेष सहस सत सकहिं न गाई ।।
सक सर एक सोषि सत सागर । तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर ।।

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते । वे एक ही बाण से सैकड़ों समुद्रों को सोख सकते हैं, परन्तु नीतिनिपुण श्री रामचन्द्र जी ने (नीति की रक्षा के लिए) आपके भाई से उपाय पूछा ।

तासु बचन सुनि सागर पाहीं । मागत पंथ कृपा मन माहीं ।।
सुनत बचन बिहसा दससीसा । जौं असि मति सहाय कृत कीसा ।।

सरल अर्थ—उनके (आपके भाई के) वचन सुनकर वे (श्री रामचन्द्र जी) समुद्र से राह माँग रहे हैं। उनके मन में कृपा भरी है (इसलिए वे उसे सोखते नहीं)। दूत के ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा (और बोला—) जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरों को सहायक बनाया है।

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥

सरल अर्थ—स्वाभाविक ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण करके उन्होंने समुद्र से मचलना (बालहठ) ठाना है। अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है। बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धि की थाह पा ली।

सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥

सरल अर्थ—जिसके विभीषण जैसा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत् में विजय और विभूति (ऐश्वर्य) कहाँ! दुष्ट रावण के वचन सुनकर दूत का क्रोध बढ़ आया। उसने मौका समझ कर पत्रिका निकाली।

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥

सरल अर्थ—(और कहा—) श्री रामचन्द्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्रिका दी है। हे नाथ! इसे बँचवाकर छाती ठंडी कीजिए। रावण ने हँसकर उसे बाएँ हाथ से लिया और मन्त्री को बुलवा कर वह मूर्ख उसे बँचवाने लगा।

दोहा—बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥४७क॥

सरल अर्थ—(पत्रिका में लिखा था—) अरे मूर्ख! केवल बातों से ही मन को रिझाकर अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट न कर। श्री रामचन्द्र जी से विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेश की शरण जाने पर भी नहीं बचेगा।

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥४७ख॥

सरल अर्थ—या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन जा। अथवा, रे दुष्ट! श्री रामचन्द्र जी के बाण रूपी अग्नि में परिवार सहित पतिंगा हो जा (दोनों में से जो अच्छा लगे सो कर)।

चौ०-सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥

सरल अर्थ—पत्रिका सुनते ही रावण मन में भयभीत हो गया, परन्तु मुख से (ऊपर से) मुसकराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा—जैसे कोई पृथ्वी पर

पड़ा हुआ हाथ से आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हांकता है)।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी।।
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा।।

सरल अर्थ—शुक (दूत) ने कहा—हे नाथ! अभिमानी स्वभाव को छोड़कर (इस पत्र में लिखी) सब बातों को सत्य समझिये। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिए। हे नाथ! श्री रामचन्द्र जी से वैर त्याग दीजिये।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ।।
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही।।

सरल अर्थ—यद्यपि श्री रघुवीर समस्त लोकों के स्वामी हैं पर उनका स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आप पर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदय में नहीं रखेंगे।

जनकसुता रघुनाथहि दीजै। एतना कहा मोर प्रभु कीजै।।
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही।।

सरल अर्थ—जानकी जी रघुनाथ जी को दे दीजिये। हे प्रभु! इतना कहना मेरा कीजिए। जब उस (दूत) ने जानकी जी को देने के लिए कहा, तब दुष्ट रावण ने उसको लात मारी।

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ।।
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई।।

सरल अर्थ—वह भी (विभीषण की भाँति) चरणों में सिर नवाकर वहीं चला, जहाँ कृपासागर श्री रघुनाथ जी हैं। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और श्री रामचन्द्र जी की कृपा से अपनी गति (मुनि का स्वरूप) पायी।

रिषि अगस्ति की साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी।।
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा।।

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार-बार श्री रामचन्द्र जी के चरणों की वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया।

दोहा—बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।४८।।

सरल अर्थ—इधर तीन दिन बीत गए, किन्तु जड़समुद्र विनय नहीं मानता। तब श्री रामचन्द्र जी क्रोध सहित बोले—बिना भय के प्रीति नहीं होती।

चौ०-लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुन्दर नीती ॥

सरल अर्थ—हे लक्ष्मण ! धनुष-बाण लाओ। मैं अग्नि बाण से समुद्र को सोख डालूं। मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूस से सुन्दर नीति (उदारता का उपदेश)।

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा ॥

सरल अर्थ—ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शम (शान्ति) की बात और कामी से भगवान् की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा ॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर श्री रघुनाथ जी ने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मण जी के मन को बहुत अच्छा लगा। प्रभु ने भयानक (अग्नि) बाण संधान किया, जिससे समुद्र के हृदय के अन्दर अग्नि की ज्वाला उठी।

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने ॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना ॥

सरल अर्थ - मगर, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो गए। जब समुद्र ने जीवों को जलते जाना तब सोने के थाल में अनेक मणियों (रत्न) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मण के रूप में आया।

दोहा—काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच ॥५८॥

सरल अर्थ—(काक भुशुण्डि जी कहते हैं—) हे गरुड़ जी ! सुनिये, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही झुकता है (रास्ते पर आता है)।

चौ०-सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥

सरल अर्थ—समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के चरण पकड़कर कहा—हे नाथ ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिये। हे नाथ ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सबकी करनी स्वभाव से ही जड़ है।

तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥

सरल अर्थ—आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है, सब ग्रन्थों ने यही गाया है, जिसके लिए स्वामी की जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकार से रहने में सुख पाता है।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

सरल अर्थ—प्रभु ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दण्ड) दी। किन्तु मर्यादा (जीवों का स्वभाव) भी आपकी ही बनाई हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री—ये सब दण्ड के अधिकारी हैं।

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥

सरल अर्थ—प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जायगी, इसमें मेरी बड़ाई नही है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी) तथापि प्रभु की आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते है। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरन्त वही करूँ।

दोहा—सुनत विनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥५०॥

सरल अर्थ—समुद्र के अत्यन्त विनीत वचन सुनकर कृपालु श्री रामचन्द्र जी ने मुसकराकर कहा—हे तात्! जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर जाय, वह उपाय बताओ।

चौ०-नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥

सरल अर्थ—(समुद्र ने कहा—) हे नाथ! नील और नल दो वानर भाई है। उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रताप से समुद्र पर तैर जाएँगे।

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहु गाइअ॥

सरल अर्थ—मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर अपने बल के अनुसार (जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्र को बंधाइये जिससे तीनो लोकों मे आपका सुन्दर यश गाया जाय।

दोहा—सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जल जान॥५१॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी का गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भव सागर को तर जाएँगे।

□□

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

१०. श्री रामचरितमानस

षष्ठ सोपान

(लंकाकाण्ड)

दोहा—लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड ।।१।।

सरल अर्थ—लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, हे मन ! तू उन श्री रामचन्द्र जी को क्यों नही भजता ?

सो०—सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब बिलम्बु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु ।।२।।

सरल अर्थ—समुद्र के वचन सुनकर प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने मन्त्रियो को बुलाकर ऐसा कहा—अब विलम्ब किस लिए हो रहा है ? सेतु (पुल) तैयार करो, जिसमें सेना उतरे ।

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह ।
नाथ नाम तव सेतु नर चढि भवसागर तरहिं ।।३।।

सरल अर्थ—जाम्बवान् ने हाथ जोडकर कहा—हे सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढाने वाले) श्रीरामचन्द्र जी ! सुनिये । हे नाथ ! (सबसे बड़ा) सेतु तो आपका नाम ही है, जिस पर चढ़कर (जिसका आश्रय लेकर) मनुष्य ससार रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं ।

चौ०-जामवंत बोले दोउ भाई । नल नीलहि सब कथा सुनाई ।।
राम प्रताप सुमिरि मन माही । करहु सेतु प्रयास कछु नाही ।।

सरल अर्थ—जाम्ववान् ने नल-नील दोनो भाइयों को बुलाकर उन्हे सारी कथा कह सुनाई (और कहा—) मन मे श्रीराम जी के प्रताप को स्मरण करके सेतु तैयार करो, (राम प्रताप से) कुछ भी परिश्रम नही होगा ।

सैल बिसाल आनि कपि देही । कंदुक इव नल नील ते लेही ।।
देखि सेतु अति सुन्दर रचना । बिहसि कृपानिधि बोले बचना ।।

सरल अर्थ—वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं और नल-नील उन्हें गेंद की तरह ले लेते हैं। सेतु की अत्यन्त सुन्दर रचना देखकर कृपासिंधु श्रीरामचन्द्र जी हँस कर वचन बोले—

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कल्पना॥

सरल अर्थ—यह (यहाँ की) भूमि परम रमणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह महान् संकल्प है।

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिवर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे; जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आए। शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया। (फिर भगवान् बोले—) शिव जी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है।

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

सरल अर्थ—जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शंकर जी से विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी मूर्ख और अल्पबुद्धि है।

दोहा—संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥४क॥

सरल अर्थ—जिनको शंकर जी प्रिय हैं, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं एवं जो शिव जी के द्रोही हैं और मेरे दास (बनना चाहते) हैं, वे मनुष्य कल्प भर घोर नरक में निवास करते हैं।

श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥४ख॥

सरल अर्थ—श्री रघुवीर जी के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गए। ऐसे श्रीरामचन्द्र जी को छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं वे (निश्चय ही) मन्दबुद्धि हैं।

सेतु बंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥४ग॥

सरल अर्थ—सेतु बंध पर बड़ी भीड़ हो गई, इससे कुछ वानर आकाश मार्ग से उड़ने लगे और दूसरे (कितने ही) जलचर जीवों पर चढ़-चढ़कर पार जा रहे हैं।

चौ०-सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा । सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए । सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए ॥

सरल अर्थ—प्रभु ने समुद्र के पार डेरा डाला और सब वानरों को आज्ञा दी कि तुम जाकर सुन्दर फल-मूल खाओ । यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े ।

सब तरु फरे रामहित लागी । रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं । लंका सन्मुख सिखर चलावहिं ॥

सरल अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी के हित (सेवा) के लिए सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु-समय की गति को छोड़कर फल उठे । वानर-भालू मीठे-मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षों को हिला रहे हैं और पर्वतों के शिखरों को लंका की ओर फेंक रहे हैं ।

जिन्ह कर नासा कान निपाता । तिन्ह रावनहि कही सब बाता ॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना । दस मुख बोलि उठा अकुलाना ॥

सरल अर्थ—जिन राक्षसों के नाक और कान काट डाले गये उन्होंने रावण से सब समाचार कहा । समुद्र (पर सेतु) का बाँधा जाना कानों से सुनते ही रावण घबड़ाकर दसों मुखों से बोल उठा—

दोहा—बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस ।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥५॥

सरल अर्थ—वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच बाँध लिया ?

चौ०-सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा । करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा ॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा । बार बार प्रभु पूछहु काहा ॥

सरल अर्थ—सभा में आकर उसने मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा ? मन्त्री कहने लगे—हे राक्षसों के नाथ ! हे प्रभु ! सुनिए, आप बार-बार क्या पूछते हैं ?

दोहा—सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि ।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मन्त्रिन्ह मति अति थोरि ॥६॥

सरल अर्थ—कानों से सबके वचन सुनकर (रावण का पुत्र) प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा—हे प्रभु ! नीति के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिए, मंत्रियों में बहुत थोड़ी बुद्धि है ।

चौ०-कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती । नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा । तासु चरित मन महुँ सब गावा ॥

सरल अर्थ—ये सभी मूर्ख (खुशामदी) मन्त्री ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) कह रहे हैं। हे नाथ! इस प्रकार की बातों से पूरा नहीं पड़ेगा। एक ही बन्दर समुद्र लाँघकर आया था। उसका चरित्र सब लोग अब भी मन ही मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते है)।

छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू।
सुनत नीक आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा॥

सरल अर्थ—उस समय तुम लोगों में से किसी को भूख न थी? (बन्दर तो तुम्हारा भोजन ही है, फिर) नगर जलाते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया? इन मंत्रियों ने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनाई है जो सुनने में अच्छी है, पर जिससे आगे चलकर दुख पाना होगा।

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥

सरल अर्थ—जिसने खेल ही खेल में समुद्र बँधा लिया और जो सेना सहित सुबेल पर्वत पर आ उतरा। हे भाई! कहो, वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे? सब गाल फुलाफुलाकर (पागलों की तरह) वचन कह रहे हैं।

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥

सरल अर्थ—हे तात! मेरे वचनों को बहुत आदर से (बड़े गौर से) सुनिए। मुझे मन में कायर न समझ लीजिएगा। जगत् में ऐसे मनुष्य झुंड के झुंड (बहुत अधिक) है, जो प्यारी (मुँह पर मीठी लगनेवाली) बात ही सुनते और कहते है।

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥

सरल अर्थ—हे प्रभो! सुनने में कठोर परन्तु (परिणाम मे) परम हितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं। नीति सुनिए, (उसके अनुसार) पहले दूत भेजिए और (फिर) सीता को देकर श्रीरामचन्द्र जी से प्रीति (मेल) कर लीजिए।

दोहा—नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सम्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥७॥

सरल अर्थ—यदि वे स्त्री पाकर लौट जायँ तब तो व्यर्थ झगड़ा न बढ़ाइये। नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात! सम्मुख युद्ध भूमि में उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिए।

चौ०-यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा।
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मत सठ केहिं तोहि सिखाई॥

सरल अर्थ—हे प्रभो ! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत् में दोनों ही प्रकार से आपका सुयश होगा। रावण ने गुस्से में भरकर पुत्र से कहा—मूर्ख ! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखाई ?

अबहीं ते उर ससय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा ॥

सरल अर्थ—अभी से हृदय में सन्देह (भय) हो रहा है। हे पुत्र ! तू तो बांस की जड़ में घमोई हुआ—(तू मेरे वंश के अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ)। पिता की अत्यन्त घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त ये कड़े-वचन कहता हुआ घर को चला गया।

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिवस कहुँ भेषज जैसे ॥
सध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा ॥

सरल अर्थ—हित की सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आप पर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्यु के वश हुए (रोगी) को दवा नहीं लगती। संध्या का समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओं को देखता हुआ महल को चला।

लका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठ जाइ तेहिं मन्दिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन ॥

सरल अर्थ—लंका की चोटी पर एक अत्यन्त विचित्र महल था। वहाँ नाच-गान का अखाड़ा जमता था। रावण उस महल में जाकर बैठ गया। किन्नर उसके गुण समूहों को गाने लगे।

बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ॥

सरल अर्थ—ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और वीणा बज रहे हैं। नृत्य में प्रवीण अप्सराएं नाच रही हैं।

दोहा—सुना सीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास ॥१०॥

सरल अर्थ—वह निरंतर सैकड़ों इन्द्रों के समान भोग-विलास करता रहता है। यद्यपि (श्री रामचन्द्र जी सरीखा) अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है, फिर भी उसको न तो चिन्ता है और न डर ही है।

चौ०-इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा ॥
सिखर एक उतग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी ॥

सरल अर्थ—यहाँ श्री रघुवीर सुबेल पर्वत से सेना की बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे। पर्वत का एक बहुत ऊंचा, परम रमणीय, समतल और विशेष रूप से उज्ज्वल शिखर देखकर—

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला ॥

सरल अर्थ—वहाँ लक्ष्मण जी ने वृक्षों के कोमल पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथों से सजाकर बिछा दिये। उस पर सुन्दर और कोमल मृगछाला बिछा दी। उसी आसन पर कृपालु श्री रामचन्द्र जी विराजमान थे।

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमण्ड दामिनी बिलासा ॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा ॥

सरल अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी ने कहा—) हे विभीषण! दक्षिण दिशा की ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है और बिजली चमक रही है। भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के) स्वर से गरज रहा है। कहीं कठोर ओलों की वर्षा न हो।

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला ॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा ॥

सरल अर्थ—विभीषण बोले—हे कृपालु! सुनिये, यह न तो बिजली है, न बादलों की घटा। लंका की चोटी पर एक महल है। दशग्रीव रावण वहाँ (नाच-गान का) अखाड़ा देख रहा है।

छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी ॥
मन्दोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥

सरल अर्थ—रावण ने सिर पर मेघडंबर (बादलों के डंबर जैसा विशाल और काला) छत्र धारण कर रखा है। वही मानो बादलों की अत्यन्त काली घटा है। मन्दोदरी के कानों में जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो! वही मानो बिजली चमक रही है।

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ॥
प्रभु मुस्कान समझि अभिमाना। चाप चढ़ाई बान संधाना ॥

सरल अर्थ—हे देवताओं के सम्राट! सुनिए, अनुपम ताल और मृदंग बज रहे हैं। वही मधुर (गर्जन) ध्वनि है। रावण का अभिमान समझकर प्रभु मुसकराए। उन्होंने धनुष चढ़ाकर उस पर बाण का सन्धान किया।

दोहा—छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकही बान।
सबकें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ॥१३क॥

सरल अर्थ—और एक ही बाण से (रावण के) छत्र-मुकुट और (मन्दोदरी के) कर्णफूल काट गिराए। सबके देखते-देखते वे जमीन पर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसी ने नहीं जाना।

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग ॥१३ख॥

सरल अर्थ—ऐसा चमत्कार करके श्री रामचन्द्र जी का बाण (वापस) आकर (फिर) तरकस में जा घुसा। यह महान् रस-भंग (रंग में भंग) देखकर रावण की सारी सभा भयभीत हो गई।

चौ॰-कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा॥
सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥

सरल अर्थ—न भूकम्प हुआ, न बहुत जोर की हवा (आँधी) चली। न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रों से देखे। (फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल कैसे कटकर गिर पड़े?) सभी अपने-अपने हृदय में सोच रहे हैं कि यह बड़ा भयंकर अपशकुन हुआ।

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई॥
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥

सरल अर्थ—सभा को भयभीत देखकर रावण ने हँसकर युक्ति रचकर ये वचन कहे—सिरों का गिरना भी जिसके लिए निरंतर शुभ होता रहा है, उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसा?

सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई॥
मन्दोदरी सोच उर बसेऊ। जबते श्रवनपूर महि खसेऊ॥

सरल अर्थ—अपने-अपने घर जाकर सो रहो (डरने की कोई बात नहीं है)। तब सब लोग सिर नवाकर घर गए। जबसे कर्णफूल पृथ्वी पर गिरा, तब से मन्दोदरी के हृदय में सोच बस गया।

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥

सरल अर्थ—नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से) कहने लगी—हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिए। हे प्रियतम! श्री रामचन्द्र जी से विरोध छोड़ दीजिये। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिए।

दोहा—बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥१०॥

सरल अर्थ—मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिए कि वे रघुकुल के शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी विश्वरूप हैं—(यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है) वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं।

चौ॰-पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥

सरल अर्थ—पाताल (जिन विश्वरूप भगवान् का) चरण है, ब्रह्मलोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों

पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौंहों का चलना) है। सूर्य नेत्र हैं, बादलों का समूह बाल है।

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी ॥

सरल अर्थ—अश्विनी कुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) है। दसों दिशाएँ कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है।

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ॥

सरल अर्थ—लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत है, माया हँसी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है, वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है।

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना ॥

सरल अर्थ—अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसों का जाल हैं, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वरूप हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाए?

दोहा—अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ॥११क॥

सरल अर्थ—शिव जिनका अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चन्द्रमा मन हैं और महान् (विष्णु) ही चित्त हैं। उन्हीं चराचर रूप भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने मनुष्य रूप में निवास किया है।

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ ॥११ख॥

सरल अर्थ—हे प्राणपति! सुनिए, ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर श्री रघुवीर के चरणों में प्रेम कीजिये, जिससे मेरा सुहाग न जाय।

चौ०-बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना ॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥

सरल अर्थ—पत्नी के वचन कानों से सुनकर रावण खूब हँसा। (और बोला—) अहो! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान् है। स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते है कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं—

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया ॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा ॥

सरल अर्थ—साहस, झूठ, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन), अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का समग्र (विराट्) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया।

सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा प्रसाद अब तोरें ॥
जानिउं प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई ॥

सरल अर्थ—हे प्रिये! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभाव से ही मेरे वश मे है। तेरी कृपा से मुझे यह अब समझ पडा। हे प्रिये! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुता का बखान कर रही है।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि ॥
मन्दोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ ॥

सरल अर्थ—हे मृगनयनी! तेरी बातें बड़ी गूढ (रहस्यभरी) हैं, समझने पर सुख देनेवाली और सुनने से भय छुड़ानेवाली हैं। मन्दोदरी ने मन मे ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को काल वश मतिभ्रम हो गया है।

दोहा—एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभां गयउ मद अंध ॥१२॥

सरल अर्थ—इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत-से विनोद करते हुए रावण को सवेरा हो गया। तब स्वभाव से ही निडर और घमण्ड मे अन्धा लंकापति सभा मे गया।

सो०-फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषिहिं जलद।
मूरख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ॥१३॥

सरल अर्थ—यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं, तो भी बेत फूलता-फलता नही। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिले, तो भी मूर्ख के हृदय मे चेत (ज्ञान) नही होता।

चौ०-इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई ॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई ॥

सरल अर्थ—यहाँ (सुवेल पर्वत पर) प्रात:काल श्री रघुनाथ जी जागे और उन्होंने सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइए, अब क्या उपाय करना चाहिए? जाम्बवान् ने श्रीरामचन्द्र जी के चरणो मे सिर नवाकर कहा—

सुनु सर्बग्य सकल उरबासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी ॥
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालि कुमारा ॥

सरल अर्थ—हे सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले)! हे सबके हृदय मे बसनेवाले (अन्तर्यामी)! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणो की राशि! सुनिए। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर भेजा जाय।

नीक मंत्र सबके मन माना । अंगद सन कह कृपानिधाना ॥
बालि तनय बुधि बलगुन धामा । लंका जाहु तात मम कामा ॥

सरल अर्थ—यह अच्छी सलाह सबके मन में बहुत जँच गई । कृपा के निधान श्री रामचन्द्र जी ने अंगद से कहा—हे बल, बुद्धि और गुणों के धाम बालिपुत्र ! हे तात ! तुम मेरे काम के लिए लंका जाओ ।

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई । अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका । रन बाँकुरा बालिसुत बंका ॥

सरल अर्थ—चरणों की वन्दना करके और भगवान् की प्रभुता हृदय में धर कर अंगद सबको सिर नवाकर चले । प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण किए हुए रण बाँकुरे वीर बालिपुत्र स्वाभाविक ही निर्भय हैं ।

पुर पैठत रावन कर बेटा । खेलत रहा सो होइ गै भेटा ॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई । जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥

सरल अर्थ—लंका में प्रवेश करते ही रावण के पुत्र से भेंट हो गई जो वहाँ खेल रहा था । बातों ही बातों में दोनों मे झगड़ा हो गया, (क्योंकि) दोनों ही अतुलनीय बलवान् थे और फिर दोनों की युवावस्था थी ।

तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई । गहिपद पटकेउ भूमि गवाँई ।
निसिचर निकर देखिभटभारी । जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥

सरल अर्थ—उसने अंगद पर लात उठाई । अंगद ने (वही) पैर पकड़ कर उसे घुमाकर जमीन पर दे पटका । (मार गिराया) । राक्षस के समूह भारी योद्धा देखकर जहाँ-तहाँ (भाग) चले, वे डर के मारे पुकार भी न मचा सके ।

एक एक सन मरमु न कहहीं । समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी । आवा कपि लंका जेहिं जारी ॥

सरल अर्थ—एक दूसरे को मर्म (असली बात) नही बतलाते, उस (रावण के पुत्र) का वध समझकर सब चुप मारकर रह जाते हैं । (रावण-पुत्र की मृत्यु जानकर और राक्षसों को भय के मारे भागते देखकर) नगर भर में कोलाहल मच गया कि जिसने लंका जलाई थी, वही वानर फिर आ गया है ।

अब धौं कहा करिहि करतारा । अति सभीत सब करहिं बिचारा ॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई । जेहि बिलोकि सोइ जाई सुखाई ॥

सरल अर्थ—सब अत्यन्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा ? वे बिना पूछे अंगद को (रावण के दरबार की) राह बता देते हैं । जिसे ही वे देखते हैं वही डर के मारे सूख जाता है ।

दोहा—गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज ।
सिंह ठवनि इत उत चितव बीर धीर बल पुंज ॥१४॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों का स्मरण करके अंगद रावण की सभा के द्वार पर गए। और धीर, वीर और बल की राशि अंगद सिंह की सी ऐंड़ (शान) से इधर-उधर देखने लगे।

चौ०-तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥

सरल अर्थ—तुरन्त ही उन्होंने एक राक्षस को भेजा और रावण को अपने आने का समाचार सूचित किया। सुनते ही रावण हँसकर बोला—बुला लाओ, देखे कहाँ का बन्दर है।

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपि कुंजरहि बोलि लै आए॥
अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें॥

सरल अर्थ—आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौड़े और वानरो में हाथी के समान अंगद को बुला लाए। अंगद ने रावण को ऐसे बैठे हुए देखा जैसे कोई प्राणयुक्त (सजीव) काजल का पहाड़ हो।

भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना॥

सरल अर्थ—भुजाएँ वृक्षो के और सिर पर्वतो के शिखरो के समान हैं। रोमावली मानो बहुत-सी लताएँ हैं। मुँह, नाक, नेत्र और कान पर्वत की कन्दराओ और खोहो के बराबर हैं।

गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। बालि तनय अतिबल बाँकुरा॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी॥

सरल अर्थ—अत्यन्त बलवान् बाँके वीर वालिपुत्र अंगद सभा मे गए, वे मन में जरा भी नही झिझके। अंगद को देखते ही सब सभासद् उठ खड़े हुए। यह देख कर रावण के हृदय मे बड़ा क्रोध हुआ।

दोहा—जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभा सिर नाई॥१५॥

सरल अर्थ—जैसे मतवाले हाथियों के झुण्ड मे सिंह (निःशंक होकर) चला जाता है, वैसे ही श्री रामचन्द्र जी के प्रताप का हृदय में स्मरण करके वे (निर्भय) सभा मे सिर नवाकर बैठ गए।

चौ०-कह दसकंठ कवन तैं बन्दर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥
मम जनकहि मोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥

सरल अर्थ—रावण ने कहा—अरे बन्दर! तू कौन है? (अंगद ने कहा—) हे दशग्रीव! मैं श्री रघुवीर का दूत हूँ। मेरे पिता से और तुमसे मित्रता थी। इसलिए हे भाई! मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही आया हूँ।

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती । सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ।।
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा । जीतेहु लोकपाल सब राजा ।।

सरल अर्थ—तुम्हारा उत्तम कुल है, पुलस्त्य ऋषि के पौत्र हो । शिव जी की और ब्रह्माजी की तुमने बहुत प्रकार से पूजा की है । उनसे वर पाए हैं और सब काम सिद्ध किए हैं । लोकपालों और सब राजाओं को तुमने जीत लिया है ।

नृप अभिमान मोहबस किंबा । हरि आनिहु सीता जगदम्बा ।।
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा । सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ।।

सरल अर्थ—राजमद से या मोहवश तुम जगज्जननी सीता जी को हर लाए हो । अब तुम मेरे शुभ वचन (मेरी हित भरी सलाह) सुनो । (उसके अनुसार चलने से) प्रभु श्री रामचन्द्र जी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे ।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी । परिजन सहित संग निज नारी ।।
सादर जनकसुता करि आगें । एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें ।।

सरल अर्थ—दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियों सहित अपनी स्त्रियों को साथ लेकर आदरपूर्वक श्री जानकी जी को आगे करके, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो—

दोहा—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि ।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि ।।१६।।

सरल अर्थ—और 'हे शरणागत के पालन करने वाले रघुवंश शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए ।' (इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो ।) आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे ।

चौ०-रे कपिपोत बोलु संभारी । मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ।।
कहु निज नाम जनक कर भाई । केहि नातें मानिऐ मिताई ।।

सरल अर्थ—(रावण ने कहा—) अरे बंदर के बच्चे ! सँभाल कर बोल । मूर्ख ! मुझ देवताओं के शत्रु को तूने जाना नहीं ? अरे भाई ! अपना और अपने बाप का नाम तो बता । किस नाते से मित्रता मानता है ?

अंगद नाम बालि कर बेटा । तासों कबहुँ भई ही भेटा ।।
अंगद वचन सुनत सकुचाना । रहा बालि बानर मैं जाना ।।

सरल अर्थ—(अंगद ने कहा—) मेरा नाम अंगद है, मैं बालि का पुत्र हूँ । उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी ? अंगद का वचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया (और बोला—) हाँ, मैं जान गया (मुझे याद आ गया), बालि नाम का एक बंदर था ।

अंगद तहीं बालि कर बालक । उपजेहु बंस अनल कुल घालक ।।
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु । निज मुख तापस दूत कहायहु ।।

सरल अर्थ—अरे अंगद ! तू ही बालि का लड़का है ? अरे कुलनाशक ! तू तो अपनी कुलरूपी बाँस के लिए अग्नि रूप ही पैदा हुआ। गर्भ में ही क्यों न नष्ट हो गया ? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँह से तपस्वियों का दूत कहलाया।

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई ॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई ॥

सरल अर्थ—अब बालि की कुशल तो बता, वह (आजकल) कहाँ है ? तब अंगद ने हँसकर कहा—दस (कुछ) दिन बीतने पर (स्वयं ही) बालि के पास जाकर, अपने मित्र को हृदय से लगाकर, उसी से कुशल पूछ लेना।

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई ॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाकें ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी से विरोध करने पर जैसी कुशल होती है, वह सब तुमको वे सुनावेंगे। हे मूर्ख ! सुन, भेद उसी के मन में पड़ सकता है, (भेद नीति उसी पर अपना प्रभाव डाल सकती है) जिसके हृदय में श्री रघुवीर न हों।

दोहा—हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस ॥
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस ॥१७॥

सरल अर्थ—सच है, मैं तो कुल का नाश करने वाला हूँ और हे रावण ! तुम कुल के रक्षक हो। अंधे, बहरे भी ऐसी बात नहीं कहते, तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं।

चौ०-सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई ॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा ॥

सरल अर्थ—शिव, ब्रह्मा (आदि) देवता और मुनियों के समुदाय जिनके चरणों की सेवा (करना) चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुल को डुबो दिया ? अरे, ऐसी बुद्धि होने पर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता ?

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी ॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ ॥

सरल अर्थ—वानर (अंगद) की कठोर वाणी सुनकर रावण आँखें तरेर कर (तिरछी करके) बोला—अरे दुष्ट ! मैं तेरे सब कठोर वचन इसलिए सह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्म को जानता हूँ (उन्हीं की रक्षा कर रहा हूँ)।

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी ॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी ॥

सरल अर्थ—अंगद ने कहा—तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है। (वह यह कि) तुमने परायी स्त्री की चोरी की है और दूत की रक्षा की बात तो अपनी आँखों से देख ली। ऐसे धर्म के व्रत को धारण (पालन) करने वाले तुम डूबकर मर नहीं जाते।

कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम्ह धर्म-बिचारी ।।
धर्मशीलता तव जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी ।।

सरल अर्थ—नाक-कान से रहित बहिन को देखकर तुमने धर्म विचार कर ही तो क्षमा कर दिया था! तुम्हारी धर्मशीलता जग जाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान् हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया।

दोहा—जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि सठ बिलोकि मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सबराहु ।।१८क।।

सरल अर्थ—(रावण ने कहा—) अरे जड़ जन्तु वानर! व्यर्थ बक-बक न कर; अरे मूर्ख! मेरी भुजाएँ तो देख। ये सब लोकपालों के विशाल बलरूपी चन्द्रमा को ग्रसने के लिए राहु हैं।

पुनि नभ सर मम करि निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ।।१८ख।।

सरल अर्थ—फिर (तूने सुना ही होगा कि) आकाशरूपी तालाब में मेरी भुजाओं रूपी कमलों पर बसकर शिवजी सहित कैलाश हंस के समान शोभा को प्राप्त हुआ था।

चौ०-तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ।।
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना ।।

सरल अर्थ—अरे अंगद! सुन, तेरी सेना में बता, ऐसा कौन योद्धा है जो मुझसे भिड़ सकेगा? तेरा मालिक तो स्त्री के वियोग में बलहीन हो रहा है और उसका छोटा भाई उसी के दुःख से दुःखी और उदास है।

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ ।।
जामवन्त मन्त्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा ।।

सरल अर्थ—तुम और सुग्रीव दोनों (नदी) तट के वृक्ष हो। (रहा) मेरा छोटा भाई विभीषण; (सो) वह भी बड़ा डरपोक है। मन्त्री जाम्बवान् बहुत बूढ़ा है। वह अब लड़ाई में क्या चढ़ (उद्यत) हो सकता है।

सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला ।।
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह बालिकुमारा ।।

सरल अर्थ—नल-नील तो शिल्प कर्म जानते हैं (वे लड़ना क्या जाने)। हाँ, एक वानर जरूर महान् बलवान् है, जो पहले आया था और जिसने लंका जलाई थी। यह वचन सुनते ही वालिपुत्र अंगद ने कहा—

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। सांचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा ।।
रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई ।।

सरल अर्थ—हे राक्षसराज ! सच्ची बात कहो। क्या उस वानर ने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया ? रावण (जैसे जगद्विजयी योद्धा) का नगर एक छोटे से बानर ने जला दिया। ऐसे वचन सुनकर उन्हें सत्य कौन कहेगा ?

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

सरल अर्थ—हे रावण ! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीव का एक छोटा-सा दौड़कर चलने वाला हरकारा है, वह बहुत चलता है, वीर नहीं है। उसको तो हमने (केवल) खबर लेने के लिए भेजा था।

दोहा—सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाई ॥१८क॥

सरल अर्थ—क्या सचमुच ही उस वानर ने प्रभु की आज्ञा पाए बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला ? मालूम होता है, इसी डर से वह लौटकर सुग्रीव के पास नहीं गया और कहीं छिप रहा।

सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥१८ख॥

सरल अर्थ—हे रावण ! तुम सब सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है। सचमुच हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है जो तुमसे लड़ने में शोभा पाए।

प्रीति विरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥१८ग॥

सरल अर्थ—प्रीति और बैर बराबरी वाले से ही करना चाहिए, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेढकों को मारे, तो क्या उसे कोई भला कहेगा ?

जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष ॥१८घ॥

सरल अर्थ—यद्यपि तुम्हें मारने में श्री रामचन्द्र जी की लघुता है और बड़ा दोष भी है। तथापि हे रावण ! सुनो, क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है।

बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहु काढ़त भट दससीस ॥१८ङ॥

सरल अर्थ—वक्रोक्ति रूपी धनुष से वचनरूपी बाण मारकर अंगद ने शत्रु का हृदय जला दिया। और रावण उन बाणों को मानो प्रत्युत्तर रूपी सड़सियों से निकाल रहा है।

हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ॥१८च॥

सरल अर्थ—तब रावण हँसकर बोला—बन्दर में यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायों से भला करने की चेष्टा करता है।

चौ०-धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई॥

सरल अर्थ—बंदर को धन्य है, जो अपने मालिक के लिए लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है, नाच-कूदकर, लोगों को रिझाकर, मालिक का हित करता है। यह उसके धर्म की निपुणता है।

अगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहि काना॥

सरल अर्थ—हे अंगद! तेरी जाति स्वामिभक्त है। (फिर भला) तू अपने मालिक के गुण इस प्रकार कैसे न बखानेगा? मै गुण ग्राहक (गुणों का आदर करने वाला) और परम सुजान (समझदार) हूँ, इसी से तेरी जली-कटी बक-बक पर कान (ध्यान) नही देता।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा॥

सरल अर्थ—अंगद ने कहा—तुम्हारी सच्ची गुणग्राहकता तो मुझे हनुमान् जी ने सुनायी थी। उसने अशोक वन को विध्वंस (तहस-नहस) करके, तुम्हारे पुत्र को मारकर नगर को जला दिया था। तो भी (तुमने अपनी गुण-ग्राहकता के कारण यही समझा कि) उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया।

सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरें लाज न रोष न माखा॥

सरल अर्थ—तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव विचार कर हे दशग्रीव! मैंने कुछ धृष्टता की है। हनुमान् जी ने जो कुछ कहा था, उसे आकर मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें न लज्जा है, न क्रोध है और न चिढ़ है।

जौं असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥

सरल अर्थ—(रावण बोला—) अरे वानर! जब तेरी ऐसी बुद्धि है तभी तो तू बाप को खा गया। ऐसा वचन कहकर रावण हँसा। अंगद ने कहा—पिता को खाकर फिर तुझको भी खा डालता। परन्तु अभी तुरंत कुछ और ही बात मेरी समझ में आ गई।

बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥

सरल अर्थ—अरे नीच अभिमानी ! बालि के निर्मल यश का पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता। रावण ! यह तो बता कि जगत् में कितने रावण हैं ? मैंने जितने रावण अपने कानों से सुन रक्खे हैं, उन्हें सुन—

बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥

सरल अर्थ—एक रावण तो बलि को जीतने पाताल मे गया था, तब बच्चों ने उसे घुड़साल में बाँध रखा। बालक खेलते थे और जा-जाकर उसे मारते थे। बलि को दया लगी, तब उन्होंने उसे छोड़ा दिया।

एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेषा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥

सरल अर्थ—फिर एक रावण को सहस्त्रबाहु ने देखा और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकार के (विचित्र) जन्तु की तरह (समझकर) पकड़ लिया। तमाशे के लिए वह उसे घर ले आया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया।

दोहा—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ॥२०॥

सरल अर्थ—एक रावण की बात कहने मे तो मुझे बड़ा सकोच हो-रहा है—वह (बहुत दिनो तक) बालि की कांख मे रहा था। इनमे से तुम कौन से रावण हो ? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ।

चौ०-सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥

सरल अर्थ—(रावण ने कहा—) अरे मूर्ख ! सुन, मैं वही बलवान् रावण हूँ जिसकी भुजाओं की लीला (करामात) कैलाश पर्वत जानता है। जिसकी शूरता उमापति महादेव जी जानते हैं, जिन्हे अपने सिररूपी पुष्प चढा-चढाकर मैंने पूजा था।

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्ह कें उर साला ॥

सरल अर्थ—सिर रूपी कमलों को अपने हाथो से उतार-उतार कर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिव जी की पूजा की है। अरे मूर्ख ! मेरी भुजाओं का पराक्रम दिक्पाल जानते हैं, जिनके हृदय मे वह आज भी चुभ रहा है।

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरिआई ॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे ॥

सरल अर्थ—दिग्गज (दिशाओं के हाथी) मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जिनके भयानक दांत, जब-जब जाकर मैं उनसे जबरदस्ती भिड़ा, मेरी छाती मे

कभी नहीं फूटे (अपना चिह्न भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छाती से लगते ही वे मूली की तरह टूट गए।

जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी॥

सरल अर्थ—जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है जैसे मतवाले हाथी के चढ़ते समय छोटी नाव! मैं वही जगद्प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ। अरे झूठी बकवाद करने वाले! क्या तूने मुझको कानों से कभी नहीं सुना?

दोहा—तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥२१॥

सरल अर्थ—उस (महान् प्रतापी और जगत्प्रसिद्ध) रावण को (मुझे) तू छोटा कहता है और मनुष्य की बड़ाई करता है? अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बन्दर! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया।

चौ०-सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥

सरल अर्थ—रावण के ये वचन सुनकर अंगद क्रोध सहित वचन बोले—ओ नीच अभिमानी! सँभालकर (सोच समझकर) बोल! जिनका फरसा सहस्त्रबाहु की भुजाओं रूपी अपार वन को जलाने के लिए अग्नि के समान था,

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥

सरल अर्थ—जिनके फरसारूपी समुद्र की तीव्र धारा में अनगिनत राजा अनेकों बार डूब गए, उन परशुराम जी का गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, अरे अभागे दशशीश! वे मनुष्य क्योंकर हैं?

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्नदान अरु रस पीयूषा॥

सरल अर्थ—क्यों रे मूर्ख उद्दण्ड! श्री रामचन्द्र जी मनुष्य हैं? कामदेव भी क्या धनुर्धारी है? और गंगा जी क्या नदी हैं? कामधेनु क्या पशु है? और कल्पवृक्ष बड़ा पेड़ है? अन्न भी क्या दान है? और अमृत क्या रस है?

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥

सरल अर्थ—गरुड़ जी क्या पक्षी हैं? शेष जी क्या सर्प हैं? अरे रावण! चिन्तामणि भी क्या पत्थर है? अरे ओ मूर्ख! सुन, वैकुण्ठ भी क्या लोक है? और श्री रघुनाथ जी की अखण्ड भक्ति क्या (और लाभों जैसा ही) लाभ है।

मूढ़ वृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला ॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि राम सर लागें ॥

सरल अर्थ—हे मूढ़ ! व्यर्थ गाल न मार (डींग न हाँक)। श्री रामचन्द्र जी से वैर करने पर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर-समूह श्री रामचन्द्र जी के बाण लगते ही वानरों के आगे पृथ्वी पर पड़ेंगे।

तवकि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा ॥
सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा ॥

सरल अर्थ—तब क्या तेरा ऐसा गाल चलेगा ? ऐसा विचार कर उदार (कृपालु) श्री रामचन्द्र जी को भज। अंगद के ये वचन सुनकर रावण बहुत अधिक जल उठा, मानो जलती हुई प्रचण्ड अग्नि मे घी पड़ गया हो।

दोहा—कुम्भकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेहु चराचर झारि ॥२२॥

सरल अर्थ—(वह बोला—अरे मूर्ख !) कुम्भकर्ण-ऐसा मेरा भाई है, इन्द्र का शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है ! और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नही कि मैंने सम्पूर्ण जड-चेतन जगत् को जीत लिया है।

चौ०-सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहि ते सुनु सब कीसा ॥

सरल अर्थ—रे दुष्ट ! वानरों की सहायता जोड़कर राम ने समुद्र बाँध लिया; बस, यही उसकी प्रभुता है। समुद्र को तो अनेक पक्षी भी लांघ जाते हैं। पर इसी से वे सभी शूरवीर नही हो जाते। अरे मूर्ख बंदर ! सुन—

मम भुजसागर बल जलपूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा ॥

सरल अर्थ—मेरी एक-एक भुजारूपी समुद्र बलरूपी जल से पूर्ण है, जिसमे बहुत से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चुके हैं। (बता) कौन ऐसा शूरवीर है जो मेरे इन अथाह और अपार बीस समुद्रों का पार पा जाएगा ?

दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा ॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा ॥

सरल अर्थ—अरे दुष्ट ! मैंने दिक्पालों तक से जल भरवाया और तू एक राजा का मुझे सुयश सुनाता है ! यदि तेरा मालिक, जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कह रहा है, संग्राम मे लड़नेवाला योद्धा है—

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥

सरल अर्थ—तो (फिर) वह दूत किसलिए भेजता है ? शत्रु से प्रीति (सन्धि) करते उसे लाज नहीं आती ? (पहले) कैलाश का मंथन करनेवाली मेरी भुजाओं को देख। फिर अरे मूर्ख वानर ! अपने मालिक की सराहना करना।

दोहा—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुते अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ॥२३॥

सरल अर्थ—रावण के समान शूरवीर कौन है ? जिसने अपने ही हाथों से सिर काट-काटकर अत्यन्त हर्ष के साथ बहुत बार उन्हें अग्नि में होम दिया ! स्वयं गौरीपति शिवजी भी इस बात के साक्षी हैं।

चौ०-कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥

सरल अर्थ—अंगद ने कहा—अरे रावण ! तेरे समान लज्जावान् जगत् में कोई नहीं है। लज्जाशीलता तो तेरा सहज स्वभाव ही है। तू अपने मुँह से अपने गुण कभी नहीं कहता।

सिर अरु सैल कथा चित रही। तातें वार बीस तैं कही॥
सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥

सरल अर्थ—सिर काटने और कैलाश उठाने की कथा चित्त में चढ़ी हुई थी, इससे तूने उसे बीसों बार कहा। भुजाओं के उस बल को तूने हृदय में ही टाल (छिपा) रक्खा है, जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता था।

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा॥
इन्द्रजाल कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निजकर सकल सरीरा॥

सरल अर्थ—अरे मन्दबुद्धि ! सुन, अब बस कर। सिर काटने से भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है ? इन्द्र जाल रचने वाले को वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है।

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ॥

सरल अर्थ—अरे दुष्ट ! अब बतबढ़ाव मत कर, मेरा वचन सुन और अभिमान त्याग दे। हे दशमुख ! मैं दूत की तरह (सन्धि करने) नहीं आया हूँ। श्री रघुवीर ने ऐसा विचार कर मुझे भेजा है—

बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृकाला॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥

सरल अर्थ—कृपालु श्री रामचन्द्र जी बार-बार ऐसा कहते हैं कि स्यार के मारने से सिंह को यश नहीं मिलता। अरे मूर्ख ! प्रभु के (उन) वचनों को मन में समझकर (याद करके) ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं।

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि परनारी॥

सरल अर्थ—नहीं तो तेरे मुँह तोड़कर मैं सीता जी को जबरदस्ती ले जाता। अरे अधम! देवताओं के शत्रु! तेरा बल तो मैंने तभी जान लिया जब तू सूने में परायी स्त्री को हर (चुरा) लाया।

दोहा—तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥२४॥

सरल अर्थ—तुझे जमीन पर पटककर, तेरी सेना का संहार कर और तेरे गाँव को चौपट (नष्ट-भ्रष्ट) करके, अरे मूर्ख! तेरी युवती स्त्रियों सहित श्री जानकी जी को ले जाऊँ।

चौ०-अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥

सरल अर्थ—अरे दुष्ट! ऐसा विचार कर मैं तुझे नहीं मारता। अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर (मुझे गुस्सा न दिला।) अंगद के वचन सुनकर राक्षसराज रावण दाँतों से होंठ काटकर, क्रोधित होकर हाथ मलता हुआ बोला—

रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥

सरल अर्थ—अरे नीच बंदर! अब तू मरना ही चाहता है। इसी से छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। अरे मूर्ख बंदर! तू जिसके बल पर कड़वे वचन बक रहा है, उसमे बल, प्रताप, बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है।

दोहा—जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक॥२५॥

सरल अर्थ—जिनके बल का तुझे गर्व है, ऐसे अनेकों मनुष्यों को तो राक्षस रात-दिन खाया करते हैं। अरे मूढ़! जिद्द छोड़कर समझ (विचार कर)।

चौ०-जब तेहिं कीन्हि राम कै निन्दा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥

सरल अर्थ—जब उसने रामचन्द्र जी की निन्दा की, तब तो कपि श्रेष्ठ अंगद अत्यन्त क्रोधित हुए। क्योंकि (शास्त्र ऐसा कहते हैं कि) जो अपने कानों से भगवान् विष्णु और शिव जी की निन्दा सुनता है, उसे गो-वध के समान पाप होता है।

कटकटान कपि कुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥

सरल अर्थ—वानर श्रेष्ठ अंगद बहुत जोर से कटकटाए (शब्द किया) और उन्होंने तमककर (जोर से) अपने दोनों भुजदण्डों को पृथ्वी पर दे मारा। पृथ्वी हिलने लगी, (जिससे बैठे हुए) सभासद गिर पड़े और भयरूपी पवन (भूत) से ग्रस्त होकर भाग चले।

गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पवारे॥

सरल अर्थ—रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा। उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरों पर सुधार कर रख लिया और कुछ अंगद ने उठाकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी के पास फेंक दिए।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥
की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥

सरल अर्थ—मुकुटों को आते देखकर वानर भागे। (सोचने लगे) विधाता! क्या दिन में ही उल्कापात होने लगा (तारे टूटकर गिरने लगे)? अथवा क्या रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाए हैं, जो बड़े धाये के साथ (वेग से) आ रहे हैं?

कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥

सरल अर्थ—प्रभु ने (उनसे) हँसकर कहा—मन में डरो नहीं। ये न उल्का हैं न वज्र है और न केतु या राहु ही हैं। अरे भाई। ये तो रावण के मुकुट हैं, जो बालिपुत्र अंगद के फेंके हुए आ रहे हैं।

दोहा—तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥२९क॥

सरल अर्थ—पवनपुत्र श्री हनुमान् जी ने उछलकर उनको हाथ से पकड़ लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। रीछ और वानर तमाशा देखने लगे। उनका प्रकाश सूर्य के समान था।

उहाँ सकोपि दसानन सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाई॥२९ख॥

सरल अर्थ—वहाँ (सभा में) क्रोधयुक्त रावण सबसे क्रोधित होकर कहने लगा कि—बंदर को पकड़ लो और पकड़कर मार डालो। अंगद यह सुनकर मुसकराने लगे।

चौ०-मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
अस रिस होति दसउ मुख तोरौं। लङ्का गहि समुद्र महँ बोरौं॥

सरल अर्थ—(अंगद ने कहा—) मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ। पर क्या करूँ? श्री रघुनाथ जी ने मुझे आज्ञा नहीं दी। ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और (तेरी) लंका को पकड़कर समुद्र में डुबा दूँ।

गूलरि फल समान तव लङ्का । बसहु मध्य तुम्ह जंतु असका ॥
मैं बानर फल खात न बारा । आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥

सरल अर्थ—तेरी लंका गूलर के फल के समान है । तुम सब कीड़े उसके भीतर (अज्ञानवश) निडर होकर बस रहे हो । मैं बंदर हूँ, मुझे इस फल को खाते क्या देर थी ? पर उदार (कृपालु) श्री रामचन्द्र जी ने वैसी आज्ञा नहीं दी ।

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई । मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई ॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तें भएसि लबारा ॥

सरल अर्थ—अंगद की युक्ति सुनकर रावण मुसकराया (और बोला—) अरे मूर्ख ! बहुत झूठ बोलना तूने कहाँ सीखा ? बालि ने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा । जान पड़ता है तू तपस्वियों से मिलकर लबार हो गया है ।

साचेहुँ मैं लबार भुज बीहा । जौं न उपारिउँ तव दस जीहा ॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा । सभा माझ पन करि पद रोपा ॥

सरल अर्थ—(अंगद ने कहा—) अरे बीस भुजावाले ! यदि तेरी दसों जीभें मैंने नहीं उखाड़ लीं तो सचमुच मैं लबार ही हूँ । श्री रामचन्द्र जी के प्रताप को समझकर (स्मरण करके) अंगद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावण की सभा में प्रण करके (दृढ़ता के साथ) पैर रोप दिया ।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं रामु सीता मैं हारी ॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा । पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥

सरल अर्थ—(और कहा—) अरे मूर्ख ! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्री रामचन्द्र जी लौट जाएँगे, मैं सीता को हार गया । रावण ने कहा—हे सब वीरो ! सुनो, पैर पकड़कर बंदर को पृथ्वी पर पछाड़ दो ।

इन्द्रजीत आदिक बलवाना । हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई ॥

सरल अर्थ—इन्द्रजीत (मेघनाद) आदि अनेकों बलवान् योद्धा जहाँ-तहाँ से हर्षित होकर उठे । वे पूरे बल से बहुत उपाय करके झपटते हैं । पर पैर टलता नहीं, तब सिर नीचा करके फिर अपने-अपने स्थान पर जा बैठ जाते हैं ।

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती । टरइ न कीस चरन एहि भाँती ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ॥

सरल अर्थ—(काकभुशुण्डि जी कहते हैं—) वे देवताओं के शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं । परन्तु हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी ! अंगद का चरण उनसे वैसे ही नहीं टलता जैसे कुयोगी (विषयी) पुरुष मोहरूपी वृक्ष को नहीं उखाड़ सकते ।

दोहा—कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ ॥२७क॥

सरलअर्थ—करोड़ों वीर योद्धा जो बल में मेघनाद के समान थे, हर्षित होकर उठे। वे बार-बार झपटते हैं, पर वानर का चरण नहीं उठता। तब लज्जा के मारे सिर नवाकर बैठ जाते हैं।

भूमि न छांड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि विघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥२७ख॥

सरल अर्थ—जैसे करोड़ों विघ्न आने पर भी संत का मन नीति को नहीं छोड़ता, वैसे ही वानर (अंगद) का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया।

चौ०-कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे ॥
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा ॥

सरल अर्थ—अंगद का बल देखकर सब हृदय में हार गए। तब अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं उठा। जब वह अंगद का चरण पकड़ने लगा तब बालि-कुमार अंगद ने कहा—मेरा चरण पकड़ने में तेरा बचाव नहीं होगा।

गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ॥

सरल अर्थ—अरे मूर्ख! तू जाकर श्री रामचन्द्र जी के चरण क्यों नहीं पकड़ता? यह सुनकर वह मन में बहुत ही सकुचाकर लौट गया। उसकी सारी श्री जाती रही। वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्न में चन्द्रमा दिखाई देता है।

सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई ॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु विमुख किमि लह बिश्रामा ॥

सरल अर्थ—वह सिर नीचा करके सिंहासन पर जा बैठा। मानो सारी सम्पत्ति गँवाकर बैठा हो। श्री रामचन्द्र जी जगत् भर के आत्मा और प्राणों के स्वामी हैं। उनसे विमुख रहनेवाला शान्ति कैसे पा सकता है?

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना ॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो ॥

सरल अर्थ—फिर अंगद ने अनेकों प्रकार से नीति कही। पर रावण ने नहीं माना, क्योंकि उसका काल निकट आ गया था। शत्रु के गर्व को चूर करके अंगद ने उसको प्रभु श्री रामचन्द्र जी का सुयश सुनाया और फिर वह राजा बालि का पुत्र यह कहकर चल दिया—

दोहा—रिपु बल धरषि हरषि कपि बालि तनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कुंज ॥२८॥

सरल अर्थ—शत्रु के बल का मर्दन कर, बल की राशि बालिपुत्र अंगद जी ने हर्षित होकर आकर श्री रामचन्द्र जी के चरण कमल पकड़ लिए। उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों में (आनन्दाश्रुओं का) जल भरा है।

चौ०-इहाँ राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा ॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी ॥

सरल अर्थ—यहाँ (सुबेल पर्वत पर) श्री रामचन्द्र जी ने अंगद को बुलाया। उन्होने आकर चरणकमलों मे सिर नवाया। बड़े आदर से उन्हें पास बैठाकर खर के शत्रु कृपालु श्रीरामचन्द्र जी हँसकर बोले—

बालि तनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहु पूछउँ तोही ॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुजबल अतुल जासु जग लीका ॥

सरल अर्थ—हे बालि के पुत्र ! मुझे बड़ा कौतूहल है। हे तात् ! इसी से मैं तुमसे पूछता हूँ, सत्य कहना। जो रावण राक्षसों के कुल का तिलक है और जिसके अतुलनीय बाहुबल की जगत् भर मे धाक है।

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए ॥
सुनु सर्वग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥

सरल अर्थ—उसके चार मुकुट तुमने फेंके। हे तात ! बताओ, तुमने उनको किस प्रकार से पाया ? (अंगद ने कहा—) हे सर्वज्ञ ! हे शरणागतों के सुख देने वाले ! सुनिये। वे मुकुट नही हैं, वे तो राजा के चार गुण हैं।

साम दान अरु दण्ड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा ॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए ॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! वेद कहते हैं कि साम, दान, दण्ड, और भेद—ये चारो राजा के हृदय मे बसते हैं। ये नीति-धर्म के चार सुन्दर चरण हैं। (किन्तु रावण मे धर्म का अभाव है।) ऐसा जी मे जानकर ये नाथ के पास आ गए हैं।

दोहा—धर्महीन प्रभु पद बिमुख काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस ॥२८क॥

सरल अर्थ—दशशीश रावण धर्महीन, प्रभु के पद से विमुख और काल के वश मे है। इसलिए हे कोशलराज ! सुनिए, वे गुण रावण को छोड़कर आपके पास आ गए हैं।

परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार ॥२८ख॥

सरल अर्थ—अंगद की परम चतुरता (पूर्ण उक्ति) कानो से सुनकर उदार श्री रामचन्द्र जी हँसने लगे। फिर बालि पुत्र ने किले के (लंका) सब समाचार कहे।

चौ०-रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए ॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ॥

सरल अर्थ—जब शत्रु के समाचार प्राप्त हो गए, तब श्री रामचन्द्र जी ने सब मंत्रियो को पास बुलाया (और कहा—) लंका के चार बड़े विकट दरवाजे हैं। उन पर किस तरह आक्रमण किया जाय, इस पर विचार करो।

जथा जोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए ॥

सरल अर्थ—और उनके लिए यथायोग्य (जैसे चाहिए वैसे) सेनापति नियुक्त किए। फिर सब यूथपतियों को बुला लिया और प्रभु का प्रताप कहकर सबको समझाया, जिसे सुनकर वानर सिंह के समान गर्जना करके दौड़े।

हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं ॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा ॥

सरल अर्थ—वे हर्षित होकर श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाते हैं, और पर्वत के शिखर ले-लेकर सब वीर दौड़ते हैं। 'कोसलराज रघुवीर जी की जय हो' पुकारते हुए भालू और वानर गरजते और ललकारते हैं।

जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहिं निसान बजावहिं भेरी ॥

सरल अर्थ—लंका को अत्यन्त श्रेष्ठ (अजेय) किला जानते हुए भी वानर प्रभु श्री रामचन्द्र जी के प्रताप से निडर होकर चले। चारों ओर से घिरी हुई बादलों की घटा की तरह लंका को चारों दिशाओं से घेरकर वे मुँह से ही डंके और भेरी बजाने लगे।

लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई ॥

सरल अर्थ—लंका में बड़ा भारी कोलाहल (कोहराम) मच गया। अत्यंत अहंकारी रावण ने उसे सुनकर कहा—वानरों की ढिठाई तो देखो! यह कहते हुए हँसकर उसने राक्षसों की सेना बुलाई।

सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू ॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ॥

सरल अर्थ—(और बोला—) हे वीरों! सब लोग चारों दिशाओं में जाओ और रीछ-वानर सबको पकड़-पकड़ कर खाओ (शिव जी कहते हैं—) हे उमा! रावण को ऐसा अभिमान था जैसे टिटहरी पक्षी पैर ऊपर की ओर करके सोता है (मानो आकाश को थाम लेगा।)

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग माँस अहारी ॥
चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा ॥

सरल अर्थ—जैसे मूर्ख माँसाहारी पक्षी लाल पत्थरों का समूह देखकर उस पर टूट पड़ते हैं, (पत्थरों पर लगने से) चोंच टूटने का दुःख उन्हें नहीं सूझता, वैसे ही ये बेसमझ राक्षस दौड़े।

दोहा—नानायुध सर चाप धर जातुधान बलबीर।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर ।।३०क।।

सरल अर्थ—अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण किए करोड़ों बलवान् और रणधीर राक्षस वीर परकोटे के कँगूरों पर चढ़ गए।

बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि ।।३०ख।।

सरल अर्थ—बहुत से अस्त्र-शस्त्र धारण किए सब वीर ललकार-ललकार कर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलों से मार-मारकर सब रीछ-वानरों को व्याकुल कर दिया।

चौ०-भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ।।
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नलनील दुबिद बलवंता ।।

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) वानर भयातुर होकर (डर के मारे घबड़ाकर) भागने लगे, यद्यपि हे उमा! आगे चलकर (वे ही) जीतेंगे। कोई कहता है—अंगद-हनुमान् कहाँ हैं? बलवान् नल, नील और द्विविद कहाँ हैं?

निजदल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना ।।
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई ।।

सरल अर्थ—हनुमान् जी ने जब अपने दल को विकल (भयभीत) हुआ सुना, उस समय वे बलवान् पश्चिम द्वार पर थे। वहाँ उनसे मेघनाद युद्ध कर रहा था। वह द्वार टूटता न था, बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी।

पवन तनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा ।।
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा ।।

सरल अर्थ—तब पवनपुत्र श्री हनुमान् जी के मन में बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे काल के समान योद्धा बड़े ओर से गरजे और कूदकर लंका के किले पर आ गए और पहाड़ लेकर मेघनाद की ओर दौड़े।

भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता ।।
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना ।।

सरल अर्थ—रथ तोड़ डाला, सारथि को मार गिराया, और मेघनाद की छाती में लात मारी। दूसरा सारथि मेघनाद को व्याकुल जानकर, उसे रथ मे डाल कर तुरन्त घर ले आया।

महाबीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे ।।
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा ।।

सरल अर्थ—सभी राक्षस महान् वीर और अत्यन्त काले हैं और वानर विशालकाय तथा अनेकों रंगों के हैं। दोनों ही दल बलवान् हैं और समान बलवाले योद्धा हैं। वे क्रोध करके लड़ते हैं और खेल करते (वीरता दिखलाते) हैं।

प्राविष्ट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे ॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया ॥

सरल अर्थ—(राक्षस और वानर युद्ध करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं) मानो क्रमशः वर्षा और शरद् ऋतु के बहुत से बादल पवन से प्रेरित होकर लड़ रहे हों। अकंपन और अतिकाय इन सेनापतियों ने अपनी सेना को विचलित होते देखकर माया की।

भयउ निमिष महँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरो पल छारा ॥

सरल अर्थ—पल भर में अत्यन्त अंधकार हो गया। खून, पत्थर और राख की वर्षा होने लगी।

दोहा—देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार।
एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार ॥३१॥

सरल अर्थ—दसों दिशाओं में अत्यन्त घना अन्धकार देखकर वानरों की सेना में अत्यन्त खलबली पड़ गई। एक को एक (दूसरा) नहीं देख सकता और सब जहाँ-तहाँ पुकार कर रहे हैं।

चौ० सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना ॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपि कुंजर धाए ॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी सब रहस्य जान गए। उन्होंने अंगद और श्री हनुमान् को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही वे दोनों कपि श्रेष्ठ क्रोध करके दौड़े।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ॥

सरल अर्थ – फिर कृपालु श्री रामचन्द्र जी ने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरन्त ही अग्निबाण चलाया जिससे प्रकाश हो गया, कहीं अँधेरा नहीं रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने पर (सब प्रकार के) संदेह दूर हो जाते हैं।

दोहा—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बली मुख रिपु दल बल बिचलाई ॥३२क॥

सरल अर्थ—कुछ मारे गए, कुछ घायल हुए, कुछ भागकर गढ़ पर चढ़ गए। अपने बल से शत्रु दल को विचलित करके रीछ और वानर (वीर) गरज रहे हैं।

मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ ॥३२ख॥

सरल अर्थ—मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला।

चौ०-सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर॥

सरल अर्थ—वह बाणों के समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत से पंखवाले साँप दौड़े जा रहे हों। जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखाई पड़ने लगे। उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके।

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥

सरल अर्थ – रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले। सब को युद्ध की इच्छा भूल गयी। रणभूमि में ऐसा एक भी वानर या भालू नहीं दिखाई पड़ा जिसको उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात् जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हों; बल-पुरुषार्थ मारा जाता न रहा हो)।

दोहा—दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।
सिंघनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर॥५३॥

सरल अर्थ—फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे, वानर वीर पृथ्वी पर गिर पड़े। बलवान् और धीर मेघनाद सिंह के समान नाद करके गरजने लगा।

चौ०-देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥
महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा॥

सरल अर्थ—सारी सेना को बेहाल (व्याकुल) देखकर पवनपुत्र श्री हनुमान् क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो स्वयं काल दौड़ा आता हो। उन्होंने तुरन्त एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोध के साथ उसे मेघनाद पर छोड़ा।

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥

सरल अर्थ—पहाड़ को आते देखकर वह आकाश में उड़ गया। (उसके) रथ, सारथि और घोड़े सब नष्ट हो गये (चूर-चूर हो गए)। हनुमान् जी उसे बार-बार ललकारते हैं। पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बल का मर्म जानता था।

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥

सरल अर्थ – (तब) मेघनाद भी रघुनाथ जी के पास गया और उसने (उनके प्रति) अनेकों प्रकार के दुर्वचनों का प्रयोग किया। (फिर) उसने उन पर अस्त्र-शस्त्र तथा और सब हथियार चलाए। प्रभु ने खेल में ही सबको काटकर अलग कर दिया।

देखि प्रताप मूढ़ खिसियाना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सें खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥

सरल अर्थ—श्री राम जी का प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लज्जित हो गया और अनेकों प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा-सा साँप का बच्चा हाथ में लेकर गरुड़ को डरावे और उससे खेल करे।

दोहा—जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट ॥३४क॥

सरल अर्थ—शिव जी और ब्रह्मा जी तक बड़े-छोटे (सभी) जिनकी अत्यन्त बलवान् माया के वश में है, नीच बुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है।

रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ ॥३४ख॥

सरल अर्थ—खून गड्ढों में भर-भर कर जम गया है और उस पर धूल उड़ कर पड़ रही है। (वह दृश्य ऐसा है) मानों अंगारों के ढेरों पर राख छा रही हो।

चौ०-घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥

सरल अर्थ—घायल वीर कैसे शोभित है, जैसे फूले हुए पलाश के पेड़। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध करके एक दूसरे से भिड़ते हैं।

एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥

सरल अर्थ—एक दूसरे को (कोई किसी) को जीत नहीं सकता। राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है, तब भगवान् अनन्त जी (लक्ष्मण जी) क्रोधित हुए और उन्होंने तुरन्त उसके रथ को तोड़ डाला और सारथि को टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा॥
रावनसुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना॥

सरल अर्थ—शेष जी (लक्ष्मण जी) उस पर अनेक प्रकार से प्रहार करने लगे। राक्षस के प्राण मात्र शेष रह गए। रावण पुत्र मेघनाद ने मन में अनुमान किया कि अब तो प्राणसंकट आ गया, ये मेरे प्राण हर लेंगे।

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेज पुंज लछिमन उर लागी॥
मुरछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥

सरल अर्थ—तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलाई। वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मण जी की छाती में लगी। शक्ति के लगने से उन्हें मूर्छा आ गई। तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया।

दोहा—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ ॥३५॥

सरल अर्थ—मेघनाद के समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं परन्तु जगत् के आधार श्री शेष जी (लक्ष्मण जी) उनसे कैसे उठते? तब वे लजाकर चले गए।

चौ०-ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥

सरल अर्थ—व्यापक, ब्रह्म, अजेय, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के ईश्वर और करुणा की खान श्री रामचन्द्र जी ने पूछा—लक्ष्मण कहाँ हैं? तब तक हनुमान् उन्हें ले आए। छोटे भाई को (इस दशा में) देखकर प्रभु ने बहुत ही दुख माना।

जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

सरल अर्थ—जाम्बवान् ने कहा– लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे ले आने के लिए किसको भेजा जाय? श्री हनुमान् जी छोटा रूप धर कर गए और सुषेण को उसके घर समेत तुरन्त ही उठा लाए।

दोहा—राम पदारबिन्द सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥३६॥

सरल अर्थ—सुषेण ने आकर श्री रामचन्द्र जी के चरणारविन्दों मे सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध का नाम बताया, (और कहा कि—) हे पवनपुत्र! औषध लेने जाओ।

चौ०-देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥

सरल अर्थ—उन्होंने पर्वत को देखा, पर औषध न पहचान सके। तब हनुमान् जी ने एकदम से पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लेकर हनुमान् जी रात में ही आकाश मार्ग से दौड़ चले और अयोध्यापुरी के ऊपर पहुँच गए।

दोहा—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥३७॥

सरल अर्थ—भरत जी ने आकाश में अत्यन्त विशाल स्वरूप देखा, तब मन में अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष को खींचकर बिना फल का एक बाण मारा।

चौ०-परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥

सरल अर्थ—बाण लगते ही हनुमान् जी 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। प्रिय वचन (राम नाम) सुनकर भरत जी उठकर दौड़े और बड़ी उतावली से श्री हनुमान् जी के पास आए।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहुभाँति जगावा॥
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी॥

सरल अर्थ—श्री हनुमान् जी को व्याकुल देखकर उन्होंने हृदय से लगा लिया। बहुत तरह से जगाया, पर वे जागते न थे। तब भरत जी का मुख उदास हो गया। वे मन में बड़े दुखी हुए और नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भर कर ये वचन बोले—

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा॥
जौं मोरें मन बच अरु काया। प्रीत राम पद कमल अमाया॥

सरल अर्थ—जिस विधाता ने मुझे श्री रामचन्द्र जी से विमुख किया उसी ने फिर यह भयानक दुख भी दिया। यदि मन, वचन और शरीर से श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों में मेरा निष्कपट प्रेम हो।

तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥

सरल अर्थ—और यदि श्री रघुनाथ जी मुझ पर प्रसन्न हों तो यह वानर थकावट और पीड़ा से रहित हो जाय। यह वचन सुनते ही कपिराज हनुमान् जी कोसलपति श्री रामचन्द्र जी की जय हो, जय हो, कहते हुए उठ बैठे।

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक॥३८॥

सरल अर्थ—श्री भरत जी ने वानर (हनुमान् जी) को हृदय से लगा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंद तथा प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। रघुकुलतिलक श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके भरत जी के हृदय में प्रीति समाती न थी।

दोहा—भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥३९॥

सरल अर्थ—भरत जी के बाहुबल, शील (सुन्दर स्वभाव), गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रेम की मन-ही-मन बारम्बार सराहना करते हुए मारुति श्री हनुमान् जी चले जा रहे हैं।

चौ०-उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥

सरल अर्थ—वहाँ श्री लक्ष्मण जी को देखकर श्री रामचन्द्र जी साधारण मनुष्यों के अनुसार (समान) वचन बोले—आधी रात बीत चुकी है, हनुमान् नहीं आए। यह कहकर श्री रामचन्द्र जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को उठाकर हृदय से लगा लिया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥

सरल अर्थ—(और बोले—) हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिए तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया।

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥

सरल अर्थ—पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार—ये जगत् में बार-बार होते और जाते हैं, परन्तु जगत् मे सहोदर भाई बार-बार नही मिलता। हृदय मे ऐसा विचार कर हे तात! जागो।

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥

सरल अर्थ—जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़ बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यन्त दीन हो जाते हैं, हे भाई! यदि कहीं जड़ दैव मुझे जीवित रखें तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा।

जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥

सरल अर्थ—स्त्री के लिए प्यारे भाई को खोकर, मैं कौन-सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा। मैं जगत् मे बदनामी भले ही सह लेता (कि राम मे कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे)। स्त्री की हानि से (इस हानि को देखते) कोई विशेष क्षति नही थी।

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥

सरल अर्थ—अब तो हे पुत्र! मेरा निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनो ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी माता के एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो।

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥

सरल अर्थ—सब प्रकार से सुख देनेवाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हे हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (समझाते) क्यो नहीं?

सो०—प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस॥६०॥

सरल अर्थ—प्रभु के (लीला के लिए किए गए) प्रलाप को कानों से सुनकर वानरों के समूह व्याकुल हो गए। (इतने में ही) हनुमान् जी आ गए, जैसे करुण रस (के प्रसंग) में वीर रस (का प्रसंग) आ गया हो।

चौ०—हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी हर्षित होकर हनुमान् से गले लगकर मिले। प्रभु परम सुजान (चतुर) और अत्यन्त ही कृतज्ञ हैं। तब वैद्य (सुषेण) ने तुरन्त उपाय किया, (जिससे) लक्ष्मण जी हर्षित होकर उठ बैठे।

हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा॥

सरल अर्थ—प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले। भालू और वानरों के समूह सब हर्षित हो गए। फिर हनुमान जी ने वैद्य को उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया जिस प्रकार वे उस बार (पहले) उसे ले आए थे।

यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥

सरल अर्थ—यह समाचार जब रावण ने सुना, तब उसने अत्यन्त विषाद से बार-बार सिर पीटा। वह व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत से उपाय करके उसने उसको जगाया।

जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥

सरल अर्थ—कुम्भकर्ण जगा (उठ बैठा)। वह कैसा दिखाई देता है मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो। कुम्भकर्ण ने पूछा—हे भाई! कहो तो, तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं?

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥

सरल अर्थ—(कुम्भकर्ण ने कहा—) हे राक्षसराज! तूने अच्छा नहीं किया। अब आकर मुझे क्या जगाया? हे तात! अब भी अभिमान छोड़कर श्री रामचन्द्र जी को भजो तो कल्याण होगा।

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥

सरल अर्थ—हे रावण! जिनके हनुमान् सरीखे सेवक हैं, वे श्री रघुनाथ जी क्या मनुष्य है? हाय भाई! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया।

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥

सरल अर्थ—हे भाई! अब तो (अन्तिम बार) अंकवार भर कर मुझसे मिल ले। मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ। तीनों तापों को छुड़ाने वाले श्याम शरीर, कमलनेत्र श्री रामचन्द्र जी के जाकर दर्शन करूँ।

दोहा—रामरूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥४१॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के रूप और गुणों को स्मरण करके वह एक क्षण के लिए प्रेम में मग्न हो गया। फिर रावण ने करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मँगवाए।

चौ०-महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥

सरल अर्थ—भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह वज्रघात (बिजली गिरने) के समान गरजा। मद से चूर रण के उत्साह से पूर्ण कुम्भकर्ण किला छोडकर चला, सेना भी साथ नहीं ली।

देखि बिभीषनु आगें आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो। रघुपति भक्त जान मन भायो॥

सरल अर्थ—उसे देखकर विभीषण आगे आए और उसके चरणों पर गिरकर अपना नाम सुनाया। छोटे भाई को उठाकर उसने हृदय से लगा लिया और श्री रघुनाथ जी का भक्त जानकर वे उसके मन को प्रिय लगे।

तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउँ॥

सरल अर्थ—(विभीषण ने कहा—) हे तात! परम हितकर सलाह एवं विचार कहने पर रावण ने मुझे लात मारी। उसी ग्लानि के मारे मैं श्री रघुनाथ जी के पास चला आया। दीन देखकर प्रभु के मन को मैं (बहुत) प्रिय लगा।

सुनु सुत भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयउ तात निसिचर कुल भूषन॥

सरल अर्थ—(कुम्भकर्ण ने कहा—) हे पुत्र! सुन, रावण तो काल के वश हो गया है (उसके सिर पर मृत्यु नाच रही है)। वह क्या अब उत्तम शिक्षा मान सकता है? हे विभीषण! तू धन्य है, धन्य है, धन्य है। हे तात! तू राक्षसकुल का भूषण हो गया।

दोहा—बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥४२॥

सरल अर्थ—मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर रणधीर श्री रामचन्द्र जी का भजन करना। हे भाई! मैं काल (मृत्यु) के वश हो गया हूँ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझता, इसलिए अब तुम जाओ।

चौ०—बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥

सरल अर्थ—भाई के वचन सुनकर विभीषण लौट गए और वहाँ आए जहाँ त्रिलोकी के भूषण श्री रामचन्द्र जी थे। (विभीषण ने कहा—) हे नाथ! पर्वत के समान (विशाल) देहवाला रणधीर कुम्भकर्ण आ रहा है।

एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥

सरल अर्थ—वानरों ने जब कानों से इतना सुना, तब वे बलवान् किलकिला कर (हर्षध्वनि करके) दौड़े। वृक्ष और पर्वत (उखाड़कर) उठा लिए और (क्रोध से) दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर डालने लगे।

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एकएक बारा॥
मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो॥

सरल अर्थ—रीछ-वानर एक-एक बार में ही करोड़ों पहाड़ों के शिखरों से उस पर प्रहार करते हैं; परन्तु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदार के फलों की मार से हाथी पर कुछ असर नहीं होता।

तब मारुत सुत मुठिका हन्यो। पर्‌यो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरन्ता॥

सरल अर्थ—तब हनुमान् जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। फिर उसने उठकर हनुमान् जी को मारा। वे चक्कर खाकर तुरन्त पृथ्वी पर गिर पड़े।

दोहा—अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव॥४३॥

सरल अर्थ—सुग्रीव समेत अंगदादि वानरों को मूर्छित करके फिर वह अपरिमित बल की सीमा कुम्भकर्ण वानरराज सुग्रीव को काँख में दबाकर चला।

चौ०—उमा करत रघुपति नर लीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे उमा! श्री रघुनाथ जी वैसे ही नर-लीला कर रहे हैं जैसे गरुड़ सर्पों के समूह में मिलकर खेलता हो। जो भौंह के इशारे मात्र से (बिना परिश्रम के) काल को भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई भी शोभा देती है?

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं । गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं ॥
मुरुछा गइ मारुत सुत जागा । सुग्रीवहि तब खोजन लागा ॥

सरल अर्थ—भगवान् (इसके द्वारा) जगत् को पवित्र करने वाली वह कीर्ति फैलाएँगे जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागर से तर जाएँगे। मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति श्री हनुमान् जी जागे और फिर वे सुग्रीव को खोजने लगे।

सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती । निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती ॥
काटेसि दसन नासिका काना । गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना ॥

सरल अर्थ—सुग्रीव की भी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे (मुर्दे से होकर) खिसक गए (काँख से नीचे गिर पड़े)। कुम्भकर्ण ने उनको मृतक जाना। उन्होंने कुम्भकर्ण के नाक-कान दाँतों से काट लिए और फिर गरज कर आकाश की ओर चले, तब कुम्भकर्ण ने जाना।

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा । अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना । जयति जयति जय कृपानिधाना ॥

सरल अर्थ—उसने सुग्रीव का पैर पकड़कर उनको पृथ्वी पर पछाड़ दिया। फिर सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती से उठकर उसको मारा। और तब बलवान् सुग्रीव प्रभु के पास आए और बोले—कृपानिधान ! प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो।

नाक कान काटे जियँ जानी । फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ।
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा । देखत कपि दल उपजी त्रासा ॥

सरल अर्थ—नाक-कान काटे गए, ऐसा मन मे जानकर बड़ी ग्लानि हुई और वह क्रोध करके लौटा। एक तो वह स्वभाव (आकृति) से ही भयकर था और फिर बिना नाक-कान का होने से और भी भयानक हो गया। उसे देखते ही वानरो की सेना मे भय उत्पन्न हो गया।

दोहा—जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह ।
एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ॥६४॥

सरल अर्थ—'रघुवंश-मणि की जय हो, जय हो, जय हो' ऐसा पुकार कर वानर हूह करके दौड़े और सबने एक ही साथ उस पर पहाड़ और वृक्षो के समूह छोड़े।

चौ०-कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा । सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई ॥

सरल अर्थ—रण के उत्साह मे कुम्भकर्ण विरुद्ध होकर (उनके) सामने ऐसा चला मानो क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो। वह करोड़-करोड़ वानरो को एक साथ पकड़-पकड़ कर खाने लगा। (वे उसके मुँह मे इस तरह घुसने लगे) मानो गुफा में टिड्डियाँ समा रही हों।

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ॥
मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ॥

सरल अर्थ—करोड़ों (वानरों) को पकड़ कर उसने शरीर से मसल डाला। करोड़ों को हाथों से मलकर पृथ्वी की धूल में मिला दिया। (पेट में गए हुए) भालू और वानरों के ठट्ठ-के-ठट्ठ उसके मुख, नाक और कानों की राह से निकल-निकलकर भाग रहे हैं।

कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥

सरल अर्थ—कुम्भकर्ण ने वानर-सेना को तितर-बितर कर दिया। यह सुन कर राक्षस सेना भी दौड़ी। श्री रामचन्द्र जी ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आ गई है।

दोहा—सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिव नैन ॥५५॥

सरल अर्थ—तब कमलनयन श्री रामचन्द्र जी बोले—हे सुग्रीव! हे विभीषण! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेना को सँभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ।

चौ०—कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टँकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा ॥

सरल अर्थ—हाथ में शार्ङ्ग धनुष और कमर में तरकस सजकर श्री रघुनाथ जी शत्रुसेना को दलन करने चले। प्रभु ने पहले तो धनुष का टंकार किया जिसकी भयानक आवाज सुनते ही शत्रु दल बहरा हो गया।

सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा ॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥

सरल अर्थ—फिर सत्यप्रतिज्ञ श्री रामचन्द्र जी ने एक लाख बाण छोड़े। वे ऐसे चले मानो पंखवाले कालसर्प चले हों। जहाँ-तहाँ बहुत से बाण चले, जिनसे भयंकर राक्षस योद्धा कटने लगे।

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥

उनके चरण, छाती, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं। बहुत से वीरों के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वी पर पड़ रहे हैं। उत्तम योद्धा फिर सँभलकर उठते और लड़ते हैं।

लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं ॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं ॥

सरल अर्थ—बाण लगते ही वे मेघ- की तरह गरजते हैं। बहुत से तो कठिन बाण को देखकर ही भाग जाते है। बिना मुण्ड (सिर) के प्रचण्ड रुण्ड (धड़) दौड़ रहे हैं और 'पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो' का शब्द करते हुए गा (चिल्ला) रहे हैं।

दोहा—छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषग महुँ प्रबिसे सब नाराच ॥४६॥

सरल अर्थ—प्रभु के बाणो ने क्षणमात्र में भयानक राक्षसों को काट कर रख दिया। फिर वे सब बाण लौटकर श्री रघुनाथ जी के तरकस मे घुस गए।

चौ०-राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली ॥

सरल अर्थ—महाबलशाली श्री रामचन्द्र जी ने सेना को अपने पीछे कर लिया और वे (अकेले) क्रोधपूर्वक चले (आगे बढ़े)।

खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने ॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा ॥

सरल अर्थ—उन्होंने धनुष को खीचकर सौ बाण सन्धान किए। बाण छूटे और उसके शरीर मे समा गए। बाणो के लगते ही वह क्रोध मे भरकर दौड़ा। उसके दौड़ने से पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी।

लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी ॥
धावा बाम बाहु गिरिधारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी ॥

सरल अर्थ—उसने एक पर्वत उखाड़ लिया। रघुकुलतिलक श्री रामचन्द्र जी ने उसकी वह भुजा ही काट दी। तब वह बाएं हाथ मे पर्वत को लेकर दौड़ा। प्रभु ने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथ्वी पर गिरा दी।

काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा ॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका ॥

सरल अर्थ—भुजाओ के कट जाने पर वह दुष्ट कैसी शोभा पाने लगा, जैसे बिना पंख का मन्दराचल पहाड़ हो। उसने उग्र दृष्टि से प्रभु का देखा। मानो तीनो लोको को निगल जाना चाहता हो।

दोहा—करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि ॥४७॥

सरल अर्थ—वह बडे जोर से चिग्घाड करके मुँह फैला कर दौडा। आकाश मे सिद्ध और देवता डरकर हा! हा! इस प्रकार पुकारने लगे।

चौ०-सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो ॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥

सरल अर्थ—करुणानिधान भगवान् ने देवताओ को भयभीत जाना। तब उन्होने धनुष को कान तक तानकर राक्षस के मुख को बाणो के समूह से भर दिया। तो भी वह महाबली पृथ्वी पर न गिरा।

सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल त्रोन सजीव जनु आवा।
तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा।।

सरल अर्थ—मुख में बाण भरे हुए वह (प्रभु के) सामने दौड़ा। मानो काल-रूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

सो सिर परेउ दसानन आगें। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें।।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा।।

सरल अर्थ—वह सिर रावण के आगे जा गिरा। उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ जैसे मणि के छूट जाने पर सर्प। कुम्भकर्ण का प्रचण्ड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी। तब प्रभु ने काटकर उसके दो टुकड़े कर दिए।

परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर।।
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना।।

सरल अर्थ—वानर-भालू और निशाचरों को अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वी पर ऐसे पड़े जैसे आकाश से दो पहाड़ गिरे हों। उसका तेज प्रभु श्री रामचन्द्र जी के मुख में समा गया। (यह देखकर) देवता और मुनि सभी ने आश्चर्य माना।

दोहा—निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम।।४८।।

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे गिरजे! कुम्भकर्ण जो नीच राक्षस और पाप की खान था, उसे भी श्री रामचन्द्र जी ने अपना परमधाम दे दिया। अतः वे मनुष्य (निश्चय ही) मन्दबुद्धि हैं जो उन श्री रामचन्द्र जी को नहीं भजते।

चौ०-दिन कें अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी।।
राम कृपा कपि दलबल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा।।

सरल अर्थ—दिन का अंत होने पर दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं। (आज के युद्ध में) योद्धाओं को बड़ी थकावट हुई। परन्तु श्री रामचन्द्र जी की कृपा से वानर सेना का बल उसी प्रकार बढ़ गया जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है।

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती।।
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई।।

सरल अर्थ—उधर राक्षस दिन-रात इस प्रकार घटते जा रहे हैं जिस प्रकार अपने ही मुख से कहने पर पुण्य घट जाते हैं। रावण बहुत विलाप कर रहा है। बार-बार भाई (कुम्भकर्ण) का सिर कलेजे से लगाता है।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी।।
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ।।

सरल अर्थ—स्त्रियाँ उसके बड़े भारी तेज और बल को बखान करके हाथों से छाती पीट-पीट कर रो रही है। उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत-सी कथाएँ कहकर पिता को समझाया।

देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौ बड़ाई ॥

सरल अर्थ—(और कहा—) कल मेरा पुरुषार्थ देखिएगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ ?

दोहा—मेघनाद मायामय रथ चढि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ॥४८॥

सरल अर्थ—मेघनाद उसी (पूर्वोक्त) मायामय रथ पर चढकर आकाश में चला गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे वानरो की सेना मे भय छा गया।

चौ०-सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना ॥

सरल अर्थ—वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र, शस्त्र एव वज्र आदि बहुत से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघ, पत्थर आदि डालने और बहुत से बाणो की वृष्टि करने लगा।

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना ॥

सरल अर्थ—आकाश मे, दसो दिशाओ मे बाण छा गए, मानो मघा नक्षत्र के बादलो ने झडी लगा दी हो। 'पकडो-पकडो, मारो' ये शब्द कानो से सुनाई पडते हैं। पर जो मार रहा है उसे कोई नही जान पाता।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छाँडइ होइ लागहिं नागा ॥

सरल अर्थ—फिर उसने लक्ष्मण जी, सुग्रीव और विभीषण को बाणो से मारकर उनके शरीरो को चलनी कर दिया। फिर वह श्री रघुनाथ जी से लडने लगा। वह जो बाण छोडता है, वे साँप होकर लगते हैं।

ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनत एक अबिकारी ॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतत्र एक भगवाना ॥

सरल अर्थ—जो स्वतन्त्र अनंत, एक (अखण्ड) और निर्विकार हैं, वे खर के शत्रु श्री रामचन्द्र जी (लीला से) नागपाश के वश मे हो गए (उससे बँध गए)। श्री रामचन्द्र जी सदा स्वतन्त्र, एक (अद्वितीय) भगवान् हैं। वे नट की तरह अनेको प्रकार के दिखावटी चरित्र करते है।

रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो ॥

सरल अर्थ—रण की शोभा के लिए प्रभु ने अपने को नागपाश मे बाँध लिया। किन्तु उससे देवताओ को बड़ा भय हुआ।

इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो ॥

सरल अर्थ—इधर देवर्षि नारद जी ने गरुड़ को भेजा। वे तुरन्त ही श्री रामचन्द्र जी के पास आ पहुँचे।

दोहा—खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ ॥५०॥

सरल अर्थ—पक्षिराज गरुड़ की सब माया-सर्पों के समूहों को पकड़ कर खा गए। तब सब वानरों के झुण्ड माया से रहित होकर हर्षित हुए।

चौ०-मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी ॥
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा ॥

सरल अर्थ—मेघनाद की मूर्च्छा छूटी, (तब) पिता को देखकर उसे बड़ी शर्म लगी। मैं अजय (अजेय होने को) यज्ञ करूँ, ऐसा मन में निश्चय करके वह तुरन्त श्रेष्ठ पर्वत की गुफा में चला गया।

इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा ॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन ॥

सरल अर्थ—यहाँ विभीषण ने यह सलाह विचारी (और श्री रामचन्द्र जी से कहा—) हे अतुलनीय बलवान् उदार प्रभो! देवताओं को सताने वाला दुष्ट, मायावी मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है।

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि ॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना ॥

सरल अर्थ—हे प्रभो! यदि वह यज्ञ सिद्ध हो पाएगा, तो हे नाथ! फिर मेघनाद जल्दी जीता न जा सकेगा। यह सुनकर श्री रघुनाथ जी ने बहुत सुख माना और अंगदादि बहुत से वानरों को बुलाया (और कहा)—

लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई ॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही ॥

सरल अर्थ—हे भाइयो! सब लोग लक्ष्मण के साथ जाओ और जाकर यज्ञ को विध्वंस करो। हे लक्ष्मण! संग्राम में तुम उसे मारना। देवताओं को भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है।

मारेहि तेहि बलबुद्धि उपाई। जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई ॥
जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउ जन ॥

सरल अर्थ—हे भाई! सुनो, उसको ऐसे बल और बुद्धि के उपाय से मारना, जिससे निशाचर का नाश हो। हे जाम्बवान्, सुग्रीव और विभीषण! तुम तीनों जनें सेना समेत (इनके) साथ रहना।

जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं ।।
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई ।।

सरल अर्थ—यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ, तो थी रघुनाथ जी का सेवक न कहाऊँ। यदि सैकड़ों शंकर भी उसकी सहायता करें तो भी रघुनाथ जी की दुहाई है, आज मैं उसे मार ही डालूंगा।

दोहा—रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत ।।५१।।

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी के चरणों में सिर नवाकर शेषावतार श्री लक्ष्मण जी तुरन्त चले। उनके साथ अंगद, नील, मयंद, नल और श्री हनुमान् आदि उत्तम योद्धा थे।

चौ०-जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ।।
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रससा ।।

सरल अर्थ—वानरों ने जाकर देखा कि वह बैठा हुआ खून और भैंसे की आहुति दे रहा है। वानरों ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। फिर भी जब वह नहीं उठा तब वे उसकी प्रशसा करने लगे।

तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हतिहति चले पराई ।।
लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे ।।

सरल अर्थ—इतने पर भी वह न उठा, (तब) उन्होंने जाकर उसके बाल पकड़े और लातों से मार-मारकर वे भाग चले। वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, तब वानर भागे और वहाँ आ गए जहाँ आगे श्री लक्ष्मण जी खड़े थे।

प्रभु कहँ छाँडेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनत जुग खंडा ।।
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा ।।

सरल अर्थ—फिर उसने प्रभु श्री लक्ष्मण जी पर प्रचण्ड त्रिशूल छोड़ा। अनंत (श्री लक्ष्मण जी) ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। हनुमान् जी और युवराज अंगद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, पर उसे चोट न लगी।

फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा ।।
आवत देखि क्रुद्ध-जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला ।।

सरल अर्थ—शत्रु (मेघनाद) मारे नहीं मरता, यह देखकर जब वीर लौटे तब वह घोर चिग्घाड़ करके दौड़ा। उसे क्रुद्ध काल की तरह आता देखकर लक्ष्मण जी ने भयानक बाण छोड़े।

देखेसि आवंत पवि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना ।।
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ।।

सरल अर्थ—वज्र के समान बाणों को आते देखकर वह दुष्ट तुरन्त अंतर्धान हो गया और फिर भांति-भांति के रूप धारण करके युद्ध करने लगा। वह कभी प्रकट होता था और कभी छिप जाता था।

देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥

सरल अर्थ—शत्रु को पराजित न होता देखकर वानर डरे। तब सर्पराज शेष जी (लक्ष्मण जी) बहुत ही क्रोधित हुए। श्री लक्ष्मण जी ने मन में यह विचार दृढ़ किया कि इस पापी को मैं बहुत खेला चुका (अब और अधिक खेलाना अच्छा नहीं, अब तो इसे समाप्त ही कर देना चाहिए।)

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपटु सब त्यागा॥

सरल अर्थ—कोसलापति श्री रामचन्द्र जी के प्रताप का स्मरण करके लक्ष्मण जी ने वीरोचित दर्प करके बाण का सन्धान किया। बाण छोड़ते ही उसकी छाती के बीच मे लगा। मरते समय उसने सब कपट त्याग दिया।

दोहा—रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥५२क॥

सरल अर्थ—राम के छोटे भाई लक्ष्मण कहाँ हैं? राम कहाँ हैं? ऐसा कह कर उसने प्राण छोड़ दिए। अंगद और हनुमान् कहने लगे—तेरी माता धन्य है, धन्य है (जो तू लक्ष्मण जी के हाथों मरा और मरते समय श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण को स्मरण करके तूने उनके नामों का उच्चारण किया।)

तब दसकंठ बिबिध बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि॥५२ख॥

सरल अर्थ—तब रावण ने सब स्त्रियों को अनेकों प्रकार से समझाया कि समस्त जगत् का यह (दृश्य) रूप नाशवान् है, हृदय में विचार कर देखो।

तिन्हहि कि संपत्ति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥५२ग॥

सरल अर्थ—जो जीवों के द्रोह में रत है, मोह के वश हो रहा है, राम विमुख है और कामासक्त है, उसको क्या कभी स्वप्न में भी सम्पत्ति, शुभ शकुन और चित्त की शान्ति हो सकती है।

चौ०-चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहुधारा॥
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥

सरल अर्थ—राक्षसों की अपार सेना चली। चतुरंगिणी सेना की बहुत-सी टुकड़ियाँ हैं। अनेकों प्रकार के वाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत सी रंगों की अनेकों पताकाएँ और ध्वजाएँ हैं।

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी ।।
चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं ।।

सरल अर्थ—अत्यन्त विचित्र फौज शोभित है! मानो वीर वसंत ने सेना सजाई हो। सेना के चलने से दिशाओं के हाथी डिगने लगे, समुद्र क्षुभित हो गए और पर्वत डगमगाने लगे।

उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई ।।
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं ।।

सरल अर्थ—इतनी धूल उडी कि सूर्य छिप गए। (फिर सहसा) पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी। ढोल और नगाड़े भीषण ध्वनि से बज रहे हैं, जैसे प्रलय काल के बादल गरज रहे हों।

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ।।
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ।।

सरल अर्थ—(रावण ने कहा—) हे उत्तम योद्धाओ! सुनो। तुम रीछ-वानरों के ठट्ट को मसल डालो। और मैं दोनों राजकुमार भाइयों को मारूँगा। ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चलाई।

दोहा—दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि ।।८३।।

सरल अर्थ—दोनों ओर के योद्धा जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जान (चुन) कर इधर श्री रघुनाथ जी का और उधर रावण का बखान करके परस्पर भिड गए।

चौ०-रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा ।।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा ।।

सरल अर्थ—रावण को रथ पर और श्री रघुवीर को बिना रथ के देख कर विभीषण अधीर हो गए। प्रेम अधिक होने से उनके मन में सन्देह हो गया (कि वे बिना रथ के रावण को कैसे जीत सकेंगे)। श्री रामचन्द्र जी के चरणों की वन्दना करके वे स्नेहपूर्वक कहने लगे।

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना ।।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना ।।

सरल अर्थ—हे नाथ! आपके न रथ है, न तन की रक्षा करने वाला कवच है और न जूते ही हैं। वह बलवान् वीर रावण किस प्रकार जीता जाएगा? कृपा-निधान श्री रामचन्द्र जी ने कहा—हे सखे! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥

सरल अर्थ—शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं, सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूती ध्वजा और पताका है। बल, विवेक, दम (इन्द्रियों का वश में होना) और परोपकार ये चार इसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जोड़े हुए हैं।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥

सरल अर्थ—ईश्वर का भजन ही (उस रथ को चलाने वाला) चतुर सारथि है। वैराग्य ढाल है और सन्तोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥

सरल अर्थ—निर्मल (पापरहित) और अचल (स्थिर) मन तरकस के समान है। शम (मन का वश में होना) (अहिंसादि) यम और (शौचादि) नियम, ये बहुत से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच हैं। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है।

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।

सरल अर्थ—हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु नहीं है।

दोहा—सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज॥५४क॥

सरल अर्थ—प्रभु के वचन सुनकर विभीषण जी ने हर्षित होकर उनके चरण-कमल पकड़ लिए (और कहा—) हे कृपा और सुख के समूह श्री रामचन्द्र जी! आपने इसी बहाने मुझे (महान्) उपदेश दिया।

उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन॥५४ख॥

सरल अर्थ—उधर से रावण ललकार रहा है और इधर से अंगद और हनुमान्। राक्षस और रीछ-वानर अपने-अपने स्वामी की दुहाई देकर लड़ रहे हैं।

चौ०-इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा॥

सरल अर्थ—यहाँ विभीषण जी ने सब खबर पायी और तुरन्त जाकर श्री रघुनाथ जी को कह सुनायी कि हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा।

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! तुरन्त वानर योद्धाओं को भेजिए, जो यज्ञ का विध्वंस करें, जिससे रावण युद्ध में आवे। प्रातःकाल होते ही प्रभु ने वीर योद्धाओं को भेजा। श्री हनुमान् और अंगद आदि सब (प्रधान वीर) दौड़े।

कौतुक कूद चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥
जग्य करत जबही सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥

सरल अर्थ—वानर खेल से ही कूदकर लंका पर जा चढ़े और निर्भय रावण के महल में जा घुसे। ज्यों ही उसको यज्ञ करते देखा त्यों ही सब वानरों को बहुत क्रोध हुआ।

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥

सरल अर्थ—(उन्होंने कहा—) अरे ओ निर्लज्ज ! रणभूमि से घर भाग आया और यहाँ आकर बगुले का-सा ध्यान लगाकर बैठा है। ऐसा कहकर अंगद ने लात मारी। पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस दुष्ट का मन स्वार्थ मे अनुरक्त था।

दोहा—जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥८५॥

सरल अर्थ—यज्ञ विध्वंस करके सब चतुर वानर श्री रघुनाथ जी के पास आ गए। तब रावण जीने की आशा छोड़कर क्रोधित होकर चला।

चौ०-देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥

सरल अर्थ—देवताओं ने प्रभु को पैदल (बिना सवारी) के युद्ध करते देखा, तो उनके हृदय मे बड़ा भारी क्षोभ (दुःख) उत्पन्न हुआ। (फिर क्या था) इन्द्र ने तुरन्त अपना रथ भेज दिया। (उसका सारथि) मातलि हर्ष के साथ उसे ले आया।

तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी॥

सरल अर्थ—उस दिव्य, अनुपम और तेज के पुंज (तेजोमय) रथ पर कोसलपुरी के राजा श्री रामचन्द्र जी हर्षित होकर चढ़े। उसमे चार चंचल, मनोहर, अजर, अमर और मन की गति के समान शीघ्र चलने वाले (देवलोक के) घोड़े जुते थे।

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी को रथ पर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े। वानरों की मार सही नहीं जाती। तब रावण ने माया फैलायी।

सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची ॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसल धनी ॥

सरल अर्थ—एक रघुबीर जी के ही वह माया नहीं लगी। सब वानरों ने और लक्ष्मण जी ने भी उस माया को सच मान लिया। वानरों ने राक्षसी सेना में भाई लक्ष्मण जी सहित बहुत से रामों को देखा।

छंद०—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे ॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसल धनी ॥
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी ॥

सरल अर्थ—बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मन में मिथ्या डर से बहुत ही डर गए। लक्ष्मण जी सहित वे मानो चित्रलिखे-से जहाँ के तहाँ खड़े देखने लगे। अपनी सेना को आश्चर्यचकित देखकर कोसलापति भगवान् हरि (दुखों को हरनेवाले श्री रामचन्द्र जी) ने हँसकर धनुष पर बाण चढ़ाकर पल भर में सारी माया हर ली। वानरों की सारी सेना हर्षित हो गई।

दोहा—बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गंभीर।
द्वन्द्व जुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर ॥५६॥

सरल अर्थ—फिर श्री रामचन्द्र जी सबकी ओर देखकर गम्भीर वचन बोले—हे वीरो! तुम सब बहुत ही थक गए हो, इसलिए अब (मेरा और रावण का) द्वन्द्व युद्ध देखो।

चौ०-अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा ॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा ॥

सरल अर्थ—ऐसा कहकर श्री रघुनाथ जी ने ब्राह्मणों के चरणकमलों में सिर नवाया और फिर रथ चलाया। तब रावण के हृदय में क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा।

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं ॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदी खाना ॥

सरल अर्थ—(उसने कहा—) अरे तपस्वी! सुनो, तुमने युद्ध में जिन योद्धाओं को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरा यश सारा जगत् जानता है, लोकपाल तक जिसके कैदखाने में पड़े हैं।

खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु व्याध इव बालि बिचारा ॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुम्भकरन घननादहि मारेहु ॥

सरल अर्थ—तुमने खर, दूषण और विराध को मारा। बेचारे बालि का व्याध की तरह वध किया। बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओं के समूह का संहार किया और कुम्भकर्ण तथा मेघनाद को भी मारा।

आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥
आज करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥

सरल अर्थ—अरे राजा! यदि तुम रण से भाग न गए तो आज मैं (वह) सारा वैर निकाल लूंगा। आज मैं तुम्हे निश्चय ही काल के हवाले कर दूंगा। तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो।

सुनि दुर्बचन काल बस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥

सरल अर्थ—रावण के दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी ने हँसकर यह वचन कहा—तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिलकुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखाओ।

छं०—जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं॥
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

सरल अर्थ—व्यर्थ बकवाद करके अपने सुन्दर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हे नीति सुनाता हूँ, सुनो। संसार मे तीन प्रकार के पुरुष होते है—पाटल (गुलाब), आम और कटहल के समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनो देते हैं और एक (कटहल) मे केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार (पुरुषों) मे एक कहते हैं (करते नही), दूसरे कहते हैं और करते भी हैं और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नही।

दोहा—राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥९७क॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के वचन सुनकर वह खूब हँसा (और बोला—) मुझे ज्ञान सिखाते हो? उस समय वैर करते तो नही डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं।

तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥९७ख॥

सरल अर्थ—धनुष को कान तक तानकर श्री रामचन्द्र जी ने भयानक बाण छोड़े। श्री रामचन्द्र जी के बाण समूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते (लहराते) हुए जा रहे हो।

चौ०-चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका॥

सरल अर्थ—बाण ऐसे चले मानो पंखवाले सर्प उड़ रहे हों। उन्होंने पहले सारथि और घोड़ों को मार डाला। फिर रथ को चूर-चूर करके ध्वजा और पताकाओं को गिरा दिया। तब रावण बड़े जोर से गरजा, पर भीतर से उसका बल थक गया था।

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥

सरल अर्थ—तुरन्त दूसरे रथ पर चढ़कर खिसियाकर उसने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़े। उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो रहे हैं जैसे परद्रोह में लगे हुए चित्तवाले मनुष्य के होते हैं।

तब रावन दससूल चलावा। बाजि चारिमहि मारि गिरावा॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक॥

सरल अर्थ—तब रावण ने दस त्रिशूल चलाए और श्री रामचन्द्र जी के घोड़ों को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। घोड़ों को उठाकर श्री रघुनाथ जी ने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े।

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे॥

सरल अर्थ—रावण के सिर रूपी कमलवन में विचरण करने वाले श्री रघुवीर के बाण रूपी भ्रमरों की पंक्ति चली। श्री रामचन्द्र जी ने उसके दसों सिरों में दस-दस बाण मारे, जो आर-पार हो गए और सिरों से रक्त के पनाले बह चले।

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे॥

सरल अर्थ—रुधिर बहते हुए बलवान् रावण दौड़ा। प्रभु ने फिर धनुष पर बाण सन्धान किया। श्री रघुवीर ने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओं समेत दसों सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिए।

काटतहीं पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए॥

सरल अर्थ—(सिर और हाथ) काटते ही फिर नए हो गए। श्री रामचन्द्र जी ने फिर भुजाओं और सिरों को काट गिराया। इस तरह प्रभु ने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे। परन्तु काटते ही वे तुरन्त फिर नए हो गए।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥

सरल अर्थ—प्रभु बार-बार उसकी भुजा और सिरों को काट रहे हैं, क्योंकि कोसलपति श्री रामचन्द्र जी बड़े कौतुकी हैं। आकाश मे सिर और बाहु ऐसे छा गए हैं, मानो असंख्य केतु और राहु हों।

छन्द—जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचण्ड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर तहँ जहँ बिधु तुद पोहहीं॥

सरल अर्थ—मानो अनेको राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाश मार्ग मे दौड़ रहे हो। श्री रघुवीर के प्रचण्ड बाणो के (बार-बार) लगने से वे पृथ्वी पर गिरने नही पाते। एक-एक बाण से समूह-के-समूह सिर छेदे हुए आकाश मे उड़ते ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो सूर्य की किरणे क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओ को पिरो रही हों।

चौ०-दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी।
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी॥

सरल अर्थ—सिरो की बाढ़ देखकर रावण को अपना मरण भूल गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ। वह महान् अभिमानी मूर्ख गरजा और दसो धनुषों को तान कर दौड़ा।

समर भूमि दसकंधर कोप्यौ। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यौ॥
दंड एक रथ देखि न परेऊ। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥

सरल अर्थ—रणभूमि में रावण ने क्रोध किया और बाण बरसाकर श्री रघुनाथ जी के रथ को ढक दिया। एक दण्ड (घड़ी) तक रथ दिखलाई न पड़ा, मानो कुहरे में सूर्य छिप गया हो।

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥

सरल अर्थ—जब देवताओ ने हाहाकार किया, तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष उठाया और शत्रु के बाणो को हटाकर उन्होने शत्रु के सिर काटे और उनसे दिशा-विदिशा, आकाश और पृथ्वी सब को पाट दिया।

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥

सरल अर्थ—काटे हुए सिर आकाश मार्ग मे दौड़ते हैं और जय-जय की करके भय उत्पन्न करते हैं। 'लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसल- कहाँ हैं?'

दोहा—पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड ॥५७॥

सरल अर्थ—फिर रावण ने क्रोधित होकर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। वह विभीषण के सामने ऐसी चली जैसे काल (यमराज) का दण्ड हो।

चौ०-आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥

सरल अर्थ—अत्यन्त भयानक शक्ति को आते देख और यह विचार कर कि मेरा प्रण शरणागत के दुख का नाश करना है, श्री रामचन्द्र जी ने तुरंत ही विभीषण को पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो ॥

सरल अर्थ—शक्ति लगने से उन्हें कुछ मूर्च्छा हो गई। प्रभु ने तो यह लीला की, पर देवताओं को व्याकुलता हुई। प्रभु को श्रम (शारीरिक कष्ट) प्राप्त हुआ देखकर विभीषण क्रोधित हो हाथ में गदा लेकर दौड़े।

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे ॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए ॥

सरल अर्थ—(और बोले—) अरे अभागे! मूर्ख, नीच दुर्बुद्धि! तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग सभी से विरोध किया। तूने आदर सहित शिव जी को सिर चढ़ाए। इसी से एक-एक के बदले में करोड़ों पाए।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव कालु सीस पर नाच्यो ॥
राम बिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा ॥

सरल अर्थ—उसी कारण से अरे दुष्ट! तू अब तक बचा है। (किन्तु) अब काल तेरे सिर पर नाच रहा है। अरे मूर्ख! तू राम विमुख होकर सम्पत्ति (सुख) चाहता है? ऐसा कहकर विभीषण ने रावण की छाती के बीचोबीच गदा मारी।

दोहा—उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ ॥५८॥

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे उमा! विभीषण क्या कभी रावण के सामने आँख उठाकर भी देख सकता था? परन्तु अब वही काल के समान उससे भिड़ रहा है। यह श्री रघुवीर का ही प्रभाव है।

चौ०-अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥

सरल अर्थ—क्षण भर के लिए वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्ट ने अनेकों रूप प्रकट किए। श्री रघुनाथ जी की सेना में जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहाँ-तहाँ (चारों ओर) प्रकट हो गए।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा॥

सरल अर्थ—वानरो ने अपरिमित रावण देखे। भालू और वानर सब जहाँ-तहाँ (इधर-उधर) भाग चले। वानर धीरज नही धरते। हे लक्ष्मण जी! हे रघुवीर! बचाइए, बचाइए, यो पुकारते हुए वे भागे जा रहे हैं।

दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥
डरे सकल सुर चले पराई। जयकै आस तजहु अब भाई॥

सरल अर्थ—दसो दिशाओ मे करोडो रावण दौडते हैं और घोर, कठोर भयानक गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गए और ऐसा कहते हुए भाग चले कि—हे भाई! अब जय की आशा छोड दो।

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥

सरल अर्थ—एक ही रावण ने सब देवताओं को जीत लिया था, अब तो बहुत-से रावण हो गए हैं। इससे अब पहाड की गुफाओ का आश्रय लो (अर्थात् उनमे छिप रहो)। वहाँ ब्रह्मा, शम्भु और ज्ञानी मुनि ही डटे रहे, जिन्होने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी।

दोहा—सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥९४॥

सरल अर्थ—देवताओ और वानरो को विकल देखकर कोशलपति श्री रामचद्र जी हँसे और शार्ङ्ग धनुष पर एक बाण चढाकर (माया के बने हुए) सब रावणो को मार डाला।

चौ०-तेही निसि सीता पहिंजाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥

सरल अर्थ—उसी रात त्रिजटा ने सीता जी के पास जाकर उन्हे सब कथा कह सुनाई। शत्रुओं के सिर और भुजाओ की बढती का सवाद सुनकर सीता जी के हृदय मे बड़ा भय हुआ।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता॥

सरल अर्थ—(उनका) मुख उदास हो गया, मन में चिन्ता उत्पन्न हो गई। तब सीता जी त्रिजटा से बोली—हे माता! बताती क्यो नहीं? क्या होगा? सपूर्ण विश्व को दुख देने वाला यह किस प्रकार मरेगा?

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी के बाणों से सिर कटने पर भी नहीं मरता। विधाता सारे चरित्र, विपरीत (उलटे) ही कर रहा है। (सच बात तो यह है कि) मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान् के चरण-कमलों से अलग कर दिया है।

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा।।
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए।।

सरल अर्थ—जिसने कपट का झूठा स्वर्ण-मृग बनाया था, वही दैव अब भी मुझ पर रूठा हुआ है, जिस विधाता ने मुझसे दुसह दुःख सहन कराए और लक्ष्मण को कड़ुए-कड़ुए वचन कहलाए।

रघुपति बिरह सविष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी।।
ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना।।

सरल अर्थ—जो श्री रघुनाथ जी के विरह रूपी बड़े विषैले बाणों से तक-तक कर मुझे बहुत बार मारकर अब भी मार रहा है, और ऐसे दुःख में भी जो मेरे प्राणों को रख रहा है, वही विधाता उस (रावण) को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं।

बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की।।
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी।।

सरल अर्थ—कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी की याद कर-करके जानकी जी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं। त्रिजटा ने कहा—हे राजकुमारी! सुनो, देवताओं का शत्रु रावण हृदय में बाण लगते ही मर जाएगा।

प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही।।

सरल अर्थ—परन्तु प्रभु उसके हृदय में बाण इसलिए नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकी जी (आप) बसती हैं।

छं०—एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है।।
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा।।

सरल अर्थ—(वे यही सोचकर रह जाते हैं कि) इसके हृदय में जानकी जी का निवास है, जानकी जी के हृदय में मेरा निवास है और मेरे उदर में अनेकों भुवन हैं। अतः रावण के हृदय में बाण लगते ही सब भुवनों का नाश हो जाएगा। यह वचन सुनकर सीता जी के मन में अत्यन्त हर्ष और विषाद हुआ देखकर त्रिजटा ने फिर कहा—हे सुन्दरी! महान् सन्देह का त्याग कर दो; अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा—

दोहा—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदयँ महुँ मरिहहिं रामु सुजान ॥९०क॥

सरल अर्थ—सिरों के बार-बार काटे जाने से जब वह व्याकुल हो जाएगा और उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जाएगा, तब सुजान (अंतर्यामी) श्री रामचन्द्र जी रावण के हृदय में बाण मारेंगे।

काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि व्याकुल देखि कलेस ॥९०ख॥

सरल अर्थ—सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गयीं, फिर भी वीर रावण मरता नहीं। प्रभु तो खेल कर रहे हैं, परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता उस क्लेश को देख कर (प्रभु को क्लेश पाते समझकर) व्याकुल हैं।

चौ०-काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा ॥

सरल अर्थ—काटते ही सिरों का समूह बढ़ जाता है जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ। तब श्री रामचन्द्र जी ने विभीषण की ओर देखा।

उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा ॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक ॥

सरल अर्थ—(शिव जी कहते हैं—) हे उमा! जिसकी इच्छा मात्र से काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवक की प्रीति की परीक्षा ले रहे हैं। (विभीषण जी ने कहा—) हे सर्वज्ञ! हे चराचर के स्वामी! हे शरणागत के पालन करने वाले! हे देवता और मुनियों को सुख देने वाले! सुनिए—

नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें ॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला ॥

सरल अर्थ—इसके नाभिकुण्ड में अमृत का निवास है। हे नाथ! रावण उसी के बल पर जीता है। विभीषण के वचन सुनते ही कृपालु श्री रघुवीर नाथ जी ने हर्षित होकर हाथ में विकराल बाण लिए।

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना ॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू ॥

सरल अर्थ—उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत-से गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे। जगत् के दुःख (अशुभ) को सूचित करने के लिए पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गए।

दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा ॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी ॥

सरल अर्थ—दसों दिशाओं में अत्यन्त दाह होने लगा (आग लगने लगी)। बिना ही पर्व (योग) के सूर्य ग्रहण होने लगा। मन्दोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। मूर्तियाँ नेत्र मार्ग से जल बहाने लगीं।

दोहा—खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस ॥६१॥

सरल अर्थ—कानों तक धनुष को खींचकर श्री रघुनाथ जी ने इकतीस बाण छोड़े। वे श्री रामचन्द्र जी के बाण ऐसे चले मानो काल सर्प हों।

चौ०-सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥

सरल अर्थ—एक बाण ने नाभि के अमृत कुण्ड को सोख लिया। दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओं में लगे। बाण सिरों और भुजाओं को लेकर चले। सिरों और भुजाओं से रहित रुण्ड (धड़) पृथ्वी पर नाचने लगे।

धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥

सरल अर्थ - धड़ प्रचण्ड वेग से दौड़ता है, जिससे धरती धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। मरते समय रावण बड़े घोर शब्द से गरज कर बोला—राम कहाँ हैं। मैं ललकार कर उनको युद्ध में मारूँ।

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई॥

सरल अर्थ—रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई। समुद्र, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे। रावण धड़ के दोनों टुकड़ों को फैलाकर भालू और वानरों के समुदाय को दबाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥

सरल अर्थ—रावण की भुजाओं और सिरों को मन्दोदरी के सामने रखकर राम-बाण वहाँ चले, जहाँ जगदीश्वर श्री रामचन्द्र जी थे। सब बाण जाकर तरकस में प्रवेश कर गए। यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए।

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मण्डा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥

सरल अर्थ—रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया। यह देखकर शिवजी और ब्रह्मा जी हर्षित हुए। ब्रह्माण्ड भर में जय-जय की ध्वनि भर गई। प्रबल भुज-दण्डों वाले श्री रघुवीर की जय हो।

बरषहिं सुमन देव मुनि बृन्दा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥

सरल अर्थ—देवता और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं—कृपालु की जय हो, मुकुन्द की जय हो, जय हो।

छंद—जय कृपा कंद मुकुंद द्वन्द हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बरषहिं हरष सकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥

सरल अर्थ—हे कृपा के कन्द ! हे मोक्षदाता मुकुन्द ! हे (राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि) द्वन्द्वों के हरने वाले ! हे शरणागत को सुख देने वाले प्रभो ! हे दुष्ट-दल को विदीर्ण करने वाले ! हे कारणों के भी परम कारण ! हे सदा करुणा करने वाले ! हे सर्वव्यापक विभो ! आपकी जय हो। देवता हर्ष में भरे हुए पुष्प बरसाते हैं, घमाघम नगाड़े बज रहे हैं। रणभूमि में श्री रामचन्द्र जी के अङ्गों ने बहुत-से कामदेवों की शोभा प्राप्त की।

दोहा—कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृन्द।
भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥६२॥

सरल अर्थ—प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने कृपा दृष्टि की वर्षा करके देवसमूह को निर्भय कर दिया। वानर-भालू सब हर्षित हुए और सुखधाम मुकुन्द की जय हो, ऐसा पुकारने लगे।

चौ०-पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥

सरल अर्थ—फिर प्रभु ने श्री हनुमान् जी को बुला लिया। भगवान् ने कहा—तुम लंका जाओ। जानकी को सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल-समाचार लेकर तुम चले आओ।

तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता दिखाइ पुनि दीन्ही॥

सरल अर्थ—तब श्री हनुमान् जी नगर में आये। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी (उनके सत्कार के लिए) दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान् जी की पूजा की और फिर जानकी जी को दिखला दिया।

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी॥

सरल अर्थ—प्रभु के बचन सुनकर रीछ वानर हर्षित हो गए। आकाश से देवताओं ने बहुत-से फूल बरसाए। सीता जी (के असली स्वरूप) को पहले अग्नि में रक्खा था। अब भीतर के साक्षी भगवान् उनको प्रकट करना चाहते हैं।

दोहा—तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करै विषाद ॥६३॥

सरल अर्थ—इसी कारण करुणा के भण्डार श्री रामचन्द्र जी ने लीला से कुछ कड़े वचन कहे, जिन्हें सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं।

चौ०-प्रभु के वचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥

सरल अर्थ—प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्म से पवित्र श्री सीता जी बोलीं—हे लक्ष्मण! तुम मेरे धर्म के नेगी (धर्माचरण में सहायक) बनो और तुरंत आग तैयार करो।

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥

सरल अर्थ—श्री सीता जी की विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी हुई वाणी सुनकर लक्ष्मण जी के नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भर आया। वे दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे। वे भी प्रभु से कुछ कह नहीं सकते।

देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए ॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही ॥

सरल अर्थ—फिर श्री रामचन्द्र जी का रुख देखकर लक्ष्मण जी दौड़े और आग तैयार करके बहुत-सी लकड़ी ले आए। अग्नि को खूब बढ़ी हुई देखकर श्री जानकी जी के हृदय में हर्ष हुआ। उन्हें कुछ भी भय नहीं हुआ।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना ॥

सरल अर्थ—(श्री सीता जी ने लीला से कहा)—यदि मन, वचन और कर्म से मेरे हृदय में श्री रघुबीर को छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसी का आश्रय) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मन की गति जानते हैं, (मेरे भी मन की गति जानकर) मेरे लिए चन्दन के समान शीतल हो जायें।

छंद-श्रीखंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरनरति अति निर्मली ॥
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभसुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥

सरल अर्थ—प्रभु श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके और जिनके चरण महादेव जी के द्वारा वन्दित हैं तथा जिनमें सीता जी की अत्यन्त विशुद्ध प्रीति है, उस कोसलपति की जय बोलकर जानकी जी ने चन्दन के समान शीतल हुई अग्नि में प्रवेश किया। प्रतिबिम्ब (सीता जी की छाया-मूर्ति) और उनका लौकिक कलंक

प्रचण्ड अग्नि मे जल गए। प्रभु के इन चरित्रों को किसी ने नही जाना। देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाश में खड़े देखते हैं।

दोहा—बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर सुर बधू नाचहिं चढ़ीं बिमान ॥६४क॥

सरल अर्थ—देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। आकाश मे डंके बजने लगे। किन्नर गाने लगे। विमानों पर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगी।

जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जयरघुपति सुखसार ॥६४ख॥

सरल अर्थ—श्री जानकी जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी की अपरिमित और अपार शोभा देखकर रीछ-वानर हर्षित हो गए और सुख के सार श्री रघुनाथ जी की जय बोलने लगे।

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान ॥६४ग॥

सरल अर्थ—वानरराज सुग्रीव, नील, ऋक्षराज, जाम्बवान्, अंगद, नल और हनुमान् तथा विभीषण सहित और जो बलवान् वानर सेनापति हैं।

कहिं न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि ॥६४घ॥

सरल अर्थ—वे कुछ कह नही सकते; प्रेमवश नेत्रो मे जल भर-भरकर, नेत्रों का पलक मारना छोड़कर (टकटकी लगाए) सम्मुख होकर श्री रामचन्द्र जी की ओर देख रहे हैं।

चौ०-अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो ॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी ने उनका अतिशय प्रेम देखकर सबको विमान पर चढ़ा लिया। तदनन्तर मन-ही-मन विप्र चरणो मे सिर नवाकर उत्तर दिशा की ओर विमान चलाया।

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई ॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर ॥

सरल अर्थ—विमान के चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई श्री रघुवीर की जय कह रहे हैं। विमान मे एक अत्यन्त ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उस पर श्री सीता जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी विराजमान हो गए।

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृङ्ग जनु घन दामिनी ॥
रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर। कीन्हीं सुमन बृष्टि हरषे सुर ॥

सरल अर्थ—पत्नी सहित श्री रामचन्द्र जी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो सुमेरु के शिखर पर बिजली सहित श्याम मेघ हो। सुन्दर विमान बड़ी शीघ्रता से चला। देवता हर्षित हुए और उन्होंने फूलों की वर्षा की।

-दोहा—समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान ॥६५॥

सरल अर्थ—जो सुजान लोग श्री रघुवीर की समर विजय सम्बन्धी लीला को सुनते हैं, उनको भगवान् नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं।

□ □

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

१०. श्री रामचरितमानस

सप्तम सोपान

(उत्तरकाण्ड)

दोहा—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग ॥१क॥

सरल अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी के लौटने की) अवधि का एक ही दिन बाकी रह गया, अतएव नगर के लोग बहुत आतुर (अधीर) हो रहे हैं। राम के वियोग में दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं (कि क्या बात है, श्री रामचन्द्र जी क्यों नहीं आए)।

सगुन होहिं सुन्दर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर ॥१ख॥

सरल अर्थ—इतने में ही सब सुन्दर शकुन होने लगे और सबके मन प्रसन्न हो गए। नगर भी चारों ओर से रमणीक हो गया। मानो ये सबके-सब चिह्न प्रभु के (शुभ) आगमन को जना रहे हैं।

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोई ॥१ग॥

सरल अर्थ—कौसल्यादि सब माताओं के मन में ऐसा आनंद हो रहा है जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी आ गए।

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन विचार ॥१घ॥

सरल अर्थ—भरत जी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही हैं। इसे शुभ शकुन जान कर उनके मन में अत्यन्त हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे—

चौ०-रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा ॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ ॥

सरल अर्थ—प्राणों की आधार रूप अवधि का एक ही दिन शेष रह गया। यह सोचते ही भरत जी के मन में अपार दुःख हुआ। क्या कारण हुआ कि नाथ नहीं आए? प्रभु ने कुटिल जानकर मुझे कहीं भुला तो नहीं दिया?

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदार बिंदु अनुरागी ॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥

सरल अर्थ—अहा हा ! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं, जो श्री रामचन्द्र जी के चरणारविन्द के प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए)। मुझे तो प्रभु ने कपटी और कुटिल पहचान लिया, इसी से नाथ ने मुझे साथ नहीं लिया।

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी ॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ ॥

सरल अर्थ—(बात भी ठीक ही है, क्योंकि), यदि प्रभु मेरी करनी पर ध्यान दें तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पों तक भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता। (परन्तु आशा इतनी ही है कि) प्रभु सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीन-बन्धु हैं और अत्यन्त ही कोमल स्वभाव के हैं।

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई ॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना ॥

सरल अर्थ—अतएव मेरे हृदय में ऐसा पक्का भरोसा है कि श्री रामचन्द्र जी अवश्य मिलेंगे, (क्योंकि) मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं। किन्तु अवधि बीत जाने पर यदि मेरे प्राण रह गए तो जगत् में मेरे समान नीच कौन होगा ?

दोहा—राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत ॥१॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के विरह-समुद्र में भरत जी का मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र श्री हनुमान् जी ब्राह्मण का रूप धरकर इस प्रकार आ गये, मानों (उन्हें डूबने से बचाने के लिए) नाव आ गई हो।

चौ०-देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी ॥

सरल अर्थ—उन्हें देखते ही श्री हनुमान् जी अत्यन्त हर्षित हुए। उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बरसने लगा। मन में बहुत से सुख मानकर वे कानों के लिए अमृत के समान वाणी बोले—

जासु बिरहँ सोचहु दिनराती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती ॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता ॥

सरल अर्थ—जिनके विरह में आप दिन-रात सोच करते (घुलते) रहते हैं और जिनके गुण समूहों की पंक्तियों को आप निरंतर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुल के तिलक, सज्जनों को सुख देने वाले और देवताओं तथा मुनियों के रक्षक श्री रामचंद्र जी सकुशल आ गए।

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत ॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा ॥

सरल अर्थ—शत्रु को रण में जीतकर श्री सीता जी और श्री लक्ष्मण जी सहित प्रभु आ रहे हैं, देवता उनका सुन्दर यश गा रहे हैं। ये वचन सुनते ही (भरत जी को) सारे दुख भूल गए। जैसे प्यासा आदमी अमृत पाकर प्यास के दुख को भूल जाय।

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना ॥

सरल अर्थ—(भरत जी ने पूछा—) हे तात! तुम कौन हो? और कहाँ से आए हो? (जो तुमने मुझको (ये) परम प्रिय (अत्यन्त आनन्द देने वाले) वचन सुनाए। (हनुमान् जी ने कहा—) हे कृपानिधान! सुनिए; मैं पवन का पुत्र और जाति का वानर हूँ; मेरा नाम हनुमान् है।

दीन बंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर ॥
मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥

सरल अर्थ—मैं दीनो के बन्धु श्री रघुनाथ जी का दास हूँ। यह सुनते ही भरत जी उठकर आदर पूर्वक हनुमान् जी से गले लगकर मिले। मिलते समय प्रेम हृदय मे नही समाता। नेत्रो से (आनंद और प्रेम के आँसुओ का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया।

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचारि देखेउँ कछु नाहीं ॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥

सरल अर्थ—इस सन्देश के समान (इसके बदले मे देने लायक पदार्थ) जगत् मे कुछ भी नही है, मैंने यह विचार कर देख लिया है। (इसलिए) हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उऋण नही हो सकता। अब मुझे प्रभु का चरित्र (हाल) सुनाओ।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं ॥

सरल अर्थ—तब श्री हनुमान् जी ने भरत के चरणो में मस्तक नवाकर श्री रघुनाथ जी की सारी गुण-गाथा कही। (भरत जी ने पूछा—) हे हनुमान्! कहो, कृपालु स्वामी श्री रामचन्द्र जी कभी मुझे अपने दास की तरह याद भी करते हैं?

दोहा—राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ॥३॥

सरल अर्थ—(हनुमान् जी ने कहा—) हे नाथ! आप श्री रामचन्द्र जी को प्राणों के समान प्रिय हैं, हे तात! मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरत जी बार-बार मिलते हैं, हृदय में हर्ष समाता नही है।

सो०—भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥४॥

सरल अर्थ—फिर भरत जी के चरणों में सिर नवाकर श्री हनुमान् जी तुरंत ही श्री रामचन्द्र जी के पास (लौट) गए और जाकर उन्होंने सब कुशल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमान पर चढ़कर चले।

चौ०-हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥

सरल अर्थ—इधर भरत जी भी हर्षित होकर अयोध्यापुरी में आए और उन्होंने गुरु जी को सब समाचार सुनाया। फिर राजमहल में खबर जनायी कि श्री रघुनाथ जी कुशलपूर्वक नगर को आ रहे हैं।

सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥

सरल अर्थ—खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरत जी ने प्रभु की कुशल कहकर सबको समझाया। नगर-निवासियों ने यह समाचार पाया तो स्त्री-पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला॥
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी॥

सरल अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी के स्वागत के लिए) दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मङ्गल के मूल नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सोने के थालों में भर-भरकर हथिनी की-सी चाल वाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ (उन्हें लेकर) गाती हुई चलीं।

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई॥

सरल अर्थ—जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशा में है) वे वैसे ही (वहीं से उसी दशा में) उठ दौड़ते हैं। (देर हो जाने के डर से) बालकों और बूढ़ों को कोई साथ नहीं लाते। एक दूसरे से पूछते हैं—भाई! तुमने दयालु श्री रघुनाथ जी को देखा है?

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥

सरल अर्थ—प्रभु को आते जानकर अवधपुरी सम्पूर्ण शोभाओं की खान हो गई। तीनों प्रकार की सुन्दर वायु बहने लगी। सरयू जी अति निर्मल जलवाली हो गईं (अर्थात् सरयू जी का जल अत्यन्त निर्मल हो गया।)

दोहा—हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृन्द समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत॥३क॥

सरल अर्थ—गुरु वशिष्ठ जी, कुटुम्बी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ हर्षित होकर भरत जी अत्यन्त प्रेमपूर्ण मन से कृपाधाम श्री रामजी के सामने (अर्थात् उनकी अगवानी के लिए) चले।

बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥५ख॥

सरल अर्थ—बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियो पर चढी आकाश में विमान देख रही हैं और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर से सुन्दर मङ्गलगीत गा रही हैं।

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥५ग॥

सरल अर्थ—श्री रघुनाथ जी पूर्णिमा के चन्द्रमा हैं तथा अवधपुर समुद्र है, जो उस पूर्ण चन्द्र को देखकर हर्षित हो रहा है और शोर करता हुआ बढ रहा है। (इधर-उधर दौडती हुई) स्त्रियाँ उसकी तरगो के समान लगती हैं।

चौ०-इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥

सरल अर्थ—यहाँ (विमान पर से) सूर्यकुल रूपी कमल के प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री रामचन्द्र जी वानरो को मनोहर नगर दिखला रहे हैं। (वे कहते हैं—) हे सुग्रीव ! हे अगद ! हे लंकापति विभीषण ! सुनो, यह पुरी पवित्र है और यह देश सुन्दर है।

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना ॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसग जानइ कोउ कोऊ ॥

सरल अर्थ—यद्यपि सबने वैकुण्ठ की बडाई की है—यह वेद-पुराणो मे प्रसिद्ध है और जगत् जानता है, परन्तु अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नही है। यह बात (भेद) कोई-कोई (बिरले ही) जानते हैं।

जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा ॥

सरल अर्थ—यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है। इसके उत्तर दिशा मे (जीवों को) पवित्र करने वाली सरयू नदी बहती है, जिसमे स्नान करने से मनुष्य बिना ही परिश्रम मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते है।

दोहा—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥६क॥

सरल अर्थ—कृपासागर भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने सब लोगो को आते देखा, तो प्रभु ने विमान को नगर के समीप उतरने की प्रेरणा की। तब वह पृथ्वी पर उतरा।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ॥६ख॥

सरल अर्थ—विमान से उतरकर प्रभु ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास जाओ। श्री रामचन्द्र जी की प्रेरणा से वह चला, उसे (अपने स्वामी

के पास जाने का) हर्ष है और प्रभु श्री रामचन्द्र जी से अलग होने का अत्यन्त दुख भी।

चौ०-आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥

सरल अर्थ—भरत जी के साथ सब लोग आए। श्री रघुवीर के वियोग से सबके शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभु ने वामदेव, वशिष्ठ आदि मुनि श्रेष्ठों को देखा, तो उन्होंने धनुष-वाण पृथ्वी पर रखकर—

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥

सरल अर्थ—छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित दौड़कर गुरु जी के चरणकमल पकड़ लिए, उनके रोम-रोम अत्यन्त पुलकित हो रहे हैं। मुनिराज वशिष्ठ जी ने (उठाकर) उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। (प्रभु ने कहा—) आपही की दया में हमारी कुशल है।

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥

सरल अर्थ—धर्म की धुरी धारण करने वाले रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्र जी ने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरत जी ने प्रभु के वे चरण कमल पकड़े, जिन्हें देवता, मुनि, शङ्कर जी और ब्रह्मा जी (भी) नमस्कार करते हैं।

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥

सरल अर्थ—भरत जी पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाए उठते नहीं। तब कृपा सिन्धु श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। (उनके) साँवले शरीर पर रोएँ खड़े हो गए। नवीन कमल के समान नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं के) जल की बाढ़ आ गई।

दोहा—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥७॥

सरल अर्थ—फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्न जी को हृदय से लगाकर उनसे मिले। तब लक्ष्मण जी और भरत जी दोनों भाई परम प्रेम से मिले।

चौ०-भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभुव दुख मेटे॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥

सरल अर्थ—फिर लक्ष्मण जी शत्रुघ्न जी से गले लगकर मिले और इस प्रकार विरह से उत्पन्न दुःसह दुख का नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्न जी सहित भरत जी ने सीता जी के चरणों में सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥

सरल अर्थ—प्रभु को देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न सब दुख नष्ट हो गए। सब लोगों को प्रेमविह्वल (और मिलने के लिए अत्यन्त आतुर) देखकर खर के शत्रु कृपालु श्री रामचन्द्र जी ने एक चमत्कार किया।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला ॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी ॥

सरल अर्थ—उसी समय कृपालु श्री रामचन्द्र जी असंख्य रूपों में प्रकट हो गए और सबसे (एक ही साथ) यथायोग्य मिले। श्री रघुवीर जी ने कृपा की दृष्टि से देखकर सब नर-नारियों को शोक से रहित कर दिया।

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना ॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुनधामा ॥

सरल अर्थ—भगवान् क्षणमात्र में सबसे मिल लिए। हे उमा! यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्री रामचन्द्र जी सबको सुखी करके आगे बढ़े।

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।

सरल अर्थ—कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ी मानो नयी ब्यायी हुई गौएँ अपने बछड़े को देखकर दौड़ी हों।

दोहा—भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि ॥८क॥

सरल अर्थ—सुमित्रा जी अपने पुत्र लक्ष्मण जी की श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रीति जानकर उनसे मिलीं। श्री रामचन्द्र जी से मिलते समय कैकेयी जी हृदय में बहुत सकुचायीं।

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ ॥८ख॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी भी सब माताओं से मिलकर और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। वे कैकेयी जी से बार-बार मिले, परन्तु उनके मन का क्षोभ (रोष) नहीं जाता।

चौ०-सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता ॥

सरल अर्थ—जानकी जी सब सासुओं से मिलीं और उनके चरणों लगकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। सासुएँ कुशल पूछकर आशिष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं ॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं ॥

सरल अर्थ—सब माताएँ श्री रघुनाथ जी का कमल-सा मुखड़ा देख रही हैं। (नेत्रों से प्रेम के आँसू उमड़े आते हैं, परन्तु) मङ्गल का समय जानकर वे आँसुओं के जल को नेत्रों में ही रोक रखती हैं। सोने के थाल से आरती उतारती हैं और बार-बार प्रभु के श्री अंगों की ओर देखती हैं।

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं ॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि ॥

सरल अर्थ—अनेकों प्रकार से निछावरें करती हैं और हृदय में परमानन्द तथा हर्ष भर रही हैं। कौसल्या जी बार-बार कृपा के समुद्र और रणधीर श्री रघुवीर जी को देख रही हैं।

हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे ॥

सरल अर्थ—ये बार-बार हृदय में विचारती हैं कि इन्होंने लंकापति रावण को कैसे मारा? मेरे ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान् बली थे।

दोहा—लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ॥८क॥

सरल अर्थ—लक्ष्मण जी और सीता जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी को माता देख रही हैं। उनका मन परमानन्द में मग्न है और शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है।

कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥८ख॥

सरल अर्थ—फिर उन लोगों (वानरों) ने कौसल्या जी के चरणों में सिर नवाए। कौसल्या जी ने हर्षित होकर आशिषें दीं। (और कहा—) तुम मुझे श्री रघुनाथ जी के समान प्यारे हो।

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृन्द ॥८ग॥

सरल अर्थ—आनंद कंद श्री रामचन्द्र जी अपने महल को चले, आकाश फूलों की वृष्टि से छा गया। नगर के स्त्री-पुरुषों के समूह अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं।

चौ०-कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे।
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू॥

सरल अर्थ—सोने के कलशों को विचित्र रीति से (मणि-रत्नादि से) अलंकृत कर और सजाकर सब लोगों ने अपने-अपने दरवाजों पर रख लिया। सब लोगों ने मङ्गल के लिए वंदनवार, ध्वजा और पताकाएं लगायीं।

बीथीं सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई॥
नाना भाँति सुमङ्गल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥

सरल अर्थ—सारी गलियाँ सुगन्धित द्रवों से सिंचाई गईं। गज मुक्ताओं से रचकर बहुत-सी चौकें पुराई गईं। अनेकों प्रकार के सुन्दर मङ्गल-साज सजाए गए और हर्ष-पूर्वक नगर में बहुत-से डंके बजने लगे!

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना॥

सरल अर्थ—स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही हैं और हृदय में हर्षित होकर आशीर्वाद देती हैं। बहुत-सी युवती (सौभाग्यवती) स्त्रियाँ सोने के थालों में अनेकों प्रकार की आरती सजाकर मङ्गलगान कर रही हैं।

करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥

सरल अर्थ—वे आर्तिहर (दु:खों को हरने वाले) और सूर्यकुलरूपी कमलवन के प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री रामचन्द्र जी की आरती कर रही हैं। नगर की शोभा, सम्पत्ति और कल्याण का वेद, शेष जी और सरस्वती जी वर्णन करते हैं।

दोहा—नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भईं निरखि राम राकेस॥१०॥

सरल अर्थ—स्त्रियाँ कुमुदिनी हैं, अयोध्या सरोवर है और श्री रघुनाथ जी का विरह सूर्य है (इस विरह-सूर्य के ताप से वे मुरझा गई थीं)। अब उस विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर श्री रामरूपी पूर्णचन्द्र को निरखकर वे खिल उठीं।

चौ०-कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥
गुर बसिष्ट द्विज लिए बोलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥

सरल अर्थ—कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्र जी जब अपने महल को गए, तब नगर के स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वसिष्ठ जी ने ब्राह्मणों को बुला लिया (और कहा—) आज शुभ घड़ी सुन्दर दिन आदि सभी शुभ योग हैं।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥

सरल अर्थ—आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिए, जिसमें श्री रामचन्द्र जी सिंहासन पर विराजमान हों। वसिष्ठ मुनि के सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणों को बहुत ही अच्छे लगे।

कहहिं वचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिवर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै॥

सरल अर्थ—वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्री रामचन्द्र का राज्याभिषेक सम्पूर्ण जगत् को आनंद देने वाला है। हे मुनिश्रेष्ठ ! अब विलम्ब न कीजिए और महाराज का तिलक शीघ्र कीजिए।

दोहा—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ॥११क॥

सरल अर्थ—तब मुनि ने सुमन्त्र जी से कहा, वे सुनते ही हर्षित होकर चले। उन्होंने तुरन्त ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाए।

सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अंग अंग सजे बनाइ॥११ख॥

सरल अर्थ—(इधर) सासुओं ने जानकी जी को आदर के साथ तुरंत ही स्नान कराके उनके अंग-अंग मे दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण भली-भाँति सजा दिए (पहना दिए)।

राम बाम दिसि सोभति रमारूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥११ग॥

सरल अर्थ—श्रीराम जी के बाईं ओर रूप और गुणों की खान रमा (श्री जानकी जी) शोभित हो रही है। उन्हे देखकर सब माताएँ अपना जन्म (जीवन) सफल समझ कर हर्षित हुईं।

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृन्द।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद॥११घ॥

सरल अर्थ—(काकभुशुण्डि जी कहते है—) हे पक्षिराज गरुड़ जी ! सुनिए, उस समय ब्रह्मा जी, शिवजी और मुनियो के समूह तथा विमानों पर चढ़कर सब देवता आनंदकंद भगवान् के दर्शन करने के लिए आए।

चौ०-प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥

सरल अर्थ—प्रभु को देखकर मुनि वसिष्ठ जी के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था। उसका सौन्दर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों को सिर नवाकर श्री रामचन्द्र जी उस पर विराज गए।

जनक सुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
वेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥

सरल अर्थ—श्री जानकी जी के सहित श्री रघुनाथ जी को देखकर मुनियों का समुदाय अत्यन्त हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणों ने वेद मंत्रों का उच्चारण किया। आकाश में देवता और मुनि 'जय हो, जय हो' ऐसी पुकार करने लगे।

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥

सरल अर्थ—(सबसे) पहले मुनि वशिष्ठ जी ने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को (तिलक करने की) आज्ञा दी। पुत्र को राज सिंहासन पर देखकर माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।

बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुन्दुभीं बजाईं॥

सरल अर्थ—उन्होंने ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए और सम्पूर्ण याचकों को अयाचक बना दिया (माला-माल कर दिया)। त्रिभुवन के स्वामी श्री रामचन्द्र जी को (अयोध्या के) सिंहासन पर (विराजित) देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गए, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्री रामचन्द्र जी के प्रताप से सबकी विषमता (आन्तरिक भेद-भाव) मिट गई।

दोहा—बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥१२॥

सरल अर्थ—सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए, सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है।

चौ०-दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

सरल अर्थ—'राम-राज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥

सरल अर्थ—धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी राम भक्ति के परायण हैं और सभी परमगति (मोक्ष) के अधिकारी हैं।

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥

सरल अर्थ—छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को कोई पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुन्दर और निरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है।

सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

सरल अर्थ—सभी दम्भरहित हैं, धर्म परायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् है। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरे के किए हुए उपकार को मानने वाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

सरल अर्थ—वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (वैर भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है।

कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥

सरल अर्थ—पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँति के पशुओं के समूह वन में निर्भय विचरते और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चलता रहता है। भौंरे पुष्पों का रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं।

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृत जुग कै करनी॥

सरल अर्थ—बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरंद) टपका देते हैं। गौएँ मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सत्ययुग की करनी (स्थिति) हो गई।

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥

सरल अर्थ—समस्त जगत् के आत्मा भगवान् को जगत् का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहने लगीं।

सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

सरल अर्थ—समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हे मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यन्त प्रसन्न हैं।

दोहा—बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥२३॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के राज्य में चन्द्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितने की आवश्यकता होती है और मेघ माँगने से (जब जहाँ जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं।

चौ०-जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर। रचे कंगूरा रंग रंग बर॥

सरल अर्थ—(दिव्य) स्वर्ण और रत्नों से बनी हुई अटारियाँ है। उनमे (मणि-रत्नों की) अनेक रंगों की सुन्दर ढली हुई फर्शें हैं। नगर के चारों ओर अत्यन्त सुन्दर परकोटा बना है, जिस पर सुन्दर रंग-बिरंगे कंगूरे बने हैं।

नवग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहुरंग रचित गच काचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा॥

सरल अर्थ—मानो नवग्रहों ने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी (सड़कों) पर अनेकों रंगों के (दिव्य) काँचों (रत्नों) की गच बनाई (ढाली) गई है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियों के भी मन नाच उठते हैं।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

सरल अर्थ—उज्ज्वल महल ऊपर आकाश को चूम (छू) रहे हैं। महलों पर के कलश (अपने दिव्य प्रकाश से) मानो सूर्य, चन्द्रमा के प्रकाश की भी निन्दा (तिरस्कार) करते हैं। (महलों मे) बहुत-सी मणियों से रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घर मे मणियों के दीपक शोभा पा रहे हैं।

छंद—बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे॥

सरल अर्थ—सुन्दर बाजार है, जो वर्णन नहीं करते बनता, वहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की सम्पत्ति का वर्णन कैसे किया जाय? बजाज (कपड़े का व्यापार करने वाले), सराफ (रुपए-पैसे

का लेन-देन करने वाले) आदि वणिक् बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं, मानों अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुन्दर हैं।

चौ०-गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा ॥
रामचरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा ॥

सरल अर्थ—(शिवजी कहते हैं—) हे गिरिजे ! सुनो, मैंने यह उज्ज्वल कथा, जैसी मेरी बुद्धि थी, वैसी पूरी कह डाली। श्री रामचन्द्र जी के चरित्र सौ करोड़ (अथवा) अपार हैं। श्रुति और शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते।

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी ॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥

सरल अर्थ—भगवान् श्री राम अनंत हैं, उनके गुण अनंत हैं, जन्म, कर्म और नाम भी अनंत हैं। जल की बूँदें और पृथ्वी के रज-कण चाहे गिने जा सकते हों, पर श्री रघुनाथ जी के चरित्र वर्णन करने से नहीं चुकते।

बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी ॥
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई ॥

सरल अर्थ—यह पवित्र कथा भगवान् के परम पद को देने वाली है। इसके सुनने से अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा ! मैंने वह सब सुन्दर कथा कही जो काकभुशुण्डि जी ने गरुड़ जी को सुनाई थी।

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी ॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी ॥

सरल अर्थ—मैंने श्री रामचन्द्र जी के कुछ थोड़े से गुण बखान कर कहे हैं। हे भवानी ! सो कहो अब और क्या कहूँ ? श्री रामचन्द्र जी की मङ्गलमयी कथा सुन कर पार्वती जी हर्षित हुईं और अत्यन्त विनम्र तथा कोमल वाणी बोलीं—

दोहा—तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृत कृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह ॥१४क॥

सरल अर्थ—हे कृपाधाम ! अब आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हो गई। अब मुझे मोह नहीं रह गया। हे प्रभो ! मैं सच्चिदानन्दघन प्रभु श्री रामचन्द्र जी के प्रताप को जान गई।

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर ॥१४ख॥

सरल अर्थ—हे नाथ ! आपका मुखरूपी चन्द्रमा श्री रघुवीर की कथा रूपी अमृत बरसाता है। हे मतिधीर ! मेरा मन कर्णपुटों से उसे पीकर तृप्त नहीं होता।

चौ०-रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥
जीवन मुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ ॥

सरल अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के चरित्र सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाते है (बस कर देते है), उन्होने तो उसका विशेष रस जाना ही नही। जो जीवन मुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान् के गुण निरंतर सुनते रहते है।

दोहा—गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होंइ सो गावहिं बेद पुरान ॥१५॥

सरल अर्थ—हे गिरिजे ! संत-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत-समागम) श्री हरि की कृपा के बिना नही हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं।

चौ०-कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भवपासा ॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा ॥

सरल अर्थ—मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानो से सुनते ही भवपाश (संसार के बन्धन) छूट जाते है और शरणागतो को (उनके इच्छानुसार फल देने वाले) कल्पवृक्ष तथा दया के समूह श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलो मे प्रेम उत्पन्न होता है।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा स्रवन मन लाई ॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥

सरल अर्थ—जो कान और मन लगाकर इस कथा को सुनते हैं, उनके मन वचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थयात्रा आदि बहुत-से साधन, योग, वैराग्य और ज्ञान मे निपुणता—

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना ॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥

सरल अर्थ—अनेको प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत और दान, अनेको संयम, दम, जप, तप और यज्ञ, प्राणियो पर दया, ब्राह्मण और गुरु की सेवा, विद्या, विनय और विवेक की बडाई आदि—।

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी ॥
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई ॥

सरल अर्थ—जहाँ तक वेदो ने साधन बतलाए हैं, हे भवानी ! उन सबका फल श्री हरि की भक्ति ही है। किन्तु श्रुतियो मे गाई हुई वह श्री रघुनाथ जी की भक्ति श्री रामचन्द्र जी की कृपा से किसी एक (विरले) ने ही पाई है।

दोहा—मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास ॥१६॥

सरल अर्थ—किन्तु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरंतर सुनते हैं, वे बिना परिश्रम उस मुनिदुर्लभ हरि भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

चौ०-सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता । सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता । रामचरन जा कर मन राता ॥

सरल अर्थ—जिसका मन श्री रामचन्द्र जी के चरणों में अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है। वही पृथ्वी का भूषण, पण्डित और दानी है। वही धर्मपरायण है और वही कुल-रक्षक है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना । श्रुति सिद्धांत नीक जेंहि जाना ॥
सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा । जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा ॥

सरल अर्थ—जो छल छोड़कर श्री रघुवीर का भजन करता है, वही नीति में निपुण है, वही परम बुद्धिमान् है। उसी ने वेदों के सिद्धान्त को भली-भाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी । धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥

सरल अर्थ—वह देश धन्य है जहाँ श्री गङ्गा जी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत-धर्म का पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥

सरल अर्थ—वह धन धन्य है जिसकी पहली गति होती है—(जो दान देने में व्यय होता है)। वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्सङ्ग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मण की अखण्ड भक्ति हो।

(धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है। जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति होती है।)

दोहा—सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ॥१७॥

सरल अर्थ—हे उमा! सुनो, वह कुल धन्य है, संसार भर के लिए पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्री रघुवीर परायण (अनन्य रामभक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न हो।

चौ०-रामकथा गिरिजा मैं बरनी । कलिमल समनि मनोमल हरनी ॥
संसृति रोग सजीवन मूरी । राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ॥

सरल अर्थ—हे गिरिजे! मैंने कलियुग के पापों का नाश करने वाली और मन के मल को दूर करने वाली रामकथा का वर्णन किया। यह रामकथा संसृति

(जन्म-मरण) रूपी रोग के (नाश के) लिए संजीवनी जड़ी है, वेद और विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पथाना।।
अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई।।

सरल अर्थ—इसमें सात सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, जो श्री रघुनाथ जी की भक्ति को प्राप्त करने के मार्ग हैं। जिस पर श्री हरि की अत्यन्त कृपा होती है, वही इस मार्ग पर पैर रखता है।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा।।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।।

सरल अर्थ—जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनः कामना की सिद्धि पा लेते हैं। जो इसे कहते-सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संसार रूपी समुद्र को गौ के खुर से बने हुए गड्ढे की भाँति पार कर जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अतिभाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई।।
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। रामचरन उपजेउ नव नेहा।।

सरल अर्थ--(याज्ञवल्क्य जी कहते हैं—) सब कथा सुनकर श्री पार्वती जी के हृदय को बहुत ही प्रिय लगा और वे सुन्दर वाणी बोलीं—स्वामी की कृपा से मेरा सन्देह जाता रहा और श्री रामचन्द्र जी के चरणों में नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया।

दोहा—मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ।।१८।।

सरल अर्थ—हे विश्वनाथ ! आपकी कृपा से अब मैं कृतार्थ हो गई। मुझमें दृढ़ राम-भक्ति उत्पन्न हो गई और मेरे सम्पूर्ण क्लेश बीत गए (नष्ट हो गए)।

चौ०-यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा।।
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।।

सरल अर्थ—शम्भु-उमा का यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करने वाला और शोक का नाश करने वाला है। जन्म-मरण का अंत करने वाला, सन्देहों का नाश करने वाला, भक्तों को आनंद देने वाला और संत पुरुषों को प्रिय है।

राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्हकें कछु नाहीं।।
रघुपति कृपा जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।।

सरल अर्थ—जगत् में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस राम कथा के समान कुछ भी प्रिय नहीं है। श्री रघुनाथ जी की कृपा से मैंने यह सुन्दर और पवित्र करने वाला चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

सरल अर्थ—(श्री तुलसीदास जी कहते हैं—) इस कलिकाल में योग, यज्ञ जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस श्री रामचन्द्र जी का ही स्मरण करना, श्री रामचन्द्र जी का ही गुण गाना और निरंतर श्री रामचन्द्र जी के ही गुण समूहों को सुनना चाहिए।

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥

सरल अर्थ—पतितों को पवित्र करना जिनका महान् (प्रसिद्ध) बाना है—ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं—रे मन! कुटिलता त्याग कर उन्हीं को भज। श्रीराम को भजने से किसने परम गति नहीं पाई?

छंद—पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

सरल अर्थ—अरे मूर्ख मन! सुन, पतितों को भी पावन करने वाले श्री रामचन्द्र को भजकर किसने गति नहीं पाई। गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत-से दुष्टों को उन्होंने तार दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यन्त पापरूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्री रामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरैं॥

सरल अर्थ—जो मनुष्य रघुवंश के भूषण श्री रामचन्द्र जी का यह चरित्र कहते हैं, सुनते है और गाते है, वे कलियुग के पाप और मन से मल को धोकर बिना ही परिश्रम श्री रामचन्द्र जी के परम धाम को चले जाते हैं। (अधिक क्या) जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयों को भी मनोहर जानकर (अथवा रामायण की चौपाइयों की श्रेष्ठ पच (कर्तव्याकर्तव्य का सच्चा निर्णायक) जानकर (उनको) हृदय में धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न विकारों को श्री रामचन्द्र जी हरण कर लेते हैं (अर्थात् सारे रामचरित्र की तो बात ही क्या है, जो पाँच-सात चौपाइयों को भी समझकर उनका अर्थ हृदय में धारण कर लेते हैं उनके भी अविद्याजनित सारे क्लेश श्री रामचन्द्र जी हर लेते हैं!)

सुन्दर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को ॥
जा की कृपा लवलेस ते मतिमद तुलसीदास हूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥

सरल अर्थ—(परम) सुन्दर, सुजान और कृपानिधान तथा जो अनाथों पर प्रेम करते हैं ऐसे एक श्री रामचन्द्र जी ही हैं। इनके समान निष्काम (निःस्वार्थ) हित करने वाला (सुहृद्) और मोक्ष देने वाला दूसरा कौन है ? जिनकी लेशमात्र कृपा से मन्द बुद्धि तुलसीदास ने भी परम शान्ति प्राप्त कर ली, उन श्री राम जी के समान प्रभु कहीं भी नहीं हैं।

दोहा—मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ॥१२क॥

सरल अर्थ—हे श्री रघुवीर ! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनों का हित करने वाला नहीं है। ऐसा विचार कर हे रघुवंशमणि ! मेरे जन्म-मरण के भयानक दु ख का हरण कर लीजिए।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रियजिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥१२ख॥

सरल अर्थ—जैसे कामी को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे श्री रघुनाथ जी ! हे श्रीराम जी ! आप निरंतर मुझे प्रिय लगिए।

श्लोक—यत्पूर्वं प्रभुणा कृत सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमं।
श्री मद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥१॥

सरल अर्थ—श्रेष्ठ कवि भगवान् श्री शंकर जी ने पहले जिस दुर्गम मानस-रामायण की श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों मे नित्य-निरन्तर (अनन्य) भक्ति प्राप्त होने के लिए रचना की थी, उस मानस रामायण को श्री रघुनाथ जी के नाम मे निरत मानकर अपने अन्तःकरण के अंधकार को मिटाने के लिए तुलसीदास ने इस मानस के रूप मे भाषाबद्ध किया।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं।
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥२॥

सरल अर्थ—यह श्री रामचरितमानस पुण्य रूप, पापों का हरण करने वाला, माया, मोह और मल का नाश करने वाला, परम निर्मल रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानस सरोवर मे गोता लगाते हैं वे संसार-रूपी सूर्य की अति प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते। ☐ ☐

मध्य प्रदेश तुलसी अकादेमी

तुलसी अकादेमी द्वारा अपने छह वर्षों के कार्यकाल में विभिन्न साहित्यिक, शोधपरक, कलात्मक एवं संगीतमय लोकमंगलकारी तथा लोकरंजक गतिविधियों का आयोजन संख्यास्तर और कीर्ति की दृष्टि से समूचे प्रदेश में लगभग अद्वितीय है। इतनी कम अवधि में इतनी उच्चस्तरीय सक्रियता दुर्लभ है।

२. सामान्य सभा और कार्यकारिणी समिति :

तुलसी अकादेमी के उपाध्यक्ष डा० भगीरथ मिश्र हैं। तुलसी साहित्य विशेषज्ञ के रूप में डा० विद्यानिवास मिश्र (वाराणसी), आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री (कलकत्ता), डा० रमानाथ त्रिपाठी (नई दिल्ली), डा० विनय मोहन शर्मा (भोपाल), श्री गोरेलाल शुक्ल (भोपाल), डा० राममूर्ति त्रिपाठी (उज्जैन), तुलसी अकादेमी की सामान्य सभा तथा कार्यकारिणी समिति में शासन द्वारा मनोनीत। संस्कृति सचिव, वित्त सचिव, पुरातत्व संचालक और अकादेमियों, परिषदों के सचिव पदेन सदस्य हैं।

३. गतिविधियाँ :

* तुलसी साहित्य के विद्वानों का सम्मान।
* तुलसी साहित्य पर सम्मेलन, गोष्ठियाँ, परिचर्चा।
* तुलसी साहित्य पर नयी और गैर अकादेमिक शोध को प्रोत्साहन।
* अन्य भाषाओं और बोलियों के तुलसी साहित्य को प्रोत्साहन।
* तुलसी साहित्य की शिक्षा, अनुसन्धान आदि के संवर्धन के बारे में राज्य शासन को परामर्श।
* तुलसी साहित्य के शास्त्रीय, लोक परम्पराओं पर प्रभाव और अन्तरावलम्बन का अनुशीलन।
* तुलसी साहित्य और व्यापक भक्ति परम्परा के साहित्य और अन्य कलारूपों का अनुसन्धान।

४. विस्तार :

शोध संस्थान चित्रकूट प्रमोदवन में तुलसी अकादेमी के नियमित उप कार्यालय और तुलसी शोध संस्थान की २८ दिसम्बर, १९८८ को १८ विदेशी विद्वानों की उपस्थिति में शोधकार्य के लिये स्थापना/इस केन्द्र में अब तक २३९ दुर्लभ पांडुलिपियाँ और १००० प्राचीन दुष्प्राप्य ग्रंथ संगृहीत/शोधकार्य के नियमित संचालन के लिए संस्थान को रीवा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध करने की कार्यवाही जारी।

५. आयोजन :

तुलसी अकादेमी के कार्यसमिति की अनुशंसा पर सामान्य सभा द्वारा स्वीकृत कार्यकलाप और निर्धारित लक्ष्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए।

वर्ष १९९२-९३ में तुलसी अकादेमी द्वारा जगदलपुर में दशहरे के अवसर पर हजारों-लाखों आदिवासी जनता के बीच मंगलाचरण समारोह सम्पन्न हुआ। दीपावली के अवसर पर चित्रकूट में अपार ग्रामीणवासी वनवासी राम के साथ

दीपावली मनाने की भावना लिए एकत्र होते हैं। इन ग्रामवासियों के बीच तीन दिवसीय तुलसी उत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। भोपाल में जनरजन के अन्तर्गत कृष्णलीला, रामलीला आयोजन लोकप्रिय हुआ। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा कर्वी में आयोजित राष्ट्रीय रामायण मेला के अवसर पर लोकयात्रा में डा० पुरू दधीच और डा० विभा दधीच की पंचवटी नृत्यनाटिका एवं रामकाव्य के राष्ट्रीय महत्व पर डॉ० रमानाथ त्रिपाठी की अध्यक्षता में देशभर से आए २५ से भी अधिक विद्वानों ने संगोष्ठी में भाग लिया।

चित्रकूट तुलसी शोध संस्थान द्वारा शोध कार्य के अन्तर्गत तुलसी साहित्य की ४७ नई पाडुलिपियाँ तथा ४०० अन्य ग्रंथ संग्रहीत किए गए।

तुलसी अकादेमी के पाँच वर्षों में कुल ३० राष्ट्रीय स्तर के आयोजन जिनमें देशभर के लगभग २५०० विद्वानों, गायकों, शोधकर्ताओं और कलाकारों की शिरकत/लाखों श्रोताओं, दर्शकों एवं रसिकजनों को प्रेरक आनन्द की प्राप्ति लगभग १३२६ आदिवासी, ५२७ हरिजन, ३४२५ पिछड़े वर्ग और सैकड़ों सामान्य जन लाभान्वित हुए है।

६. प्रकाशन :

१. तुलसी के राम	श्री रामनारायण उपाध्याय (खण्डवा) राम चरित्र के लोकव्यापी स्वरूप का मार्मिक अनुभूतिपूर्ण चित्रण।
२. तुलसी निर्देशिका	मूर्धन्य विद्वान् डा० रमानाथ त्रिपाठी (नई दिल्ली) के सम्पादन में देशभर के तुलसी विद्वानों, शोध-कर्ताओं, गायकों, कलाकारों, संस्थाओं आदि के बारे में प्रमाणित जानकारी।
३. समाधान	तुलसी अकादेमी द्वारा आयोजित उच्चस्तरीय व्याख्यान माला के आलेखों का संग्रह समाधान के प्रवेशांक में प्रकाशित किया गया।
४. प्रकाशनाधीन रामवन पथ अलबम	प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता प्रो० के० डी० बाजपेयी द्वारा प्रामाणिक आधार पर श्री राम जीवन यात्रा के पथ और प्रतिमाओं के प्रामाणिक अलबम की पाडुलिपि तैयार।
समाधान द्वितीय अंक	विचार गोष्ठियों के आलेखों का प्रकाशन।

७. प्रदर्शनी :

रामझरोखा	तुलसी जीवन पर चित्र स्पर्धाओं में युवा कलाकारों द्वारा बनाये गए २५० चित्रों का अद्भुत प्रेरणादायी संग्रह है।

८. सम्मान

आयोजन अवसर पर देश के प्रख्यात एवं पूज्य तुलसी साहित्य, संगीत कलामनीषियों के सम्मान की परम्परा कायम हुई है। अब तक ४२ विभूतियों का सम्मान किया गया है।

९. कार्यशालाएँ

प्रशिक्षण—रामचरितकथा, प्रवचन और व्याख्यान, को राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक सद्भाव एवं आधुनिक जीवन मूल्यों, संस्कारों से जोड़ने और तराशने के लिए १५० कलाकारों एवं प्रवचनकारों को प्रशिक्षण दिया गया। लोकमंगल प्रथम चरण में यह कार्य किया गया।

रामलीला मंचन परम्परा को वर्तमान युग के अनुकूल बनाने के उद्देश्य से कलाकारों की कर्मशाला का आयोजन। उन्हें विशेषज्ञों के सानिध्य में नई दिशा और दृष्टि की प्रेरणा।

१०. भागीदारी :

तुलसी अकादेमी द्वारा सहकर्मी तथा सहधर्मी संस्थाओं और आयोजनों में सदैव स्वयं की पहल पर भागीदारी। तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल तथा राष्ट्रीय रामायण मेला, कर्वी, उत्तर प्रदेश के साथ सहभागिता के आधार पर अनेक कार्यक्रम आयोजित।

११. व्याख्यान-माला :

विश्वविद्यालयीन स्तर की उच्च शोध एवं गवेषणापूर्ण तुलसी व्याख्यानमाला श्रृङ्खला वर्ष १९८८ से प्रारम्भ/पहले वक्ता डा० विद्यानिवास मिश्र, वाराणसी/दूसरे वक्ता श्री विष्णुकान्त शास्त्री, कलकत्ता/तीसरे वक्ता डा० नगेन्द्र, नई दिल्ली और चौथे वक्ता थे डा० गोविन्दचन्द्र पांडे, इलाहाबाद। इस वर्ष के वक्ता डा० पांडुरंगराव थे।

१२. लोकयात्रा :

देश में सम्भवतः पहली बार तुलसी अकादेमी ने लोक साहित्य, वाचिक परम्परा और पांडुलिपियों के संग्रह आकलन और पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर शोध यात्रा की श्रृङ्खला प्रतिवर्ष आयोजित/प्रथम श्रृङ्खला तुलसी जन्मस्थली राजापुर उत्तर प्रदेश से चित्रकूट/द्वितीय श्रृङ्खला बाल्मिकी सुतीक्ष्ण आश्रम शरभंग आश्रम से चित्रकूट तक। इस वर्ष तृतीय श्रृङ्खला रामवन सतना तक आयोजित। लोक यात्रा में पुरातत्त्व, साहित्य, धर्म, इतिहास, धर्म और दर्शन क्षेत्र का विशेषज्ञ दल शामिल/लोकयात्रा का निर्धारित चरण पूरा होने पर उसके अनुभव और अनुभूतियां राष्ट्रीय रामायण मेला कर्वी उत्तर प्रदेश की जनसंत सभा में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किये गये। इस वर्ष पन्ना जिले की यात्रा का लक्ष्य था किन्तु राष्ट्रीय संगोष्ठी के कारण इसे अगले वर्ष के लिये रखा गया है।

१३. साध्य और साधन :

सीमित साधनों द्वारा असीमित साध्य को प्राप्त करने के लिए तुलसी अकादमी द्वारा व्यापक जनसहयोग प्राप्त करने की दिशा में सक्रिय पहल/आप सबसे सक्रिय भागीदारी, मार्गदर्शन और निरन्तर सरोकार का सादर साग्रह अनुरोध है।

१४. सम्पर्क :

डा० सिद्धनाथ शर्मा/सचिव/तुलसी अकादेमी,
संस्कृति भवन, म० प्र०, बाणगंगा, भोपाल—४६२००३

□ □